

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY****KOTA (Raj.)**

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DATE	SIGNATURE

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषाग्रन्थमाला

१४५

१९५३

बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्य

डॉ. राजीवलोचन आश्रहोषी

एम०, ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

संस्कृत-विभागाध्यक्ष

शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय

अध्यक्ष, संस्कृत-अध्ययन-विभाग

इन्दौर विश्वविद्यालय



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९५३

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०१९
मूल्य : २५-००

© चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६६, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

प्रधान कार्यालय
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
गोपाल मन्दिर छेन,
पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बक्स ८, वाराणसी-१
फोन : ६३१४५

THE
VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA
145
ॐॐॐॐ

BAGHELAKHANDA KE SAMSKṚTA KĀVYA
(*Sanskrit Poems of Baghelkhaṇḍa*)

By
DR. RĀJĪV LOCHAN AGNIHOTRĪ

M. A., LL. B.; Ph. D.
Professor of Samskr̥ta
Govt. Arts & Commerce College
Head of the Deptt. of Samskr̥ta Studies
University of Indore

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1973

© The Chowkhamba Vidyabhawan

Post Box No. 69

Chowk, Varanasi-1 (India)

1973

Phone : 63076

First Edition

1973

Price Rs. : 25-00

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

... Publishers & Oriental Book-Sellers ...

P. O. Chowkhamba, Post Box 8; Varanasi-1 (India)

Phone : 63145

जननी
के
पावन चरणों में



महाराज विश्वनाथसिंह

[जन्म १७८६ ई०, राज्य १८३४-१८५४ ई०]

बघेलखण्ड के यशस्वी संस्कृत कवि और दार्शनिक नरेश

प्रस्तुति

बघेलखण्ड के संस्कृत-साहित्य के प्रति मेरे उन्मुल होने का एक लघु वृत्तान्त है। १९५५ ई० में विन्ध्यप्रदेश के सूचना एवं प्रकाशन-विभाग (रीवा) की ओर से साहित्यिक पुरस्कारों में संस्कृत-विषय को भी जोड़ा गया। इसका श्रेष्ठ तत्कालीन पदाधिरारी डॉ० विद्यानिवास मिश्र को है। रीवा के किले में अवस्थित सरस्वती-कोष-भाण्डार में संस्कृत की प्रचुर पाण्डुलिपियाँ हैं। उक्त पुरस्कार-योजना में भाग लेने के लिए मैंने इस साहित्य का परिचय 'संस्कृत-साहित्य को बान्धनरेशों की देन' नामक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया। पुस्तक पुरस्कृत हुई और रीवा-नरेश के औदार्य से १९५७ ई० में प्रकाशित भी हो गई। १९५६ ई० में मैंने महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा प्रणीत 'राधावल्लभाय-मत्त-श्रवर्तक ब्रह्मसूत्र-भाष्य' का 'चतुःमूयन्त' हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया। यह भी पुरस्कृत हुआ। १९५७ ई० में विन्ध्य-संस्कृत-विश्व-परिषद् रीवा की ओर से रूपणि शर्मा द्वारा १९७८ ई० में रचित 'बघेलखण्ड-वर्णनम्' का मैंने सम्पादन और प्रकाशन कराया, जिसमें रीवा के अनेक विद्वानों से प्रोत्साहन मिला।

उपरोक्त साहित्य का विशेष अध्ययन प्रस्तुत करने की रुचि जाग्रत हो जाने से मैंने १९५८ ई० में छतरपुर से सागर-विश्वविद्यालय में विषय पंजीयित कराया। १९५९ ई० में मेरी निशुक्ति इन्दौर में हो गई और मानव-जन्तुओं ने बाधाएँ उपस्थित कर दीं। सफलता को संशयमस्त देख कर मैंने अनुसन्धान का विचार त्याग दिया।

१९६२ ई० में मेरे परमसखा डॉ० राजेन्द्र शुक्ल (दिल्ली विश्वविद्यालय) ने मुझे पुनः प्रवृत्त किया और विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में अनुसन्धान की अनुमति मिल गई। १९ दिसंबर १९६४ ई० को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हो गई। वही प्रबन्ध अब प्रकाश में आ रहा है।

कानपुर के श्रेष्ठ डॉ० हरिदत्त शास्त्री और चाराणसी के आदरणीय डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, दोनों कर्मनिष्ठा की साकार मूर्तियों ने इस प्रबन्ध को

स्वीकृति दी। इन्दौर के प्रो० धुं० गो० सप्रे ने सुयोग्य निर्देशन दिया। मैं इनका सदा ऋणी रहूँगा।

रीवा-निवासी प्राचार्य श्री अस्तर हुसेन निजामी ने बघेलखण्ड के इतिहास पर सञ्चित अपनी ज्ञानराशि मुझे सहज स्नेह के साथ सौंप दी। रीवा के ही गुरु रामप्यारे अमिहोत्री, प्राचार्य श्री चिन्तामणि मालवीय, लाल महाधीरसिंह, पं० नन्दकिशोर पोष्टाचार्य, मौलाना ऐयाज अली, मानपुर के श्री रामभद्र गौड़ और भरतपुर के लाल भानुसिंह बाघेल ने बघेल-इतिहास की अपनी जानकारीयाँ मुझे सद्भाव के साथ लिखवाई और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ दितलाई। राम-न (जिला सतना) के बाबू नारदाप्रसाद जी का चात्सल्य मैं भूल नहीं सकता। सतना के डॉ० भगवानदास सफाड़िया मुझे अंकुश-प्रयोग से अग्रसर करते रहे। सरस्वतीकोष-भाण्डार रीवा के अधिकारी-गण पाण्डुलिपियाँ देरने में मेरी पूरी सहायता करते रहे। मेरे प्रिय अनुज चि० अवधेश अमिहोत्री ने प्रबन्ध को आकार देने में सहायता की। इन्दौर के डॉ० लक्ष्मण नारायण शुरु, डॉ० नारायणदत्त शर्मा, श्री रवीन्द्र शास्त्री, डॉ० ध्यानचन्द्र अग्रवाल, श्री मेहरवान ईरानी तथा अनेक शिष्य और सहकारी मेरी इस सिद्धि में सुख का अनुभव करते रहे। इन सबका मैं ऋतज्ञ हूँ।

यह पुस्तक मेरे १० वर्षों के परिश्रम का परिणाम है। यह मेरी संवद्ध जानकारीयों की विशृङ्खल कड़ियों का जोड़ है और एक विशिष्ट अवधि (१५००-१९०० ई०) में बघेलखण्ड जनपद (वर्तमान रीवा संभाग) में रचित संस्कृत काव्यसाहित्य का निचोड़ है। उपयोगिता की दृष्टि से मैंने इस प्रबन्ध पर कभी विचार नहीं किया। यह मेरे लिये केवल 'स्वान्तःसुखाय' है और मैंने अपनी इस प्रस्तुति से सच-मुच आत्म-तृप्ति का अनुभव किया है।

वैदिक-साहित्य में उल्लेख मिलता है—'इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते।' यह प्राणियों की जीवनाधायक सामग्री के अर्थ में अभिहित हुआ है। वैदिक युग के प्रायः मध्य काल में सोमरस की उद्भावना प्रबल हो उठी। सोमरस में इरा का पोषक तत्त्व निहित था, साथ ही उसमें सुरा का मादक, आह्लादक तत्त्व भी समाविष्ट हो गया था। सम्भवतः इसी मिश्रण ने सोमरस को वैदिक काल में सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान की। आगे चल कर सुरा का तत्त्व

पृथक् हो गया; सुरा विलास का साधनमात्र रह गई और सुरा-पान का निषेध भी हुआ। इसी प्रकार इरा तत्त्व शस्य-भौषज्य के क्षेत्र में सीमित हो गया।

हम इस कल्पना को काव्य के क्षेत्र में उतार कर देखें। इरा काव्य का शिव तत्त्व है और सुरा उसका सुन्दर तत्त्व। कालिदास जैसे उत्तम कवियों की कृतियों में इन दोनों तत्त्वों का समानुपातिक सम्मिश्रण रहने से उन्हें सोनरस वाली लोकप्रियता उपलब्ध हुई। परवर्ती काव्यों में आह्लादन, आस्वादन या उन्मादन तत्त्व का अतिरेक हो गया। उनमें शिव-तत्त्व का बहुत थोड़ा अंश शेष रहा। वे वैभव और विलास में तैरने वालों के लिये मनोरंजन के साधन मात्र रह गए और जन-जीवन से दूर हो गए। हमारी दृष्टि में भार्गी कवियों को इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि उनकी रचना में इन दोनों में से किसी भी तत्त्व की उपेक्षा न हो; तभी उनकी काव्यकृति उपादेय और आह्लादक रह सकती है।

इस सम्मति के साथ अपने अन्तःकरण की भूमिका पर अङ्कुरित इस प्रबन्धवल्ली के शब्द-सुमन नई पीढ़ी को समर्पित हैं।

इन्दौर,
दुर्गानवमी, सं० २०२९ वि०
१६ अक्टूबर, १९७२ ई०

—राजीवलोचन अग्निहोत्री

विषय-विवरण

पृष्ठ

प्रथम अध्याय : विषय-निर्धारण

१-१०

द्वितीय अध्याय : पृष्ठ-भूमि

११-१०८

(क) (१२) बघेल-शब्द की व्युत्पत्ति (२०) बघेल छण्ड शब्द से तात्पर्य (२१) बघेलछण्ड की स्थापना और विस्तार (२८) भौगोलिक सीमाओं में क्रमिक परिवर्तन (३०) आधुनिक स्वरूप (३१) देश की परिस्थिति का बघेलछण्ड पर प्रभाव ।

(ख) (३७) पिछली चार शताब्दियों में देश में संस्कृत-सर्जना की धारा (४६) बघेलछण्ड का संस्कृत-साहित्य (९४) काव्यों के भेद-प्रभेद एवं वर्गीकरण ।

तृतीय अध्याय : महाकाव्य : वीरभानूदयकाव्यम्

१०९-

(क) परिचयात्मक विवरण—(११०) १-पाण्डुलिपि और समाप्त प्रकाशन (११२) २-कवि-परिचय और ग्रन्थ का रचनाकाल (११९) ३-वस्तु-तत्त्व ।

(ख) काव्यात्मक विश्लेषण—(१२६) महाकाव्य के लक्षण और वीरभानूदयकाव्य का परीक्षण (१४०) शैली (१४१) भाषा और पदावली : गुण, वृत्ति, रीति (१४४) रस (१४०) अलङ्कार-भावव्यञ्जना (१४३) कालिदास के काव्यों की छाया (१४९) प्रमुख चरित्र (१६५) महाकाव्यों की परम्परा और वीरभानूदय काव्य ।

(ग) काव्य में उपलब्ध ऐतिहासिक तत्त्व (१:९) बघेलों की पूर्वजपरम्परा (१७९) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति (१८७) बघेलछण्ड का तत्कालीन समाज एवं संस्कृति—संस्कार (१९०) वर्ण (१९१) आथम (१९२) दर्शन-उपासना (१९५) जनजीवन (१९८) राज्यतन्त्र ।

चतुर्थ अध्याय : लघुकाव्य

१९१-२५६

(१) प्रशस्तिकाव्य—रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः

(क) परिचय : (२०४) ऐतिहासिक तथ्य : (२०६)

(ख) भाव-व्यञ्जना और कला-सौन्दर्य : (२११) (ग) प्रशस्तियों की परम्परा ।

(२) कथा-काव्य : दशकुमार-पूर्वकथागार :

(क) पाण्डुलिपि का विवरण : (२१८) (ख) कवि-परिचय : (२१६) (ग) कथातत्त्व : (२१९) (घ) काव्यकला : (२२०) संस्कृत के अन्य कथागार ।

(३) गीतिता (वंशावली) काव्य—सर्वलवण-वर्णनम् :

(क) पाण्डुलिपि और कवि का परिचय (२१०) : (ग) ऐतिहासिक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन (२१८) : (ग) भावगिह (२२२) : (घ) काव्य का ऐतिहासिक महत्व (२२२) : (ङ) काव्यात्मक गौन्दर्य ।

(४) पद्म-काव्य : रामतरङ्गम् :

(क) कवि-परिचय (२२७) : पाण्डुलिपि (२२८) : (ख) ग्रन्थ में प्राप्त काव्यगौन्दर्य (२३०) : दर्शन (२३१) ।

(५) स्तुति-काव्य :

(क) कवि रघुगजसिंह का परिचय (२३३) : (ग) स्तुति-काव्यों का विवरण—१-गुणमोविमान (२३४) : २-अगदीशशतकम् (२३८) : ३-रघुराजमञ्जल-वन्दनावली (२४१) : ४-शम्भुशतकम् (२४२) : ५-नर्मदाशतकम् (२४२) : ६-शोकनायाशकम् (२४३) : (ग) प्रस्तुत काव्यों में प्राप्त दर्शन (२४४) : (घ) रचनाशैली (२४९) ।

(६) स्तुति रचनाएँ (२४४) ।

पञ्चम अध्याय : चम्पू

... २१७-३११

(क) वीरभद्रदेव-चम्पू : (१) कवि-परिचय (२५७) : पञ्चनाम के ग्रन्थ (२६८) : (२) वीरभद्रदेवचम्पू का विवरण (२७८) : (३) चम्पू का कथातत्त्व (२७७) : (४) ऐतिहासिक उद्भूति (२७७) : (५) प्रमुख कवि (२८८) : (६) वीरभद्र-देवचम्पू में प्राप्त साहित्य (२८९) : (७) चम्पू-साहित्य की परम्परा (२९०) ।

(ग) विष्णुनाथसिंह की कृतियाँ (१) पाण्डुलिपियों से सम्बद्ध जानकारी—सङ्गीत-रघुनन्दनम् (२९३) : रामचन्द्रादिष्टम् (२९४) : (२) कथातत्त्व (२९७) : (३) शैली और काव्यगौन्दर्य—सप्त-काव्य (३०१) : पद्मकाव्य (३०४) : (४) दोनों काव्यों में प्राप्त राम का स्वरूप—(क) काव्यात्मक रूप (३१३) : (ग) उपास्य रूप (३१८) ।

पष्ठ अध्याय : नाटक : आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम् ३१६-३७०

(क) परिचयान्तक विवरण (१) पाण्डुलिपियों (३१६) :
(२) रचनाकाल (३१७) : (३) वस्तु-तत्त्व (३१९) : (४)
वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव (३२८) ।

(ख) वाग्यात्मक विश्लेषण (१) नाट्यशास्त्र की दृष्टि से
प्रस्तुत ग्रन्थ का परोक्ष (३३१) : (२) संवादों की प्रभावामकता
और अभिनेयता (३३७) : (३) शैली (३४३) : (४) प्रमुख
चरित्र (३४१) ।

(ग) तुलनात्मक रूप (१) हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की
प्रस्तुत संस्कृत नाटक पर छाया (३६४) : (२) राम पर लिखे गये
अन्य संस्कृत नाटकों के साथ सामान्य तुलना (३६६) : (३) राम-
कथात्मक संस्कृत रूपक (३६९) ।

सप्तम अध्याय : उपसंहार ... ३७१-३७२

परिशिष्ट १—

(क) एकत्रा वाग्योगद (जमाबन्दी १)	...	३७३
(ख) वंशावली बाधौपति (जमाबन्दी २)	...	३७६
(ग) वंशावली (जमाबन्दी ३)	...	३७६

परिशिष्ट २—तारीखी-मुहम्मदी का एक उल्लेख ... ३७८

परिशिष्ट ३—शिलालेख ... ३७९

परिशिष्ट ४—छाया-चित्र के दो पृष्ठ ... ३८०

सन्दर्भ ग्रन्थ

(क) संस्कृत (प्रकाशित)	...	३८१
(ख) संस्कृत (अप्रकाशित)	...	३८४
(ग) हिन्दी (प्रकाशित)	...	३८५
(घ) हिन्दी (अप्रकाशित)	...	३८६
(ङ) हिन्दी-निबन्ध	...	३८७
(च) अंग्रेजी (प्रकाशित)	...	३८७
(छ) अंग्रेजी-निबन्ध	...	३८९

अवशिष्ट ... ३९३

सन्दर्भ-सङ्केत

(Abbreviations)

(क) अंग्रेजी ग्रन्थ और निबन्ध

- अक० : Akbarnamah of Abul Fazl : Tr. H. Beveridge : 1907.
आहूदेंडिफिकेशन० : 'Identification of Virabhānu, the Patron of
Poet Bhānukara' : by P. K. Gode : Calcutta Oriental
Journal : Vol. II-1935 : pp. 254-258.
आईन० : Ain-i-Akbari of Abul Fazl : Tr. Blochmann :
Calcutta : 1873.
आफ्रे० : Aufrecht : Catalogus Catalogorum : Leipzig.
आ० रि० इ० : Archaeological Survey Reports of India by
A. Cunningham.
इ० ऐ० : Indian Antiquary.
इ० क० : Indian Culture.
इ० ग० : Imperial Gazetteer of India by Hunter.
इन्स० भावनगर० : A Collection of Prakrit & Sanskrit Inscrip-
tions in the Bhavanagar Archaeological Department.
इ० हि० : Indian Historical Quarterly.
ई० दा० : Elliot and Dowson : History of India.
ए० इ० : Epigraphica Indica by Buhler.
ए डेस्० कै० : A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts
in the Royal Asiatic Society of Bengal—Calcutta :
Vol. vii-1934 by M. M. Har Prasad Shastri.
एनवस० : Annals of the Bhandarkar Oriental Research Insti-
tute : Poona.
ओ० चा० : Origin of the Chālukyas : by Ranjit Singh Satyasray :
Calcutta : 1938.
ओ० ज० : Calcutta Oriental Journal.
कि० भा० : The Kiraṇāvalī—Bhāskara of Padmanābha Miśra :
Gopinātha Kavirāja : Sarasvati Bhawan Texts No. 1.
Banaras : 1920.
कटे० खलवर : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Ulwar
State.
कटे० अवध : Catalogue of Sanskrit Manuscripts Existing in
Oudh.

- कै० उदयपुर : Menaria—M. L. : *Catalogue of Manuscripts in the Library of H. H. The Maharana of Udaipur.*
- कै० काश्मीर : *Catalogue of Manuscripts in Kashmir.*
- कै० तंजोर : Shastri—P. P. S. : *Catalogue of Manuscripts in the Palace Library, Tanjore.*
- कै० बीकानेर : Mitra—R. L. : *A. Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the (Anup Sanskrit) Library of the Maharaja of Bikaner.*
- कै० बंगाल : Shastri—H. P. : *Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Asiatic Society of Bengal : Vol. iv : Calcutta : 1923.*
- कै० मैसूर : *Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Oriental Library, Mysore and Supplement.*
- ग० मै० ला० : *Government Manuscripts Library : Poona.*
- ग्लो० गु० : *Glory that Was Gurjar Desa : by K. M. Munshi : Bharatiya Vidya Bhavan : Bombay : 1954.*
- चौ० गु० : *Chaulukyās of Gujrat : by A. K. Majumdar : Bharatiya Vidya Studies IV—Bombay : 1956.*
- ज० ए० सो० : ज० रा० ए० सो० : *Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta.*
- ज० रा० इ० : *Journal of the Gaṅgānātha Jhā Research Institute : Allahabad.*
- ज० बि० भो० सो० : *Journal of the Bihar and Orissa Research Society : Patna.*
- इ० नि० स० : 'Terminus ad quem for the Date of Bhānūdatta : the Author of the *Rasa-Mañjarī* : by P. K. Gode : *Annals : Poona : Vol. xvi—1935 : pp. 147-48.*
- हा० हि० ना० इ० : *Dynastic History of Northern India : by H. C. Ray : Vol. II. Calcutta : 1936.*
- दि० पोषट भानुकर० : 'The Poet Bhānukara' : by Dr. Har Dutt Sharma : *Annals : Vol. XXVII—Part 3 : 1936.*
- नाइन जेम्स० : 'Nine Gems of the Court of Mahārāja Bhāvasimha of Rewa' : by A. H. Nizami : *Journal of the Gaṅgānātha Jhā Research Institute : Allahabad : Vol. VIII—Part 4 : Aug. 1951.*
- न्यू० इ० ऐ० : *New Indian Antiquary.*
- पद्य० : *The Padya-Racanā of Lakṣmaṇabhaṭṭa : Kāvya-mālā : Bombay.*

- पद्यवेणी० : The Padya-Veṇī of Venīdatta : Prācyavāṇī :
Calcutta : 1944.
- पद्यामृत० : The Padyāmṛta-Taraṅgiṇī of Hariḥbhāskara :
Prācyavāṇī : Calcutta : 1941.
- पीटर्सन० : Petersons Reports of the Operations in Search of
Sanskrit Manuscripts in the Bombay Circle.
- फर्दर नोट्स० : 'Further Notes on the Baghela Dynasty of
Rewa' : by Dr. Hiranand Shastri : Journal of the Bihar
and Orissa Research Society : 1930.
- बघेल बाबुनैसी० : 'The Baghela Dynasty of Rewa—A Memoir' :
by Dr. Hiranand Shastri : Baroda : 1925.
- भा० भो० रि० इ० : Bhandarkar Oriental Research Institute,
Poona.
- भानु० : 'Bhānudatta—Author of the Pārijāta and Bhānudatta—
Author of the Rasa-Māṣjarī' : by P. K. Gode : Indian
Culture : Vol. III—1937 : pp. 751–56.
- मित्रा० : Notices of Sanskrit Manuscripts by Rajendra Lal
Mitra : Calcutta : 1871.
- मुस्लिम पैट्रनेज० : Muslim Patronage to Sanskrit Learning :
J. B. Chaudhuri : Vol. I : Prācyavāṇī : Calcutta : Second
Edition : 1954.
- रसिक० : The Rasikajivana of Gadādhara Bhaṭṭācārya :
Prācyavāṇī : Calcutta.
- रा० ए० सो० : The Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta.
- रामचन्द्र मह ए प्रोटेज० : 'Rāmacandra Bhaṭṭa' A Protege of
King Pahārasimhadeva, Son of King Virasimhadeva
of Bundel-Khand' : by P. K. Gode : Adyar Library
Bulletin : Vol. XVIII—Part I & II.
- राम० प्र० : The Rāmacandra-Yasah-Prabandha of Govinda
Bhaṭṭa alias Akbariya Kālidāsa : Prācyavāṇī : No. 7 :
Calcutta : 1946.
- वाघेल रुलर्स० : 'Some Vāghela Rulers and the Sanskrit Poets
Patronised by them' : by Dr. Har Dutt Sharma :
Krishnaswamy Aiyangar Commemoration Volume :
Ahmedabad : pp. 48–54.

- वीर० अंग० : The English Summary of the Virabhānūdaya Kāvyaṃ by K. K. Lele, published at the end of the work.
- वीर० क्रि० प० : Critical Analysis of the Virabhānūdaya Kāvyaṃ by Dr. Hiranand Shastri : Published with the Kavya : Baroda : 1938.
- वीर० चतु० : The Virabhadra-Campū of Padmanābha Miśra : Prācyavāṇī : Vol. XII : Journal of the Prācyavāṇī : Calcutta : Vol. IX : 1952.
- सम्पा० : The Sabhyālaṅkaraṇa of Govindajit : Prācyavāṇī : Calcutta : 1947.
- सम्प० डेटा० : 'Some Data of the Identification of Virabhānu, the Patron of Poet Bhānukara' : by P. K. Gode : Calcutta Oriental Journal : Vol. II-1935 : pp. 197-199.
- सा० सं० : Sāra-Saṅgraha of Śambhūḍasa Pandita : RASB-31-A.
- साहित्यसुधा० : 'Date of Sāhitya-Sudha, A Commentary on the Rasa-Taraṅgiṇī of Bhānūdatta' : by P. K. Gode : Calcutta Oriental Journal : Vol. I, 1944, pp. 217-220.
- सुक्ति० : The Sūkti-Sundara of Sundaradeva : Prācyavāṇī : Calcutta.
- संस्कृत एवम् हिन्दी बरसं० : 'Sanskrit and Hindi works of Mahārāja Viśvanātha Simha of Rewa—Between 1813 and 1853' by P. K. Gode : New Indian Antiquary : BORI : Poona : Vol. IX-Nos. 4-6 : April-June : 1947.
- संस्कृत बरसं० : 'Sanskrit Works of Mahārāja Viśvanātha Simha by Chintabaran Chakravarti : Journal of Royal Asiatic Society of Bengal : Vol. V : Calcutta : 29th October 1939.
- हि० छा० सं० लिट्० : History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishnamachariar : Madras : 1937.

(ख) संस्कृत-हिन्दी-ग्रन्थ

- भा० रघु० : ध्यानन्द रघुनन्दन नाटक (हिन्दी) : विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन : रीवा : १९६० ।
- कन्दर्प० १ : कन्दर्प-चूड़ामणि (वीरभद्रदेव) : सं० : जीतन सिंह : बेंकटरमण प्रेस : रघुराजनगर (सतना) : १९०८ ।
- कन्दर्प० २ : कन्दर्प-चूड़ामणि (वीरभद्रदेव) : सं० : रामचन्द्र शास्त्री : संस्कृत पुस्तकालय : लाहौर : १९२६ ।
- गीत० : गीतगोविन्द (जयदेव) : निर्णयसागर : बम्बई १९२९ ।
- द्वितीया० : द्वितीया पुस्तकालय : विन्ध्यप्रदेश सूचना विभाग : रीवा ।
- पदे० : श्री जगन्नाथ शास्त्री पदे सम्मानाङ्क : बड़ौदा : १९६४ ।
- बघेल० : बघेलवंशवर्णनम् : (रूपणि मिश्र) : सं० : राजीवलोचन अग्निहोत्री : विन्ध्य-संस्कृत-विश्वपरिषद् : रीवा : १९५७ ।
- मासिर० : मासिर-ठल-डमरा (समसाम उद्दीला-१०४७ ई०) : अनु० : प्रजरानदास : प्रकाशित-काशी ।
- वि० प्र० इ० : विन्ध्य प्रदेश का इतिहास : रामप्यारे अग्निहोत्री : रीवा : १९५४ ।
- वीर० : वीरभानूदयकाव्यम् (माधव) : प्रकाशित : रीवा : १९३८ ।
- शरदागम० : चन्द्रालोक-शरदागम टीका : (पञ्चनाभमिश्र) नारायण शास्त्री लिखिते : चौखम्बा-काशी : १९३९ ।
- स० को० भा० : मरुवती कोप-भाण्डार : किला रीवा ।
- सु० हा० : सुभाषित-हारावली ।
- सङ्गीत० : सङ्गीत-रघुनन्दनम् (विश्वनाथसिंह) : स० को० भा० ।
- सं० बा० दे० : संस्कृत-साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन : राजीवलोचन अग्निहोत्री : रीवा : १९५७ ।
- हि० सा० को० : हिन्दी साहित्य-कोष : ज्ञानमण्डल लिमिटेड : बनारस : भाग १ : सं० २०१५ : भाग २ : सं० २०२० वि० ।

वन्दनम्

(१)

जानक्या स्निग्धया दत्ते मुक्ताहारेऽतिभास्वरे ।
विचिन्वन्तं परं राममाञ्जनेयमुपाध्रये ॥

(२)

समुद्रैर्धौत-पादाब्जां शुभ्रां दिमकिरोटिनीम् ।
भारती जननी यन्दे शस्य-श्याम-चलाञ्जलाम् ॥

(३)

गीतं रामायणं काव्यं येन तन्मय-मूर्तिना ।
आधाय च धरिष्ठाय तस्मै वाल्मीकये नमः ॥

(४)

कल्पते प्रतिभा-लब्धै यस्य काव्येऽवगाहनम् ।
महाभारत-कर्त्तारं यन्दे व्यासं महामतिम् ॥

(५)

बुध-शस्यानि वर्द्धन्ते यस्काव्यामृतवर्षया ।
त शब्दाकाश-संव्याप्तं कालिदासाम्बुदं भजे ॥

(६)

स्यलङ्कृता कवेर्वाणी रमावर्जन-कारिणी ।
रागिणीव रसक्षस्य सद्यो नर्तयते मनः ॥

(७)

उद्दीप्तस्य रसस्यैव स्व-चेतसि सुभाषया ।
सङ्क्रान्तिः परचेतस्सु कवि-कर्म निगद्यते ॥

(८)

सदा तदनुसन्धेयमास्वादन-परैर्बुधैः ।
न पुनः पण्डितम्मन्यैर्वाचालैस्तर्क-कर्कशैः ॥



वधेलखण्ड के संस्कृत-काव्य

विषय-निर्धारण

सामान्यतः यह धारणा रुढ़िबद्ध हो गई है कि संस्कृत एक ऐसा प्राचीन विषय है, जिससे देश का सम्बन्ध सहस्रों वर्ष पूर्व टूट चुका है। संस्कृत को 'मृतभाषा' नाम देने में यह धारणा सहायक होती है। इस धारणा को भ्रामक सिद्ध करने के लिए आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति जैसे महान कवियों की प्राचीन कृतियाँ सहायक साधन के रूप में हमारे लिये उपयोगी नहीं हो सकतीं। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिये ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में निमित्त संस्कृत साहित्य का अनुसन्धान करना होगा। यह देखना होगा कि मुसलमानों के आक्रमण और शासन के काल में तथा परवर्ती अंग्रेजी शासन-काल में भी, दासता के इन सहस्र वर्षों में देश संस्कृत को नहीं भूला। यही नहीं, इस अवधि में हो देश के विभिन्न अञ्चलों, राजधानियों, विद्या-केन्द्रों एवं मठों में इतिहास को गौरवान्वित करने वाले साहित्य का प्रचुर मात्रा में सर्जन हुआ। नवदोष, मिथिला, ब्रजमण्डल, काशी, विजयनगर, काञ्ची, पाटन, धारा, धीनगर आदि केन्द्रों में संस्कृत की रचनाएँ चलती रहीं। दर्शन के क्षेत्र में चैतन्य, बल्लभ, हित हरिवंश, प्रियादास, निम्बार्क, विष्णुस्वामी, मध्व, रामानन्द, मधुसूदन सरस्वती और विद्यारण्य तथा उनके शिष्य-प्रशिष्यों की अमूल्य कृतियाँ इसी आक्रान्त युग की सरलभिर्या हैं। काग्य-शास्त्र के अन्तर्गत साहित्यदर्पण, रस-गङ्गाधर, रस-मञ्जरी, प्राकृत-विज्ञान कुवलयानन्द आदि ग्रन्थों की मुलाया नहीं जा सकता। उसी तरह अनेक स्तुति-ग्रन्थ, कीर्त्य, सुभाषितों के संग्रह, आयुर्वेद, कामशास्त्र, ज्योतिष, 'धर्मशास्त्र, पशु-विज्ञान और नीति-शास्त्र-परक ग्रन्थों की भी रचनाएँ चलती रहीं। प्रबन्धकाव्य, छन्दकाव्य, चम्पू, नाटक, गद्य-प्रबन्ध आदि रसमय साहित्य के क्षेत्र में अप्रत्यक्ष दोषित, पण्डितराज जमनाथ, आनन्दत, रूप गोस्वामी, मित्रमित्र, मेरुदुर्गाचार्य, गोविन्द भट्ट और विश्वनाथ सिंह तथा दक्षिण के अगणित विद्वानों का योगदान अविस्मरणीय है। आधुनिक युग में पण्डिता जमा राव, अम्बिकादत्त व्यास, हृषीकेश शास्त्री, मयुरानाथ आदि अनेक कलाकारों की कृतियाँ भारती के भाण्डार में जुड़ती चली गई हैं। पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में मूल्यवान् निबन्ध-साहित्य एवं कविताओं का नवोन्मेष होता जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रपति के महान् पद पर प्रतिष्ठित स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद की जो प्रेरणाएँ संस्कृत-प्रेमियों को प्राप्त हुई है तथा आज राजनीतिक विश्व के उच्च अन्तरिक्ष का स्पर्श करते हुए भी सामान्य पत्रों और शुभकामनाओं तक में स्वरचित संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग करने वाले डा० विन्तामणि द्वारकादास देशमुख जैसे दुर्लभ मनोषी जिम सुरक्षि का परिचय दे रहे हैं, वह संस्कृत के भावी उत्थान के लिये सुस्थिर प्रकाश-सञ्केत है। देश के हितों की निरवधि काल में कभी-न-कभी अवश्य ही समानधर्मा होकर उस पण्डित-परम्परा का अपरिमित क्षण समवेत स्वर से स्वीकार करने, जिसने संस्कृत-साहित्य की यथाशक्ति रक्षा कर एवं उसके मूल को सँभाल कर उसे प्रफुटनशील बनाए रखा है; जिसके बल पर अपनी अनादि राष्ट्रियता का परिचय पाकर हम सशक्त अपना अस्तक गर्वोन्मत्त रख सकेंगे।

संस्कृत-सर्जन की भारी शक्तों के द्वारा पोषण के अभाव में या देश और समाज की परिवर्तित परिस्थितियों में मन्द पड़ी होगी, या उसके स्तर में अन्तर आया होगा, पर वह समाप्त नहीं हुई। समाज की रूचि संस्कृत-साहित्य में बनी रही आई है। लोकभावनों के कवियों और विद्वानों ने आज तक ऐसे अनेक उत्सवों और मतों का प्रसार बनाए रखा है, जिनके आधार-स्थल संस्कृत के ग्रन्थ हैं। इस प्रकार संस्कृत का मूल्य बराबर बना रहा है। वह मृत नहीं अपितु मृत-सञ्जीवनी अमृत-भाषा रही आई है। इस तथ्य के अधिकाधिक पोषण के लिये ही हमें ईसा की दूसरी सहस्राब्दी के संस्कृत साहित्य का शोध और मूल्यांकन करना होगा।

यह परवर्ती संस्कृत साहित्य बहुत कुछ बेठनों में बँधा हुआ पड़ा है। मन्दिरों और राजाओं के महालयों में इस साहित्य की तालों में बन्ध रह कर कीटों का भक्ष्य बनना पड़ रहा है। आज हमें इसे प्राप्त कर इसका आकलन, सङ्कलन और यथाशक्ति प्रकाशन करना होगा तथा संस्कृत के आधुनिक इतिहासों में इसे समाविष्ट करना होगा।

विशेष रूप से बारहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृत साहित्य को सर्जना करते रहने की लगन और रूचि जिन विद्वानों ने दिखाई है, वे चाहे जंगलियों पर गिने जा सकें, हमें उनके अभ्यवसाय का सोहा मानना होगा, उनके साहस और धैर्य की स्तुति करनी होगी। उनका मूल्यांकन करते समय हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि जहाँ के साहित्यिक योगदान के बल पर हम आज कह पा रहे हैं कि संस्कृत भाषा का साहित्य सुदूर अतीत की इतिहास का ही निदर्शन नहीं है, अपितु वह भारतीय जीवन की

रवि से आज तक सम्पन्न है और ऐसा रहा जायेगा। आधुनिक युग में भी संस्कृत का साहित्य अभिन्न बेश में साकार होकर युग के अनुकूल सामग्री प्रदान कर सकेगा; देश के खण्डों को एक सूत्र में गुम्फित कर सकेगा; अमर राष्ट्र की यह थमर-भारती अनन्त काल तक विश्व के दिगन्तरों को प्रतिध्वनित करती रहेगी।

उक्त दृष्टिकोण को लक्ष्य बनाकर यह आवश्यक है कि उपर्युक्त परवर्ती साहित्य को हम काल-सीमा और क्षेत्र-सीमा में बंध कर ढूँढ़ें; क्षेत्रीय अथवा जातीय साहित्य के रूप में इसका अनुग्रहान करें। जिन मठों, विद्या-केन्द्रों, मुस्लिम या हिन्दू राज-समाजों या सांस्कृतिक इकाइयों में परवर्ती संस्कृत साहित्य का उन्मेष एवं स्फुरण हुआ है, उन्हें प्रयत्न-प्रयत्न कर हम उसका अनुशीलन करें। भारत में ऐसे अञ्चल अनेक मिलेंगे।

बघेलखण्ड^१ की इकाई को यहाँ अञ्चल के रूप में लिया गया है। यहाँ के बघेल नरेशों का क्रमिक इतिहास पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग से उपलब्ध होता है और सोलहवीं शती में वे संस्कृत साहित्य में रवि लेने वाले एवं स्वयं काव्यकर्ता के रूप में प्रकट होते हैं। अतः प्रस्तुत वर्ष्य विषय की काल-सीमा १५०० से १६०० ई० तक रखी गई है। इस विषय के अन्तर्गत उक्त काल-सीमा के भीतर प्राप्त उतना ही संस्कृत साहित्य है, जो गहोरा, बान्धवगढ़ और रोवा की राजधानियों पर शासन करने वाले बघेलों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है।

इस प्रबन्ध से प्रकट होगा कि विगत अन्तिम शतियों में भी संस्कृत साहित्य का सर्जन होता चला आया है। हम जिन क्षेत्रों की राजनीतिक दृष्टि से अथवा ऐतिहासिक घटनाक्रमों के विचार से अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते रहे, वहाँ भी खोजने पर संस्कृत-साहित्य का निर्माण होता रहा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में १२वीं शती के पीछे की जिन संस्कृत-रचनाओं की उपेक्षा सी हुई है, उनके सङ्कलन, विवरण, प्रकाशन, सूची-निर्माण आदि कार्यों की ओर अब विद्वानों का ध्यान आ रहा है। इसी शुभ कार्य में सहयोग के रूप में हमारा भी यह लघु प्रयास है।

बघेलखण्ड में १५०० से १६०० ई० के बीच प्रमुख रूप से संस्कृत के आठ कवियों की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये कवि हैं—१ : मानुहर, २ : माधव ऊर्ध्व, ३ : गोविन्द मट्ट अथवा अकबरी कालिदास, ४ : पद्मनाभ मिश्र, ५ : योर्मत्रदेव (नरेश), ६ : रूपणि मिश्र, ७ : विश्वनाथसिंह (नरेश) और ८ : रघुराजसिंह (नरेश)। इनके सम्बन्ध में अभी तक निम्नलिखित रूप में कार्य हुआ है—

डा० जतीन्द्र बिमल चौधुरी ने प्राच्यशास्त्री मन्दिर कलकत्ता से मुस्लिम-कालीन संस्कृत साहित्यकारों की कृतियों पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकें प्रकाशित की हैं। साथ ही आपने कुछ सुभाषित-सङ्ग्रह भी प्रकाशित किये हैं।^१

इन सुभाषित-सङ्ग्रहों में भानुकर और अकम्बरी कालिदास की रचनाएँ प्राप्त हैं। भूमिकाओं में आपने इन कवियों के जीवन और कृतियों पर प्रकाश डाला है। वीरभद्रचम्पू काव्य में डा० चौधुरी ने वीरभद्रदेव और पद्मनाभ मिश्र का आलोचनात्मक परिचय भी प्रस्तुत किया है।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद वास्ती ने संस्कृत ग्रन्थों की सूची प्रकाशित की थी,^२ जिसमें आपने रूपणि मिश्र की कृति (पाण्डुलिरि) पर प्रकाश डाला है। यह कृति सन् १९५७ में रीवा से प्रकाशित की गई थी^३, जिसमें लग्नि के सम्बन्ध में जानकारी प्रस्तुत की गई थी। उक्त सूची में वीरभद्र की कृतियों का भी उल्लेख है। डा० हरदत्त वर्मा ने अपने कुछ निबन्धों में भानुकर, अकम्बरी कालिदास, विश्वनाथसिंह, पद्मनाभ, वीरभद्रदेव और रूपणि मिश्र की कृतियों की चर्चा की है।^४

भानुकर (या भानुदत्त), पद्मनाभ, वीरभद्र और विश्वनाथसिंह की कृतियों पर टी पी० के० गौडे के निबन्धों से भी प्रकाश पड़ा है^५। ये निबन्ध

१. देखिये प्राच्यशास्त्री कलकत्ता की प्रकाशन सूची : सम्बद्ध पुस्तकें निम्न-लिखित हैं—

क-मुस्लिम पैद्नेज०, ख-पद्यामृत०, ग-सूक्ति०, घ-रसिक०
च-पद्यवेणी, छ-सम्भा०, ज-राम० प्र०, झ-वीर० चम्पू०।

२. ए डेस्० कै० भाग ७ : क्र० ५३८४ और ५३९८।

३. बम्बेल०।

४. (१) दि 'पीयठ भानुकर०' : एमल्स० ग्रन्थ २० भाग १ : १९१६

(२) इ० हि० : ४७८।

(३) ओ० ज० : भाग ३ : १३३, १३६।

(४) 'बाघेल क्लस०'।

५. (१) 'साहित्यसुधा०' : ओ० ज० भाग १ : १९३४ : पृ० २१७-२०।

(२) 'सम डेटा०' : ओ० ज० : भाग २ : १९३५ : पृ० १९७-१९।

(३) 'आइडेंटिफिकेशन०' : ओ० ज० भाग २ : १९३५ : पृ० २५४-५८

(४) 'टमिनस०' : एमल्स० : ग्रन्थ १६ : १९३६ : पृ० १४७-४८।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। महाराज विश्वनाथसिंह की कृतियों का श्री विन्ताहरण चक्रवर्ती ने भी विवरण दिया है।^१ रूपणि मिश्र एवं तत्कालीन विद्वानों का संक्षिप्त विवरण श्री अस्तरदुसेन निजामो के लेखों से भी प्राप्त होता है।^२ रघुराजसिंह और माधव ऊरव्य के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी कवियों के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के इतिहासों में भी जानकारी मिलती है।^३

वीरभद्रदेव (नरेण) और उनके सहचर पद्मनाभ मिश्र पर निबन्धों के रूप में कुछ और जानकारी प्रकाशित हुई है। काशी से किरणावली-भास्कर^४ और चन्द्रालोक की शरदागम टीका^५ तथा कन्दर्पचूड़ामणि का द्वितीय संस्करण^६ प्रकाशित हो चुका है, जिनको भूमिकाओं में विद्वत्तानुर्ण तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। कन्दर्पचूड़ामणि के प्रथम संस्करण^७ में केवल सामान्य परिचय मिलता है।

वीरभानुदय काव्य पर केवल डा० होरानन्द वास्नी ने प्रकाश डाला है। आपने पहले दो निबन्ध प्रकाशित कराए और पीछे काव्य के प्रकाशन के समय भूमिका में इतिहास-परक समीक्षा प्रकाशित की।^८

महाराज विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह के जीवन और कार्य पर पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास में संक्षिप्त प्रकाश पड़ा है।^९ कुछ वर्षों पूर्व विश्वनाथसिंह का हिन्दी ग्रन्थ आनन्द-रघुनन्दन नाटक प्रकाशित हुआ है, जिसकी भूमिका में कवि के सम्बन्ध में जानकारी दी गई है।^{१०}

(५) 'भानु' : ६० क० : ग्रन्थ ३ : १६३७ : पृ० ७५१-५६ ।

'संस्कृत एण्ड हिन्दी वर्क्स' ।

(६) 'ग्यु ६० ऐ०'—ग्रन्थ ९ : क्र० ४-६ : १९४७ ।

१. 'संस्कृत वर्क्स' : ज० ए० सो०, अक्टू० १९४० ।

२. 'नाहन जेम्स' : ज० गं० ६० : ग्रन्थ ८ भाग ४ : अगस्त-१९५१ ।

३. हि० बला० सं० लिट्० ।

४. कि० भा० ।

५. शरदागम० ।

६. कन्दर्प० २ ।

७. कन्दर्प० १ ।

८. (१) 'बघेल डायनेस्टी' : बहोदा : १९२५ ।

(२) 'फर्दर नोट्स' : ज० बी० ओ० सो० : १९३० ।

(३) वीर० कि० ए० ।

९. प्रकाशित—काशी नागरी प्रचारिणी सभा : २०१८ वि० : पृष्ठ १२७-२८ तथा ५५४ ।

१०. आ० रघु० ।

बघेलखण्ड के इन संस्कृत कवियों के सम्बन्ध में मेरे निम्नलिखित लेख प्रकाशित हो चुके हैं—

- १—बघेल राजवंश और साहित्यिक विकास : 'विन्ध्यभूमि', रीवा १९५६
- २—पद्यनाम मिथ : " "
- ३—अश्वमेधी कालिदास : " "
- ४—जयसिंहदेव की रचनाएँ : " "
- ५—विन्ध्य के प्राचीन साहित्यकार : " "
- ६—रघुराजसिंह की संस्कृत रचनाएँ : 'विन्ध्यसिन्धु' (रीवा) १९५६
- ७—बोरभद्रचम्पू के ऐतिहासिक उल्लेख : 'विन्ध्यप्रदेश', (रीवा) १९५६
- ८—विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ : 'मध्यप्रदेश सन्देश'

ग्वालियर, मार्च, १९६२

इनके अतिरिक्त मेरी प्रकाशित पुस्तक 'संस्कृत-साहित्य की बाग्यवन्दनरेखाँ की देन'^१ में उपर्युक्त सभी कवियों का तथा उनको उपलब्ध कृतियों का संक्षिप्त परिचयार्थक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

बघेलखण्ड का यह संस्कृत साहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में कलकत्ता^२, अलवर^३, बीकानेर^४, उदयपुर^५, जोधपुर^६, रीवा^७, तथा रामवन^८ आदि स्थानों के पुस्तकालयों में सुरक्षित है। इनका उल्लेख आफे की सूची में मिलता है।^९ बहुत सी पाण्डुलिपियाँ अब लुप्त हो चुकी हैं।

उपर्युक्त कामों को समग्र रूप से देखने से शायद होगा कि अभी तक बघेलखण्ड के साहित्य एवं इतिहास पर आधारित क्रमबद्ध और सूत्रबद्ध कार्य नहीं हुआ है। बहुत सा कार्य निबन्धों के रूप में है, जिनमें काम्यकृतियों की तिथि, विषय और रचनाकार के सम्बन्ध में सामान्य अपूर्ण विवरण प्रस्तुत किये गये हैं। एक आञ्चलिक इकाई के रूप में बघेलखण्ड को ग्रहण कर उसमें प्राप्त

१. मार्तण्ड प्रेस, रीवा : १९५७।

२. रा० ए० सी०।

३. कंटे० अलवर।

४. कंटे० बीकानेर।

५. कंटे० उदयपुर।

६. महाराजा लाइब्रेरी, जोधपुर।

७. सरस्वती कौव आण्डार, किला, रीवा।

८. तुलसी सङ्ग्रहालय, रामवन (सतना)।

९. आफे०।

संस्कृत साहित्य को समग्र रूप में देखने और तत्परचात् उसका समीक्षात्मक मूल्याङ्कन करने की आवश्यकता है, जिसे हम उनका महत्त्व समझ सकें। इसी दिशा में केवल काव्यग्रन्थों पर यह प्रयास है।

सोलहवीं शती और उसके पीछे बघेलखण्ड के बघेलनरेशों की तीन राजधानियाँ रही हैं—

१—गहोरा, जो अब बाँदा जिला (उत्तर प्रदेश) के अन्तर्गत एक ग्राम है;

२—बान्धवगढ़, जो शहडोल जिला (मध्यप्रदेश) की एक पहाड़ी में प्राचीन दुर्ग के अवशेष के रूप में है और

३—रीवा, जो वर्तमान मध्यप्रदेश का उत्तरी सम्भागीय केन्द्र है। ये राजधानियाँ अपने-अपने काल में साहित्य-सर्जना की स्थलियाँ रही हैं।

बघेलों का शासन आरंभ होने से पूर्व इस जनपद में महोबा-कालिंजर के चन्देल नरेशों और डाहल-मण्डल, त्रिपुरी-रत्नपुर के कलचुरि राजाओं का वैभव और प्रताप छाया हुआ था। उनके आश्रय में संस्कृत के शिला-लेख, नाटक, महाकाव्य आदि अनेक ग्रन्थ रचे गए थे। हमारा विवेचन इसके पश्चात् सोलहवीं शती से आरम्भ होता है, जब यह नर्मदी-उत्तर प्रदेश बघेलों द्वारा शासित था। गहोरा, बान्धवगढ़ और रीवा राजधानियों में और यदा-कदा उनके परिसर में नरेशों द्वारा तथा उनके आश्रित विद्वानों द्वारा उन राजाओं के सम्बन्ध में अथवा स्वतन्त्र रूप से जिन संस्कृत काव्यों का सर्जन १५०० से १९०० ई० के बीच हुआ, उन्हीं का समीक्षात्मक मूल्याङ्कन इस प्रबन्ध का विषय है।

संयोग से इन सीमाओं के अन्तर्गत हमें एक ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य, धीरमानूद्य सुलभ है। इसके साथ ही वंशावली-काव्य, प्रशस्ति, स्तुति, चम्पू-नाटक आदि अनेक प्रकार का काव्य-साहित्य भी उपलब्ध है, जिसकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्यायों में करेंगे। इस प्रकाशित और अप्रकाशित साहित्य को देखने से विदित होगा कि बघेलखण्ड के इन संस्कृत काव्यों ने संस्कृत साहित्य की रचि की जीवित-आपत् रखा है और सर्जन की परम्परा को सुचारु रूप से आगे बढ़ाया है। अपने इस योगदान से इन संबद्ध कवियों ने बघेलखण्ड अञ्चल को गौरव प्रदान किया है।



पृष्ठभूमि

(फ) बघेल राज्य की व्युत्पत्ति

बघेलखण्ड जनपद^१ की अनुभूतियों के अनुसार 'रीवा'^२ के बघेलवंशीय क्षत्रियों का मूल पुरुष ग्याग्रदेव था; उसका मूल बाघ के मुख की भाँति था और इसी कारण उसकी संतान 'बाघेल' या 'बघेल' कहलाए। रीवा महाराज की ओर से प्रकाशित कैलेंडरों में 'बघेलवंश-चित्रावली' छपी जाती है, जिसके बीच में स्थित ग्याग्रदेव का मुख बाघ के मुख के सदृश रखा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस अनुभूति पर विचार करना निरर्थक है।

स्थानीय लेखों के आधार पर रीवा-जनपद के बघेल क्षत्रिय गुजरात से आए हुए सोलंकी^३ हैं। गुजरात में पाटन के चोलुख्यों और बाघेलों^४ लिए अनेकशः सोलंकी राजवंश प्रयुक्त हुआ है। सोलंकी राजवंश चालुक्य या चोलुक्य का ही भाग-अंश है।

गुजरात में पाटन (प्राचीन अनहिलपाटक) से प्रायः १० मील दक्षिण-पश्चिम दिशा में 'ग्याग्रदेवली' नामक गाँव अवस्थित है^५। गुजरात के चोलुक्य-नरेश कुमारपाल (११४३-७३ ई०) ने अपनी मौसी के पुत्र अणोरिज

१. वर्तमान मध्यप्रदेश के चार उत्तरी जिलों—रीवा, छतना, सीधी और राहडोल से सीमित बघेली बोली का जनपद।
२. विगत रीवा या बान्धव राज्य की राजधानी, विन्ध्यप्रदेश की राजधानी, एवं वर्तमान सम्भागीय केन्द्र (मध्यप्रदेश)।
३. क्षत्रियों की एक शाखा-विशेष। देखिये, रीवा स्टेट गजेटियर पृ० १२। विस्तृत चर्चा के लिये देखिये, 'ओरिजिन ऑफ दि चालुक्यज' : (रनजीतसिंह सत्याधर्य) : पृष्ठ ४८-४९, ७७, ९६; साथ ही देखिये—बाम्बे गजेटियर, जिल्द प्रथम—भाग १, पृ० १५६।
४. मजूमदार—अशोक कुमार : चोलुक्यज ऑफ गुजरात : भारतीय विद्या स्टडीज चतुर्थ, बम्बई: १९५६ : पृ० १६९।

(या आनाक) को इस व्याघ्रपल्ली गाँव का सामन्त बनाया था। अर्णोराज के पुत्र लवणप्रसाद को 'व्याघ्रपल्लीय' लिखा गया है।^१

सदयप्रमसूरि के अनुसार उक्त अर्णोराज को कुमारपाल ने भीमपल्ली का सामन्त-पद प्रदान किया था^२। श्री मजूमदार का कथन है कि सम्भवतः 'भीमपल्ली' और 'व्याघ्रपल्ली' समानार्थक हैं।^३ श्री निजामी के अनुसार भीमपल्ली अर्णोराज को पैतृक परम्परा से प्राप्त हुई तथा व्याघ्रपल्ली कुमारपाल से^४।

लवणप्रसाद व्याघ्रपल्लीय का पुत्र बीरधवल था। उसका पुत्र बीरलदेव गुजरात का प्रथम बाघेल सम्राट् (१२४५-६१ ई०) बना। चौलुक्यों की मूल शाखा की समाप्ति के पश्चात् बाघेलों को यह शाखा १२४५ ई० से १३०४ ई० तक गुजरात में शासन करती रही।^५

इस प्रकार यह तर्कसङ्गत प्रतीत होता है कि 'व्याघ्रपल्ली' गाँव के कारण ही यहाँ के अर्णोराज के वंशधर सामन्त 'व्याघ्रपल्लीय' नाम से प्रसिद्ध हुए और कालान्तर में लोकमाया में ये इसी भाषार पर 'बाघेल' या 'बघेल' कहलाए।^६

गुजरात के साहित्य में इन बाघेल सम्राटों को अन्य शाखा के चौलुक्य ही लिखा गया है।^७ उक्त प्रथम बाघेल सम्राट् बीरलदेव के खम्भाट—शिलालेख^८ में बाघेलों का वंशारम्भ लगभग उसी रूप में है जिस रूप में पूर्व चौलुक्य-नरेशों का है—

१. जिन विजयमुनि द्वारा सम्पादित 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (मैथुल्यकृत) : कुमारपाल-प्रबन्ध : पृष्ठ ९४ : 'अथ कदाचिदानाकनामा मातृषल्लीयस्त-त्सेवागुणतुष्टेन राजा दत्तसामन्तपदोऽपि.....।' तथा पृष्ठ १८१— 'श्रीमद्भीमदेवराज्यचिन्ताकारी व्याघ्रपल्लीय-सङ्केतप्रसिद्धः श्रीमदानाक-मन्दनः श्री लवणप्रसादः.....।'।

२. सुकृत-कीर्ति-कल्लोलिनी : श्लोक ७४।

३. चौ० गु० : पृष्ठ १६९।

४. निजामी : 'बघेलाज इन गुजरात' : दि रीवा इन्फर्मेशन : प्रत्य १ भाग ३ : जुलाई, १९४७।

५. चौ० गु० : अध्याय १० 'बाघेलाज' : पृष्ठ १६९-८५।

६. वही।

७. कीर्तिकौमुदी : सोमेश्वर कृत : ५।६२ : भीम द्वितीय के वर्णन के साथ—
'अथ तत्रैव चौलुक्यवंशो शाखान्तरोद्भूतः।

अर्णोराजः स राजपिस्तन्नामपंत विप्लवम् ॥'

८. इन्स० भावनगर : क्र०-२१४, साय.ही देखिये चौ० गु० : पृ० १६९।

‘...महाराज अब इस प्रकार विचार-भंग था, तब सहसा उसके ‘धुलुक’ से एक सीढ़ी प्रकट हुआ । ...इसी वीरपुरुष से ‘चोलुक्य’ उद्गत हुए । इस वंश में अर्णोराज उत्पन्न हुआ’... ।’

यह अर्णोराज धवल का पुत्र था ।^१ धवल ही इसकी शाखा का प्रथम ज्ञात व्यक्ति है ।^२ सोमेस्वर कवि के अनुसार (पाटन में) मूलराज प्रथम^३ के वंशजों के समाप्त हो जाने पर बाघेलों का राज्य प्रारम्भ हुआ ।^४

मूलराज से पूर्व सोराष्ट्र के चोलुक्य शासन की स्थापना कल्ल ने की थी । इसी वंश का राजा था, जिसके पुत्र मूलराज ने पाटन का चोलुक्य-राज्य स्थापित किया ।^५ अतः सम्भव है कि मूलराज से पूर्ववर्ती सोराष्ट्र ■ चोलुक्यों को कोई शाखा व्याघ्रपत्नी में आकर बसी हो और इसी वंश में धवल और अर्णोराज हुए हों, जिनके वंशज बाघेल कहलाए ।

गुजरात के चोलुक्यों और बाघेलों का गोन भारद्वाज था तथा उनके वर्तमान वंशधरों का यही गोन है ।^६

रीवा के बाघेल नरेश भी भारद्वाज गोत्र के हैं ।^७ अतः बाघेलों की यह परम्परा कि गुजरात के चोलुक्यों और बाघेलों के साथ उनकी वंशगत एकत्वता है, मान लेने में कोई कठिनाई नहीं है ।

रीवा के बाघेलों का मूलपुरुष ‘व्याघ्रदेव’ विवाद का विषय है । ऐसे कोई अकाट्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिनके बल पर व्याघ्रदेव को ऐतिहासिक व्यक्ति मान लिया जाय । दूसरी ओर रीवा तथा अन्य स्थानों के बाघेल, जो अपने को

१. कीर्तिकीमुदी २।६३ तथा बसन्तविलास-महाकाव्यः (बालचन्द्रसूरीकृत)
बड़ोदा : १९१७ : ३।३८-

‘रत्न तामशतवृत्तमर्णोराजधुलुक्यो धवलाङ्गजन्मा ।’

२. चौ० गु० : पृ० १६९

३. गुजरात के चोलुक्य-राजवंश का मूल पुरुष ।

४. ए० इ० : दमोई-प्रसूति (संवत् १३११ में सोमेस्वर द्वारा रचित) :
१।२० ‘धी मूलराजकुलजेपु मृगाङ्गमौलि-भक्तपु मूपतिपु तेषु
दिवङ्गतेपु ।’

५. ‘गलोरी देट वाज गुजंर देस’—मुंशी कन्हैयालाल माणिक्यलाल-बम्बई
१९५४ : पृ० ४०६-७ ।

६. ‘ओ० पा० : पृष्ठ ४८-४९, ७७, ९६ ।

७. वीरमार्जुन-काव्यम् : रीवा : १९३८ : सर्ग ९ । श्लोक १९ :
‘भारद्वाजारिष्टनेमि-वंशजो सङ्गतो नृपौ ।’ श्लोक २८ : ‘भारद्वाजो
मुनीन्द्रः’ व्याघ्रपादः—उद्वंशे वीरसिंहः ।’

व्याघ्रदेव से निर्गत मानते हैं, व्याघ्रदेव की ऐतिहासिकता के प्रबल पक्षपाती हैं और व्याघ्रदेव से उन्होंने अनेक अनुभूतियाँ भी जोड़ रखी हैं।

१७३२ ई० के कुछ पोछे और १७५५ ई० के पूर्व लिखा हुआ एक बघेली भाषा का लेखपत्र 'एकत्रा भाँचोगढ़',^१ प्रथम उपलब्ध लेख है और वह सम्पूर्ण वंशसूची प्रस्तुत करता है, जो पोछे के अनेक लेखों में प्राप्त होती है तथा जो रोवा में मान्य है। इसमें पहली बार व्याघ्रदेव के गुजरात से आने का उल्लेख है। यह कहना कठिन है कि इससे पूर्व यह मान्यता थी या नहीं। इसमें कर्णदेव को व्याघ्रदेव का पुत्र बतलाया गया है।

इससे कुछ ही वर्षों पूर्व १६७८ ई० में लिखित संस्कृत काव्य 'बघेलवंश-वर्णनम्' में पहला नाम कर्णदेव है। यह गुजरात में उत्पन्न बतलाया गया है,^२ और व्याघ्रदेव की यहाँ कोई चर्चा नहीं है, जब कि लेखक रूपणि शर्मा इसी वंश के रोवा-नरेश भावसिंह का समासद है और उसका वंश लिखने का लक्ष्य भी भावसिंह को सुष्ट करना ही है।^३

इससे लगभग सवा सौ वर्ष पहले लिखित बीरमानूदयकाव्य में, जो इसी वंश के नरेश बीरमानु का चरितवर्णन है, भीम से वंशवर्णन प्रारम्भ होता है। सबत बघेलवंशवर्णन काव्य में प्राप्त अनेक प्रारम्भिक नाम, जो समस्त परवर्ती सूचियों में हैं, बीरमानूदय में नहीं हैं। यह काव्य १५५६ ई० के निकट लिखा गया। इस आधार पर इसी काव्य की समोक्षा में डा० हीरानन्द शास्त्री ने बीरमानूदय में अप्राप्त व्याघ्रदेव, कर्णदेव, सोहागदेव, सारंगदेव, बीसलदेव, बलकेश्वर, मलकेश्वर और बरियारदेव—इन आठ नामों को कल्पित कहा है।^४

बीरमानूदय में बघेलों की भारद्वाज व्याघ्रपाद-गोत्रीय एवं व्याघ्रपाद मुनि के वंशज बतलाया गया है।^५ ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल (सीलहवीं शती के मध्य भाग) में व्याघ्रपाद एक गोत्र-प्रवर्तक मुनि रूप में कल्पित है। इसके पदवात् समाजों के कवि व्याघ्रदेव को छोड़कर अन्य नाम वंश के पूर्वजों के रूप में अनुभूतियों के आधार पर जोड़ देते हैं और भावसिंह के काल^६ तक कर्णदेव की गुजरात से आया हुआ माना जाता है। इसके पोछे ही शीघ्र भावसिंह के काल

१. देखिये परिशिष्ट १ (क)।

२. बघेल० श्लोक ४ : 'स कर्णदेवः प्रबभूव गुर्जरे.....'।

३. बघेल० श्लोक ६८ : 'भावसिंहस्य तोषायालेखि रूपणिसम्मंणा।'।

४. बीर० क्रि० ए०: पृष्ठ १६-१७।

५. बीर० १।१९ : 'व्याघ्रपादगोत्रं.....ओ बीरमानुं'।

बीर० १।२१ : 'व्याघ्रपादमुनिवंशजलोकैः।'।

६. १६७५-९४ ई०।

को सूची पद्याद्यं मान कर १८वीं शती के आरम्भ में गीत-प्रवर्तक मुनि व्याघ्र-पाद को मूलपुरुष व्याघ्रदेव दात्रिय मान लिया जाता है^१, जो गुजरात से आकर मड़फा-कालिंजर क्षेत्र में प्रभावशाली हुआ।^२ दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि व्याघ्रदेव ऐतिहासिक व्यक्ति हो, इसी को वीरमानुस्य में व्याघ्रपाद मुनि लिखा गया हो। इस पक्ष में निम्नलिखित अनेक तर्क हैं—

एक मत यह है कि चोलपुत्र नरेश भोमदेव प्रथम (१०२२-६४ ई०) के चौथे पुत्र सारंगदेव के पुत्र वीरसिंह को सिद्धराज जयसिंह (१०६४-११४३ ई०) ने जागीर में बघेलों को बंटा दिया था। वीरसिंह का पुत्र बापराव साधारण जागीर से सन्तुष्ट न हुआ। यही बापराव व्याघ्रदेव है, जिसने बघेलसमूह को सत्ता स्थापित की।^३

इस मत को मानने में पहली कठिनाई यह है कि गुजरात के सरकारी दफ्तों में ये नाम प्राप्त नहीं हैं। भोमदेव के बचन छेन पुत्रों—मूलराज, कर्णदेव और क्षेमराज या हरिपाल^४ के नाम मिलते हैं, सारंगदेव का नहीं। दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि भोमदेव मूलराज प्रथम का हो बंटाकर था, जब कि बघेलों को साक्षात् मूलराज से पृथक् माना जाता है।

कनिष्क को सूची^५ में, जिसमें मूलतः बाण-कसोटा^६ घराने के बघेलों को वंश-सूची पर विचार किया गया है, व्याघ्रदेव को सिद्धराज (जयसिंह) का पुत्र लिखा गया है। किन्तु यह विदित तथ्य है कि सिद्धराज-चोलपुत्र निस्सम्भान मरा, इसीलिए दूसरी शाखा का कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ।

१. परि० १ (क) : एकत्रा बाण्योगद—

‘बघेलन ■ श्रीलादि लिखा जबते गुजरात से आये । पुरखा ठाकुर कहामें लागि । पुरखा १-जैसिहदेव १, वीरध्वजदेव २, व्याघ्रदेव ३ । गुजरात से आए पुरखा छीनि में है—कर्णदेव ४ सोहागुदेव ५ सारंगदेव ६ । कालिंजरहि आइ दुइ भाई मर राजा के पाकर में—बीसलदेव ७ जेठे भोवमल लहुरे ।’

२. भा० रि० ६० : जिल्द २१ पृष्ठ १०७-८ ।

३. कसोटा के बाघेलों का इतिहास : रामचारे अग्निहोत्री : संवत् २००६ : कसोटा (उ० प्र०) : पृ० ४४ तथा ‘विन्ध्यप्रदेश का इतिहास’, वही : रोवा १९५४ ई० : पृ० १३४ ।

४. ग्लो० गु० : पृ० २३५ ।

५. भा० रि० ६० : जिल्द २१, पृ० १०७ ।

६. जिला इलाहाबाद । इस घराने का मूलपुरुष कण्ठरदेव है, जिसे व्याघ्रदेव का पुत्र बतलाया जाता है ।

इम्पीरियल गजेटियर^३ अनुसार 'गुजरात के राजा का भाई व्याघ्र लगभग १३वीं शती के मध्य में उत्तर भारत में आया और उसने मड़का दुर्ग^४ पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र कर्णदेव ने मण्डला को हँहय राजकुमारी से विवाह कर दहेज में बान्धवगढ़^५ प्राप्त किया।'^३

कुछ जमाबन्दियों में व्याघ्रदेव के पिता का नाम वीरमदेव और पितामह का जैसिहदेव मिलता है।^४ रोवा के इमो वंश के प्रसिद्ध कवि रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) ने व्याघ्रदेव से पहले 'वीरध्वज' नाम दिया है।^५ एकत्रा बान्धोगढ़ में भी वही नाम है।^६ कुछ बंशावलियों^७ तथा रोवा स्टेट गजेटियर^८ में व्याघ्रदेव को वीरधवल का पुत्र लिखा गया है।

तेरहवीं शती के मध्य भाग में गुजरात में चौलुक्य वंश से निर्गत बघेलों का प्रथम उदय प्राप्त होता है, जिसमें वीरधवल^९ और उसके भाई वीरमदेव के विवरण उपलब्ध हैं। साथ ही इस काल में वीरधवल का पुत्र वीसलदेव (१२४५-१२६०) प्रथम बघेल-सम्राट् के रूप में प्रकट होता है।^{१०} उद्युक्त सूचनाओं के अनुसार व्याघ्र को गुजरात के राजा का भाई मानने से इसी वीरधवल या वीरमदेव का पुत्र मानना होगा। कठिनाई यह है कि इस अनुमान का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। वीरधवल के दो पुत्रों, प्रतापमल्ल और वीसलदेव के उल्लेख हैं, पर व्याघ्रदेव का नहीं। इसी प्रकार वीरम के पुत्र के रूप में भी गुजरात के लेखों में व्याघ्रदेव का नाम उपलब्ध नहीं है।^{११}

१. कालिजर से १२ मील उत्तर-पूर्व। ध्वंसावशेष प्राप्त हैं। देखिये—आ० रि० इ० : जिल्द २१ भाग १-२ पृष्ठ १८-१९, १३१।
२. जिला सहाडोल, म० प्र०। डमरिया स्टेशन से रोवा को सड़क पर।
३. इ० ग० : जिल्द ६ : पृष्ठ १८७-८८।
४. देखिये परिशिष्ट १—(ख, ग)।
५. आनन्दाभ्युनिधि (१८५४ ई० में रचित) : पृष्ठ ६ : 'वीरध्वज व्याघ्रदेव'।
६. परिशिष्ट १ (क)।
७. अजमेरा कवि कृत बंशावली, १८३१ ई०। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी से प्रकाशित।
८. लुवाहं (कंटेन)—१९१० ई० : पृष्ठ १२।
९. मृत्यु १२३८ ई०—देखिये ग्लो० गु० : पृष्ठ ३०५ तथा इ० ऐ० ६।१९०।
१०. बी० गु० : अध्याय १०।
११. वही।

कृष्णाराम गणेशराम मठ द्वारा गुजराती भाषा में लिखित बघेल-वंशावली में व्याघ्रदेव के पूर्वजों के नाम भुवन, करण, चन्द्रादित्य, सोभादित्य, भुवनादित्य और राज (राजि) मिलते हैं। राज के दो पुत्र मूजराज और गंगामह बतलाए गए हैं, जिनमें से गंगामह का पुत्र व्याघ्रदेव है।^१ यद्यपि ये नाम गुजरात के लेखा में हैं, इतिहासकारों ने इनकी सत्ता पर संदेह प्रकट किये हैं^२, साथ ही गंगामह का नाम अशुद्ध कही नहीं है।

राजशेखर सूरि ने कुमारपाल चौलुक्य (११४१-७२) के समकालीन एक व्याघ्रराज भट्ट का उल्लेख किया है,^३ किन्तु उसका बघेल होने का उल्लेख नहीं है। साथ ही राजशेखर को अधिकतम ऐतिहासिक सूचनाएँ अग्रामागिक एवं अनु-श्रुतियों पर आधारित हैं।

इस प्रकार यथार्थ सूचना के अभाव में रीवा के बघेलों के मूल पुरुष व्याघ्रदेव की ऐतिहासिक कहना संदेह से परे नहीं है, दूसरी ओर परवर्ती साक्ष्यों, अनु-श्रुतियों और विश्वासों को देखते हुए उसे पूर्णतः अस्वीकृत भी नहीं किया जा सकता। निष्कर्ष यह है कि चौलुक्यों की व्याघ्रराजों की एक खाला १२वीं-१३वीं शती में कभी फूट कर समुना के दक्षिण मड़का-कालिंजर में पहुँची और उसने नये बघेल राज्य की स्थापना की, जिसकी परम्परा अब तक विद्यमान है।

बघेलखण्ड शब्द से तात्पर्य

इम्पीरियल गेजेटियर के अनुसार २०°४०' तथा २५°०' उत्तरी अक्षांश और ८०°३०' तथा ८२°५७' पूर्वी देशान्तर के बीच में स्थित यह क्षेत्र बघेल राजपूत जाति के नाम पर, जो गत ६-७ सौ वर्षों से इस क्षेत्र के शासक रहे, बघेलखण्ड कहा जाता है। पूर्व में सोन नदी और पश्चिम में टोंस नदी है। समरिया में कोपले की खदान है। बवाई प्रपात (जिला रीवा) और अमर-कण्टक (मर्मदा का उद्गम, जिला सहडोल) दर्शनीय स्थान हैं। इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद और मिर्जापुर जिले हैं, पूर्व में छोटा नागपुर, दक्षिण में मध्यप्रदेश के बिलासपुर और मण्डला जिले तथा पश्चिम में जबलपुर जिला और बुन्देलखण्ड के राज्य (पन्ना जिला) हैं।

१. बघेल-वृत्तान्त : प्रकाशित १९१७ ई०।

२. चौ० गु० : अध्याय १०।

३. जिनविजय मुनि द्वारा सम्पादित 'प्रबन्धकोश' : शान्तिनिकेतन : १९३५ ई० : पृष्ठ ५०-५१ :

“...अथ स व्याघ्रराजाख्यो वमाये...” ।

सन् १८७१ तक यह क्षेत्र मुन्देलखण्ड एजेंसी के अन्तर्गत शासित होता रहा । इसके पश्चात् बघेलखण्ड एजेंसी स्थापित हुई, जिसमें रीवा के अतिरिक्त नागोद, मैहर, सोहावल, कोठी के राज्य (वर्तमान सतना जिला) तथा सितपुरा, बरौधा, जसो, पालदेव, पहरा, तरांव, भैंसोधा और कामता-रजौला की जागीरें थीं । केवल रीवा सन्धि-राज्य था तथा शेष सनद द्वारा शासित थे ।

१८५७ ई० के पश्चात् रीवा दरबार तथा मैहर, नागोद, सोहावल और कोठी के लिए पोलिटिकल आफिसर नियुक्त किया गया । १८६२ ई० में रीवा दरबार की प्रार्थना पर उसे वापस युला लिया गया तथा राज्यों को मुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट (नोगोव छावनी, जिला छउरपुर) के अन्तर्गत कर दिया गया । १८७१ ई० में सतना केन्द्र बना कर पुष्पक अधिकारी नियुक्त किया गया । १८७६ ई० में बरौधा, जसो तथा पू चौबे जागीरें मुन्देलखण्ड से बघेलखण्ड एजेंसी में स्थानान्तरित कर दी गई ।^१

बघेलखण्ड क्षेत्र में ९४ प्रतिशत निवासी बघेलखण्डो बोली बोलते हैं ।^२

बघेलखण्ड की स्थापना और विस्तार

इस जनपद का नाम 'बघेलखण्ड' या 'बघेलों का देश' सत्रहवीं-अठारहवीं शती में पूर्ण प्रचलित नहीं रहा होगा । यह नाम मुस्लिम इतिहासकारों ने कभी नहीं लिखा । उन्होंने इसे गहोरा या भाठ-गहोरा लिखा है ।

मुस्लिम शासन-काल के पूर्व यह क्षेत्र 'बाहुल' या 'चेदि' कहा जाता था । विशेषतः रीवा के दक्षिणी क्षेत्र, जिसका कुछ भू-भाग सोहागपुर परगना (जिला साहबोल) है तथा मध्यप्रदेश क्षेत्र का नाम 'चेदि' रहा है ।

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ तथा महाभारत, रामायण और पुराण सभी इस क्षेत्र को हैहय, कलचुरि या चेदि जाति से सम्बद्ध करते हैं । धीरे-धीरे चेदि माहिष्मती से पूर्व की ओर हटे । कृष्ण चेदि ने कालिंजर (जिला बाँदा) को केन्द्र बनाकर उस क्षेत्र पर राज्य-विस्तार किया, जिसे अब बघेलखण्ड कहा जाता है । चौबी-पाँचवीं शती में मगध के गुप्त राजा इस क्षेत्र के सार्वभौम थे । उच्छकल्प और सोह (वर्तमान जिला सतना) के परिव्राजक राजा उनके सामन्त थे । समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भ पर अंकित लेख के अनुसार बाहुल तथा १८ आठविक राज्यों में से कुछ हैहय हो सकते हैं । छठवीं शती में बादामी नरेश मंगलीश ने

१. वर्तमान मध्यप्रदेश के सतना और पन्ना तथा उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले में सम्मिलित ।

२. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, जिल्द ६ : पृष्ठ १८५-८८ ।

३. वही, जिल्द २१ (१९०८ ई०) : पृष्ठ २८२ ।

चेदि के क्षुधबर्म्न् कलचुरि को परास्त किया। सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में कलचुरियों ने त्वरित गति से चेदि देस गृहे जाने वाले इस क्षेत्र पर सावर्भौमता प्राप्त कर ली। उनका विरुद्ध 'कालञ्जराधीश्वर' या। यशोवर्म्न् चन्देल (१२५-५५ ई०) ने पहली बार उनसे कालिंजर दुर्ग और परितर का जनपद छीन लिया। चन्देल 'कालञ्जराधीश्वर' बन गए। १२ वीं शती तक कलचुरि इस क्षेत्र में रहे आए।^१

यह पूर्णतः निर्विषय नहीं है कि इस जनपद पर बघेलों ने जब अधिकार किया। मुसलमानों की बाढ़ ने जब कलचुरियों की सत्ता तोड़ दी, तब इस क्षेत्र पर मर, चौहान, सेंगर, गोंड और अन्य आतियों ने अधिकार कर लिये।^२ हीरानन्द शास्त्री ने लिखा है कि '१६२४-२६ ई० में नागरी लिपि में लिखित एक भग्न शिलालेख कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम के आर्कियालॉजिकल डेपॉजिट की भेंट किया गया था। शिलालेख सतना में प्राप्त हुआ था। शास्त्री जी ने रिपोर्ट उसी वर्ष पढ़ी थी। उनके मत में असन्दिग्ध रूप से यह बघेल-राजवंश का ही शिलालेख है और उसमें बालिवाहन, कंदर्पदेव और नाहरदेव नाम हैं, जो अवश्य ही रीवा के बघेल राजाओं के नाम होंगे तथा नाहरदेव (वीरभानुदय) काश्य का नरहरिदेव हो सकता है।'^३

रीवा से एक पीढ़ी नीचे के माने जाने वाले बारा-कसीटा धराने के बघेल ब्याघ्रदेव के पुत्र 'कंधरदेव' को अपना मूलपुरुष मानते हैं।^४ रीवा की बंशावलिमें में भी कंधरदेव ब्याघ्रदेव का पुत्र है। अतः शिलालेख के 'कंदर्पदेव' का इस 'कंधरदेव' के साथ तादात्म्य किया जा सकता है। यह सम्भावना ब्याघ्रदेव को ऐतिहासिक मानने में सहायक है।

शास्त्री जी को करवी (जिला बाँदा) में स० १४१७ (१३६० ई०) का गहोरा शिलालेख मिला था, जिसे उन्होंने बल्लालदेव बघेल (वीरभानुदय काश्य का बल्लारदेव) द्वारा खुदवाया हुआ माना था।^५

बंशावलिमें में बल्लालदेव को बरियारदेव का पुत्र माना गया है। बरियारदेव का काश्य में उत्पन्न नहीं है, किन्तु बघेलखण्ड में 'वीरराजदेव' नाम से १३४७ ई० का शिलालेख रामपुर गाँव में रानियों के सती-स्तूपों^६ के रूप में

१. द० ग० : जिल्द ६ : पृ० १८५-८८।

२. वही।

३. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १७।

४. आ० रि० ६० : जिल्द २१ पृष्ठ १०७।

५. वीर० क्रि० ए० पृष्ठ १७।

६. प्राचीन-लेख-मणि-माला : दयामनुन्दरदास : बनारस :
तथा आ० रि० ६० : जिल्द ९ : पृष्ठ ३४-५।

प्राप्त हुआ है, जिसका समय-स्थान आदि आधारों पर बरियारदेव के साथ सादरम्प किया जा सकता है।

कनिधम ने मुस्लिम लेखों^१ के दलकी व मलकी को बघेलवंश के दलकेश्वर-मलकेश्वर मान लिया था। इस सम्बन्ध में कनिधम का कथन इस प्रकार है:—

‘पहले मैंने यह सोचा था कि यह संभवतः योद्धा (दलकी व मलकी), जो कालिंजर और मालवा के राजाओं की अधीनता से मुक्त था, अवश्य ही वेदि या डाहल का कलचुरि राजा होगा—किन्तु अब मैंने बघेलों की प्राचीन सूची में दो राजाओं—दलकेश्वर और मलकेश्वर के नाम क्रमपूर्वक देखे हैं। मैं इन्हें मुसलमान लेखकों के मौलिक नाम दलकी व मलकी समझता हूँ। यदि यह साधारण स्वोक्त्यर्थ हो तो १२४७ ई० में ही बघेल राज्य सुदृढ़ बन चुका था और जिस दुर्गम स्थान में वह राजा छिप गया था, अवश्य ही वह बान्धोगढ़ का बिस्वात दुर्ग होगा।’^२

इन आधारों पर वर्तमान इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है कि ‘यमुना के ठीक दक्षिण, महोबा और हमीरपुर (उत्तरप्रदेश) के बीच रीवा के उदोय-मान बघेल, जो पिछली दो पीढ़ियों में चुनार के दक्षिण और टोंस नदी के तट-भाग पर प्रायः समस्त क्षेत्र पर अधिकार कर चुके थे, न केवल दक्षिण की ओर तुकों का प्रसार रोक रहे थे, अपितु यमुना के तटोप क्षेत्र की भी सङ्कट-ग्रस्त बना रहे थे। अवध के प्रशासक द्वारा भाठ-महोरा क्षेत्र पर किये हुए आक्रमण इस उदोयमान सत्ता को नियन्त्रित नहीं कर सके, यहाँ तक कि १२४७ ई० में कालिंजर और कड़ा के क्षेत्र पर बलबन द्वारा पूरी शक्ति के साथ किया हुआ आक्रमण भी राजा के अङ्गों को लूट से आगे कुछ करने में असमर्थ रहा।’^३

श्री हेमचन्द्र राय^४ के अनुसार ‘कलचुरियों के पश्चात् खेरहवीं शती के आरम्भ में परमशिव का पुत्र त्रैलोक्यवर्मन् चण्डेल कैमोर पृष्ठ के उत्तरी भाग पर तथा पूर्व में सोन नदी के तट-भाग तक अपनी सत्ता का विस्तार किये हुए

१. तबकात-नासिरी (अनु० रैबर्टी) : पृष्ठ २४७, ६७९-८३, ८१६-१७ : तथा तारोखे-फरिश्ता (ब्रिग्स) : जिल्द १ पृष्ठ २३७।

२. आ० रि० ६० : जिल्द २१ : पृष्ठ १०५-६।

३. ‘दि स्ट्रगल फॉर एम्पायर’ : भारतीय विद्यामन्त्र : बम्बई : १९६७ : पृष्ठ १४६।

४. डायनैस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया : जिल्द २ : कलकत्ता : १९३६ : पृष्ठ ७२४-२६ तथा कनिधम : आ० रि० ६० जिल्द २१ : भाग १-२, पृष्ठ १४२-४८।

था । रोवा के ताग्रकों से विदित होता है कि ककरेड़ी^१ के सामन्त कीरव-वंशीय महाराजक, जो पहले त्रिपुरी के कलचुरियों के अधीनस्थ थे, अब १२४०-४१ ई० के पूर्व त्रेलोक्यवर्मन् चन्देल के अधीनस्थ बन चुके थे । १२४१ ई० के परवात् त्रेलोक्यवर्मन् का कोई लेख नहीं मिलता ।^२

ऐसा प्रतीत होता है कि त्रेलोक्यवर्मन् चन्देल के राज्य-काल तक बघेल चन्देल-सत्ता के अधीनस्थ रूप में गहोरा और मड़फा के क्षेत्रों में पहले ही फैल चुके थे । कनिष्ठम के कथनानुसार मड़फा दुर्ग के उत्तर-पूर्व और दक्षिण को ओर प्रायः १२-१३ मील दूरी पर बघेलबारी और बघोलन नाम के दो बड़े गाँवों का अस्तित्व है, जो भ्याग्रदेव द्वारा बसाये हुए बसलाए जाते हैं ।^३ जमाबन्दीयों के अनुसार भ्याग्रदेव के बंधधर (या पुत्र) बीसलदेव और भीमलदेव कालिजर आकर भर शासक की सेवा में रहे । भीमलदेव ने कालिजर की ओर से गहोरा के लोधीयों को भारा और उसे सेवा के पुरस्कार के रूप में 'गहोरा की जागीर' और 'ठाकुर' का पद मिला । भीमल का पुत्र रागिक और पौत्र बलनदेव^४ था । वीरमानन्द काव्य में इसी भीमल (भीम-नरेन्द्र) से संबंधपूर्ण प्रारम्भ किया गया है तथा उसके पुत्र रागिकदेव और पौत्र बलनदेव को गहोरा का शासक बतलाया गया है ।^५ इन उल्लेखों से भीम (भीमलदेव) की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है ।

मिनहाजउद्दीन ने इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में कुछ और जानकारी दी है— '६४० हिजरी (१२४२ ई०) में ठाजुद्दीन संजरी किकलूक ने कालिजर और गहोरा को लूट करने का निश्चय किया । ६४१ हिजरी (१२४३ ई०) में कमरुद्दीन ने भाठ-गहोरा को, जिसका केन्द्र कालिजर था, कई बार लूटा और

१. वर्तमान ककरेड़ी, उत्तरी अक्षांश २४°५६ और पूर्वी देशान्तर ८१° १७ ममनीघाट पर स्थित, जहाँ से पश्चिमी मार्ग बाँदा, कालिजर और गहोरा को जाते हैं ।

२. आ० रि० ६० : जिल्द २१ भाग १-२ : पृष्ठ १०३ ।

३. परिशिष्ट १ (क) : एकना०,—'कालिजरहि आइ दुइ भाई भर राजा के चाकर भैं । बीसलदेव जेठे, भीमल (भीमल) लहुरे ... गहोरहि आए । पुरिसा सात गरि गहोरा रहैं । ठाकुर कहावैं लागे । भीमलदेव गहोरा के लोधिनि कहैं मारि के गहोरा छंड़ाइ लोन्हैनि ।'

तथा परि० १ (ख) : बंखावली बाँधीपति एवं बघेल० श्लोक १२ ।

४. सर्ग १ । श्लोक ६-२० 'सम्झा गहोरां सपन-प्रतापः ।'

कर बसूल किया। ६४४ हिजरी (१२४६ ई०) में मलिक करारकन सा खगकिन को, जो कड़ा (इलाहाबाद) का प्रशासक था, मार डाला गया।^१

इन उल्लेखों से हम देखती व मलकी पर, जो बयेल-बंज-सूफी में दलकेदर-मलकेदर बतलाए गए हैं, बलबन के आक्रमण को पृष्ठभूमि समझ सकते हैं। यही 'माठ-गहोरा' का उल्लेख वास्तव में बयेल गता के लिए है, बयेल-गता के लिए नहीं। यह भी प्रतीत होता है कि १२४१ ई० के पदनात् त्रैलायपवर्मन् बयेल के निधन से बयेल खगिन दुर्बल हो गई होगी और बयेलों ने, कम से कम कुछ समय के लिए कालिंजर पर भी अधिकार कर लिया होगा। रैबर्टी ने उक्त आक्रमण के प्रसंग में लिखा है कि 'माठ-गहोरा सोन के पश्चिमी तट का क्षेत्र है। राणा (देखती व मलकी) का अधिकार-क्षेत्र स्पष्ट रूप में टोंत नदी के पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम में निर्दिष्ट है। उसके छिपने की जगह वह पहाड़ी दुर्गम इलाका है, जो सोन नदी के बाएँ किनारे पर फैला हुआ है, जिसे कनिष्क ने बाणवगढ़ माना है। मिनहाज के 'देखती व मलकी' में से कम से कम एक नाम किसी राणा का अवश्य है^२। करिदता के अनुसार 'इन दो राजाओं ने माणवा से कड़ा तक मुल्तान की कौनों के अर्धे मर कर डाले थे। वे कालिंजर में रहते थे।'^३ हबीबुल्ला का मत है कि 'मिनहाज का माठ-गहोरा टोंत नदी की घाटी का पुराना नाम है। इन क्षेत्र पर अवध के शासक सीमूर खां के कई आक्रमणों का उल्लेख स्पष्ट रूप से बयेलों की तृतीयमान सत्ता पर आक्रमण का सूचक है।'^४

१२१४ ई० में मलिक नुगरत-उद्दीन तायसई ने बयेलों से कालिंजर छोन लिया था।^५ १२४०-४१ ई० में प्राप्त त्रैलायपवर्मन् से सम्बद्ध रीवा-ताम्रक उक्त 'त्रिकलिप्रापिपति' घोषित करते हैं,^६ किन्तु 'कालिञ्जरापिपति' नहीं। सम्भव है, अपने अन्तिम दिनों में त्रैलायपवर्मन् तेरहवीं सती में अस्तप्राय

१. तबकान-नातिरी (रैबर्टी) : पृष्ठ ७५५, ७४३, ७४७।

२. यही, टिप्पणियाँ : पृष्ठ ७४३, ८१६-१७, ६८३।

३. तारीखे-करिदता (खिल) : खिल्द १, पृष्ठ २३७।

४. 'दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया' (१२००-१० ई०) : प्रकाशित, १९४५ : पृष्ठ १०१-२, १४२-४३।

५. तबकान-नातिरी : पृष्ठ ८२४।

६. डा० हि० मा० इ० : खिल्द २ : पृ० ७२४-२६।

कलचुरियों^१ की असमर्थता का लाभ उठा कर डाहल-प्रदेस में कालिंजर और मजयगढ (पन्ना) से दक्षिणपूर्व की ओर बढ़ा हो और इसी अवधि में गहोरा-कालिंजर तथा बघेलखण्ड के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में बघेल क्रमशः प्रबल हुए हों । त्रैलोक्यवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् कालिंजर भाठ-गहोरा राज्य की बघेल-सत्ता का केन्द्र बन गया होगा, जहाँ कमरहोन का उपर्युक्त आक्रमण हुआ था ।

उक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि बघेलों का इन क्षेत्रों में राज्य-स्थापना का आरम्भ बारहवीं शती के मध्य में हुआ, जब सम्भवतः ब्याघ्रदेव ने महका दुर्ग के समीप बघेलवारी और बाघोलन गाँव बसाए ।^२ इनके भाई कणदेव गुजरात में हो रहे आए^३ किन्तु बाग्धवगढ़ उन्हें दहेज में मिला (जैसी स्वामीय माय्यता^४ है) और सम्भवतः उनके पुत्र सोहागदेव और पौत्र सारंगदेव बाग्धवगढ़ के अधिकारी रहें । यहाँ कणदेव का वंश समाप्त हो गया और बाग्धवगढ़ का अधिकार ब्याघ्रदेव की शाखा को प्राप्त हुआ ।^५ ब्याघ्रदेव (अन्त में ब्याघ्रपाद मुनि) के दो पुत्र बीसल और भीमल (या भीम) ने कालिंजर आकर चंदेलों के भर-वंशीय किलेदारों की सेवा स्वीकार की । भीमल ने बीरसा प्रकट की ओर भर राजाओं के सेनापति रूप में गहोरा पर अधिकार किया । इन्हें गहोरा की आगीर और 'ठाकुर' का पद मिला ।^६ ब्याघ्रदेव का अग्र पुत्र कम्हरदेव बारा-कसौटा धरामे का संस्थापक बना ।^७ भीम का पुत्र रानिक और पौत्र बलन तथा उसके दो प्रतापी पुत्रों—दलकेश्वर और मलकेश्वर ने कालिंजर पर प्रभुता प्राप्त की और टोंस तथा सोन के तटीय भागों पर, बाग्धवगढ़ दुर्ग पर एवं मयूना से दक्षिण कालिंजर से कड़ा तक अधिकार किया और १२४७ ई० में बलवन का सामना किया ।^८ मलकेश्वर का पुत्र बरियार हुआ । उसका पुत्र बल्लार या बल्लालदेव प्रथम महाराज हुआ । इसने पठानों से युद्ध किया^९

१. डा० हि० ना० ६० : जिल्द २ : पृष्ठ ८०० ।

२. आ० रि० ६० : जिल्द २१ पृष्ठ १०९ ।

३. बघेल० : श्लोक ५ ।

४. बीर० क्रि० ए० : पृ० २७ : जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी ।

५. परिशिष्ट १ (ख) वंशावली बांधोपति : 'करनदेव के वंशावली गुजराति मा तीनि-करनदेव १ सोहागदेव १ सारंगदेव १...' ।

६. वही ।

७. आ० रि० ६० : जिल्द २१ पृष्ठ १०९ ।

८. तबकात-नासिरी : पृष्ठ ६७९-८३, ८१६-१७ ।

९. परिशिष्ट १ (क) : एकत्रा : 'बोस्नारदेव ते राजा भैं ।' तथा परि० १ (ख) : वंशावली बांधोपति—'बल्लारदेव पठानन मार' ।

और १३६० ई० में शिलालेख खुदवाया ।^१ बल्लार का पुत्र सिंहदेव पिता के सामने ही दिवङ्गत हुआ, अतः बल्लार ने अपने पौत्र वीरमदेव को उत्तराधिकारी बनाया^२ । १३९५ और १४१३ ई० में वीरम को कालपी के महमूद से संघर्ष करना पड़ा^३ । वीरम ने रोवा और कैमोर पृष्ठ पर पूर्ण अधिकार किया^४ । इसके पुत्र का नाम नरहरि और पौत्र का भेददेव था ।^५ भेददेव से आगे क्रमिक इतिहास मिलने लगता है ।

भौगोलिक सीमाओं में क्रमिक परिवर्तन

बघेलखण्ड नाम के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि मुसलमान लेखकों ने इस नाम का प्रयोग नहीं किया, यह नाम अंग्रेज शासकों द्वारा दिया हुआ नहीं हो सकता । बघेल नरेशों के निजी व्यवहारों में ही 'बघेल' शब्द पर आधारित राज्य-क्षेत्र का नामकरण 'बघेलखण्ड' किया गया होगा । निजी व्यवहारों में इसका प्रयोग भी अवश्य होता रहा होगा ।

व्यावहारिक रूप में बघेलखण्ड का प्रथम स्वरूप मड़का में स्थापित सत्ता की ही मानना उचित होगा । इसी के परवर्ती स्वरूप गहोरा-राज्य, बान्धव-राज्य और रोवा-राज्य कहलाए । गहोरा-राज्य की स्थापना का आनुमानिक समय धारहवीं शती का अन्तिम भाग माना जा सकता है । १२४० ई० के आसपास इस राज्य का केन्द्र कालिंजर बना और बघेल बन्देलों की अधीनता से मुक्त हो कर फैल गये होंगे । इस समय यमुना का दक्षिणी भाग कालिंजर से कड़ा तक और दक्षिण में बान्धवगढ़ तथा सोन का पश्चिमी तट बघेलों के अधिकार में रहा होगा । १२८० ई० के पूर्व कालिंजर पर बन्देलों का स्वामित्व पुनः स्थापित हो चुका था,^६ जो चौदहवीं शती के प्रारम्भ तक अवश्य बना रहा ।^७ १३६० ई०

१—वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १७ ।

२—वीर० १।३१-४४ ।

३—परिशिष्ट २ : तारीखी-मुहम्मदी : पृष्ठ ४७२—साय ही देखिये : निजामी : मलिकजादा डायनेस्टी आफ कालपी : मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् : भोपाल ११ अप्रैल, १९५७ में पठित लेख : पृष्ठ २-३ ।

४—परि० १ (स) : वंशावली बांधोपति : 'राजा वीरमदेव, रोवा पाठे पर अमल मा' ।

५—वीर० १।४०-५१ ।

६. आ० रि० इ० : जिल्द-२१ पृष्ठ ७४ : साय ही देखिये, श्यामसुन्दर-दास : प्राचीन-लेख-मणिमाला : पृष्ठ ५२ : वीरवर्मदेव का राहि-दानपत्र-१२८० ई० ।

७. ए० इ० जिल्द २६ : पृष्ठ १० टि० ४—'कालिञ्जराधिपति-श्रीमद् हम्मीरवर्मदेवः'संवत् १३६५ ।

के निकट बल्लालदेव ने अन्तर्वेद में प्रवेश कर पठानों से कुछ युद्ध जीते ।^१ उसके पौत्र वीरमदेव को १३९५ ई० के आसपास कालपी के सुल्तानों से संघर्ष करना पड़ा,^२ किन्तु उसने दक्षिण-पूर्व की ओर रोवा के पठार पर अधिकांश बढ़ा लिया । दिल्ली की सत्ता के साथ भी उसका संघर्ष हुआ ।^३ पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग तक वीरम का पौत्र भेददेव गहोरा राज्य का अत्यन्त प्रबल शासक बन चुका था । उसने काशी, प्रयाग और गया तक राज्य-विस्तार कर लिया । उसका एक विवाह बगोसर (बकसर) में हुआ था ।^४ भेददेव जौनपुर के शर्की सुल्तान हुसेनशाह का मित्र और सहायक था । १४८८ ई० में उसने बहलोल लोदी के विरुद्ध हुसेन की सहायता की थी । इस समय उत्तर में कन्नित्त, अरैल और मिर्जापुर तक, पविचम में कार्लिंजर और गहोरा और दक्षिण में मुरगुजा और बागधबगढ़ तक भेददेव का प्रबल राज्य विस्तृत था । १४९२ ई० में उसने लोदियों द्वारा नियुक्त कडा के प्रशासक मुबारक खाँ लोहानी को बन्दी बना लिया था । १४९४ ई० में सिकन्दर लोदी ने भेददेव पर चढ़ाई की और अरैल को लूटा । भेददेव के पौत्र वीरसिंहदेव ने गहोरा की ओर बढ़ते हुए सिकन्दर लोदी का १४९५ ई० में सामना किया । खानयाटी (या हड़ियाघाट) पर युद्ध हुआ । बघेलों की हार हुई । सिकन्दर लोदी ने पर्वोध (तहसील ब्योहारी, जिला साहबोल, म. प्र.) तक बघेल सेना का पीछा किया, पर वह स्वयं घिर गया । वह कठिनाई से निकल कर बनारस की ओर भागा । उसने भेददेव के पुत्र शालिवाहन से सन्धि कर ली और बनारस से १३ मील दूर पर शालिवाहन की सहायता से हुसेन को परास्त कर दिया । इस समय सिकन्दर ने शालिवाहन से उसकी लड़की का डोला माँगा था । परिणामस्वरूप १४९८ ई० में सिकन्दर ने गहोरा पर पुनः आक्रमण किया । शालिवाहन बागधबगढ़ के दुर्ग में जा छिपा ।

१. परिशिष्ट १ (ख) : वंशावली बांधोपति—‘बल्लालदेव पठानन मारा, अन्तर्वेद (अन्तर्वेद) अमल भा ।’ बल्लालदेव के गहोरा शिलालेख (१३६० ई०) के लिए देखिये—वीर० क्रि० ए०; पृष्ठ १७ ।
२. परिशिष्ट २ : तारोखो मुहम्मदी : पृष्ठ ४७२ : कालपी में सुल्तान नासिरुद्दीन ने गहोरा के मुकद्दम वीरम पर १३९५ ई० में दो चढ़ाईयाँ कीं ।
३. वंशावली बांधोपति—‘राजा वीरमदेव । रोवा पाठे पर अमल भा ।’ तथा वीर० १।३९, ४४ ।
४. वीर०, १।५६—‘काशी प्रयागं च गयां च विजिता.....’ तथा श्लोक ६२ ।

१४९९ ई० में सिकन्दर ने बान्धवगढ़ को घेर लिया, पर उसे ले न सका। तब उसने बान्धवगढ़ से गहोरा के बीच का सारा बघेल राज्य उखाड़ दिया।^१

इस प्रकार सोलहवीं शती के आरम्भ होने से पूर्व हम यमुना और गङ्गा के दक्षिण सोन और टोंस नदियों के द्वारा सिञ्चित भू-भाग पर बघेलों की प्रबल सत्ता को प्रतिष्ठित पाते हैं। इस अवधि में यह सत्ता दिल्ली और द्वाब के मुस्लिम शासकों के लिए विशेष चिन्ता का विषय बनी हुई थी।

आगे हम देखेंगे कि सोलहवीं शती में तथा उसके पश्चात् उन्नीसवीं शती तक यह बघेल सत्ता, जिसे हम बघेलखण्ड नाम से व्यवहृत करेंगे, देश की ऐतिहासिक परिस्थितियों से किस प्रकार प्रभावित हुई तथा इन्हीं बघेलों के क्षेत्र बघेलखण्ड में संस्कृत साहित्य का किस रूप में सर्जन हुआ।

आधुनिक स्वरूप

वर्तमान काल में मध्यप्रदेश के उत्तरी-पूर्वी छोर पर रोवा नाम से एक सम्भागीय और जिला-केन्द्र है, जो १९४८ ई० तक उन्मुक्त बघेलों के वंशधरों की राजधानी था। वर्तमान वंशधर महाराजाधिराज मार्टिण्डेसिह जू देव का जन्म १९२३ ई० में हुआ था। १९४६ ई० में इनका रोवा-नरेश के रूप में अभिषेक हुआ। मई, सन् १९४८ ई० को आपने राजसत्ता भारत सरकार को सौंप दी और नवनिमित्त विन्ध्यप्रदेश राज्य के राजप्रमुख पद पर आसीन हुए। जुलाई, १९४८ ई० से बघेलखण्ड की पुष्क सत्ता पूर्णतः समाप्त कर उसे बुन्देलखण्ड के राज्यों से एकीकृत कर संयुक्त मन्त्रिमण्डल की स्थापना की गई। विन्ध्यप्रदेश इस समय 'बी' श्रेणी का राज्य था और रोवा उसकी राजधानी थी। दिसम्बर सन् १९४९ में विन्ध्यप्रदेश को 'सी' श्रेणी का राज्य बनाकर राजप्रमुख का पद समाप्त कर दिया गया। कुछ वर्षों तक विन्ध्यप्रदेश का शासन चोफ-कमिशनर करते रहे। १९५२ ई० में प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन के परिणामस्वरूप जनतन्त्रीय सरकार की स्थापना हुई। १ नवम्बर, १९५६ ई० में विन्ध्यप्रदेश

-
१. ईलियट एण्ड हाउसन : जिल्द ३ : नियामतउल्लाह कृत 'तारीखी खानजहान लोदी' : पृष्ठ ८९, ९३-९५ : ब्रिग्स : तारीखे-फरिश्ता : जिल्द १ पृष्ठ ३६९-७४ तथा लो—डब्लू. एच. : बल-बदाओनी : जिल्द १ पृष्ठ ४०८, ४१७। साथ ही देखिये—ईलियट-हाउसन जिल्द ४ : मन्दुल्ला कृत 'तारीखी दाउदी' पृष्ठ ४६२ और जिल्द ६ पृष्ठ २००-२१ : दि बघेला डायनेस्टी आफ रोवा : निजामीकृत : जर्नल आफ दि विक्रम यूनीवर्सिटी : त्रितीय भाग पृष्ठ २ : मई १९५८।

नवनिर्मित मध्यप्रदेश का अङ्ग बना दिया गया^१। महाराज मारुण्डसिंह के एक पुत्र श्री पुष्पराज प्रताप सिंह हैं।^२ वर्तमान रोवा सम्भाग में रोवा, सतना, सीधी, सहडोल, पन्ना, छतरपुर और टीकमगढ़ कुल सात जिले हैं, जिनमें से प्रथम चार जिलों को सामान्य रूप से वर्तमान बघेलखण्ड माना जा सकता है। यहाँ की मातृभाषा 'बघेली' है, जो अवधी हिन्दी से मिलती-जुलती है।

देश की परिस्थिति का बघेलखण्ड पर प्रभाव

हम पीछे लिख चुके हैं कि भेददेव और पालिवाहन का लोदियों के साथ भीषण संघर्ष हुआ था और बीरसिंहदेव ने युद्ध में प्रमुख रूप से भाग लिया था। सोलहवीं शती के आरम्भ में बीरसिंहदेव ने लोदियों के साथ सन्धि कर ली^३। इस समय बीरसिंहदेव ने बघेल-सत्ता को अत्यन्त सुदृढ़ और विस्तृत कर लिया। गङ्गोरा-राजधानी को उसने सड़कों, नहरों और मन्दिरों से सुसज्जित किया।^४ उसने नरो^५ दुर्ग के परिहार-राजा विक्रमादित्य को परास्त किया और नरो में रह कर उसे सुनज्जित किया। उसके आक्रमण करते ही गढ़ा का (गोंड) राजा (अमानदास) भाग गया।^६ नारायण नामक कुछ (या कौरव वंशी) राजा से

१. विन्ध्यप्रदेश का इतिहास : रामप्यारे अग्निहोत्री : रोवा १९५६ : पृष्ठ ३००-३१४।
२. जन्म, जुलाई १९६१।
३. बीर०-२।६१—'दिल्लीपुरीयेन चकार सन्धिम्।'
४. वही, २।७-१०।
५. सतना से लगभग १० मील दक्षिण-पूर्व की एक पहाड़ी, जहाँ मानावद्योय प्राप्त है।
६. बीर० २।५६-५८ : साथ ही देखिये, ईलियट और डावसन : जिल्द २ : कलकत्ता-१९५९ : अबुलफ़जल कृत अकबरनामा : पृष्ठ ३०-३४ तथा शोख फीजी सरहिन्दी कृत अकबरनामा : पृष्ठ १२१ : गढ़ा-कर्दगा—वर्तमान जिला जबलपुर के अन्तर्गत गढ़ा-मण्डला। राजधानी का नाम गढ़ा और दुर्ग का चौरागढ़ था। अमानदास अपने पिता अर्जुन-दास से विद्रोह कर बीरसिंहदेव की शरण में आया। उसे राजा ने पुत्रवत् रखा और स्वयं सिकन्दर लोदी से मिलने चला गया। अमानदास ने गढ़ा लौटकर पिता का बंधन कर डाला। अर्जुनदास के सरदारों ने बीरसिंहदेव को बुलाया। उसने गढ़ा पर आक्रमण किया। अमानदास भाग गया, किन्तु बाद में उसने बीरसिंहदेव को 'पिता' कहकर क्षमा माँग ली। बीरसिंहदेव ने उसे राज्य लौटा दिया। अमानदास ने

भेदनीति द्वारा उसने बान्धवगढ़ जीत कर वहाँ निवास किया और कुखँशियों का नाश कर डाला। रत्नपुर के (कलचुरि) राजा को जीतकर उसने कर ले लिया। फिर वीरसिंहदेव ने बहार (झाड़ल का उत्तरी भाग) और सहजोर (सहडोल) को भी जीत लिया तथा भर (धंशीय) राजा को परास्त कर दिया।^१ अलकपुरी (अरैल-प्रयाग) पर भी वीरसिंह ने अधिकार बनाए रखा। बाबर के साथ उसकी मित्रता थी।^२

वीरसिंह के पुत्र वीरमानु ने हुमायूँ की शेरशाह के विरुद्ध सहायता की थी।^३ हुमायूँ से अक्काश पाकर शेरशाह ने वीरमानु को कालिजर में घेर लिया, पर वीरमानु बच गया। यहीं शेरशाह की मृत्यु हो गई, किन्तु कालिजर का पतन हो गया। शेरशाह के पुत्र सलेमशाह ने रीवा पर अधिकार कर लिया था किन्तु वह पिता की मृत्यु (१५४५ ई०) सुनकर लौट गया।^४

बाद में गोविन्द कछवाह के पुत्र दलपत (१५४४-५१) को दत्तक पुत्र बनाया। दलपत का विवाह दालिवाहन चन्देल की कन्या दुर्गावती के साथ हुआ था। अपने अल्पवयस्क पुत्र वीरनारायण की ओर से दुर्गावती (१५५१-६४) शासन करती रही। आसक्त खाँ ने दुर्गावती और वीरनारायण को मारकर १५६४ ई० में गढ़ा-कटंगा पर मुगल सत्ता स्थापित कर दी।

१. वीर० २।५९-६१, ६५-६७।
२. वीर० २।६१, ६७ तथा १२।२२ : साथ ही देखिए—'दि बघेल डायनेस्ती आफ रीवा' निजामी : विक्रम यूनि० ज०। मई : १९६८ : वीरसिंहदेव ने बाबर के विरुद्ध कनवाहा में १५२७ ई० में राणा सांगा : का साथ दिया था।
३. 'बाबर एण्ड हुमायूँ', अस्किन् : भाग २ : पृष्ठ १७४। गुलबदन बेगम : हुमायूँनामा : (अनु० बेवरिज) : पृष्ठ १३५-३६। जोहर कृत हुमायूँनामा (मेमायर्स आफ हुमायूँ) : पृष्ठ १८।
४. डिल्लिट और डाउसन : जिल्द ४ : पन्नास खाँ सरबानी कृत तारोखी-शेरशाही, पृष्ठ ४०७-९। ग्लेडविन : आईन-अकबरी (अबुलक़ल कृत) : पृष्ठ ३२१ : राय : सकसेसर्स आफ शेरशाह : १९३४ : पृष्ठ ६-७ : ओवास्तव : (डा०) आशीर्वादीलाल : मुगलकालीन भारत : तृतीय संस्करण : आगरा : १९५९ : पृष्ठ १०७-३३।

बीरमानु ने अपने समुर और रत्नपुर के (सम्भवतः कलचुरि) राजा दादुराय को परास्त किया।^१ हुमायूँ से उसकी मैत्री बनी रही।^२

अकबरी शासन के आरम्भ के कुछ पूर्व (१५५२ ई० से) बीरमानु के पुत्र रामचन्द्र का सम्भारम्भ होता है। तीन वर्ष तक युवराज के रूप में भी ये पूर्ण अधिकारी रहे। मुहम्मद आदिलशाह सूर 'मदलो' (१५५३-५७) रामचन्द्र को दारण में १५५४ ई० में आया। उसे पूरी सहायता दी गई। परिणामस्वरूप शोध ही इबाहीम सूर ने आक्रमण किया। वह बन्दो बना लिया गया, किन्तु राजा ने उससे सद्ब्यवहार किया।^३ इन दिनों तानसेन^४ और बीरबल^५ रामचन्द्र की सेवा में थे।

१५६२ ई० में अकबर के दबाव से रामचन्द्र ने तानसेन को मुगल दरबार में भेज दिया। १५६१-६४ ई० में अकबर द्वारा नियुक्त कड़ा के प्रशासक अब्दुल मजीद आसफ खाँ ने रामचन्द्र पर दो आक्रमण किये और बान्धवगढ़ में उन्हें घेर लिया। सम्भवतः बीरबल की मध्यस्थता से घेरा उठवा लिया गया और रामचन्द्र ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। रामचन्द्र ने १५६९ ई० में अकबर के हाथों कालिंजर सौंपकर युवराज बीरभद्र को मुगल दरबार में भेज दिया, किन्तु अकबर का हस्तक्षेप बढ़ता गया। १५८३-८४ ई० में अकबर ने प्रयाग में प्रसिद्ध दुर्ग बनवाया। अकबर के दरबार में १५८४ ई० में रामचन्द्र की उपस्थित होना पड़ा। सम्भवतः उन्हें इटावा का परगना मिला। १५९२ ई० में रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र बीरभद्र भी अगले वर्ष दिवङ्गत हुए। अकबर ने बीरभद्र के अत्यायु पुत्र विक्रमादित्य को राजा नहीं माना, उन्हें दरबार में बुलाकर रोक लिया तथा बीरभद्र के दूसरे पुत्र दुर्घोषन को मान्यता दे दी। बान्धवगढ़ में सरदारों ने विद्रोह किया। अकबर के द्वारा प्रेषित पत्रदास ने ८ माह २५ दिन के घेरे के पश्चात् बान्धवगढ़ को 'ध्वस्त कर दिया और १५९७ ई० में पूर्ण अधिकार कर लिया। १६०२ से १६०५ ई० तक दुर्घोषन

१. बीर० ७, ६८-७०, ७५।

२. वही, १२।२२।

३. बीर०। १०।१३—'त ईदिलिस्तं शरणागतोऽमृत स्वयं सुरनाण-मुहम्मदादिः।' तथा अस्किनः बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ पृष्ठ ४९४ : ५०१-४ : लो : अल-बदाओनी, भाग १ : पृष्ठ ५४२-४४, ५५३-५४।

४. बीर० : १०।२६-३१।

५. लो : अल-बदाओनी : भाग २ पृष्ठ ३४५।

मानन करता रहा, पर जहाँगीर ने विक्रमादित्य को ही रोवा-बान्धो का राजा स्वीकार किया^१। इस समय (१६०५) से रोवा राजधानी बना^२।

इन प्रकार हम देखते हैं सोलहवीं शती बघेलों की सार्वभौम सत्ता के उत्थान और पतन की शती है। पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से अकबर के आक्रमणों के पहले तक यह सत्ता अन्तर्वेद (दाव) से कलिंग तक छाई हुई थी और काशी, प्रयाग, अमरकंटक, रत्नपुर और चौरागढ़ जैसे महत्वपूर्ण स्थानों से घिरा हुआ विस्तृत भू-भाग बघेलों के अधिकार या प्रभाव में था। सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में यह सत्ता क्रमशः सोनित होती चली गई और सत्रहवीं शती का प्रारम्भ होते-होते बघेल मुगलों के आगेरदार मान रह गये। बाद में बघेल सत्ता को भारत की तीन प्रबल सत्ताओं में से एक माना था।^३

सत्रहवीं शती में बघेलसमूह के परिवर्तन में औरछा केन्द्र बना कर बुन्देलों की प्रबल सत्ता उठ खड़ी हुई, जिने रोवा की शक्ति को बार-बार प्रभावित किया। १६०२ ई० में दुर्योधन बघेल की राज्य देते समय अकबर ने मारतीचन्द को उनका संरक्षक नियुक्त किया था। १६१० ई० में विक्रमादित्य ने मुगल प्रभाव से मुक्त होना चाहा, तब जहाँगीर ने मानसिंह बुन्देल के पुत्र महासिंह को भेज कर उनका वन्न कराया। विक्रमादित्य के पुत्र अमरसिंह ने १६२६ ई० में मुगलों की पूर्ण अधीनता स्वीकार कर ली। १६३६ ई० में उसने रत्नपुर के अमीरदार के विरुद्ध शाहजहाँ के सेनापति अब्दुल्ला खाँ की सहायता की तथा दिल्ली भी गया। इस बीच मठा के अमीरदार भीमनारायण की मार कर जुमारसिंह बुन्देल

१. ग्लाकर्मैन : आईन-अकबरी : कलकत्ता १८७३ : ई० पृष्ठ ३६७, ४०६, ४०७, ४६९, ४७५, ३६७-५८ : बेवरिज : अकबरनामा (अबुलफजल कृत) भाग २ : पृष्ठ २२९, २७९-८३ : अल-बदायौनी (अनु० लो), भाग २ : पृष्ठ ३४५ तथा ईलियट एण्ड हावसन : जिल्द २ : फैजी सरहिन्दी कृत अकबरनामा : पृष्ठ ११९-२०, मासिर-जल-उमरा (अनु० ब्रजरत्नदाम) : समसाम उद्दौला द्वारा १७४७ ई० में लिखित : पृष्ठ ३३०-३४, ३५४-३९ : ईलियट एण्ड हावसन : १९५२ : निजामुद्दीन अहमद कृत 'अकबर' : पृष्ठ १२१ : इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया : जिल्द २१ : १९०८ : पृष्ठ २८०-८२।

२. पर्सिस्ट १ (क) : एकना०—'रोवा का किला.....विक्रमादित्य के किले बाएँ।'

३. ग्लाकर्मैन : आईन-अकबरी : पृष्ठ ४०६ : आबरनामा (मेनायर्स - घाफ़ आबर) का उल्लेख।

मुगलों से विद्रोह कर बैठा। अब्दुल्ला खाँ के साथ अमरसिंह को भी जुमारसिंह को दवाने के लिए भेजा गया। १६५० ई० के निकट गढ़ा पर जुमारसिंह का भाई पहाड़सिंह बुन्देल अधिकार किये हुए था। उक्त भोमनारायण का पुत्र दयाराम (या हृदयराम) पहाड़सिंह से हार कर अमरसिंह बघेल के पुत्र अनूपसिंह (१६४१-७५) की धरण में आया। पहाड़सिंह ने अनूपसिंह को खदेड़ कर रोवा पर भी अधिकार कर लिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त १६५६ ई० में अनूपसिंह को रोवा-शान्धी का राज्य पुनः मिला।^१

बघेलों की एक शाखा, जो बीरमानु के छोटे भाई यामिनीमानु (अमनीमान) से फूटी थी, रोवा के अधीन रह कर मैहर पर राज्य करती रही। १६७२ ई० में छत्रसाल बुन्देल ने मैहर पर आक्रमण कर राजा से अधीनता मनवाई और जीत ली। छत्रसाल ने क्रमशः कोठी, नामोद, जसो, बीरसिंहपुर और सोहावल में फैल कर सम्पूर्ण पश्चिमी बघेलखण्ड को अधीनस्थ कर लिया। सम्भवतः इसी समय गहोरा बघेलों के हाथ से सदा के लिए चला गया। अनूपसिंह के उत्तराधिकारी भावसिंह ने १६७५ से १६९४ ई० तक राज्य किया। उसकी मृत्यु पर उसके दसक पुत्र अमिरसिंह को मऊगंज (जिला रोवा) के सैयद राजपूतों ने धार डाला। अमिरसिंह के पुत्र अबधूतसिंह के राज्य-काल में १७२६ ई० में छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह ने छत्रसाल की इच्छा के विरुद्ध लगभग आधे बघेलखण्ड पर अधिकार कर लिया, किन्तु मुगलों के दबाव से उसे हटना पड़ा।^२ अबधूतसिंह के पुत्र अजीतसिंह (१७५५-१८०९) के राज्य-काल में बाजीराव द्वितीय पेशवा के एक पौत्र गवाब अलीबहादुर ने बुन्देलों की सहायता से नर्मदा के उत्तरी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। उसके सेनापति यशवन्तराव नायक ने १७९८ ई० में बघेलखण्ड का पश्चिमी भाग अधिकृत कर रोवा को घेर लिया। ६ माह

१. ग्लाकमैन : आईन-अकबरी : पृष्ठ ४०७ तथा मातिर-उल-उमरा (अजरमदास) : पृष्ठ १८६, २२७, ३३३-३४, ३५४-५९ : बेवरिज : जर्नालीरनामा : १९०९ पृष्ठ १; साथ ही देखिये—ईलियट एण्ड हाउसन : जिल्द ६ तृतीय संस्करण : कलकत्ता : १७५९। इनामत-उल्लाह कृत 'तकमिलाई' 'अकबरनामा' : पृष्ठ ११५।

२. भगवानदास गुप्त (डा०) : 'महाराणा छत्रसाल बुन्देला', आगरा : १९५८ : पृष्ठ ४३, ८२-८३, १२३-२४ तथा गोरेलाल तिवारी : 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' : पृष्ठ १८४। साथ ही देखिये हम्बोरियल गजेटियर आफ् इण्डिया : जिल्द २१ : १९०८ : पृष्ठ २८१-८२।

के पश्चात् यह घेरा हुआ और नायक मारा गया तथा उसकी सेना नष्ट हो गई । अजीतसिंह ने खली बहादुर का सामन्त बनना स्वीकार नहीं किया ।^१

उन्नीसवीं शती के बघेलखण्ड का इतिहास अंग्रेजों के साथ बघेलों के सम्बन्धों का इतिहास है । १८०३ ई० में अजीतसिंह ने अंग्रेजों के साथ सन्धि का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया था । उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जयसिंह (१८०९-३४ ई०) ने १८१२ ई० में 'सहायक सन्धि' पर हस्ताक्षर कर दिया । १८१४ ई० तक दो सन्धियाँ और हुईं तथा रोवा राज्य क्रमशः अंग्रेजों शासन से नियंत्रित हो गया । महाराज की ओर से इस समय उनके पुत्र विश्वनाथसिंह शासन का कार्य देखते थे । विश्वनाथसिंह के पुत्र रघुराजसिंह (१८१४-८०) ने १८५७ ई० में अंग्रेजों की सहायता की और सोहागपुर तथा अनारकण्टक (दक्षिणी बघेलखण्ड) के परगने पुरस्कार-रूप प्राप्त किये । १८६२ ई० में रघुराजसिंह को मोद लेने को सनद मिली । इनकी मृत्यु के समय इनके पुत्र बैकटरमनसिंह (१८८०-१९१८) केवल ४ वर्ष के थे, अतः बघेलखण्ड १५ वर्षों तक अंग्रेजों संरक्षण में रहा । १८९५ ई० में बैकटरमनसिंह को पूरे अधिकार मिल गए । इन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४-१९) में अंग्रेजों की सहायता की थी ।^२ इनके पुत्र गुलाबसिंह (१९१८-४२) खुलकर अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं हुए किन्तु वे सुशासक एवं सुधारक थे । शङ्कित होकर तथा आन्तरिक कारणों का आधार लेकर अंग्रेजी शासन ने इन्हें १९४२ ई० में पदच्युत कर दिया । १९४६ ई० में उनके पुत्र मार्वण्डसिंह को पुनः राज्य लौटा दिया गया, जो १९४८-४९ ई० में विन्ध्यप्रदेश के राजप्रमुख बने । दिसम्बर, १९४९ ई० में राजप्रमुख पद समाप्त कर दिया गया । इस प्रकार बघेलखण्ड की राज्यसत्ता का अन्तिम अभ्यास पूर्ण हो गया ।^३

१. निजामो—'दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा' : जर्नल आफ दि विक्रम यूनीवर्सिटी : जिल्द २ क. २ : मई, १९५८ : रिप्रिंट : पृष्ठ ४-५ तथा दुर्गादास कवि । अजीत-सिंह या नायक-रामसा : रोवा : १९०२ और 'ग्लोरी आफ बान्धी' : रोवा : १९४८ : पृ० ८ ।
२. ऐचिसन—सो० यू० : 'रोवा अण्डर दि कावर्न' ट्रोटीज ऐण्ड सनड्स विथ ब्रिटिश गवर्नमेंट' (१८०० से १९३० ई० तक) : दिल्ली १९३३ : पृष्ठ २५० तथा बागे । साथ ही देखिये-निजामो—'दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा' वि० यू० अ० २।२ मई १९५८-रि प्रिंट पृष्ठ ५-६ तथा ग्लोरी आफ बान्धी—रोवा : १९४८ : पृष्ठ ८-९ ।
३. रामप्पारे अग्निहोत्री : विन्ध्यप्रदेश का इतिहास : रोवा : १९५६ : पृष्ठ ३००-१४ ।

(ख) पिछली चार शताब्दियों में देश में संस्कृत-सर्जना की धारा

भारत की राजनीतिक उथल-पुथल और मुस्लिम-शासन की स्थापना से निश्चित रूप से संस्कृत-सर्जना की स्वाभाविक गति बाधित हुई। संस्कृत के कवियों और पण्डितों की नवीन आश्रयदाताओं की आवश्यकता पड़ी और संस्कृत-विद्या के संरक्षण का नया प्रश्न सामने आ गया। गुजरात, मालवा, मध्यभारत, बिहार और बंगाल के ये केन्द्र, जो अब तक संस्कृत विद्या का पोषण कर रहे थे, प्रायः समाप्त हो गये। परीदा का यह काल-खण्ड बीता। क्रमशः केन्द्र बदले। अवशिष्ट हिन्दू-नरेशों की राज-समाजों तथा उपासना-केन्द्रों ने यथाशक्ति संस्कृत-साहित्य के नवनिर्माण को प्रोत्साहित किया।

इस काल में उर्दू-फारसी का प्रभाव बढ़ रहा था; साथ ही, हिन्दी आदि भाषाओं में भी साहित्य-सर्जन की रुचि पनप रही थी। इस स्थिति में भी भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में संस्कृत की मान्यता और रुचि बनी रहती। भाषाओं का अध्ययन करने वाले लोग उनके स्रोत और आधार संस्कृत का भी अध्ययन करते थे। हिन्दी आदि भाषाओं के कवि अपने प्रबन्ध-काव्यों और सतत-प्रश्नों का स्रोत संस्कृत में पाते थे। सूरदास ने सूरसगर में हिन्दी भाषा में अपनी भावनाओं का समावेश किया, किन्तु उसमें प्राप्त समस्त कृष्ण-कथा श्रीमद्भागवत से ग्रहण की। तुलसीदास ने भाषा-बद्ध काव्य रामचरितमानस के प्रणयन के लिए वाल्मीकि-रामायण एवं अन्य अनेक प्राचीन कथा-काव्यों के अध्ययन किये, जो संस्कृत में थे। इस प्रकार एक ओर भाषा-काव्यों के उपजीव्य के रूप में संस्कृत के प्रति विद्वानों की दृष्टि रही, दूसरी ओर संस्कृत में नवीन साहित्य का निर्माण भी होता रहा। काशी, काञ्ची, मिरासा, नवद्वीप, ब्रजमण्डल आदि क्षेत्रों में तथा मैसूर आदि स्थानों की राज-समाजों में अनवरत रूप से पुष्पित-फलश्रुति होने वाले संस्कृत साहित्य का १५०० से १९०० ई० के बीच अपार मात्रा में सर्जन हुआ, यह एक ठोस तथ्य है।

उपरोक्त शताब्दियों में ऐतिहासिक शैली की रुचि का अवैधान्तिक अधिक विदर्शन होता है। संस्कृत के कवियों ने नवीन शासकों की समाजों में भी स्थान प्राप्त कर लिया और उनकी भी प्रशस्तियाँ लिखने लगे। यह कहना अनुपपन्न न होगा कि कुछ मुसलमान और अंग्रेज सत्ताधारियों ने भी संस्कृत भाषा में निहित गुणों की समझा और चाहे राजनीतिक लाभ के लिए ही - क्यों न हो, संस्कृत की महत्त्व देते हुए उसमें उन्होंने स्वयं भी रुचि ली।

सोलहवीं शती में मनुकर, अकबर की कालिदास और विश्वामणि आदि कितने ही कवियों द्वारा मुस्लिम शासकों के प्रति लिखी हुई प्रशस्तियाँ सुमापित सङ्ग्रहों में संकलित हैं। इसी शती में फारसी के अकबरनामा का संस्कृत

अनुवाद हुआ तथा अकबर ने कई संस्कृत ग्रन्थों के फारसी में अनुवाद कराये । रहीम खानखाना, दाराशिकोह और शाहस्ता खान जैसे मुस्लिम विद्वानों ने संस्कृत में रचनाएँ भी कीं । मुगल-शासनकाल में टोडरमल-काव्य और खान-खानान-चरितम् लिखे गए । जहाँगीर की प्रशस्ति में विरुदावली तथा जहाँगीरशाह-चरितम् गद्यकाव्य की रचना हुई । पण्डितराज जगन्नाथ ने आसफ खाँ के लिए आसफ-विलास गद्यकाव्य और दाराशिकोह के लिए जयदाभरण काव्य लिखा । १६८९ ई० में चतुर्भुज ने शाहस्ता खान के लिए रसकल्पद्रुम ग्रन्थ की रचना की । १८वीं शती में लक्ष्मीपति ने फारसी शब्दों के मेल के साथ अम्बुल्ला-चरितम् लिखा ।

१९वीं शती में अंग्रेजों का प्रभाव स्थापित हो जाने से संस्कृत-काव्य की एक धारा अंग्रेजों की प्रशस्ति की ओर अभिमुख होती हुई परिलक्षित होती है । १८०१ ई० में विनायक भट्ट ने अंग्रेज-चन्द्रिका लिखी । १८१३ ई० के ग्रन्थ इतिहाससमोमणि में अंग्रेजों द्वारा भारत-विजय का चित्रण प्रस्तुत है । इसी कड़ी में रामस्वामी राजा का राजाकुल-महोद्यान, राजराज वर्मा का आङ्गल-साम्राज्य, परवर्तु रत्नाचार्य का आंगलाभिराज-स्वागत तथा विश्वदोरिया की शासन पर विद्यालङ्कार भट्टाचार्य का विजयिनी-काव्य आदि ग्रन्थ मिलते हैं । बीसवीं शती की आरम्भ में भी अंग्रेजों को लक्षित करके संस्कृत काव्यों की सृष्टि हुई है ।

हिन्दू राज-समाधों का प्रोत्साहन पाने वाले अनेक कवियों ने इस काल में ऐतिहासिक शैली के सुन्दर काव्यों के प्रणयन किये हैं । १६वीं शती के मध्य भाग में माधव कवि ने बीरमानु बघेल पर १२ सगों का बीरमानुदय महाकाव्य लिखा । प्राज्यभट्ट और उनके शिष्य शुक ने १५८६ ई० तक का कारमौर का हिन्दू-राज्य-कालीन इतिहास राजावली-पत्राका नाम से पूरा किया । विजयनगर के अष्टपुत्र राय पर राजनाथ तृतीय ने १२ सगों का अष्टपुत्ररायानुदय लिखा । चन्द्रशेखर ने २० सगों का काव्य राज-सुर्जन-चरित्र लिखा । भक्तवर्दी कालिदास ने रामचन्द्र-मश-प्रबन्ध नामक प्रशस्ति-काव्य लिखा । रुद्र कवि ने मयूरगिरि के राठौर-राजवंश को लक्ष्य बनाकर १५९६ ई० में २० सगों के राष्ट्रोद-वंश काव्य की सर्जना की तथा बापीनाथ ने ७ सगों का जाम-विजय ग्रन्थ लिखा ।

परवर्ती शतियों में पण्डितराज जगन्नाथ का कामरूप के नरेश प्राणनारायण पर प्राणभरण-काव्य लिखा गया । इस काल में दक्षिण भारत में अधिक काव्य-सृष्टि परिलक्षित होती है । तंजौर केन्द्र में रघुनाथ-कृत अष्टपुत्रेन्द्राम्युदय १६१४ ई० की रचना है । राठी राममद्राम्बा ने रघुनाथाम्युदय तथा यशनारायण और राजचूडामणि दीक्षित ने पुष्य-पुष्य रघुनाथ-भूपविजय काव्य रचे । महा-

राष्ट्र के कवियों में परमानन्द ने ३१ अध्यायों का शिवभारत, जयनाथ ने पर्नाल-पर्वत-प्रहास्यान, केसव पण्डित ने ५ सर्गों का राजाराम-चरित्र एवं शिवराज-चरित्र और श्रीधर वेङ्कटेश ने ८ सर्गों का शाहेन्द्र-विलास काव्य रचा। सुमनोद कवि ने शाह-विलास, गंगाधर ने भोमला-वंशावली, योगबलपति ने कोमल-मोसलीयम् और कालिदास विशाविनोद ने शिवराजो-चरित का प्रणयन किया। अन्य क्षेत्रों में रूपणि शर्मा ने १६७८ ई० में वधेलवंशवर्णन लिखा और वैद्यनाथ मैथिल ने २० सर्गों का ताराचन्द्रोदय काव्य ताराचन्द्र मरेस को लक्ष्य बनाकर लिखा। दाँडरलाल ने १९वीं शती में रावजो-राज-कीर्तिविलास काव्य लिखा तथा केरल-कालिदास केरल वर्मा ने विशाखराज-महाकाव्य रचा।

इस कालावधि में मुनियों और धर्मगुरुओं के चरित तथा धर्मकैश्यों के इतिहास भी लिखे गये। मेघविजयगणि ने देवचन्द्राभ्युदय, वासुकिनाथ-चरित और दिग्विजयमहाकाव्य का सज्जन किया। इसी काल के ग्रन्थ सङ्कराभ्युदय, पद्मजलि-चरित और महावीरचरित हैं। धनदयाल ने भागवतपाव-चरित और वेङ्कटेश-चरित काव्य लिखे। द्विषिडम कवि ने विवेकपत्रयाका नाम से विजयनगर के कवियों का वंशेतिहास लिखा और सुन्दरराज आचार्य ने भोनिवास-दीक्षितेन्द्र-चरित रचा। राम वर्मा ने ह्यानभूरपुर-वर्णन लिखा। १७४० ई० में गुहवंश नाम से भुज्जेरी मठ का इतिहास लिखा गया। विजयपुर-कथा, चोलवंशावली-चरित, राजविनोद और बीरमहविजय आदि अन्य अनेक ग्रन्थ भी इसी काल के हैं। सोमनाथ के व्यासविजय, वादिराज के तीर्थ-प्रबन्ध और सङ्कर्षण के सरय-नाथाभ्युदय की इसी कड़ी में गिना जा सकता है।

यह समझना भूल होगी कि कविर. ने इस अवधि में पौराणिक आधारों पर काव्य-निर्माण की उपेक्षा की। ऐसे काव्यों की सूची सुदीर्घ है। १६वीं शती में स्वयम्भूनाथ ने १४ सर्गों का कृष्णविलास और अप्पय दीक्षित ने खिमणी-परिणय लिखा। रघुनाथ ने १६१४ ई० में जलाम्बुदय, वेङ्कटेश ने १६३५ ई० में ३० सर्गों का रामचन्द्रोदय और रत्नसिंह ने १६७१ ई० में प्रद्युम्नचरित लिखे। १७वीं शती के अन्य गणनीय काव्य हैं—मधुरवाणी का रामायण-काव्य, भोनिवास दीक्षित का शितिकण्ठविजय, राजचूड़ामणि दीक्षित का खिमणी-परिणय, भोलकण्ठ दीक्षित का शिवलीलार्णव, चक्र कवि का ८ सर्गों का जानकी-परिणय, ईश्वर सुमति का पार्वती-परिणय और कृष्ण कवि का ताराशशाङ्क काव्य। इसी प्रकार १८वीं शती के ग्रन्थों में धनन्त नारायण का १२ सर्गों का राधा-चरित, वेङ्कट कृष्ण का ७ सर्गों का नटेश-विजय, भगवन्त का १० सर्गों का मुकुन्दविलास, राम कवि का ८ सर्गों का विष्णुविलास,

२० सर्गों का राघवोद्योग काव्य तथा कंसवहो (प्राकृत) एवं राम वर्मा का १२ सर्गों का रामचरित उल्लेखनीय है ।

सम्बद्ध शक्तियों में चम्पू काव्यों की रचना अच्छी संख्या में हुई । इनमें से पद्मनाभ मिश्र का वीरभद्रदेव चम्पू, शङ्कर दोसित का चेतो-विलास, वेङ्कटेश का मोंमलावंशावली चम्पू और वल्लोसहाय का आचार्यदिविजय चम्पू आदि ऐतिहासिक आधारों पर प्राप्य हैं । पौराणिक आधारों पर १६वीं शती में श्रीनिवास दोसित ने भैष्मोपरिणय, तिरुमलम्बा ने बरदाम्बिका-परिणय, स्वयम्भूताय ने शङ्करानन्द, राजनाथ तृतीय ने भागवत चम्पू, कवि कर्णनूर ने आनन्द-वृन्दावन और मोपनाथ ने व्यासयोगिचरित नामक चम्पू ग्रन्थ लिखे । अद्वैले नारायण मट्टाद (१५६०-१६४६ ई०) ने राजसूय, मत्स्यावतार, पाञ्चाली-स्वयम्बर आदि २३ चम्पू ग्रन्थ लिखे ।

१७वीं शती में जीवगोस्वामी का गोदानचम्पू, नृसिंह और श्री शैल के पृथक्-पृथक् त्रिपुर-विजय, चिदम्बर का पञ्चकल्याण, वैजयन्ती और कृष्णनाथ का आनन्दलतिका, राजबूडामणि का भारत-चम्पू, कालहस्ति का वसुचरित्र, वेङ्कटाध्वरिन् का विश्वगुणादर्श और बरदाम्पुदय, मानवेद का चम्पू-भारत, नीलकण्ठ दोसित का नीलकण्ठ-विजय, मित्र मिश्र का आनन्दकन्द आदि चम्पू काव्य उल्लेख्य होते हैं । १८वीं शती में सरमोबी ने कुमारसम्भव, वेङ्कटकृष्ण ने उत्तर-चम्पू-रामायण, अम्पा घास्त्री ने गीरीमयूर, वीरराघव ने वेङ्कटविजय, नारायण ने विक्रमसेन, जयराम ने राधामाधव-विलास, शङ्कर दोसित ने गङ्गावतार और बाणेश्वर ने चित्रचम्पू लिखा । १९वीं शती में परकालयति का रङ्गराजविलास, अच्युत गर्मा का भागीरथोद्योग, विश्वनाथसिंह का रामचन्द्र-चम्पू और गोपाल चम्पू, पन्त विट्ठल का गजेन्द्रचम्पू एवं आसुरि अनन्ताचार्य का चम्पूराधव आदि ग्रन्थ उल्लेख्य होते हैं । इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य चम्पू काव्य भी लिखे गये ।

काव्यों की इस कड़ी को बढ़ाने में अनेकार्थक या चित्रकाव्यों की परम्परा का भी योग रहा है । अनन्ताचार्य का यादव-राघव-पाण्डवीय, चिदम्बर का राघव-यादव-पाण्डवीय और सूर्य कवि का राम-कृष्ण-विलोम काव्य १६वीं शती के गणनीय ग्रन्थ हैं । १७वीं शती में वेङ्कटाध्वरिन् ने यादव-राघवीय, वेङ्कटेश्वर ने चित्रराघव-रामायण, मेघविजयगणि ने सप्त-सन्धान, राजबूडामणि दोसित ने रत्नखेटविजय (यमक-काव्य), चित्रमञ्जरी तथा राघव-यादव-पाण्डवीय, वेङ्कटेश ने रामयमकार्णव, शोकण्ठ ने शौरिचरित और रघूदय, पण्डितराज ने अग्रापदेश और चक्र कवि ने चित्र-रत्नाकर नामक ग्रन्थों की रचनाएँ कीं । १८वीं शतियों

में भी हमें घनश्याम का अयोध्याकर, गोपालराय का रामचन्द्रोदय, हरदत्त का राघवनेत्रधीय, रामभद्र का पर्यायोक्ति-निष्पन्द, कृष्णमूर्ति का कट्टणग्रन्थ रामायण तथा विट्ठलउपमक बंझुटेन्दर का रामायण-संग्रह वा चतुर्विन्शत्तर्गर्भ आदि ग्रन्थ प्राप्त होते हैं ।

रघु काव्यो के दोत्र में इस कालार्वाध में अपार साहित्य लिखा गया । श्लोको या स्तुतियों की रचना सर्वाधिक संख्या में हुई । वैष्णव-दर्शन की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले सन्तों ने दक्षिण भारत के मन्दिरों और मठों में तथा उत्तर भारत में अयोध्या, मिथिला, नवद्वीप, ब्रजमण्डल, चित्रकूट और काशी आदि अनेक तीर्थ-स्थलों में स्तुति काव्यो के अम्बार खड़े कर दिये । इनके अतिरिक्त सन्देश-काव्य, लहरी-काव्य, उपास्यान एवं सूक्तियाँ भी उपलब्ध हैं । इनकी गणना सम्भव प्रतीत नहीं होती । गोरारङ्ग चैतन्य का प्रेमाभूत, रूपगोस्वामी का सत्यवसन्देश, बालभाष्य का प्रेमाभूत, विट्ठल का रस-सर्वस्व, रामचन्द्र का कृष्ण-कृतफल, कृष्णदेवराय का मन्दासराचरित्र, रघुनाथ का पारिजातहरण और यस्त-मान, शिवमार्कण्डेय का सङ्कीर्त-रघुनन्दन, तुलसा जी का सङ्कीर्तसारामृत, पण्डितराज के ६ महरी ग्रन्थ, अल्पय दीक्षित के अनेक स्तुति-काव्य, रघुनाथविह का जगदीशशक्तक, भानुदत्त का भीम-गोरीश, परमानन्द का शृङ्गार-सप्तशती, कृष्णमूर्ति का २४०श्लास, नारायण भट्टपाद का नारायणीय, मेघविजयमणि का मेघदूत-समस्या-लेख, जगन्धरी बालिदास का स्तुतिमालिका और बीर राघव का पार्वती-श्लोक आदि अनेक उत्कृष्टग्रन्थ ग्रन्थ हैं ।

इस काल में शास्त्रीय एवं ललनग्रन्थों के भी पर्याप्त संख्या में लिखे जाने की जानकारी प्राप्त होती है । वेद्यवमट्ट का रसिक-सञ्जीवनी, गङ्गादास का काव्य-मन्दाविनी, रामचन्द्र का रसिक-रञ्जन, भानुदत्त का रसमञ्जरी, प्रभाकर का रसप्रदीप, गोविन्द का काव्य-प्रदीप, चर्मसुधी का साहित्य-रत्नाकर, पौण्डरीक रामेश्वर का रसोत्सव तथा गोपीनाथ के रीतिवृत्ति-सङ्गण, श्रीनिवास दीक्षित का साहित्य-सञ्जीवनी आदि सात ग्रन्थ और शृङ्गार-रस-मण्डन १६वीं शती की रचनाएँ हैं । १७वीं शती में अल्पय दीक्षित ने चित्रमीमांसा, वृत्तिवातिक और कुवलयानन्द नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे । भीमसेन ने कुवलयानन्द और पण्डित-राज जगन्नाथ ने चित्रमीमांसा का सङ्कलन किया । पण्डितराज ने रस-गङ्गाधर और भास्वतीविलास जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे । इनके अतिरिक्त दाम्तलुरिकृष्ण सूरि का कलङ्कार-मीमांसा, विद्याधर का कलङ्कार-सुधानिधि, राजचूडामणि का काव्य-दर्पण, नीलकण्ठ दीक्षित का चित्रमीमांसा-दीप-धिवकार, कृष्णदीक्षित का रघुनाथमूलादीय आदि ग्रन्थ इसी शती के हैं ।

१८वीं शती में बलदेव ने माहित्यकौमुदी, विश्वेश्वर पाण्डेय ने अञ्जकार-कोस्तुम और रमचन्द्रिका, रामदेव चिरञ्जीव भट्टाचार्य ने काव्य-विलास और शृङ्गार-तटिनी, सुखलाल मिश्र ने शृङ्गारमाला और अञ्जकार-मञ्जरी, हरिप्रसाद ने काव्यार्थसुम्न और काव्याञ्जक आदि ग्रन्थ लिखे । १९वीं शती में अनुरयमण्डन ने अल्प-कलालता एवं मुग्ध-मेवाकर, कृष्णमुषो ने काव्यकञ्ज-निधि, रत्नभूषण ने काव्यकौमुदी और राजशेखर ने साहित्य-रत्नद्रुम को रचना की । इसी कड़ी में नृसिंह का नञ्जरात्रयशोभूषण, सदाशिव-मल्लिन् का रामवर्म-यशोभूषण, बेङ्गुट शास्त्री का अप्पाराय-यशश्चन्द्रोदय और कच्छेश्वर दीक्षित का रामचन्द्र-यशोभूषण जैसे ग्रन्थ जोड़े जा सकते हैं ।

सङ्गीत और नृत्य के क्षेत्र में लक्ष्मोधर का भरतशास्त्र, रघुनाथ का भारतसुधा और सङ्गीतसुधा, गोविन्द दीक्षित का सङ्गीत-सुधानिधि, रामामारय का स्वरमेलकलानिधि, क्षेमकर्ण का रागमाला, नोमनाथ का राग-विबोध, वेद कवि का सङ्गीतमकरन्द, अहीबिल का सङ्गीत-पारिजात, बालरामवर्मन् का बालराम-भरतम्, तुलसा राज का नाट्यवेदागम और सङ्गीत-सारामृत और पुण्डरीक बिट्टल का राग-नारायण उत्तलेखनीय ग्रन्थ हैं । इसी अवधि में सिद्धान्त-कौमुदी एवं मध्यकौमुदी नामक व्याकरण के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ, काव्यों और काव्य-शास्त्रों पर कितनी ही टीकाएँ तथा दर्शन, धनुर्वेद, नीति, कामशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों पर भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये ।

इस काल में सुभाषितों के अनेक सङ्ग्रह किये गए । विजयसेन सूरि ने सूक्ति-रत्नावली, गोविन्द भट्ट ने पद्य-मुक्तावली, हरिदास ने प्रस्ताव-रत्नाकर, हरि कवि ने सुभाषित-हारावली, सुन्दरदेव ने सूक्ति-सुन्दर, गोविन्दजित् ने सम्पालङ्करण, बेगीदत्त ने पद्यवेणो, शम्भूदास ने सार-सङ्ग्रह-सुघार्णव, रूप-गोस्वामी ने पद्यावली, हरिभास्कर ने पद्यामृत-तरङ्गिणी, ब्रजनाथ ने पद्य-तरङ्गिणी लक्ष्मणभट्ट ने पद्य-रचना, गोपीनाथ ने सुभाषित-संग्रह और गदाधर भट्ट ने रसिकजीवन नाम से सूक्तियों के सङ्कलन किये । इनके अतिरिक्त सुभाषित-सार-समुच्चय आदि ग्रन्थ भी हैं ।

कथासार गुप्त और पद्य दोनों में लिखे गये हैं । इस क्षेत्र में कृष्णदेवराय का सकल-कथा-सार और रामायण-सार-सङ्ग्रह, अन्तर्य दीक्षित का दशकुमारचरित सङ्ग्रह और रामायण-सार-सङ्ग्रह, वीरभद्रदेव का दशकुमार-पूर्वकथासार, कृष्णाराम का नैषधचरितसार, रघुनाथ का रामायणसार-सङ्ग्रह, गोविन्द दीक्षित का हरिवंश-सारचरित, सुमजीन्द्र का अमिनव-कादम्बरी और कृष्णराज उदयर तृतीय के कृष्णकथापुष्पमञ्जरी तथा रामायण-कथा-पुष्पमञ्जरी आदि ग्रन्थ प्राप्त हैं ।

संबद्ध दृष्टियों में दृश्य काव्य के क्षेत्र में प्राप्त ग्रन्थों की संख्या बहुत है । इनमें साकुण्टला नाटक तथा अन्य रूपक भी हैं । १६वीं शती के उत्प्रेक्षणीय नाटक है—कृष्णदेवराय का कृष्ण-परिणय और जाम्बवती-कल्याण, सतगोप का वासन्तिकपरिणय, बर्णपुर का चैतन्यचन्द्रोदय, रूपगोस्वामी के विदग्धमाधव और ललितमाधव, मल्लिकार्जुन का सत्ययामा-परिणय, कुमारताताचार्य का पारिजात और श्रीनिवास दोचित्त का भैमीपरिणय । १७वीं शती में यशनारायण ने रघुनाथ विलास, राजचूडामणि ने आनन्दराघव, धतिराज-यश्वन् ने कुश-कुमुदतोय, गोल-कण्ठ ने नलचरित, रघुनाथ ने मलाम्बुदय और मानबंद ने कृष्णगीत नाटक का प्रणयन किया ।

परवर्ती शतियों में घनश्याम के प्रचण्ड-राहूदय और आनन्दसुन्दरी, वैद्युट-कृष्ण का कुश-लव-विजय, मल्लन चक्रवर्ती का दमयन्ती-कल्याण, आनन्द का विद्या-परिणय, रामकवि के ललित-राघवीय और वादुका-पट्टाभियेक, वैद्युटरत्ननाथ का मञ्जुल-नैषध, विश्वनाथसिंह का आनन्द-रघुनन्दन, रामशास्त्री का मुक्तावली, बल्लीसहाय कवि का ययाति-तकण-नन्दन, सुन्दरबीरराघव का रत्ना-रावणीय, वैद्यनाथ का चैत्रयज, बाङ्कुरलाल के सावित्री-चरित्र आदि ७ नाटक, सुन्दरराम आचार्य के पद्मिनी-परिणय आदि ५ नाटक लिखे गये । नारायण शास्त्री ९२ नाटकों के प्रणेता बतलाये जाते हैं । त्रिवेणी नाथक कवयित्री ने १९वीं शती में रत्नराजसमुदय और तत्त्वमुद्रामद्भोदय दो नाटकों की रचना की है । इनके प्रति-रिक्त अन्य अनेक नाटकों की जानकारी मिलती है ।

अन्य रूपकों में भाणों की संख्या सर्वाधिक प्रतीत होती है । रूपगोस्वामी का दानवेलि-कौमुदी, रामवर्मा का रत्न-सदन, घनश्याम का मदन-सञ्जीवन, राजचूडामणि का शृङ्गार-सर्वस्व, गीर्वाणेश्वर का शृङ्गार-कोय, रामभद्र का शृङ्गार-तिलक, जम्भालाचार्य का वसन्ततिलक, बरदाचार्य के चोल और अनङ्ग ब्रह्म-विलास, श्रीकृष्ण का रत्न-विलास, अल्पा शास्त्री का मदन-भूषण, जगन्नाथ का अनङ्ग-विजय, त्रिविक्रम का पञ्चानुष-प्रपञ्च, श्रीनिवास का रसिकरञ्जन और स्वयम्भूनाथ का मदनगोपाल आदि कितने ही भाण-ग्रन्थ हैं ।

मैसूर के प्रधानी वैद्युटभूषण ने कामकला विलास भाण, रुक्मिणी-परिणय षड्क, कुसुम्भरि-भैरव प्रहसन, तर्कशी-सार्दभौम ईहामृग, विबुध-दानव समवकार, बीरराघव-विजय व्यायोग और सीता-कल्याण नामक चौथी श्रेणी की रचना की । रामचन्द्र ने शृङ्गार-सुधार्य भाण, जामदग्न्य-विजय व्यायोग और वासन्तिका नाटिका का प्रणयन किया । घनश्याम ने नवग्रहचरित सट्टक और चण्डारञ्जन

प्रहसन लिखे । अरुणगिरिनाथ ने बीरभद्र-विजय हिम और सोमवल्गो-योगानन्द प्रहसन की रचना की । रामकवि ने चन्द्रिका वीथी और मदनकेतु चरित प्रहसन का निर्माण किया । रुद्रदास ने चन्द्रलेखा सट्टक लिखा ।

इनके साथ-साथ प्रकरणों में पवित्रवास कुमार का अनङ्गसेन-हरिनिन्दनी, तरङ्गदत्त के पुष्प-द्रूषितक, पद्मावती-परिणय और प्रयोगाम्बुदय, चन्द्रकान्त का कौमुदी-सुधाकर और गणपति शास्त्री का माधवो-वासन्तीय प्राप्त हैं । प्रहसनों में साम राज का घूर्तनर्तन, गोपीनाथ का कौतुकसर्वस्व, वेङ्कटेश्वर का वेङ्कटेश प्रहसन और हरिजीवन मिश्र के प्रासङ्गिका आदि ४ प्रहसन उल्लिखित हैं । अन्य उल्लेखनीय रूपकों में हैं—शाहजी का चन्द्रशेखरविलास, अपना शास्त्री का मृङ्गार-मञ्जरी साहजीम, कवि बल्लभ का अधिराम-चित्रलेख, कृष्णदास का कलावती-कामरूप और राजचूडामणि का कमलिनो-कलहंस ।

कुछ गद्य-काव्यों की चर्चा की जा चुकी है । १५२४ ई० में राजवल्लभ नाटक ने चित्रसेन-पद्मावती कथा और १५९६ ई० में देवविजय गणि ने रामचरित की रचना की । जगन्नाथ मिश्र ने १७वीं शती में कथाप्रकाश ग्रन्थ लिखा । १७११ ई० में दुष्टिराज म्यास ने अमिनव-कादम्बरी का प्रणयन किया । एकाम्बर दीक्षित का बीरभद्रविजय और विश्वेश्वर का मन्दारमञ्जरी भी १८वीं शती के गद्यकाव्य हैं । १९वीं शती में गद्य-लेखन की रुचि बढ़ी हुई प्रतीत होती है । श्रीनिवासाचार्य के श्रीकृष्णलीलांगित और धार्मिकोपाख्यान, तिरुमल्ला-चार्य का श्रीकृष्णाम्बुदय, अहोबिल नृसिंह का त्रिमूर्ति-कल्याण, अपना शास्त्री का लावण्यमयी, शिवकुमार शास्त्री का यतीन्द्र-जीवनचरित, श्रीनिवास का कृष्णराज-जयोत्कर्ष और शङ्करलाल के चार कथा-ग्रन्थ अनसूयाम्बुदय, भागवती-भाग्योदय, चन्द्रप्रभा-चरित तथा महेश-प्राणप्रिया इसी शती की देन हैं ।

उक्त शतियों में हमें प्रियम्बदा, वैजयन्ती, त्रिवेणी, सुगररी और कमला आदि कवयित्रियों के नाम भी मिलते हैं । त्रिवेणी ने ६ लघुकाव्य और दो नाटक लिखे हैं ।^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि १५०० से १९०० ई. बीच संस्कृत-साहित्य की महत्त्वपूर्ण एवं प्रचुर मात्रा में सर्जना हुई है, जिसमें प्रेरणा देने को शक्ति है ।

ऊपर लिखे गये ग्रन्थों में कुछ काव्य-ग्रन्थ बघेलखण्ड के भी हैं । अतः इन शताब्दियों में संस्कृत-सर्जन की धारा में कुछ प्रवाह बघेलखण्ड से भी सम्मिलित हुए हैं ।

१. हि० बला० सं० लिट्० पर आधारित । उपर्युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थों की जानकारी के लिए लेखक आभारी है ।

वघेलखण्ड का संस्कृत-साहित्य :

वघेलखण्ड में जो संस्कृत-साहित्य निहित हुआ है, वह यथार्थतः संपन्न रूप में उपलब्ध नहीं है। अनुपलब्ध ग्रन्थों के सम्बन्ध में तथा कुछ उपलब्ध प्रकाशित ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी अनुमान के आधार पर भ्रम उत्पन्न किये गए हैं। इन पंक्तियों में हम यह विचार करेंगे कि वास्तव में वघेलखण्ड का संस्कृत-साहित्य किन्ना है उसके प्रणेताओं की स्थिति कहाँ है एवं इस साहित्य में काव्य किन्ने हैं, जिनका समोदात्मक रूप आगे प्रस्तुत किया जाय।

सारावली और ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त :

श्री सुभाकर द्विवेदी ने गणक-तरङ्गिणी^१ की भूमिका में सारावली नामक व्योतिष ग्रन्थ^२ के निम्नलिखित प्रारम्भिक श्लोक उद्धृत किये हैं :—

‘देवग्राम-पुर-प्रोपणबलाद् ब्रह्माण्ड-सत्पञ्चरे,
कीर्तिहंसाबलासिनीव सहसा यस्येह भास्यानता ।
श्रीमद्भ्यामपदीश्वरो रचयति स्वर्णा न सारावलीं
होराशास्त्र विनिर्मलीकृतमनाः कल्याणवर्मा कुतो ॥

होरा-तृष्णातर्तां शिष्याणां स्फुटतरार्य-सिसिर-जला ।

कल्याणवर्म-दीक्षानदीव

सारावलीप्रसूता ॥’

इस कल्याणवर्मा को श्री द्विवेदी ने ‘६१५’ ई० में रोवा नगर में सिंहासन पर बैठने वाले व्याघ्रदेव के पुत्र कर्णदेव के साथ एकारण किया है।^३ मारने यह भी लिखा है कि “विष्णुगुप्त का पोत्र ब्रह्मगुप्त रोवा नगर के अधिपति व्याघ्र मटेस्वर (व्याघ्रपदीश्वर) का सेवक था। उसके पिता विष्णुगुप्त व्याघ्रमुख राजा के यहाँ रहते थे। ब्रह्मगुप्त ५९८ ई० में पैदा हुए। ३० वर्ष की आयु में ६२८ ई० में उन्होंने ‘ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त’ की रचना की।”^४

१. प्रकाशित, काशी।

२. निर्णयसामर प्रेस, बम्बई : १९२८ : अध्याय १५-६, पुष्पिका में—
‘इति कल्याणवर्मविरचिताया—’ उल्लेख है। श्री द्विवेदी ने ‘व्याघ्र-पदीश्वर’ के स्थान पर ‘व्याघ्रमटेस्वर’ तथा अन्य पाठभेद लिखे हैं।

३. निर्णयसामर प्रेस, बम्बई : १९२८ : संस्कृत भूमिका—मामतेऽपमेद
कल्याणवर्मा नृपतिर्वघेलखंडीयानां रीवानवराधिपतीनां भूलपुद्गलः ।
सारावल्यादिवलोकेन देवग्रामपयः (पुर) प्रोपणबलादित्यादिना रीवा
राजधानीतोऽग्निविदिशयोऽनचतुष्टयान्तरे ‘देवर’ नाम्नः प्रसिद्ध-ग्रामस्य
निवासी ।’

४. ‘गणक-तरङ्गिणी’ : भूमिका ।

ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने चापवंशीय व्याघ्रमुख का उल्लेख किया है ।^१ इस व्याघ्रमुख और उक्त व्याघ्रमहेश्वर को श्री द्विवेदी ने एक ही व्यक्ति मान लिया है तथा कल्याणवर्मा (कर्णदेव) को १०० शकाब्द में रखा है ।^२

सम्भवतः इसी आधार पर श्री रामप्पारे अग्निहोत्री ने लिखा है कि 'महाराज कर्णदेव (बघेल) संस्कृत के घुरंघर विद्वान् थे । इन्होंने 'सारावली' नामक ज्योतिष-शास्त्र का एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है । इनका आश्रित ब्रह्मगुप्त संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् था, जिमने ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त लिखा ।'^३

श्री द्विवेदी का उक्त मत तथा उस पर आधारित श्री अग्निहोत्री का उल्लेख भ्रामक है । श्री सदाशिव कात्रे ने कल्याणवर्मा की तिथि ६५० ई० निश्चित की है ।^४ दूसरी ओर हम पीछे लिख चुके हैं कि व्याघ्रदेव और कर्णदेव बारहवीं शती में हुए होंगे । चापवंशीय व्याघ्रमुख सातवीं शती में गुर्जरदेश का शासक था । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त का प्रणेता इसी की सभा में था ।^५ रीवा के बघेल राजवंश से इसका सम्बन्ध नहीं हो सकता । १५०० ई० से पूर्व बघेलखण्ड के बघेल राजाओं से संबद्ध संस्कृत-साहित्य प्राप्त नहीं है ।

सोलहवीं शती के ग्रन्थ :

रामचन्द्र भट्ट का राधाचरित-काव्य और

रामचन्द्र कवि के स्फुट श्लोक :

डा० हरदत्त शर्मा^६ के अनुसार सोलहवीं शती के आरम्भ में बीरसिंहदेव

१. श्रीचापवंशतिलके श्री व्याघ्रमुखे नृपे शकनृपालात् ।

पञ्चाशत्संयुक्तीर्वर्षातः पञ्चभिरतीतैः ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः सज्जन-गणितज्ञ-गोलविरचित्यै ।

त्रिशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुत-ब्रह्मगुप्त्येन ॥'

देखिये ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त : काशी ।

२. 'गणक-तरङ्गिणी' : भूमिका । साथ ही देखिये—'संस्कृत साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन' : रीवा : १९५७ : पृष्ठ ३३-३६ ।

३. वि० प्र० ६० : पृष्ठ १४२-१४५ ।

४. 'कल्याणवर्मन्स सारावली—फ़ैसलाबादस आनन्दस डेटः' बाल इण्डिया लॉरिएण्टल कॉलेज, बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी—१२वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोध-निबन्धों का सारांश : श्री ए० एस० अस्तेकर द्वारा १९४३ ई० में प्रकाशित ।

५. ग्लो० गु० : पृष्ठ ४५७ ।

६. 'बघेल क्लर्क' । साथ ही देखिये, हि० पत्रा० सं० लिट० पृष्ठ ३९० ए : ओ० ज० नाम ३।१३३ में प्रकाशित हरदत्त शर्मा के निबन्ध का उल्लेख ।

श्वेल की प्रेरणा से (लिखी) रामचन्द्र भट्ट ने राधाचरित-काव्य लिखा ।^१
 शर्मा जी के मत से यह रामचन्द्र भट्ट वही कवि है, जिसने रसिक-रञ्जन और
 रोमावलीशतक का प्रणयन किया तथा जो लक्ष्मण भट्ट का पुत्र है । इसने
 सं० १५८० (१५२३ ई०) में लिखित अपने अन्य रसिकरञ्जन की स्वयं ही
 टीका लिखी । टीका का अन्त इस प्रकार होता है—

‘शृङ्गार-वैराग्यशतं स पञ्चविंशत्यभ्यामगरे व्यपन्न ।

अग्रे विषद्वारण-ज्ञान-चन्द्रे श्री रामचन्द्रोऽनु स तस्य टीकाम् ॥

.....इति श्री लक्ष्मणभट्टसूनु—श्रीरामचन्द्रकविकृतं सटीकं रसिकरञ्जनं
 नाम शृङ्गारवैराग्यशतमानं काव्यं सम्पूर्णम् ।’^२

हम देखते हैं कि रसिकरञ्जन की यह टीका अयोध्या नगर में लिखी गई ।
 पद्यामृततरङ्गिणी में अयोध्या के रामचन्द्र भट्ट का एक श्लोक प्राप्त है ।^३

हौं ज्योतिः विमल चोद्युरी मे इस आधार पर लिखा है कि १५२० ई० में
 अयोध्या में बीरसिंह का राज्य था । यह बीरसिंह प्रतापराज का पौत्र और
 मधुकरदाह का पुत्र था । अतः रसिकरञ्जन और राधाचरित का प्रणेता रामचन्द्र
 भट्ट अयोध्या के बीरसिंह का भावित होगा ।^४

श्री पी० के० मोडे^५ ने लिखा है कि (एक) रामचन्द्र भट्ट ने श्रीमद्भागवत
 दशमस्कन्ध उत्तराष्ट के टीका^६ लिखी है, जिसका नाम पहारसिंहो टीका भी है;
 अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है :—

‘इति श्री दशमस्कन्धे सामन्त-जन-बृहामणि-मरीचि-रत्न (त)—पादपीठ-
 बुन्देल-महाराजाधिराज-बीरसिंह-तस्यात्मज-महाराजाधिराज - श्रीपहारसिंहदेवस्य
 निदेशतः विरवेश्वरभट्टात्मज-रामचन्द्रभट्टकृतायां टीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अष्टौ अष्ट नृपादवेव ॥१६॥८८॥ पितृन्द्रे मासि कार्तिके ।

कृता स रामचन्द्रेण टीकेयं स सुबोधिनी ॥’

१. जाफे० भाग ३।१०९।६ एवं १०७।६।

२. काव्यमाला चतुर्थः निर्णयसागर प्रेस, बंबई : १६३७ : पृष्ठ १४८-१४९ ।

३. श्लोक० १३ : ‘मया वारं वारं.... ।—अयोध्याक-रामचन्द्रभट्टस्य’ ।

४. पद्यामृत० संग्रहो भूमिका—रामचन्द्र भट्ट : पृष्ठ १६१-८० ।

५. ‘रामचन्द्र भट्ट—ए प्रोटेज’ ।

६. जाफे० २।९० : साथ ही देखिये ग० सं० भा० : १८८४-८७ का क्र० ११० ।

७. ‘रामचन्द्र भट्ट ए प्रोटेज’ : पृष्ठ २ :

“...पहारसिंहदेवस्य (निदेशतः कृतायां) पहारसिंहो
 टीकायां.....” ।

स्पष्ट है कि यह रामचन्द्र भट्ट विदेवेश्वर भट्ट का पुत्र था, जिसने वीरसिंह बुन्देल के पुत्र पहारसिंह के निदेश से सुबोधिनो (या पहारसिंहो) टीका लिखी।

गोडे का कहना है कि डॉ० श्यामसुन्दरदास के मतानुसार^१ पहारसिंह की मृत्यु १६५३ ई० में हुई, क्योंकि इस प्रसङ्ग पर शोक-ग्रस्त रानी हरदेवी के समाधान के लिए राघवदास ने हिन्दी में ज्ञानप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें वंशवृक्ष भी है।^२

श्री गोडे ने यह भी बतलाया है कि डॉ० पी० बी० काणे के अनुसार^३ मित्र मित्र ने आह्निक-प्रकाश में (पहारसिंह देव के पिता) वीरसिंहदेव का वंशवृक्ष प्रस्तुत किया है। वीरसिंहदेव (१६०५-२७) की राजधानी ओरछा थी। मानुदत्त की रसमञ्जरी के टीकाकार अनन्ताश्रम^४ ने भी, जिनके आश्रय-दाता वीरसिंह के पुत्र चन्द्रमानु (या चित्रमानु) थे, १६१५ ई० में टीका के साथ आश्रयदाता की वंश-परम्परा सूचित की है। इन विवरणों के आधार पर वंश सूची इस प्रकार है—^५

मेदिनीमल्ल (काशिराज—वंश्य)

अर्जुनदेव (बुन्देलखण्ड)

मल्लखान

प्रतापरुद्र (या रुद्रप्रताप, ओरछा राज्य का संस्थापक)

मधुकरगुहा

वीरसिंह (देव) (१६०५-२७) •

जुहारसिंह

चन्द्रमानु

पहारसिंह = हरदेवी
(१६४१-५३)

१. वही पृष्ठ ३ तथा 'हिन्दी पाण्डुलिपियों का विवरण' प्रयाग : १६१२ : पृष्ठ ५३।
२. वही।
३. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र : भाग १ : पृष्ठा : १९३० : पृष्ठ ४४४-४६।
४. श्री कृष्णमाचारियर ने सम्भवतः इसी टीकाकार का नाम अनन्त पण्डित लिखा है, जिसने बनारस में 'स्वशासिन्' वीरसिंह के पुत्र 'काशी-नरेश चित्रमानु' के आश्रय में १९३६ ई० में 'रसमञ्जरी' पर टीका लिखी। देखिये—हि० बला० सं० लिट० पृष्ठ ७७५ टि० ३।
५. 'रामचन्द्र भट्ट—ए प्रोटोज'।

बुन्देलों के एक वंशवृक्ष में बन्धमानु (या बिजमानु) का नाम नहीं मिलता, किन्तु उसमें बीरसिंहदेव के चार पुत्र—जुम्हारसिंह, पहारसिंह, भगवानदास और हरदोल बतलाए गए हैं ।^१

बीरसिंहदेव ने सलीम की इच्छानुसार १६०२ ई० में अबुलफजल को मारा था, बाद में वह घकवर के एक सेनापति पन्नदास द्वारा परास्त होकर भागा था ।^२ सलीम के बादशाह होने पर बीरसिंहदेव ने १६०५ ई० में अपने ब्राह्मण भारण्य (या भारतीचन्द्र) को अवश्य कर औरछा पर अधिकार किया था ।^३

साहजहाँ ने १६५० ई० में औरछा के राजा पहारसिंह बुन्देला की चौरा-गढ़ (गढ़ा) की जागीर दी थी ।^४

इन तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि डॉ० बोधुशी ने जिस अयोध्या के राजा 'बीरसिंह' को प्रतापछद्र का पौत्र और मधुकरदाह का पुत्र लिखा है, वह उपर्युक्त वंशवृक्ष की देखते हुए वास्तव में औरछा का बीरसिंह (देव) है और वह सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में है । 'रसिकरञ्जन' का कर्ता रामचन्द्र भट्ट, जो लहमण भट्ट का पुत्र था और सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध में था, औरछा के बुन्देल राजा बीरसिंह की समा में नहीं था । दूसरी ओर बीरसिंह (देव) और उनके पुत्र पहारसिंह के शासन काल में सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में कोई अन्य रामचन्द्र भट्ट हुआ, जो विश्वेश्वर भट्ट का पुत्र था और जिसने भागवत की 'पहारसिंही' टीका लिखी ।

यदि हरदत्त शर्मा का यह मत ठीक है कि 'राधाचरित' और 'रसिकरञ्जन' दोनों ग्रन्थों का कर्ता एक ही रामचन्द्र भट्ट है, तब कालक्रम की दृष्टि से यह कवि बीरसिंहदेव बघेल (१५००-१५३५) के समकालीन ठहरता है । हम ऊपर लिख चुके हैं कि इस कवि ने १५२३-२४ ई० (सं० १५८०) में संस्कृत 'रसिकरञ्जन' की टीका लिखी । इतिहास की दृष्टि से हम इसी काल में बीरसिंहदेव बघेल को भी पाते हैं, क्योंकि वह बाबर (१५२६-३०) का

१. गोरेलाल तिवारी—'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' : परिशिष्ट ४ : वंशवृक्ष ।

२. आईन० : पृ० ४६९ : पन्नदास ।

३. मासिर० : पृष्ठ २७५ ।

४. आईन० पृ० ४०७ : 'राजा रामचन्द्र बघेला' : तथा इ० ग० : भाग २१ : १९०८ : पृष्ठ २८०-८२ और मासिर० पृष्ठ २२७, १३४ ।

समकालीन था। इसके पूर्व बहू सिक्न्दर लोदी का भी समकालीन था।^१ एक अन्य निम्नलिखित आधार भी है, जिसके बल पर कहा जा सकता है कि 'रसिक-रञ्जन' के कर्ता 'रामचन्द्र भट्ट' का सम्बन्ध वीरसिंहदेव बघेल से हो सकता है।

अयोध्या में 'रसिकरञ्जन' की टीका लिखने वाला रामचन्द्र भट्ट लक्ष्मण भट्ट का पुत्र और प्रसिद्ध दार्शनिक स्वामी बल्लभाचार्य का अनुज था। इसका जन्म १४८४ ई० में हुआ था। इसने कृष्णकुतूहल और गोपाललोला नामक काव्य भी लिखे।^२

बल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलेश्वर का बघेलखण्ड के राजाओं से घनिष्ठ सम्पर्क था। पन्द्रहवें शताब्दी के अन्तिम भाग में अपनी दिग्विजय-यात्रा करते हुए बल्लभाचार्य चित्रकूट (जिला सतना) और अमरकण्टक (जिला सहडोल) गये थे। इसी अवधि में उन्होंने यमुना के पश्चिम-दक्षिण तट पर प्रयाग के दूपरे पार अरैल को अपना धर्म-प्रसार का केन्द्र बनाया। यहाँ वे लगभग १५१० ई० से मृत्युपर्यन्त (१५३० ई० तक) रहे। अरैल में बल्लभाचार्य के प्रथम शिष्य पद्मनाभदास तथा एक प्रमुख दिव्य भाधव आदि अन्य लोग भी रहे। बल्लभाचार्य के दोनों पुत्र गोपीनाथ और विट्ठलमाध (या विट्ठलेश्वर) भी साथ रहते थे। गोपीनाथ अन्त (१५४२ ई०) तक वहीं रहे। १५६३ ई० में विट्ठलमाध ने अरैल पर मुसलमानों का आक्रमण हो जाने से अरैल त्याग दिया और बाग्धवगढ़ ('बाग्यो') में, जहाँ का राजा (वीरसिंहदेव बघेल का पुत्र) रामचन्द्र उनका घनिष्ठ मित्र था, सपरिवार चले गये। यहाँ कुछ समय रहकर वे रानी दुर्गावती के पास गढ़ा और वहाँ से प्रयाग चले गए।^३

श्री शैलत के अनुसार विट्ठलेश्वर की यह (बाग्धवगढ़) यात्रा १५६०-६१ ई० में हुई होगी। गायक तानसेन से (जो १५६२ ई० में बाग्धवगढ़ से अकबर की सभा में जा चुका था)^४ बाग्धवगढ़ में उनकी भेंट हुई थी।

१. बी० २।६७ तथा १२।२२ : साथ ही देखिये—ई० ३।० भाग २ : बल्लभता १९३९ : अशुभकजलकृत अकबरनामा, पृष्ठ ३२-३३ : '—राजा (वीरसिंह) गुलतान सिक्न्दरलोदी के दरबार में हाजिरी देने गया।'

२. हि० मन्त्रा० सं० लिट्० पृष्ठ २९१ : साथ ही देखिये—पद्यामृत० भूमिका—पृष्ठ १३३-१८०।

३. भाई भगिलाळ पारेल : 'श्री बल्लभाचार्य' : राजकोट : १९४३ : पृष्ठ १८, ७६, ९३-९८, १०१, १०५, १४९, २६३-६४, २६८-६९।

४. अक० भाग २ : पृष्ठ २७९-८०।

डा० हरदत्त शर्मा ने यह भी लिखा है कि रामचन्द्र बघेल की स्तुति (किसी) रामचन्द्र कवि ने की है। 'रामनूपति' के सम्बन्ध में पद्य-रचना में एक श्लोक^१ प्राच्य है। शर्मा जी के मत से यह 'राम-नूपति' (बान्धवगढ़ का) राजा रामचन्द्र बघेल ही है, (ओ बोरमानु का पुत्र और उग्र उग्र बोरसिंह बघेल का पोत है)^२।

सूक्ति-सुन्दर में भी रामचन्द्र (कवि) का एक श्लोक 'राम' राजा के सम्बन्ध में उपलब्ध है।^३

ऐतिहासिक स्थितियों को देखने हुए, बल्लभाचार्य का सम्बन्ध बोरसिंहदेव बघेल से रहा होगा, यह मानना असंभव न होगा। अरैल बघेलों के अधिकार में था। सन् १४९४ ई० में बोरसिंह के पितामह भेददेव के राजद-दौद अरैल को सिकन्दरलोदी ने मारा था और १५९५ ई० में बोरसिंह ने सिकन्दर का सामना किया था।^४ हुमायूँ के समय के मुसलमान सेनाओं ने बोरसिंह के पुत्र बोरमानु को, जिसने १५३९-४० ई० में बोरसिंह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता की थी, 'अरैल का राजा' लिखा है।^५ बोरमानु का पुत्र रामचन्द्र बहुत समय तक प्रयाग का भी स्वामी था।^६

इस प्रकार रसिकरञ्जन का कर्ता रामचन्द्र भट्ट, जो अनेक काव्य-ग्रन्थों का प्रणेता था और बिट्ठलेद्वर का चाचा था, सम्भव है अरैल में भी रहता रहा हो। अपने छोड़िया-बात के समय उसने रसिक-रञ्जन की टीका (१५२१-२४ ई० में) लिखी होगी, किन्तु बघेलों के जनपद से भी उसका सम्बन्ध रहा होगा और १५६१-६२ ई० में, जब मुस्लिम आक्रमण से डर कर बिट्ठलेद्वर सपरिवार राजा रामचन्द्र बघेल के समीप बान्धवगढ़ गए, तब यह भी साथ रहा होगा। इन्हीं दिनों मुसलमानों के साथ हुए युद्धों में राजा रामचन्द्र ने जब शौर्य-प्रदर्शन किये, तब सम्भव है, इसी कवि ने उनकी स्तुति में वे श्लोक लिखे हों, जो

१. प्रकाशित : काव्यमाला : बंई : १०।९ : 'बाणो कवडाभरण.....'।

२. 'बघेल कलम'।

३. श्लोक १५२ : 'सत्यं त्वं पुरुषोत्तमोऽसि नियतं तत्रापि रामो भवान्'।

४. ई० डी० : भाग ५ : नियामतउल्लाह : तारोखी खानजहान लोदी : पृष्ठ ८९, ९३-९५।

५. गुलबदन बेगम कृत हुमायूँनामा (अनु० बेवरिज) : पृष्ठ १३५-३६ तथा अल्लिकन : बाबर एण्ड हुमायूँ भाग २ : पृष्ठ १७४-७५ टि० : 'दि राजा आफ अरिल (अरैल) परमान (बोरमान)'।

६. बघेल० ५५।

रामचन्द्र कवि की उक्तियों के रूप में मङ्कलित है। अतः प्रतीत होता है कि डॉ० हरदत्त शर्मा का यह मत कि रसिक-रञ्जन के कर्ता और लक्ष्मण भट्ट के पुत्र रामचन्द्र भट्ट ने बोरसिहदेव बघेल की प्रेरणा से 'राधाचरित काव्य' की रचना की है, ठीक है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि यही रामचन्द्र भट्ट अपने दोष जीवन में कम-से-कम बघेल नरेशों की तीन पौढ़ियों (बोरसिह, बोरमानु और रामचन्द्र) से सम्बद्ध रहा। इसका जीवन-काल १४८६ ई० से लगभग १५६४ ई० तक माना जा सकता है।

'बोरसिह' के सम्बन्ध में कुछ और श्लोक सुभाषित-सङ्ग्रहों में प्राप्त हैं, किन्तु उनमें कवि का निर्देश नहीं है। ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना कठिन है कि ये किस बोरसिह के सम्बन्ध में हैं। इनमें से एक श्लोक सूचितसुन्दर और पद्यवेणी में तथा दो श्लोक सुभाषित-रत्नमाण्डागार^१ में हैं। सूचितसुन्दर सत्रहवीं शती के प्रारम्भ का सङ्कलन बतलाया जाता है। इसमें उल्लिखित मानुकर, अक्करी कालिदास आदि कवि सोलहवीं शती के हैं।^२ ओरछा का बोरसिहदेव सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में था। इसलिए प्रतीत होता है कि सूचितसुन्दर में प्राप्त 'बोरसिह' बोरसिहदेव बघेल होगा, जो सोलहवीं शती के प्रारम्भ में था। सुभाषितरत्नमाण्डागार में प्राप्त श्लोक भी सूचितसुन्दर के श्लोक से मिलते-जुलते हैं। अतः ये तीनों श्लोक बोरसिहदेव बघेल से सम्बद्ध हो सकते हैं।

१. 'वैकुण्ठामः प्रकामं कमलमुतसिराः कुञ्जराकूटदृष्टिः
कोदण्डोदारनामऽप्यमितपरिजनो विदवविस्पातकीर्तिः ।
कुन्दमसिक्तचित्तः समरणविजयो कङ्कणाहारयुक्ता
बोर श्रीबोरसिह स्वमित्र तव रिपुः किन्तु मुषतादिवर्यः ॥'

(सू० सु० : श्लोक ४५ : पद्यवेणी : श्लोक ६२)

'मत्स्योच्छिन्ना भ वेदा मनसि सदयता दूषणानामभावा
दसो दूरे कुदृष्ट्या जहति कठिनतां दानशक्तिगौरव्या ।
आधत्ते यश्च कुन्दं शिरसि ददवतां यश्च दूरीकृतातिः
स धोमान् बोरसिह स्वमित्र तव रिपुस्तत्र दम्भं प्रतीमः ॥'

'बोरसिहारिनारोणामञ्जनावताधुकिन्दवः ।
चरोजे पतिता रेजुः सरोजे मधुरा इव ॥'

(परबः सुभाषितरत्न-भाण्डागारम् : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९११)

२. हि० वज्रा० सं० लिट्० पृष्ठ ३९० ए, ३९० बी ।

वीरभानूदय-काव्यम्

१६वें शती के मध्य भाग में माधव कवि द्वारा रचित इस द्वादश-सर्गिक महाकाव्य का सविस्तार विवरण आगे तीसरे अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

कवि भानुकर

सुभाषित-सङ्ग्रहों में भानुकर के दो स्फुट श्लोकों में 'वीरभानु' और एक श्लोक में 'वीरभान' उल्लेख है।^१

रागमञ्जरी के प्रणेता पुण्डरीक विठ्ठल ने अपने माधवशता कच्छार्जुनीय माधवसिंह का उल्लेख किया है। माधवसिंह अकबर (१५१६-१६०५) के कृपापात्र मानसिंह का भाई था। ये दोनों भगवन्तदाम के पुत्र और भानु के पौत्र थे। श्री गोडे ने इसी भानु को भानुकर के श्लोकों में उल्लिखित 'वीरभानु' माना था।^२ श्री चौधुरी ने भी इस सम्भावना का उल्लेख किया है।^३ किन्तु आगे चलकर श्री चौपुरी कहते हैं, 'यह अधिक सम्भव है कि भानुकर रीवा के बघेल वीरभानु का उल्लेख कर रहा हो। तथियों में कोई कठिनाई नहीं आती। साथ ही, वीरभानु द्वारा सोलहवीं शती के संस्कृत कवियों को उदारता-पूर्वक आश्रय देने के उल्लेख प्राप्त हैं।'^४

१. मुस्लिम पैट्रनेज० 'भाग १ : पृष्ठ ८ तथा हरदत्त शर्मा : 'दि पोयेट भानु-कर'। श्लोक निम्नलिखित हैं—

(१) 'लङ्काधामनि वीरभानु-नृपतेः प्रेक्ष्य प्रतापोदयं.....।'।
(पद्यवैणी०, ६८ : सूक्ति०, १०२ : सा० सं० : पद्य० १२।२२ : रसिक० १३, २३)।

(२) 'दिल्लीची द्वारदेवी.....।'।
वीर श्रीवीरभानो रचयसि पुलकं वीर-लक्ष्मी-कपोले ॥ (सा० सं०)

(३) भेरीमाङ्कटिमिस्तुरङ्ग-निनदेः कुम्भीन्द्र-कोलाहलैः
प्रस्थाने ठव वीरभान रलितं ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरम् ।'
(पद्यवैणी, ११४ : सूक्ति० १५० : पद्य० १८।१६ : रसिक० १९
ए।७६ :) इन पद्यों की समीक्षा के लिये देखिये अध्याय चतुर्थ : ६।

२. 'सम डेटा०' : श्लो० अ० : १९३४ : पृष्ठ १९७ और आगे।

३. 'मुस्लिम पैट्रनेज' : भाग १, पृष्ठ ८ तथा हरदत्त शर्मा : 'दि पोयेट भानु-कर' पृष्ठ २२-२३-टिप्पणी।

४. 'मुस्लिम पैट्रनेज० : भाग १ : पृष्ठ ९-१०।

डा० हरदत्तशर्मा ने हम आशयदाता बीरमानु को बघेल ही माना है और कच्छत्रयंगीय मानु को अस्वीकृत किया है। आपका तर्क इस प्रकार है :—

‘बीरमानु (बघेल) कुछ समय तक सिकन्दर लोदी के दरबार में रहे।^१ सिकन्दर लोदी की मृत्यु १५१७ ई० में हुई। बीरमानु का पुत्र रामचन्द्र १५५५ ई० में सिंहासन पर बैठा। इसलिए बीरमानु अवश्य ही सोलहवीं शती में प्रारम्भ में सिंहासन पर बैठे होंगे और सिकन्दर लोदी के राज्यकाल के अन्तिम भाग में उसके दरबार में रहे होंगे।’^२

बघेली भाषा के लेखों में बीरमानु का जन्म १५४३ वि० (१४८६ ई०) बताया गया है।^३ अयुलकजल के अनुसार (१५०० ई० के निकट) गुजरात के बहादुरशाह का समकालीन बीरगढ़ का गोंद राजकुमार अमानदास बघेल राजा नरसिंहदेव (बीरसिंह देव) की धारण में आया था। जब राजा (बीरसिंह देव) सिकन्दर लोदी के दरबार में हाजिरी देने गया तब वह अमानदास को अपने पुत्र ‘परब्रह्मान’ (बीरमानु) के पास छोड़ता गया।^४ अन्य स्रोतों से यह भी ज्ञात है कि राजा बीरसिंहदेव १५२७ ई० में बाघर से लड़ा था और उसने बाद में उससे मुलह भी की थी।^५ रोवा के इतिहासों में बीरमानु का राज्य १५४० ई० में १५५५ ई० तक बताया गया है।^६ किन्तु सन् १५३९ ई० में ही वह अवश्य राजा था। इस समय उसने बीरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता की थी।^७

१. इ० प० : भाग २१ : पृष्ठ २७९ और आगे।

२. ‘दि पोपेट मानुहर’ पृष्ठ २५२-२३।

३. पृष्ठ १ (क)—एकत्रा—‘राजा बीरमानदेव का जन्म सं० १५४३ के साल।’

४. ई० डा० : कलकत्ता : १९५२ : अयुलकजलकृत अकबरनामा : पृष्ठ ३०-३३।

५. निजामी—‘दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा’ : वि० यू० ज० भाग २।२ : मई, १९५८ : पृष्ठ २-३।

६. डा० रि० इ० : भाग २१ : पृष्ठ १०७।

७. श्रीकास्तव—आशीर्वादीलाज : मुगलकालीन भारत : पृष्ठ ११६, ‘रोवा का राजा बीरमान बघेला, जिसे (बीरशाह द्वारा) दरबार में बुलाया गया था, कालिजर के राजा बीरसिंह के यहाँ धारण पाने चला गया। बीरशाह ने चाहा था कि बीरमान को उसे सौंप दिया जाय।’

तथा पृष्ठ १४२ ‘जब बीरशाह कालिजर के घेरे में व्यस्त था, जलाला

बीरमानु के अतिरिक्त कृष्ण नृपति की स्तुति में मानुकर के दो श्लोक निजामशाह की प्रशंसा में नौ श्लोक और बीरशाह के सम्मान में एक श्लोक प्राप्त है ।^१

हरदत्तशर्मा ने पहले इस निजामशाह को दक्षिण के निजामशाही राजवंश का प्रथम बुरहानशाह निजाम (१५१०-१५५३ ई०) माना था ।^२ बाद में उन्होंने लिखा कि बीरमानु और सिकन्दर लोदी में निकट का सम्बन्ध था । सिकन्दर का पूर्व नाम निजाम लोदी था । इसलिए यह तर्क अधिक प्रबल है कि मानुकर ने निजाम लोदी (सिकन्दर लोदी) को ही निजामशाह कहा है तथा उसका बीरमानु कपेल नरेश है, कच्छपवंशीय मानु नहीं । अतः मानुकर की सोलहवीं शती के आरम्भ में रखा जाना चाहिए । शर्मा जी तथा अन्य विद्वानों ने भी 'कृष्ण नृपति' को बिजयनगर का राजा कृष्णदेवराय (१५०९-३० ई०) माना है ।^३ श्री गोडे और श्री चौपुरी निजामशाह को दक्षिण का बुरहानशाह प्रथम ही मानते हैं । श्री गोडे ने अग्रिम लिखा है कि यह निजामशाह (बुरहान) 'परशुराम प्रताप' और 'मार्गवाचन-दीपिका' के प्रणेता साबाजी प्रतापराज का अभ्युदयात्ता था ।^४

हम देख चुके हैं कि सिकन्दर लोदी के राज्य-काल के अन्तिम भाग में भी बीरमानु बघेल युवराज ही था । यदि इन दिनों मानुकर बघेलों की राजसभा में होता तो वह बीरसिंहदेव की स्तुति लिखता, जो कि सिकन्दर की मृत्यु के कम-से कम १० वर्ष बाद तक जीवित था और पराक्रमी शासक था । दूसरे, सिकन्दर

(बीरशाह का पुत्र) को रोका विजय करने के लिये भेजा गया था ।' साथ ही देखिये—गुलबदन बेगम—हुमायूँनामा (बेबरिज) : पृष्ठ १३५-३६ : 'अरैल और कड़ा का राजा बीरबहान (बीरमानु) सफर, ९४६ हि० (जून १५३९) : अल्किन् : बाबर एण्ड हुमायूँ भाग २ : पृष्ठ १७४ : 'राजा परमान एक राजपूत शासक : १५३९ ई० ।'

१. मुस्लिम पैट्रिज : भाग १ : पृष्ठ ६ तथा आगे । शर्मा हरदत्त : दि पोपेट मानुकर : पृष्ठ २४८-२५५ ।
२. शर्मा-हरदत्त : 'सुन्नितसुन्दर आफ सुन्दरदेव' : ओ० ज० : फरवरी १९३६ : पृष्ठ-१३३-१४४ ।
३. बही, टिप्पणी क्र० १ ।
४. गोडे : 'साबाजी प्रतापराज'-एनएस० भाग २४। तृतीय-वर्तुथ : १९४४ पृष्ठ १५६-१६४ ।

लोदी से सम्बद्ध अन्य संस्कृत कवि की जानकारी उपलब्ध नहीं है। तीसरे, सिकन्दर लोदी १४८९ ई० के पूर्व ही निजाम खाँ (वह भी 'निजाम-शाह' नहीं) कहा जाता था; सुल्तान होने के बाद वह अपने को सिकन्दरशाह कहने या कहे जाने में गौरव मानता था। यदि भानुकर ने उसके लिए श्लोक लिखे होते तो निजाम-शाह या निजाम-खरणोपाल^१, शब्दों के प्रयोग न किये होते। चौथे, श्री गोडे की उपर्युक्त सूचना के अनुसार बुरहानशाह निजाम अन्य संस्कृत-कवियों का भी आध्यक्षता था। अतः भानुकर का 'निजामशाह' अहमदनगर का बुरहानशाह प्रथम ही प्रतीत होता है। विजयनगर के कृष्णदेवराय की सभा में रहनेवाले भानुकर का अहमदनगर के निजाम की सभा में पहुँचना युक्तिसङ्गत है।

हरदत्त शर्मा ने आगे निष्कर्ष निकाला है कि 'भानुकर ने अपने जीवन का अधिक भाग सिकन्दर लोदी के दरबार में बिताया; वहाँ वह वीरभानु से मिला होगा (जो सिकन्दर की सभा में रहता था) तथा सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् वह वीरभानु की सभा में गया होगा ।'^२ किन्तु वीरभानु का कवि ने 'पराक्रमी थोड़ा' और 'नृपति' रूप में वर्णन किया है, जो १५१७ ई० में पुबराज वीरभानु के लिए सम्भव नहीं। शर्मा जी आगे लिखते हैं कि 'कुछ काल तक वीरभानु की सभा में रह कर भानुकर दक्षिण में कृष्ण (देव) राय की मृत्यु के पश्चात् पुनः उत्तर लौट कर शेरशाह की सभा में आया होगा ।'^३ वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि भानुकर पहले दक्षिण में ही था। कृष्णदेवराय से सम्बद्ध होने से हम कह सकते हैं कि भानुकर का कवि-जीवन १५२९-३० ई० से पूर्व ही और दक्षिण में ही प्रारम्भ हुआ। कई वर्षों तक निजाम बुरहानशाह की सभा में भी वह रहा और सम्भवतः १५३० ई० में कृष्णदेवराय की मृत्यु के पश्चात् वह प्रयाग की ओर आया तथा वीरभानु की सभा में १५४० ई० के आस-पास पहुँचा और क्रमशः नबोदित सुरवंशीय सुलतान शेरशाह के दरबार में भी पहुँचा। इस प्रकार हम भानुकर का कविजीवन १५२० ई० से १५५० ई० तक मान सकते हैं।

१. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७३ टि० १ : 'तत्किं राजपये निजाम-खरणोपालोऽप्यमालोकिताः।' टोकाकार अनन्तमट्ट (१७ वीं शती) ने इस पंक्ति का अर्थ लिखा है—'निजामाख्यो देवगिरिराजः' । यह अनन्तमट्ट की मूल प्रतीति होती है।

२. 'दि पोयेट भानुकर' • : पृष्ठ २५४।

३. वही।

कवि को प्रयाग का विशेष लाक्षण हुआ, इसका प्रमाण हम 'रत्न-तरङ्गिणी'^१ (पृष्ठ ३५) के निम्नलिखित श्लोक में पा सकते हैं—

‘सोषो-पर्यटनं ध्याय विहितं वादाय विद्यार्जिता
मानध्वंसन हेतवे परिचितास्ते ते धराधोरवराः ।
विश्लेषाय सरोज-मुन्दर-दृष्टामास्ये कृता दृष्टयः
शृङ्गानेन मया प्रयाग-नगरे नाऽऽराधि नारायणः ॥’

हम पीछे कह चुके हैं कि वीरमानु मुसलमानों द्वारा १५३९ ई० के निकट अरैल (प्रयाग के सामने, यमुना के पश्चिम तट पर) धीर कड़ा (जि० इलाहाबाद) का राजा लिखा गया है । स्पानीय काव्यों के माध्यम से अनुमान होता है कि वह प्रयाग का भी स्वामी था, क्योंकि प्रयाग वीरमानु के पुत्र रामचन्द्र के अधीन लिखा गया है ।^२ अतः यह सम्भव है कि प्रौढ़ारस्या में प्रयाग-वास के समय ही भानुकर का सम्बन्ध वीरमानु बघेल में आया हो । हरदत्त शर्मा ^३ यह कहना ठीक ही है कि कवि छीन श्लोकों में वीरमानु या वीरमान की ही स्तुति कर रहा है, भानु की नहीं ।^४

स्पानीय इतिहास-ग्रन्थों की सूचनाओं में अधिक स्थलों पर (संस्कृत काव्यों को छोड़कर) इस राजा का नाम वीरमान ही मिलता है ।^५

शर्मा जी ने चन्द्रालोक की प्रद्योतन भट्टाचार्य कृत शारदायम टीका का उल्लेख कर निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

अस्य स्थितितो नगरी मवतोऽप्योध्या मवत्यखिला ।

इति श्रुतंशादधिको जयति बघेलार्जमधो वंशः ॥ ३ ॥

देवपतेरिव श्रुतितर्यस्य जये भूभूतां प्रविता ।

श्री वीरमद्रदेवस्तत्र धराऽऽखण्डलो जातः ॥ ४ ॥

दशरथतो रघुपतिरिव तस्मादिह वीरमानु-भूपालः ।

साबद्र-धर्मसेतुर्जगति समुद्रे समुद्भूतः ॥ ५ ॥^६

१. भानुवत्त कृत । हम जावे के पृष्ठों में भानुकर और भानुवत्त के तादात्म्य पर चर्चा करेंगे ।

२. वीर० १०।७ तथा बघेल० ५५ : ‘तस्य श्रीरामनृपतेर्विषये तीर्थ-सेवितः । प्रयागोऽस्त.... ।’

३. ‘दि पोयेट भानुकर०’ पृष्ठ २५३ टिप्पणी ।

४. आ० रि० ६० : भाग २१ पृष्ठ ३०७ : ‘वीरमानदेव’..... ।
तथा परि० १ (क)—‘राजा वीरमानदेव.....’ ।

५. प्रकाशित वाली, १९२९ : खिस्ते की भूमिका ।

सर्मा जी इन बल्लोकोँ पर टिप्पणों में लिखते हैं कि 'यहाँ बीरमानु को बीर-
मद्र का पुत्र मतलब किया गया है । बीरमद्र रामचन्द्र का पुत्र है तथा बीरमानु का
पौत्र और बीरमद्र का पुत्र बंशावलिमें के अनुसार विक्रमादित्य है । अतः मुझे
लगता है कि यहाँ विक्रमादित्य के स्थान पर बीरमानु भूल से समाविष्ट हुआ है ।'^१

वास्तव में भूल ऊपर है जो लिपिकार की है । 'बीरतिह्रदेव' के स्थान
पर 'बीरमद्रदेव' लिख दिया गया है । 'बीरमानु' का प्रयोग ठीक है और अपने
स्थान पर है ।

मानुकर या भानुदत्त के साथ तादात्म्य करते हुए श्री चौधुरी ने लिखा है
कि भानुकर के नाम से उल्लिखित बहुत अधिक बल्लोक्त भानुदत्त-कृत 'रसमञ्जरी'
'गीत गोरीश', (या गीत-गोरीपति) और 'रस-तरङ्गिणी' (जो सभी प्रकाशित
है) में उपलब्ध होते हैं ।^२ सूक्ति-मञ्जरी में वही बल्लोक्त कहीं भानुकर और कहीं
भानुदत्त के नाम से उल्लिखित हैं । भानुकर का एक बल्लोक्त बेनोदत्त की पद्यवेणी
पुस्तक में 'गणपतिपुत्र-भानुकरस्य',^३ इस प्रकार उल्लिखित है और रसमञ्जरी
का अंतिम पद्य तथा गिरिजा की पञ्चम्याँ बतलाती है कि भानुदत्त गणपति
का पुत्र था^४ ।

१. 'दि पोयेट भानुकर०' : पृष्ठ ५५ २-टिप्पणी ।

२. श्री चौधुरी ने इस प्रसङ्ग में भानुदत्त कृत रसमञ्जरी, गीत-गोरीश (या
गीत-गोरीपति) और रस-तरङ्गिणी से ३३ और डा० सर्मा ने २७ पद्य
उद्धृत किये हैं, जो सम्पादकद्वारा, सुभाषितसारसमुच्चय, सुभाषित-
हारावली, पद्यवेणी, पद्यरचना, रसिकशोभन और सूक्तिमुग्धर में
भानुकर के नाम से उल्लिखित हैं । इनमें से डा० सर्मा ने रसतरङ्गिणी
का एक पद्य (पृष्ठ ७२) 'बीणामञ्जे कथमपि सली' उद्धृत किया
है, जिसमें 'तातवरणानाम्' उल्लेख है अर्थात् यह भानुदत्त के पिता
गणपति द्वारा रचित है; यह सुभाषितहारावली (३४-७०) में
भानुकर के नाम से उल्लिखित है, जो भानुकर को गणपति का पुत्र
सिद्ध करता है । देखिये मुस्लिम पैट्रनेज० पृष्ठ ३ तथा दि पोयेट
भानुकर० पृष्ठ २४७-४८ ।

३. 'मनोपन-निघे.....' (बल्लोक्त ७८९) ।

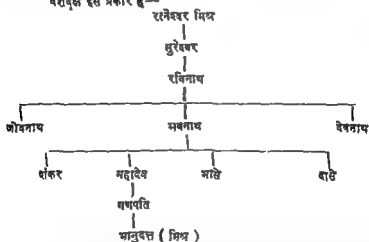
४. 'तातो यस्य गणेश्वरः कवि-कुलालङ्कार-चूडामणि-
दंशो यस्य त्रिदेहभूः सुरसरित्-कल्लोल-किर्मांरिता ।
पद्येन ह्य-कृतेन तेन कविना श्री भानुना योजिता
वाग्देवी-श्रुति-गारिजात-कुसुम-स्पर्धाकरी मञ्जरी ॥'
यह बल्लोक्त भानु और भानुदत्त में भी तादात्म्य प्रस्तुत करता है ।

कुमारभागवीय चम्पू में प्राप्त वंशवर्णन भी इन पक्षियों से मेल ला जाता है।^१

डा० एस० के० दे० ने भी लिखा है कि 'मानुदत्त को रसमञ्जरी पर प्राप्त, शेषचिन्तामणिकृत 'परिमल', गोपालकृत 'विकास' और रङ्गनाथिन्-कृत 'बामोद' नामक टीकाओं में कवि का नाम 'मानुकर' मिलता है; कहीं-कहीं साथ में मिश्र भी जुड़ा रहता है।^२ अतः इन तथ्यों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि 'मानु', 'मानुकर', 'मानुदत्त', 'मानु मिश्र', 'मानुकर मिश्र' और 'मानुदत्त, मिश्र', एक ही व्यक्ति के नाम के भिन्न रूप हैं।

डा० दे० के अनुसार मानुदत्त का काल १२ वीं और १४ वीं शती के बीच है।^३ श्री कावे ने मानुदत्त के पिता 'गणेश्वर' को मीथिल गणेश्वरमणिन्

१. श्री चौधरी ('मुस्लिम पैट्रनेज' पृष्ठ ५) के अनुसार मानुदत्त का वंशवृक्ष इस प्रकार है—



यह पञ्जी मानुदत्त और मानुदत्त मिश्र में तादात्म्य स्थापित करती है। 'कुमारभागवीय चम्पू' में मानुदत्त ने अपनी वंशावली दी है, जिसमें सुरेश्वर और रविनाथ के बीच में विश्वनाथ है।

२. 'दि पोयेट मानुकर०' पृष्ठ २४४ में उद्धृत—'संस्कृत पोयटिक्स' भाग १।२४५ : भूमिका : शेषचिन्तामणि कृत परिमल (जैनभाण्डार, उज्जमबाई की चर्मशाला, अहमदाबाद) टीका सं० १९८४ की भूमिका में यह उल्लेख है—

'इह खलु.....श्री मानुकरनामा कविः।'

१. वही, पृष्ठ २४६।

समझा । यह चोरेह्वर का भाई था, जिसका पुत्र चण्डेश्वर 'विवादरत्नाकर' का प्रणेता था तथा जिसने १३१५ ई० में तुला भर स्वर्णदान किया था । इस प्रकार भानुदत्त की तिथि श्री काण्हे के अनुसार तेरहवीं शती के अन्तिम भाग में और चौदहवीं शती के प्रारम्भ में ठहरती है ।^१

डा० शर्मा का अनुमान है कि 'डा० बनेल ने भानुदत्त को मँयिल माना,^२ इसीलिए यह भूल हुई प्रतीत होती है । भानुदत्त का ग्रन्थ 'गीत-गीरीपति' जय-देव के 'गीतगोविन्द' की अनुकृति होने से इस भूल की बल मिला । इसका बोधन अन्य तथ्य से इस प्रकार हुआ कि गोपाल (या बोपदेव) कृत रसमञ्जरी-विकास (टीका) की एक प्रति स्पष्टतः संवत् १४८४ की लिखी हुई है । (श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार यह शक सं ११९४ है ।^३) स्वर्गीय श्रीधर भाण्डारकर ने लिखा था कि 'यह शक संवत् १४६४ है ।'^४ इस प्रकार यह तिथि १५७२ ई० होती है ।^५

भानुदत्त के पितामह के बड़े भाई शंकर मिश्र ने उपस्कर और लण्डनखाद्य पर टीका लिखी है । कृष्णमाचारियर ने इनका समय शक संवत् १३२७ (१४०५ ई०) के आस-पास लिखा है ।^६ उक्त मठों की देखते हुए तथा भानुकर या भानुदत्त के द्वारा लिखित चौरशाह, निजाम, बीरभानु और कृष्णनृपति की स्तुतियों पर विचार करते हुए हमें यह मठ कि भानुकर का कवि-काल १५२० ई० से १५५० ई० तक है, स्वीकार है । डा० शर्मा ने लिखा है कि '१५५३ ई० से पूर्व भानुदत्त की कृतियों की कोई टीका नहीं मिलती'^७ ।

रसमञ्जरी के अन्तिम पद्य की दूसरी पंक्ति 'देशो यस्य-विदेह-भूः सुरसरित्-' पर पाठभेद मिलता है । कृष्णमाचारियर के अनुसार आफ्रे० की प्रति में 'विदर्भ-भूः' शब्द है तथा कृष्णमाचारियर ने भी एक प्रति में यही पाठ पाया, किन्तु दो अन्य प्रतियों में 'विदेह-भूः' मिला, जैसा डा० बनेल ने लिखा है । श्री कृष्णमाचारियर का मठ है कि 'विदर्भ-भूः' पाठ अशुद्ध है, क्योंकि कवि की जन्मभूमि

१. साहित्यदर्पण : भूमिका : पृष्ठ ११८ ।

२. कटे० संज्ञोर० ।

३. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७५ टि० ५ : आफ्रे० भाग २।११६ : पोर्टर्सन० भाग २।३६।

४. भाण्डारकर : रिपोर्ट आफ दि सेकण्ड टूर : १६०४-६ : पृष्ठ ३६ ।

५. 'दि पोयेट भानुकर०' पृष्ठ २४४-४५ ।

६. हि० बला० सं० लिट्० पृष्ठ ७७१ ।

७. 'दि पोयेट भानुकर०' : पृष्ठ २४६ ।

‘सुरसरित्’ (गङ्गा) के तरङ्गों के तट भाग पर है, जब कि ‘विदमं-मूः’ नर्मदा का तट-प्रदेश कहलायेगा ।^१ भण्डारकर का यही मत है ।^२

डा० शर्मा ने लिखा है कि ‘शेष बिन्तामणि की परिमल टीका में कवि को ‘ग्रन्थपुर-निवासिन्’ लिखा गया है, जो ‘गिरिपुर (काशी)-निवासिन्’ का पर्याय प्रतीत होता है । ‘गीत-गौरीपति’ में शिव की स्तुति भी इस मत को बल प्रदान करती है । हम यह भी देखते हैं कि कवि प्रयाग की ओर आकर्षित हैं^३ तथा एक के अतिरिक्त शेष सभी टीकाकारों के नाम दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं; १९ टीकाकारों में से एक का भी नाम ‘मैघिल’ नहीं है । प्रयाग और काशी में महाराष्ट्र ब्राह्मणों के अनेक परिवार रहते आए हैं । अतः सम्भवतः कवि मैघिल नहीं, दाक्षिणात्य है, किन्तु इस समस्या का समाधान शेष है ।^४

हम पीछे के पृष्ठों में देख चुके हैं कि डा० चौधरी द्वारा प्रस्तुत मैघिल पञ्जी में और ‘कुमारमार्गबोध’ चम्पू में कवि द्वारा उल्लिखित धंशावली में लगभग पूर्ण समानता है । यह उच्च कवि को मैघिल सिद्ध कर देता है और ‘विदेह-मूः’ पाठ की शुद्धता की पुष्टि करता है ।

मानुकर की कवित्व-शक्ति इसी एक बात से प्रमाणित है कि कम से कम ८ सुमापित-संग्रहों में उसके बलोक उद्धृत हैं तथा उसके ग्रन्थों के कम से कम १६ टीकाकार हैं ।

मानुकर के निम्नलिखित ग्रन्थों की जानकारी उपलब्ध है—

(१) रसमञ्जरी (सटिप्पणी)^५

(२) रस-तरङ्गिणी ।^६

(३) गीत-गौरीश (या गीत-गौरीपति-सटिप्पण) ।^७

१. हि० कला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७४-७७५ ।

२. भार० जी० : ‘कलेक्टेट वर्क्स’ एन० बी० उत्तरीकर द्वारा संपादित ।
भाग २ : पृष्ठ १२ ।

३. ‘दि पोयेट मानुकर—’ पृष्ठ २४६—रसतरङ्गिणी का उल्लेख—
‘कुञ्जानेनमया प्रयागनगरे नाराधि नारायणः ।’

४. ‘दि पोयेट मानुकर’, पृष्ठ २४६-४७ ।

५. प्रकाशित-भद्राक्ष : बम्बई : बनारस (१९०४) : कलकता : तथा
दत्तिया० संस्कृत पाण्डु० क्रमांक १४३, १४४, ४०३, १३७,
५४२-५३ ।

६. प्रकाशित ग्रन्थमाला । तथा पेरिस, १८८४ । दत्तिया० क्र० ५३८,
७५५, १२४० ।

७. आर्फी० : भाग १ : ४०५, ७९३, तथा कैंटे० लंदन : १४४३-४५ ।

- (४) मृङ्गारदीपिका^१
 (५) अलङ्कार-तिलक^२
 (६) कुमारभार्गवोपचम्पू^३

श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार रसमञ्जरी के टीकाकार महादेव, रङ्गशायिन् (या गुरिजालशायिन्), जनन्तपण्डित, नागेश भट्ट (मट्टोषि दीक्षित का पौत्र), बोपदेव (या गोपाल), शेषबिन्तामणि, गोपाल भट्ट, जनन्तशर्मन्, वजराज, विश्वेश्वर तथा एक वक्ता है । इसी प्रकार रस-तरङ्गिणी के टीकाकार गङ्गाराम जदि, जौबराज, महादेव, गणेश, अयोध्याप्रसाद, भगवद्भट्ट, दिवाकर, नेमिसाह और वेणोदत्त हैं ।^४

रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः

‘अकबर-कालिदास’ उपाधिधारी गोविन्दभट्ट कवि की यह रचना बीरमानु के पुत्र रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति है । इस ग्रन्थ का तथा ग्रन्थकार का परिचय सतुर्प बघ्याय (१) में प्रस्तुत किया जायगा ।

बीरभद्रदेव के ग्रन्थ : कन्दर्पचूड़ामणि—

सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हमें उपर्युक्त राजा रामचन्द्र बघेल के पुत्र युवराज बीरभद्रदेव की संस्कृत रचनाएँ प्राप्त होती हैं । संवत् १६३३ वि० (१५७७ ई०) में इन्होंने कन्दर्पचूड़ामणि नामक ग्रन्थ की रचना की ।^५ यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ३६३ आर्या छन्दों में ७ अधिकरणों और ६३ अध्यायों में लिखा गया है ।^६ यह सन् १९०८ में तत्कालीन रीवा नरेश श्री बेंकटरमण सिंह की आज्ञानुसार रघुराजनगर (सतना, म० प्र०) से प्रथम बार प्रकाशित किया गया ।

१. भास्के० भाग १ : ६६१ ।

२. वही, भाग १।३२ : भाग २।६६ : भाग ३।७ : तथा कैटे० तंजौर० भाग ९।४१०७ : कैटे० : मैसूर० २६५ : पीटर्सन० : भाग ६ । ए० २६ ।

३. कैटे० संदन० १५४० : कैटे० बंगाल० ४७, जिसके साथ गोपाद भानन्द, भरत मल्लिक और नवनीतराम की टीकाएँ हैं ।

४. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७१-७६ ।

५. कन्दर्प० १ : ७-२-४९ :

‘हरलोचन-हरलोचन-रस-शशिमिविध्रुते समये ।

फाल्गुन-शुक्ल प्रतिपदि पूर्वा ग्रन्थः स्मर-स्मरः ॥’

६. वही : ७-२-४६ :

‘सुप्ताधिकरणमेतत् यद्विज्ञात्-परिमितस्फुटाध्यायम् ।

वात्स्यायनकृतशास्त्रं व्याख्यातं बीरभदेन ॥’

रोषा-राज्य स्वर्ण के लेखक और बेंकट हाईस्कूल सतना के तरफालीन प्रधानाध्यापक श्री जीतनसिंह ने ग्रन्थ का सम्पादन किया था। ग्रन्थ के साप-साय पं० सूर्यप्रसाद द्वारा लिखित बेंकटरक्षस्य नामक हिन्दी टीका भी प्रकाशित है। इन ग्रन्थ का अग्र्य संस्करण भी प्रकाश में आ चुका है।^१ संस्कृत साहित्य के इतिहासों में ग्रन्थ के उल्लेख प्राप्त हैं।^२

यह ग्रन्थ कामपात्र पर आधारित है। इसीको को देखते हुए कवि की रचना-शक्ति प्रोढ़ प्रतीत होती है। प्रथम अध्याय में कवि ने अपनी वंश-परम्परा बतलायी है।^३

१. संस्कृत पुस्तकालय लाहौर : १९२६ : रामचन्द्र शास्त्री की सुखदमा व्याख्या सहित।

इस प्रकाशन का आधार बनने वाली चार प्रतियाँ हैं—

क. बाबू गोविन्ददास, काशी से प्राप्त पाण्डुलिपि (आदर्श पुस्तक)।

ख. सतना से १९०८ में प्रकाशित उक्त प्रति।

ग. भास्करकर ओ० रि० ई० पूना की प्रति।

घ. रामकीय पुस्तकालय बीकानेर की प्रति।

२. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ८९० टि० ६। कूटे० काश्मीर, क्र० ६४ : पीटर्सन० २।६६ क्र० १०१। ए-१८८३-८४ : साप ही देखिये माइण्टिकिबेशन० : ओ० ज० : भाग २।२५४।

३. वंशः कंसद्विष इव जयति वपेलस्य भूभुजां मान्यः।

अजयन्तोऽस्ति जगरयां यस्माद्यो न भूराजः ॥ ४ ॥

प्रादुर्बभूव वंशे तत्र श्री शालिवाहनो नृपतिः।

इन्दुर्मरुद-विर्गुर्यस्य यशःपुण्डरीकस्य ॥ ५ ॥

प्रादुर्बभूव तस्माद् वीरः श्रीश्रीरसिहास्यः।

यस्य यशोऽम्बुज-कीरी स्फारा मकरन्द-विन्दवस्ताराः ॥ ७ ॥

वीरस्तदङ्ग जन्मा प्रतिमट-पृथना-तमस्त्विनो-भानुः।

श्री वीरभानुनामाऽपिपतिरमृद् भूभुजां जयति ॥ ९ ॥

कामादप्यमिरासी मीमादपि वाडुशालिनां मान्यः।

कर्णादपि च वदाम्यो जयति सुतो रामचन्द्रोऽस्य ॥ ११ ॥

राजोन्नित-गुणसीमा भोमावरजादिहाषिको भनृपि।

तनयो विनय-समुद्रो जयति तदा वीरमन्द्रोऽस्य ॥ १३ ॥

दशकुमारपूर्वकथासारः

यह धोरमद्रदेव का दूसरा काव्य-ग्रन्थ गद्य में है।^१ इसका केवल प्रथम परिच्छेद प्राप्त है,^२ जिस पर आगे अध्याय (४-२) में प्रकाश डाला जायगा। काव्य-सूत्र-टीका

श्री कृष्णमाचारिपर के अनुसार^३ धोरमद्रदेव ने ११७७ ई० में काव्य-सूत्रों पर टीका लिखी है।

वीरभद्रदेवचम्पू

इस ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार से सम्बद्ध सविस्तार विवरण आगे पञ्चम अध्याय (क) में प्रस्तुत किया जायगा।

व्याख्या-सुधा

किसी 'महीधर-विषयाधिप' कीर्तिसिंह बघेल की आज्ञा से सिद्धान्तकौमुदी के कर्ता मट्टोजि दीक्षित के पुत्र भानुजि दीक्षित ने अमरकोष की व्याख्या-सुधा टीका लिखी।^४ इन्होंने भानुजि दीक्षित का समकालीन भीलकण्ठ शुक्ल था, जो मट्टोजि दीक्षित का शिष्य था। इसकी एक रचना १६१५ ई० की बतलाई जाती है। बतलाया जाता है कि भानुजि दीक्षित के पुत्र हरि दीक्षित का पण्डितराज जगन्नाथ, जो शाहजहाँ (१६२७-५८ ई०) के समकालीन थे, विवाद हुआ था। गुरु-शिष्य परम्परा से भानुजि दीक्षित के शिष्य का नाम वत्सराज था,

१. ए० डेस० कै० भाग ७ : क्र० ५३८४।

२. रा० ए० सी० : पाण्डु० क्र० : जो। ६१९८।

३. हि० बला० सं० लिट्० पृष्ठ ७७७-टि० २।

४. अमरकोष : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९४४ :

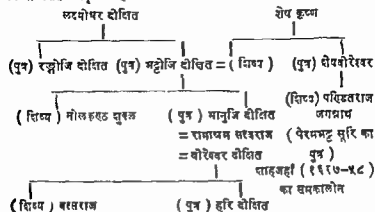
प्रारम्भ—'वत्सलो-वत्सर्भं मत्वा गुर्व मट्टोजिदीक्षितम्।

अमरे विदधे व्याख्यां मुनित्रय-मदानुगाम्॥'

पुष्पिका—पृष्ठ १०९—'इति श्री बघेलवंशोद्भव—श्रीमहोदर-विषया-धिप—श्रीकीर्तिसिंह-देवाज्ञया—श्रीमट्टोजिदीक्षितात्मज—श्री भानुजी-दीक्षित-विरचितायाममरटीकायां व्याख्यामुधायां प्रथमकाण्डः—'।

पृष्ठ ३५२—'.....द्वितीयकाण्डः.....' पृष्ठ ४६३—'व्याख्यासुधास्यायां तृतीयकाण्डः.....'। साथ ही देखिये पी० के० गोडे का लेख—'ए कंटेम्परेरी मैन्युस्क्रिप्ट आप भानुजि दीक्षितत्र व्याख्या-सुधा': ज० बा० बिस्व ११ भाग २ : सितम्बर, १९४२।

जिसने काशीदण्ड-काशिका लिखी । इनके पारस्परिक सम्बन्धों का स्मरण निम्नलिखित वंशवृक्ष से हो जायगा ।^१

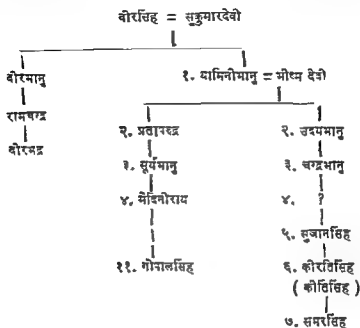


बघेलों के वंशवृक्ष में हमें कीर्ति सिंह और फतेह सिंह दोनों नाम लगभग एक ही कालावधि में प्राप्त हैं ।^२ श्री फोर्डे का अनुमान है कि 'फतेहसिंह (फतेसिंग) जो भानुजि दीक्षित के आग्रहदाता थे, इस नाम का संस्कृत रूप कीर्तिसिंह होगा' ।^३ यहाँ यह स्मरणोद्य है कि उपर्युक्त पुष्पिका में कीर्तिसिंह को 'महीधर-विपदाधिप' लिखा गया है ।

जमाबन्दियों में बीरभानु बघेल के छोटे भाई यामिनीभानु (जन्म लगभग १४९० ई०) द्वारा मैहर (जिला सतना, म० प्र०) की जागीर पाने की सूचना है ।^४

१. पछामुड० भूमिका पृष्ठ १२९-३० में डा० जतीन्द्र बिमल चौधुरी का मत ।
२. देखिये सं० बा० दे० : पृष्ठ १०४ ।
३. 'ए कंटेम्पोररी मैग्युस्क्रिप्ट आफ भानुजि दीक्षितज व्याख्यासुभा' : अ० बा० : जिल्द ११ भाग २ : सितम्बर १९४२ ।
४. परिशिष्ट १ (ग) : 'राजा बीरमानदेव का जन्म सं० १५४३ ॥ साल : भाई बाबू जमुनीमान मैहर दोन । राजा रामदेव (रामचन्द्र) ते ममल । जमुनीमान के वंशावली ७ पुरिखा । बाबू जमुनीमान १ केन्द्र—२—३—सिंह ४ सुजानसिंह ५ कीर्तिसिंह ६. समरसिंह ७. ते जाता छूटि ।'
 श्री निजामो के अनुशार सन् १५०२ में जमुनीमान को मैहर दिया गया (नोट आन मैहर : भारतीय विद्या : बम्बई : जिल्द ६ : क्र० २ :

वीरमद्रचम्पू में यामिनीमानु के पुत्र-भौत्रों की जानकारी मिलती है।^१ इस आधार पर निम्नलिखित वंश-सूची प्राप्त होती है, जिसका सम्बन्ध मैहर की बघेल शाखा से है—



इस प्रकार यही सम्भव प्रतीत होता है कि अमरकोष की व्याख्यानुषाढीका का प्रणेता मानुज दीक्षित पाण्डुराज जगन्नाथ से अपेक्ष होगा, वह मैहर (संस्कृत रूप 'महीभर') के बघेलवंशीय कीर्तिसिंह की ही समा में होगा। व्याख्यानुषा (द्वितीय काण्ड) की पुना में प्राप्त एक पाण्डुलिपि का लिपिकाल

फरवरी १९४५;) किन्तु वीरमानु की जन्मतिथि (सं० १५४३ सन् १४८६ ई०) की देखते हुए उनके अनुज जमुनीमान इस समय अल्पवयस्क रहे होंगे। श्री रामप्यारे अग्निहोत्री ने यह तिथि सं० १५८५ (१५२८ ई०) लिखी है, जो ठीक प्रतीत होती है (वि० प्र० ६० : पृष्ठ ३२५)।

१. पद्मनाभ मिश्र कृत: प्रकाशित : प्राच्यवाणी-कलकत्ता : १९३२ : पष्ठ सच्छ्वास : 'वीरमानुदेवस्य सीदरो यामिनीमानुदेवः । सूर्यमानुचन्द्रमानु वीरौ—' साथ ही देखिये : वीर० १।९३।

संवत् १७०५ (१६४९ ई०) है ।^१ अतः व्याख्यासुधा का रचना-काल १६४० ई० के निकट माना जा सकता है ।

ऊपर उल्लिखित भानुजि दीक्षित के वंशवृक्ष में उनका दूसरा नाम रामाश्रम बतलाया गया है । संजोर की पाण्डुलिपि (प्रथम काण्ड) में धन्वकार ने अपने को भट्टोजि दीक्षित का शिष्य, गुर्जर-जातीय और रामाश्रम बतलाया है ।^२ उक्त वंशवृक्ष में उल्लिखित वत्सराज ने (जो भानुजि का शिष्य था) अपने गुरु का नाम रामाश्रम दिया है ।^३ निर्णयसागर द्वारा (व्याख्या-सुधा टीका के साथ) प्रकाशित अमरकोष में भानुजि दीक्षित में भट्टोजि दीक्षित को अपना गुरु बतलाया है ।^४ सिद्धान्त-चन्द्रिका में रामाश्रम की भानुजि दीक्षित लिखा गया है ।^५ इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि भानुजि दीक्षित ने ही (सम्भवतः पीछे संन्यासी होकर) रामाश्रम नाम भी धारण किया था ।

यघेलवंश-वर्णनम्

१६७८ ई० में प्रणीत और १६९७ ई० में प्रकाशित इस धन्य का विवरण चतुर्थ अध्याय (३) में प्रस्तुत किया जायगा ।

१. गोरे : 'ए कंटेम्पोरेरी मैमुस्क्रिप्ट०—' : पूना की सम्बद्ध पाण्डुलिपि : ग० मै० ला० : क्र० २०० (१८८२-८३) का अन्तिम चल्लेख इस प्रकार है—

‘संवत्-वाराणासल-चन्द्र-माने
गणेश-चन्द्रेऽवसुज्ज्वल कृष्णे ।’

२. वही, कैटे० संजोर० : माग ९ पृष्ठ ३८२१ (१९३० ई०) : पाण्डु-लिपि क्रमाङ्क ४६४८ : पुष्पिका—

‘इति श्री-यघेलवंशोद्भवमहोदयविषयाधिप-श्रीकीर्तिसिंह-देशानया श्री भट्टोजिदीक्षित-शिष्य-गुर्जरजातीय-रामाश्रम-विरचितायाम्—।’

३. पद्यामृत० भूमिका : पृष्ठ १२९-३० : वाराणसी-दर्पण-प्रकाशिका टीका, सं० १६९८ (१६४१ ई०) का प्रारम्भिक चल्लेख—

‘भट्टोजिदीक्षितं नत्वा रामाश्रमगुरुं पुनः ।
वत्सराजः करोत्येतां काशी-दर्पण-काशिकाम् ॥’

४. बम्बई : १९४४ : प्रारम्भ—‘गुरुं भट्टोजिदीक्षितम् ।’

५. चौखम्बा संस्कृत सिरीज—२०१२ वि० । उत्तरार्द्ध की पुष्पिका—
इतिथी रामाश्रम—(भानुजिदीक्षित) विरचिताया सिद्धान्तचन्द्रिकायाम्—।’

भगवन्त-भास्कर

१८ वीं शती के ग्रन्थों की जानकारी उपलब्ध नहीं है। केवल एक ग्रन्थ 'भगवन्त-भास्कर' का पता चल सका है। यह १६५६ ई० में रोवा के श्री त्रिपुराशंकर बनर्जी के यहाँ मिला था। उसी वर्ष नामरी-प्रचारिणी-सभा काशी को भेज दिया गया। ग्रन्थ का विषय कर्मकाण्ड और लिपिकाल १८४७ वि० (१७६० ई०) है। रचयिता नीलकण्ठ भट्ट हैं। एक पुष्पिका इस प्रकार है—

'संगर-वंशावतंस-महाराजाधिराज-भगवत्सिंह-वा (?)—अष्टमीमासक-भट्ट नीलकण्ठकृतः.....'

रोवा जिले की मऊगंज तहसील में संगर राजपूत रहते हैं। १७ वीं १८ वीं शती में ये रोवा की छत्ता से स्वतन्त्र होने के प्रयत्न में अपने को महाराज भी कहते रहे होंगे।

उन्नीसवीं शती का साहित्य

पिछले अनेक शतियों में बघेलखण्ड में जितने साहित्य का सर्जन हुआ था, उससे कहीं अधिक इस उन्नीसवीं शती में हुआ। यह साहित्य संस्कृत और हिन्दी दोनों क्षेत्रों में रचा गया। इस शताब्दी में लगातार जयसिंहदेव (राज्य—१८०९-१३४ ई०) विश्वनाथसिंह (१८३४-५४ ई०) और रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) नरेश-कवि के रूप में मिलते हैं। इनके साथ इनसे सम्बद्ध या समासद-रूप में अन्य अनेक कवि भी ग्रन्थ-रचना और पाण्डित्य द्वारा रोवा-राजसभा की अलङ्कृत करते रहे। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती का यह कथन सर्वथा सत्य है कि ये तीन नरेश 'न केवल विद्वानों के आध्यात्मिक थे, अपितु इनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ महान् थीं।'^१

जयसिंहदेव एकमात्र प्रकाशित हिन्दी-काव्य 'हरिचरित-चन्द्रिका' (पूर्वाङ्क) की भूमिका में श्री भवानीदत्त जोशी ने लिखा है कि 'जयसिंहदेव हिन्दी और संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे, किन्तु उन्होंने संस्कृत में रचनाएँ नहीं कीं।'^२ इनके अनेक हिन्दी-काव्य संस्कृत के साहित्य एवं दर्शन के ग्रन्थों पर आधारित हैं।^३

१. 'संस्कृत वक्त्रं' : ज० रा० ए० सो० : २६ अक्टूबर, १९३९।

२. सरस्वती कोय-भाण्डार, किला, रोवा : बस्ता ११२ पाण्डुलिपि : रचनाकाल लगभग १८२३ ई०। प्रकाशित १९०३ ई०।

३. देखिये मेरा लेख : 'जयसिंहदेव की रचनाएँ : विन्ध्यभूमि : साहित्य भ्रम : रोवा—१९५६ : पृष्ठ २३ और आगे।

जयसिंह के प्रथम पुत्र विश्वनाथसिंह थे । दूसरे पुत्र लक्ष्मणसिंह, जो वर्तमान माधोगढ़ (जिला सतना) के इलाकेदार थे, अनेक हिन्दी-काव्य-ग्रन्थों के निर्माता थे ।^१

बलभद्रसिंह के ग्रन्थ

जयसिंहदेव के तृतीय पुत्र तथा विद्वानाथसिंह के कनिष्ठ भ्राता और अमरपाटन के इलाकेदार रावेन्द्र बलभद्रसिंह संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे । इनके चार संस्कृत ग्रन्थ सरस्वती कोष-भाण्डार, रीवा में सुरक्षित हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(१) वृत्तिबोध—श्रुतबोध की अनुकृति पर लिखे हुए इस पद्यात्मक ग्रन्थ में वृत्तियों का सटीक वर्णन है । सम्भव है, टीका स्व-रचित हो । इस ग्रन्थ में विश्वनाथसिंह के 'सर्वसिद्धान्त' ग्रन्थ का उल्लेख है, जो विश्वनाथसिंह की युवराज अवस्था (१८३३ ई० से पूर्व) की रचना है । अन्य ग्रन्थों का उल्लेख नहीं है । अतः इस वृत्तिबोध का रचनाकाल १८३० ई० के आस-पास माना जा सकता है ।^२

(२) लोचनग्रन्थ^३—इसकी केवल एक प्रति प्राप्त है, जिसके १० पत्रों में से अन्तिम चार सुरक्षित हैं, प्रारम्भ के ६ पृष्ठ लुप्त हैं । ग्रन्थ भीमद्भागवत से सम्बद्ध है ।

१. लक्ष्मणसिंह द्वारा प्रणीत हिन्दी-काव्य 'कृष्णायन' १६ खण्डों में सरस्वती-कोष-भाण्डार, रीवा में उपलब्ध है । इनके द्वारा सङ्ग्रहीत संस्कृत ग्रन्थ भी प्राप्त हैं ।

२. ग्रन्थ का प्रारम्भ—

'वृत्तीणां लक्षणं येन श्रुतिमात्रेण बुध्यते ।

तमहं सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तिबोधमविस्तरम् ॥'

मुलना के लिये देखिये श्रुतबोध :

'छन्दसां लक्षणं येन श्रुतिमात्रेण बुध्यते ।

तमहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतबोधमविस्तरम् ॥'

प्रारम्भ में ग्रन्थकार ने मङ्गलाचरण के साथ अपना परिचय दिया है—

'मोतीमालं शुभं शब्दे परमानन्ददायकम् ।

राधावल्लभ-पादाब्ज-स्वस्वरूपप्रकाशकम् ॥

तं वृत्तिबोधं रचयामि नरवा राधापतेः सुन्दरपादपद्मम् ॥'

३. अन्तिम पृष्ठ : 'यथार्थ-भीमद्भागवत-प्रदर्शक-लोचनो ग्रन्थः ।'

(३) कृष्ण-विवरण^१—३३ पत्रों के इस ग्रन्थ में प्रारम्भ के १२ पत्रा लुप्त हैं। इसमें कृष्ण के ६ नामों—१. कृष्ण, २. नन्द-नन्दन, ३. निकुञ्ज-विहारी, ४. प्रजेश, ५. मायुरेश और ६. द्वारकेश के विवरण प्रस्तुत हैं। उपर्युक्त नामों के सम्बन्ध में भागवत के प्रसङ्ग उल्लिखित हैं। ग्रन्थकार ने अपना गुरुकृत नाम 'राधामोहनदास' बतलाया है। 'लोचनग्रन्थ' और 'कृष्ण-विवरण' का रचनाकाल नहीं दिया गया।

(४) ब्रह्मसूत्र-भाष्य^२—१८७ पत्रों का यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संवत् १८९४ (१८१८ ई०) में पहले की रचना है। विश्वनाथसिंह ने संवत् १८९७ में ब्रह्मसूत्र पर विस्तृत (राधावल्लभीय-मतप्रकाशक) भाष्य लिखा। अतः पूर्ववर्ती होने के कारण बलमद्रसिंह के इस ग्रन्थ का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इसमें राधावल्लभीय मत का स्पष्टीकरण और राधा-कृष्ण का अमेद एवं उपास्यत्व है।

(५) भागवत-टीका—बतलाया जाता है कि बलमद्रसिंह ने श्रीमद्-भागवत पर 'गोपीनी साम्प्रदायिका' नाम से टीका भी लिखी है। यह ग्रन्थ श्री रघुनाथ शास्त्री को रोषा में रहिया गाँव के श्री त्रिलोकीनाथ शास्त्री से उपलब्ध हुआ था, जो नवम्बर १९५७ को काशी नागरी प्रचारिणी सभा को भेजा गया।

विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित अनेक संस्कृत-ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ सरस्वती-कोप-भाण्डार में हैं, जिनके ऊपरी पृष्ठ पर उन्हें बलमद्रसिंह के विख्याति ग्रन्थ^३ लिखा गया है। इससे इनकी ग्रन्थ-सङ्ग्रही वृत्ति एवं संस्कृतानुराग का परिचय मिलता है।

१. प्रथम विवरण की पुष्पिका—'अनन्तधी-राधावल्लभीयोपक्रमे श्रीबलमद्र-धर्म-हरि-कृती षट्कृष्णसंहितायां आद्यं कृष्ण-विवरणम्।'।

अन्तिम पुष्पिका—'राधाकृष्णयोरैकात्म्य-प्रतिपादनं नाम षट्कृष्ण-विवरणं-सम्पूर्णम्।'।

२. अन्त में उल्लेख—'समाप्तः संवत् १८९४ माह वदि गुरवारं पुष्य नक्षत्रे तद्दिन सम्पूर्णः।' यह लिपिकाल प्रतीत होता है। अन्तिम-उल्लेख (पृष्ठ १८६) :—

'इति श्रीराधिकेतास्य पदसेवाधिकारिणः।

कृपापात्रेण हरिणा बलमद्रेण निमिता ॥'

तथा पुष्पिका—'.....हरिबंशस्वामी-तदीयच्छास्त्र-राधावल्लभ-प्रसाद-लब्ध-गुरुदापितनाम्ना राधामोहनदासेन विरचिते ब्रह्मसूत्रमाध्ये.....'।

३. 'विज्ञ-श्री-अयसिहदेव-नृपतेः पुत्रः कनिष्ठो बली,

श्रीमद्-भागवताख्य-ग्रन्थमननासंस्तम्भमवितः सुधोः।

श्री राधापति-पाद-पद्मपुष्पसंप्रोत्था नमःस्तोभते,

तस्य श्री बलमद्रसिंह-गुणिनो विख्यातिग्रन्थः द्युमः ॥'

अग्निहोत्रि-कुल-वंशावली

करा (जिला सतना) गाँव के निवासी श्री रंजुकराम अग्निहोत्री ने संवत् १८८५ (१८२८ ई०) में संस्कृत पद्यों में प्रस्तुत इस ग्रन्थ में सरयूपार से रीवा बाकर अग्निहोत्र कस्बेवाले मिथ्य छाहणों का बंध-परिचय दिया है । ग्रन्थ की पाण्डुलिपि श्री रामप्यारे अग्निहोत्री, रीवा के पास है । यह प्रतिलिपि रंजुकराम के पुत्र वंशधारी राम द्वारा संवत् १९३५ (१८७८ ई०) में तैयार की गई है । रंजुकराम भावसिंह के समकालीन ओतगवि कल्याणदास के बराबर थे ।^१

संगीत-रत्नाकर-सेतु

२८३ पन्ना में लिखित यह ग्रन्थ सरस्वती-कोष-भाण्डार में पूर्ण सुरक्षित है । यह दाऊददेव-रचित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'सङ्गीत-रत्नाकर' की हिन्दी ब्रजभाषा-टीका है, जिसे माधुर चतुर्वेदी तुलाराम के पुत्र गङ्गाराम ने रीवा-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह की सभा में 'नल' नामक संवत्सर में चैत्र शुक्ला नवमी को पूरा किया । ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त में संस्कृत पद्यों का प्रयोग किया गया है । विश्वनाथसिंह के अनुज बलमदसिंह से गङ्गाराम की विद्वत्ता से सन्तुष्ट हो कर उन्हें उमराही गाँव (अमरपाटन, जिला सतना) बान कर दिया था । इनके बंदाज मयूरा के रतनकुंड थोहले में रहते हैं ।^२ सेतुकार गङ्गाराम ने स्वयं भी

लगभग ९ पाण्डुलिपियाँ विस्पातिग्रन्थ है । 'विशिष्टाङ्कित-सिद्धांत' ग्रंथ में लिपिकार की ये वंशितयाँ दृश्य हैं—

'लोचिती भूरि मलेन सीतारामाख्य-पण्डितैः ।

बघेलराजपुत्रस्य बलमदस्य तुह्ये ।'

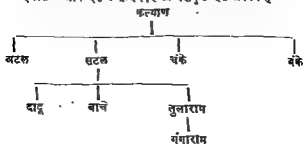
१. ग्रन्थ की पुष्पिका :

'इति श्री-अग्निहोत्र(त्रि)-जातीय-रंजुकराम-विरचिते-श्रीअग्निहोत्र(त्रि)-कुल-वंशावलिः समाप्तं शुभमस्तु ।

श्री श्री संवत् १८८५ वर्षे आषाढ सुदि २ ।

इस ग्रन्थ में ९ परिच्छेद हैं तथा अन्त में वंशवृक्ष है ।

२. चतुर्वेदी—गणेशदत्त : 'नोट आन गंगाराम सन आक तुलाराम' एनसस—भाग ३४ : ग्रन्थकार का वंशवृक्ष इस प्रकार है—



अपना परिचय दिया है ।^१ इनको इस हिन्दी टीका का उल्लेख अग्रिम भाग प्राप्त है ।^२

आचार्य प्रियादास के ग्रन्थ

आचार्य प्रियादास द्विज-हरिवंश (गोवर्द्धनी शर्मा) द्वारा प्रचलित राधा-मध्यमीय सम्प्रदाय के एक सभ्य थे ।^३ ये विद्वन्महोदय के दोषा-गुण और प्रेरक थे ।^४ विद्वन्महोदय द्वारा बनलाई हुई यह गुण-विशेष-परम्परा इस प्रकार है ।^५

१. सरस्वती-शेष माण्डार को प्रति : करता १४७ रटाक ११७ : अन्त के पुष्ट में : ।

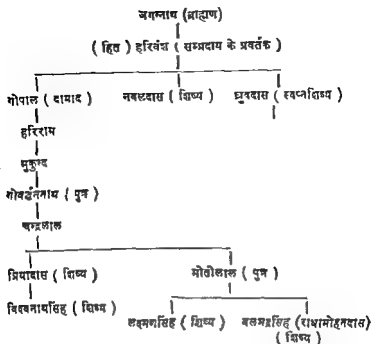
‘सङ्गोत्तरनाकर-तुर्विमाह-वाराणिधेस्तत्तरीकहेतुः ।
 रीतुश्च रीमेश-मरेन्द्र-विद्वन्महोदय-कृपा-बलतः कृतो मे ॥
 सङ्गोत्तरनाकरमेतदुक्तं मातः समाप्ति कृपाया विमलम् ।
 यत्रेति रागमनुरितयो दि वर्ये नले पादपत्रनेकमुत्प्रे ॥
 तुलाराम-तनूमेन गङ्गारामेन गुरिणा ।
 गामुरेण कृतः सेतुविद्वत्तरण-हेतुर्ब ॥’

२. विद्वन्महोदयः सङ्गोत्तरनाकरः हरिवंशरायण आष्टे : आनन्दप्रम
 संस्कृत संपात्रलि : पूमा : १८९६ प्रकाशना पुष्ट २-१ । सङ्गोत्तरनाकर
 को रचना देवगिरि के माधव मरेश सिद्धयन्त्र (१२१०-४७ ई०) के
 आश्रम में हुई । १८७६ ई० में भी एत० पी० शीव ने कलकत्ता से इस
 ग्रन्थ का प्रथम अध्याय सिंह-मुपाल-कृत टीका के साथ प्रकाशित किया
 था । इस संस्करण की प्रकाशना में संभव की ४ संस्कृत, १ हिन्दी और
 २ आङ्ग्रेजी टीकाओं के उल्लेख है । यह हिन्दी टीका गङ्गाराम-कृत
 बतलायी गई है ।

३. स० की० मा० : मणिप्रभा (प्रियादास कृत) : १८०७ ई० : वचना—
 ‘मेन मे मोदित कृष्ण-नीत-माधुर्य-मूर्तिना ।
 भारती बदनाम्नाता तं द्विताह्वयत्रे मये ॥’

४. सर्वसिद्धांत (विद्वन्महोदय-कृत) (१८३३ ई० से पूर्व : स० की०
 भा० : प्रारम्भिक मङ्गलाचरण-‘तस्य विद्योऽग्रमदाचार्यः परमानन्दकृ-
 पान् । गुणने भो प्रियादासो निरर्थं तस्मै नमो नमः ॥’

५. यही । साथ ही देनिये बलमङ्गल-कृत मङ्गलाचरण : मङ्गलाचरण ।
 स० की० भा० ।



प्रियादास बलिन में सूरत के पास रामपुरा गाँव में उत्पन्न हुए थे । १२ वर्ष की आयु में इन्होंने मुम्बई में गोस्वामी चन्द्रलाल से बीसा प्राप्त की । तीर्थयात्रा करते समय में रीवा-नरेश जयसिंहदेव द्वारा सम्मानित हुए थे तथा पीछे भी कई बार रीवा आये । विश्वनाथसिंह को करुण प्रार्थना से द्रवित होकर इन्होंने उन्हें बीसा देने की स्वीकृति दी । संवत् १८७५ (१८९९ ई०) में वे मोतीलालवासी हुए । डा० हरदत्त शर्मा ने इनके ग्रन्थ सुसिद्धान्तोत्तम (प्रकाशित) पर सम्पादक की टिप्पणी का उल्लेख दिया है, जिसके अनुसार प्रियादास विश्वनाथसिंह हैं सम्भासद थे । यह टिप्पणी भ्रामक है, क्योंकि प्रियादास की मृत्यु तक विश्वनाथसिंह युवराज ही थे । प्रियादास विशुद्ध कृष्णमय तपस्वी थे और उनका अधिकांश जीवन गोकुल में ही बीता । शर्मा जो ने १९ वीं शती के प्रथम चतुर्थांश में इनका ग्रन्थ-रचना-काल माना है ।^१

१. शर्मा हरदत्त : 'दि वेण्णव फिलासफर प्रियादास एण्ड हिज वक्कतः' ६० हि० भाग २६ कलकत्ता, १९४० । साथ ही देखिये, रघुराजसिंह : *मन्त्रमाला* { राम-रसिकवली } : { प्रकाशित } बम्बई : प्रियादास का विवरण : तथा युवलदास : विश्वनाथसिंह-चरित्र (प्रकाशित) : सरस्वती कोष भाण्डार, रीवा ।

ग्रन्थों में प्राप्त रचनाकालों को देखते हैं हम इस काल को १८०५ ई० से १८१९ ई० तक मान सकते हैं। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. श्रुतिसूत्र-तात्पर्यामृत (स्व-रचित 'महत्प्रिया' टीका सहित)

३३ पत्रों में लिखित यह पाण्डुलिपि कार्तिक कृष्ण एकादशी सं० १८७० (१८१३ ई०) की रचना है। इसमें ब्रह्मसूत्र के ४४ सूत्रों को परामर्शित एवं ज्ञान, इन दो प्रकरणों में विभाजित कर उनकी व्याख्या की गई है। इसमें राधावल्लभीय मत के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन है।^१ विश्वनाथसिंह की समस्त दार्शनिक कृतियों का यही ग्रन्थ सैद्धांतिक स्रोत है। प्रियादास ने अपने अन्तिम समय में इसी ग्रन्थ के आधार पर विश्वनाथसिंह को ब्रह्मसूत्र-भाष्य लिखने की आज्ञा दी थी। विश्वनाथसिंह ने इसे कृतमतापूर्वक स्वीकार किया है तथा सुसिद्धान्तोत्तम और सुमार्ग नामक दो और ग्रन्थ प्रियादास-रचित होने की सूचना दी है।^२

१. सं० को० भा०, रीवा (बस्ता १५ स्टार्क ८६) : अन्तिम पुष्पिका-
'इति श्री श्रुतिसूत्र-तात्पर्यामृत-टीकायां महत्प्रियायां प्रियादासाचार्य-
विरचितायां सकलज्ञानप्रकरणं द्वितीयं सम्पूर्णम्।' तथा प्रारम्भिक
श्लोक—'मक्तिं मामवतांश्चैव नत्वा श्री राधिकापतिम्।

वरयेहं श्रुतिसूत्राणां तात्पर्यामृतमुत्तमम्॥'

भाग्यार में ५ पत्रा की दूसरी खण्डित प्रति (बस्ता १५ स्टार्क ७२)
तथा तीसरी प्रति वैष्णव रघुवरदास द्वारा 'बाबू विश्वनाथसिंह जू
देश' के निमित्त सं० १८७३ में लिखी हुई है। इन प्रतिपों में रचना-
काल के प्रदर्शक श्लोक नहीं हैं, किन्तु सुसिद्धान्तोत्तम की सम्पादकीय
टिप्पणी में किसी प्रति के आधार पर यह उल्लेख प्राप्त है—

'हरिदेवस्य...श्री प्रियादासो निर्ममे ग्रन्थमुत्तमम्।'।

२. मिश्रासागर पुस्तकालय, रीवा में प्राप्त पाण्डुलिपि : राधावल्लभीय-
मत-प्रवर्तक-ब्रह्मसूत्र-भाष्यम् (विश्वनाथसिंह-कृतम्) : पृष्ठ ७ :
उपोद्घात-स च सुसिद्धान्तोत्तम-सुमार्ग-श्रुतिसूत्रतात्पर्यामृतादीन् ग्रन्थान्
विधाय सकल-मताविरोधं प्रदर्श्य श्रीराधाकृष्णप्रेमाकृत-हृदयदिवरमिह
श्लोके दिचरितुमनिच्छन् मन्दुपदिश्य निब्रश्रुतिसूत्रतात्पर्यामृतग्रन्थ-
मतानुसारेण श्रीमद्वेद-वेदव्यास-सूत्र-विस्तर-व्याख्यां कर्तुमनुशास्य च
काङ्क्षमनोभोत्रराशोत्-रासमन्दलं गत्वाऋकृतवान् ।...स एवेशानी श्री
बान्धवाधीश्वरमहाराजधिराज-सिद्धिधोजपसिंहदेव-ज्येष्ठ - तनय-विश्व-
नाथसिंहदेवनाथो मम हृदयकमलस्थित उभयपत्रोपदेशकस्तात्पर्यवृत्त्या

डा० बिजयेन्द्र स्नातक ने विश्वनाथसिंह की इस कृतज्ञता का यहाँ तक भ्रामक आशय निकाला है कि सम्भवतः प्रियादास ने ही (राधावल्लभोद्य-मनु-प्रकाशक) ब्रह्मसूत्र-भाष्य लिखा और उसमें नाम विश्वनाथसिंह का दे दिया। अपने कोई ठोस तर्क न देते हुए एक परम्परा मात्र की ओर संकेत किया है कि कविगण राजाओं को प्रसन्न करने के लिए उनके नाम से रचनाएँ करते थे।^१ बिजयेन्द्र जी का यह तर्क उस भाष्य के विषय में है जो १८९७ वि० की पूर्ण हुआ, जब कि प्रियादास जी का निधन १८७५ वि० में ही हुआ था। इस भ्रम के निवारण के लिए संक्षेप में इतना बहना पर्याप्त है कि बिजयेन्द्र जी के ये तर्क कल्पित एवं आधारहीन हैं। विश्वनाथसिंह के प्रायः समस्त ग्रन्थों में प्राप्त पुष्पिकाएँ, संस्कृत और हिन्दी में रचित उनके ग्रन्थों की बहुल संख्या, ग्रन्थों में प्राप्त प्रौढ़ लेखनी का चमत्कार, रघुराजसिंह द्वारा लिखित 'रामरसिकावली' आदि कई ग्रन्थों में तथा युगलदास द्वारा लिखित 'विश्वनाथसिंह-चरित्र' में विश्वनाथसिंह की प्रखण्ड विद्वत्ता और शास्त्रज्ञता तथा तत्कालीन शास्त्रार्थों में उनकी विजयों के उल्लेख यह सिद्ध कर देते हैं कि उन्हें अपने नाम से किसी अन्य विद्वान् द्वारा ग्रन्थ लिखाने की अपेक्षा न रही होगी तथा स्पष्ट रूप से वे अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं (जैसा हम आगे देखेंगे); हाँ अवश्य ही उन्होंने गुरुवरणों का अनुसरण किया।

२. सुसिद्धान्तोत्तम (स्वरचित अनूत्तमा टीका सहित)

इस ग्रन्थ में विश्वकारण, द्विविधा भक्ति, जीवदासत्व, सुमतिनिर्णय और परमानन्द-प्राप्ति-कारण नाम से ५ विधामें है। यह ग्रन्थ प्रयाग में लिखा गया।^२ ग्रन्थकार ने स्वयं ही 'अनूत्तमा' टीका भी लिखी है तथा अपने गुरु चन्द्रलाल के प्रति वैसी ही कृतज्ञता प्रदर्शित की है जैसी पीछे विश्वनाथसिंह ने उनके प्रति

वाङ्मनोगोचरातीत-औरामचन्द्र-निरूपणे व्यासस्य तात्पर्यभ्रमणस्य तत्सूत्राणां व्याख्यामारभते।'

इस कथन में यह स्पष्ट है कि गोलोकवासी प्रियादास विश्वनाथसिंह के हृदय में स्थित होकर रचना कर रहे हैं। अर्थात् विश्वनाथसिंह ने रचना की।

१. 'राधावल्लभ-संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य' शोधप्रबन्ध : दिल्ली : पृष्ठ १२६-३१।

२. रघुराजसिंह : रामरसिकावली (भक्तमाला) : प्रियादास का विवरण। साथ ही देखिये, सरस्वती माण्डार की सम्पूर्ण प्रति।

प्रकट की। ग्रंथ पाण्डित्य और प्रमाणों से भरपूर है। रचनाकाल १८११ ई० से पूर्व है, इस वर्ष की एक पाण्डुलिपि प्राप्त है।

सुसिद्धान्तोत्तम ग्रन्थ से चार ग्रन्थों की उत्पत्ति बतलायी गई है—

‘एतस्मादुत्तमाच्छास्त्राज्जातं ग्रन्थ-चतुष्टयम् ।

‘तत्त्वनिश्चय-वेदान्तसार-भक्तिप्रभादिकम् ॥’

इसमें से ‘तत्त्वनिश्चय’ और ‘वेदान्तसार’ सरस्वती कोष भाण्डार में प्राप्त नहीं हैं। तीसरा ग्रन्थ ‘भक्तिप्रभा’ प्राप्त है। ‘वेदान्ततत्त्व’ और ‘सुमार्ग’ क्रमशः १९ और २३ श्लोकों में एक ही पत्रा के दोनों ओर लिखित कई पाण्डुलिपियों के रूप में प्राप्त है। ‘आदिकम्’ शब्द से ‘सुमार्ग’ अभिप्रेत प्रतीत होता है। वेदान्तसार और वेदान्त-तत्त्व पृथक् ग्रंथ जान पड़ते हैं। भक्तिप्रभा अपने आप में महत्वपूर्ण है। यह चार मयूखों में कुल १७ श्लोकों में है; साथ से ग्रन्थकार द्वारा की हुई टीका ‘सुलोचना’ भी है। पूरे ग्रंथ में कुल ११८ पत्रा हैं।^२

१. प्रकाशित, काशी : अन्तिम पुष्पिका—‘इति श्री सुसिद्धान्तोत्तमे प्रियादासाचार्य-विनिर्मिते परमानन्द-प्राप्ति-कारण-वर्णनो नाम पञ्चमो विधामः ॥ टीका के अन्त में ‘श्री संवत् १८६७ माघ सुदि दशम्याम् । श्री । टीका के आरम्भ में—‘सुसिद्धान्तोत्तमाख्यस्य वक्ष्ये टीका-मनूतमाम् ।’

‘इह ललु सद् गुर्वनुग्रहतो भगवांश्चन्द्रलालाचार्यः ‘प्रियादासान्तर्ग्रामी’ ।

तमेव ग्रन्थकारं कृत्वा तद् द्वारा सुसिद्धान्तोत्तमशास्त्रं विरचय्य तस्म व्याख्यामपि धकार ।’

सरस्वती कोष भाण्डार में इस ग्रंथ के तृतीय विधाम की एक पृथक् पाण्डुलिपि १८४० ई० में लिखित है। १८ पत्रों में प्रथम विधाम की दूसरी पाण्डुलिपि (बस्ता १५ स्टाक १८) तथा १७ पत्रों में द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम विधामों से युक्त तीसरी पाण्डुलिपि (बस्ता १७ स्टाक १०५) में लिपिकाल का बल्लेख नहीं है।

२. सरस्वती-कोष-भाण्डार, किला, रोवा : (बस्ता १७।१०७) : सुसिद्धान्तोत्तम के सम्पादक ने वेदान्तसार के रचनाकाल की सूचना दी है—स्वरचित वेदान्तसारटीकायामयमेव प्रियादासाचार्यः—

‘समाकारि समाप्राप्ते समासेन सतां प्रियम् ।

इदं वेदान्तसारं वै स्वर्ध्वरीमेन्दु-वत्सरे ॥’

अर्थात् संवत् १८६४ (१८०७ ई०) में वेदान्तसार लिखा गया और आचार्य ने स्वयं ही उसको भी टीका लिखी। भक्तिप्रभा का भी यही रचनाकाल है—देखिये अन्तिम श्लोक ‘अध्वरीमेन्दुवत्सरे’ ।

३. वैष्णव-सिद्धान्त

६ पत्रा और ५४ श्लोकों में यह ग्रन्थ पुष्टि मार्ग का पोषण करता है^१।

४. दीक्षा-सार-निर्णय

गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में १३ पत्रों में यह पद्यात्मक ग्रन्थ है।^२

५. चतुःश्लोकी-भागवत

श्रीमद्भागवत के चार श्लोकों पर प्रियादास ने इस नाम से 'सर्वमङ्गला' टीका लिखी है।^३

डा० हरदत्त शर्मा ने 'चतुःश्लोकी भागवत के अतिरिक्त प्रियादास-कृत उपर्युक्त सभी ग्रन्थों का उल्लेख किया है।^४

६. भक्ति-सिन्धु-प्रेम-तरङ्गिणी

इसका लिपिकाल १८९३ वि० है।^५

७. सुमत-निर्णय—इसका रचनाकाल १८१५ ई० है।^६

विश्वनाथसिंह के ग्रन्थ :

विश्वनाथसिंह का साहित्य-सर्जन हिन्दी और संस्कृत दोनों क्षेत्रों में है, किन्तु उनका संस्कृतसाहित्य प्रौढ़तर है। वे भगवान् राम के उपासक थे। प्रियादास कृष्णोपासक थे, किन्तु विश्वनाथसिंह को रवि का उन्होंने ध्यान रखा और उन्हें 'उभयमम्भोभेद' (कृष्ण और राम दोनों को उपासना) से दीक्षित

१. स० को० भा० : बस्ता १३८ स्टोक ३८ ।

२. वही, भाषीराम द्वारा संवत् १८७९ (१८२२ ई०) में लिखित ।

३. वही, बस्ता ८०।१९०। इस ग्रन्थ की दो और प्रतियाँ (बस्ता ८०।१५-५ तथा ८०।१५-२) भाण्डार में हैं। पहली सं० १८९२ (१८३५ ई०) और दूसरी १८८८ वि० (१८३१ ई०) में अयोध्यालाल द्वारा रोवा में लिखी गई। दो अन्य प्रतिलिपियाँ (८०-१५।१ तथा ८०।१५-४) भी हैं, जिनमें अधिक विस्तृत व्याख्या है, किन्तु रचनाकाल, लिपिकाल और लिपिकार का उल्लेख नहीं है।

४. 'दि वैष्णव फिलासफर प्रियादास एण्ड हिज वर्क्स' : ६० हि० भाग १६ : कलकत्ता : १९४० ।

५. ना० प्र० स०, काशी के रोवा स्थित प्रतिनिधि को १९५६ ई० में प्राप्त ।

६. सरस्वती-कोष-भाण्डार, रोवा ।

किया । परिणामस्वरूप, जहाँ प्रियादास के ग्रन्थ कृष्ण-पर्यवसायो है, वहाँ विश्व-नाथसिंह के ग्रन्थ श्री राम की ही सर्वशक्तिसम्पन्न पूर्ण ब्रह्म स्वीकार करते हैं ।^१

विश्वनाथसिंह का यह उपासना-परक साहित्य चार कोटियों में विभक्त किया जा सकता है—(क) अष्टात्मपरक सिद्धान्त-प्रतिपादक ग्रन्थ ।

(ख) अष्टात्मपरक टीकाएँ ।

(ग) काव्य ।

(घ) लक्षणग्रन्थ ।

कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं है ।

(क) १. राधावल्लभीय-मत-प्रवर्तक-ब्रह्मसूत्रभाष्यम्^२

विश्वनाथसिंह की कृतियों में तथा बघेलखण्ड के सम्पूर्ण साहित्य में इस ग्रन्थ की प्रथम स्थान दिया जा सकता है । हित-हरिवंश के राधावल्लभीय मत के प्रतिपादक ग्रन्थों में तथा भारतीय दर्शन-वस्तु में इसे एक स्वावलम्बी मौलिक महत्व दिया जाना चाहिए । यह व्यास के वेदान्त-सूत्रों पर विस्तृत भाष्य है ।

१. वही, विश्वनाथसिंह-कृत-राधावल्लभीय-ब्रह्मसूत्रभाष्य : मङ्गलाचरण : श्लोक २

‘स श्रीरामोऽवतान्नः परमपरतमः प्रेयसोभावगम्यः ।’

२. संस्कृत बर्षः : ज० रा० ए० सो० : २९ अक्टूबर १९४० में उल्लिखित आशुतोष माग १।३६५ शिक्षासागर पुस्तकालय रोवा में १ प्रति और सरस्वती-कोष भाण्डार, रोवा में ३ पाण्डुलिपियाँ हैं । शिक्षासागर की प्रति सं० १९०४ (१८७४ ई०) की लिखे हुए पन्नों में है ।

अन्तिम पृष्ठीका—

‘इति श्रीमद्-भगवद्वतार-वेदार्थनिर्णायक-श्रीमद्देव-वेदान्ताचार्य-श्रीमद्-वेदव्यासकृत - वेदान्तसूत्राणां सिद्धि-श्रीमहाराजाधिराज - श्रीमहाराजा-धोराजाबहादुर-श्रीश्रीतारामचन्द्र-कृपाशत्रुधिकारि-विश्वनाथसिंहजुदेव-कृते श्रीराधावल्लभीयमतप्रवर्तकभाष्ये चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ चतुर्थाध्यायश्च मिद्धः ४ श्रुम् भूयात् ॥ श्रीश्रीतारामचन्द्राय (भ्यां) नमः ॥ मितो ज्येष्ठ शुक्ल नवमो संवत् १९०४ ।’

रचनाकाल के लिये देखिये अन्तिम श्लोक—

‘अये सप्तनवाष्टेन्द्रावविरोधिन्धवजिते ।

वैशाख शुक्ल-पञ्चम्यां भाष्यास्फारम्भणं कृतम् ॥

भाषस्य कृष्ण-पञ्चम्यां पूर्णतां समग्रादिदम् ।

विश्वनाथोदितं भाष्यं भूयाद् वैष्णव-तोषदम् ॥’

यह ग्रन्थ बंशाख शुक्ल पञ्चमो सं० १८९७ (१८४० ई०) को प्रारम्भ होकर उसी वर्ष माघ कृष्ण पञ्चमो (१८४१ ई०) को सम्पूर्ण हुआ । साढ़े आठ माह में लिखित यह बृहदाचार सिद्धान्त-ग्रन्थ विश्वनाथसिंह की प्रकाण्ड विद्वत्ता, अद्भुत रचनानवित और मौलिक विचारधारा का सूचक है ।

२. सर्वसिद्धान्तम्^१

८९ पन्ना के इस ग्रन्थ में पाँच सिद्धान्तों के पुनः-पुनः प्रतिपादन है । यह ग्रन्थ मिथुकाचार्य ओझा^२ और राजकुमार विश्वनाथसिंह के मध्य संवाद के रूप में है ।

मिथुकाचार्य को मिथिला से वेदान्त में शास्त्रार्थ करने के लिए आमन्त्रण मिला था । उन्होंने विश्वनाथसिंह से विषय का सम्यक् ज्ञान और शास्त्रार्थ में विजयी होकर लौटे । यही पृथ्वी चर्चा संवाद-शैली में अङ्कित की गई । प्रतिपादित विषय को 'द्वैत मत' बतलाया गया है । प्रथम सिद्धान्त है राम का परम । द्वितीय में राम के नाम, रूप, लोला, धाम और गुण का निरूपण निरूपित है । तृतीय सिद्धान्त में प्रतिविम्बादिवाद और श्रुति-सूत्र-विचार है । चतुर्थ में आचार्यों की उत्पत्ति और मत-समन्वय प्रदर्शित है । पञ्चम-सिद्धान्त के अन्तर्गत वेदों की आचार-पद्धति और भक्ति की विधाएँ वर्णित हैं । अन्त में चारों वेदों के सम्प्रदायों की गुरु-शिष्य-परम्परा प्रस्तुत की गई है । रचनाकाल का कहीं निर्देश नहीं है, किन्तु 'राजकुमार' शब्द का प्रयोग होने से इसे १८३४ ई० से पूर्व रचित मानना होगा ।^३

१. सरस्वती-कोय-भण्डार, किला, सीवा । तीन सिद्धान्तों तक की एक प्रति मिथिलामागर पुस्तकालय, रोदा में (क्रमांक १३२२) प्राप्त है । साथ ही देखिये, आर्क० भाग १।७०२-७०३ तथा भाग ७।२३२९ : कूटे अथवा भाग ३।२० ; ५।२४ ; १३।९८ ; ११८ मित्रा० भाग ७।२३२९ ।

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र : मुगलदास श्रुत : (सं० ११११) :
'बादि मिथुकाचार्य पंडित महंत जिन सभा ।
रचत ग्रन्थ ओ कार्य राजहूँ को कछु करत हैं ॥'

३. वही :

'मिथुकाचार्य ओझा जान मिथिला को कहे,
तहाँ बाद हीइसी वेदान्त ही में सुमहान ।
द्वैत मत कीजे, सुनि तिन्हि लगाइ दीजे,
सुनि सुनि अर्थ कीन्हों, सुनि तेऊ हरपान ॥

३-रामरहस्यत्रयार्थः ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रथम रहस्य के रूप में अष्टाक्षर मन्त्र 'ॐ नमः सीतारामान्याम्' की व्याख्या, दूसरे रहस्य के रूप में मन्त्रद्वय 'श्रीमद्रामचन्द्र-धरणी धरणं प्रपद्ये' और 'श्रीमते रामचन्द्राय नमः' को मिलाकर पञ्चविंशक्षर मन्त्र की स्थापना तथा तीसरे रहस्य के रूप में शरणागति के महत्त्व का प्रतिपादन है । ग्रन्थ में मङ्गलाचरण का एक श्लोक छोड़ने पर कुल ८ श्लोक हैं, जिनकी व्याख्या 'रामरहस्यत्रय-प्रकाशिनी टीका' नाम से ग्रन्थकार की आज्ञा से रामानुजदास ने लिखी है । ग्रन्थ की पुष्पिका में 'महाराज' शब्द है तथा एक टीका का लिपिकाल सं० १८६४ है ।^१

मृतः रचनाकाल १८३४ से १८३७ ई० के बीच हो सकता है ।

सरव-सिद्धान्त पुनि ग्रन्थहि बनाइ दोन्हो

जामें सीताराम पर पांचहि सिद्धान्तदान ।

ताहि पढ़ि जीति आए तहां ते बवारज जू

परसंख्यो विद्वनायें आपु सों न कोऊ धान ॥'

अन्तिम पुष्पिका : 'इति श्री सर्वसिद्धान्ते श्रीमहाराजकुमार-श्रीबानूसाहेब

विद्वनायसिंह-विरचिते मल्लुकाचार्य-संवादे पञ्चमः सिद्धान्तः समाप्तः ॥

संवत् १८८९ के साल मिति मार्ग सुदि १४ का लिखा ॥' संवाद

दीक्षी—'श्री राजकुमार श्री विद्वनायसिंह ! सर्वतः परः पदार्थः कः

सर्वप्रतिपादितं सर्वाविष्टं मतं किं कर्तव्यं च किमिति ?

श्री मल्लुकाचार्य शृणु । सर्वतः परः पदार्थः श्रीरामचन्द्रः...।'

१. शिक्षासागर पुस्तकालय, रीवा : क्र० १३०१ : पन्ना १५ (टीकासहित) :

मूल की पुष्पिका—'इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहाराज-श्रीराजाबहादुर-

श्रीसीतारामचन्द्रकृपाभावाभिचारि-श्रीविद्वनायसिंहकृत-श्रीरामरहस्य-

त्रयार्थः समाप्तः ।' तथा टीका की पुष्पिका 'इति श्रीमद्रामानुजदास-

कृता श्रीरामरहस्यत्रयप्रकाशिनी-नाम टीका-समाप्ता । सावन सुदि ५

संवत् १८९४ सीताराम ।'

टीकारम्भ—श्रीरामानुजनामासावष्टश्लोकी यथामति ।

श्रीविद्वनायराजेन्द्राक्षतो व्याकुर्वते मुदा ॥ २ ॥

इसी पुस्तकालय में प्राप्त एक अन्य प्रति में संभवत् के अङ्क लुप्त है—

'शुद्ध चैत्र द्वितीया संवत्...रीवा रान्ने ।'

मुगलदास के अनुसार रामानुजदास अयोध्या के रत्नसिंहासन मठ के महन्त थे।^१ रघुराजसिंह ने इन्हें अपना विद्यागुरु बतलाया है। ये रामचन्द्रपाद के शिष्य थे।^२

४. राम-मन्त्रार्थ-निर्णयः

इस ग्रन्थ की पुष्पिका में विश्वनाथसिंह के लिए 'महाराजा' शब्द है।^३ चिन्ताहरण चक्रवर्ती के अनुसार इस ग्रन्थ की एक प्रति बंगला लिवि में है, जो सं० १९०७ (१८५० ई०) में लिखी गई। अतः यह ग्रन्थ १८३४ से १८५० ई० के बीच कभी निर्मित हुआ।^४ यह मूलतः गद्यारमक है। इसमें राममन्त्र का विवरण है। मुगलदास ने इसका नाम 'राम-मनु-मर्थ' बताया है।^५

५. रामपरत्त्वम्

इसका विवरण अध्याय ४ (४) में प्रस्तुत किया जायगा।

६. तत्त्वमस्यर्थ-सिद्धान्तः

५४ पन्ना में लिखित इस समग्र ग्रंथ में तत्त्वमसि महावाक्य का विवेचन है। रचनाकाल का निर्देश नहीं है, किन्तु पुष्पिका में 'महाराज' शब्द होने से रचना-काल १८३४ से १८५४ ई० के मध्य होया।^६

१. स० को० भा० : विश्वनाथसिंह-परित्र (प्रकाशित) : 'रामानुजदास में महन्त श्री अयोध्या के'।

२. रघुराजसिंह-कृत रामरसिकावली (भवउषाला) : विश्वनाथसिंह का विवरण तथा राम-स्वयंवर : प्रकाशित-बैकटेश्वर प्रेस, बम्बई : सं० १९८० पृष्ठ ९७० : 'विद्यागुरु रामानुजदासा ।' साथ ही देखिये, आनन्दाम्बुनिधिः प्रकाशित : बम्बई : अस्तित्व विवरण।

३. स० को० भा० : १ प्रति में १९ पन्ना (बस्ता १३० स्टार्क १२७।३) और दूसरी में १८ पन्ना (बस्ता १३०।१२९) है। दोनों सम्पूर्ण हैं। दूसरी में लिपिकाल सं० १९१० : शैव कृष्ण ३ भूगो (१८५४ ई०) है। पुष्पिका—'इति श्री सिद्धिश्चोमहाराजाधिराज-श्रीमहाराजा विश्वनाथसिंहदेवकृतमन्त्रार्थनिर्णयः सम्पूर्णः समाप्तः शुभम् ।'

४. 'संस्कृत ववर्ष० : ज० रा० ए० सो० : अवतूबर २९; १९४० : साथ ही देखिये आके० भाग १। ५१८ : कैटे० अवध : भाग ५।२८ : १५।१२८।

५. विश्वनाथसिंह-परित्र : सं० १९११।

६. स० को० भा० १२।२४ : प्रारम्भ का उल्लेख—'वदधेऽहं विश्वनाथः कुमल-गज-रिपुं तत्त्वमस्यार्थसारम्' ॥ १ ॥ तथा पुष्पिका—'इति श्री

(ख) अध्यात्मपरक टीकाएँ

१—ज्योत्स्ना (सुमार्ग की टीका)

पोछे प्रियादास के ग्रन्थों में 'सुमार्ग' नाम आया है। विश्वनाथसिंह ने इसकी टीका 'ज्योत्स्ना' नाम से लिखी है। ३९ पत्रों के इस ग्रन्थ का निर्माण संवत् १८८४ (१८२७ ई०) में हुआ।^१ हरदत्त शर्मा ने इसे हिन्दी में रोवा की बोली में लिखित सरस्वती कोष भाण्डार में उपलब्ध बतलाया है।^२ सम्भव है, इस नाम से हिन्दी टीका भी लिखी गई हो, किन्तु उपलब्ध नहीं हुई।

२—वाल्मीकि-रामायण की सात्पर्य-तरणि टीका

बालकाण्ड के अतिरिक्त दोष समस्त काण्डों की संयुक्त पाण्डुलिपि प्राप्त है, जो संवत् १९०२ (१८४५ ई०) में चित्रकूट में लिखी गई। सुन्दरकाण्ड के लिपिकार कामतादास और दोष काण्डों के लाला माधोप्रसाद हैं। टीका का नाम सात्पर्य-तरणि-सङ्ग्रह है। पुष्पिका में महाराज शब्द होने से रचनाकाल सं० १८९१ (१८३४ ई०) और १९०२ (१८४५ ई०) के बीच होगा।^३

सिद्धिजी-महाराजाधिराज - विश्वनाथसिंहकृत—छात्रोद्योपनिषद्-तत्त्व-मस्यर्प-सिद्धान्तः समाप्तः ॥

१. स० को० भा० : वस्तु १३१ । १०६ : अन्तिम दस्तखत—

'अग्ने वेद-गजेन्द्र-वज्र-गणिते (१८८४) पक्षेऽवलक्ष्ये शुचे-

वरि सोमसुतेऽष्टमी-तिथियुते श्रीविश्वनाथाभिधः ।

लोकानामुपकारिकां रघुपतेः प्रोत्सर्गं सुटीकामिमां

ज्योत्स्नां नाम सुमार्गणां गुह्यमतां पूर्णामकार्थान्मुदा ॥

इति सुमार्गना टीका समाप्ता ।.....संवत्

१८८५ के भाग वदि ७ का लिखा दलई..... ॥'

साथ ही देखिये, रामरसिकावली: पृ० १८६ ।

'शुरू-ग्रंथ सुमारग-तिलक..... ।

२. 'वायेल रूलर्स० ।'

३. पं० नन्दकिशोर जीप्ताचार्य, रोवा के समीप प्राप्त। अयोध्याकाण्ड-पौष वदो ७ पत्रा ८ : अरण्यकाण्ड पौष सुदो १० पत्रा १७ : किष्किन्ध्याकाण्ड पौष वदो ११ पत्रा १० : सुन्दरकाण्ड-भाष वदो १३ पत्रा १३ : युद्धकाण्ड-भाषवदो ६ पत्रा १३ : उत्तरकाण्ड-भाष वदो ११ पत्रा २८ सभी में संवत् १९०२—(१८४१-४६ ई०) है।

अयोध्याकाण्ड की पुष्पिका—

'इति सिद्धिजी-महाराजाधिराज-विश्वनाथसिंहजुदेवकृत-श्रीमद्वाल्मीकि-

३—अध्यात्म-रामायण की ध्वनि-प्रकाशिका टीका

रघुराजसिंह^१ और युगलदास^२ दोनों ने इन टीका का उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ मुलसी-संग्रहालय रामवन (सतना) में उपलब्ध है। पाण्डुलिपि का नाम 'ध्वनि-प्रकाशिका' टीका है किन्तु अन्तिम उल्लेख में 'व्यङ्ग्य-प्रकाशिका' नाम भी है। रचनाकाल, लिपिकाल या लिपिकार का कोई उल्लेख नहीं है। पुष्पिका में महाराज शब्द होने से १८३४ और १८५४ ई० के बीच ग्रन्थ-रचना हुई होगी।^३

४—श्रीमद्भागवत-तिलक (चण्डभास्कर)

रघुराजसिंह ने इसकी गणना संस्कृत ग्रन्थों में की है।^४ काशी-नरेश ने विश्वनाथसिंह के समीप देवी-भागवत भेजा था। विश्वनाथसिंह ने 'चण्ड-भास्कर'

रामायणीय-अयोध्याकाण्डस्य तारय्य-तरणि-नाम्नि सन्दर्भे^१
कृष्णभास्करियर के अनुसार आगे ने रामायण के टीकाकारों में विश्वनाथसिंह को भी माना है (हि० बन्ना० सं० लिट्० पृ० २४)।

१. राम-रसिकावली (भवउमाला) : अर्घ्य : पृष्ठ ९८९ :

'तिलक अध्यात्महुँ केरो....'

तथा आनन्दाशुनिधि : अर्घ्य : पृष्ठ ९ :

'रामायण अध्यात्महि तिलकै । तिलक बारमोकी किय भल कै ॥'

२. विश्वनाथसिंह-वरिच (प्रकाशित) : सं० को० मा० ।

३. रामवन-पाण्डुलिपि क्रमाङ्क ११६० : अन्तिम उल्लेख—

'अध्यात्म-रामायणस्य टीका व्यङ्ग्य-प्रकाशिका ।

भी विश्वनाथ-स्वातःस्थ-वीरामेण प्रकाशिता ॥

इति सिद्धि-धीमहाराजाधिराज-श्रीविश्वनाथसिंह-विरचितायां बृहद्-ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गताध्यात्मरामायण-टीकाया उत्तरकाण्डे नवमोऽध्यायः ।^१
ग्रन्थ के आरम्भ में स्वामी रामानुज और प्रियादास की बन्दना की गई है ; सखी सम्प्रदाय के भक्तों का प्रतिपादन है। बालकाण्ड में ७ अध्याय—५५ पत्रा, अयोध्या में ६ अध्याय—३२ पत्रा, अरण्य में १० अध्याय—३७ पत्रा, किष्किन्ध्या में ६ अध्याय—३६ पत्रा, सुन्दरकाण्ड में ५ अध्याय—२१ पत्रा, युद्धकाण्ड में १६ अध्याय—९१ पत्रा और उत्तरकाण्ड में ६ अध्याय—७७ पत्रा है। ७७ से ८६ पत्रा तक भरद्वाज-वसिष्ठ-संवाद के रूप में परमपाम का वर्णन जुड़ा हुआ है।

४. आनन्दाशुनिधि : पृ० ६ : 'तिलक भागवत की अति भारी ।'

नाम से श्रीमद्भागवत की टीका लिख कर भेजी और उसकी खेपड़ा प्रमाणित की ।^१ ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सका ।

५—वेदस्तुति-टीका

मुगलदास ने विश्वनाथसिंह के संस्कृत-ग्रन्थों में इस कृति का उल्लेख किया है ।^२ सरस्वती-कोष-भाण्डार, रीवा में १२ पन्ना में लिखित एक 'निकुञ्जज्योती-वेद-स्तुति' की टीका (खण्डित) प्राप्त है । इसका लेखक 'हरिवंश' का भक्त और 'जयसिंह-मुनि' है ।^३ ये विश्वनाथसिंह ही प्रतीत होते हैं । उक्त वेदस्तुति का श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में वेदों द्वारा की हुई कृष्ण की स्तुति से सादृश्य है ।

६—रामगीता की प्रबोधिका टीका

बिन्ताहरण चक्रवर्ती ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में राम के श्रेष्ठतम को स्थापना की गई है ।^४ रामचरित में ५५ पन्ना की इस 'ग्रन्थ' को सम्पूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है । स्कन्दपुराण के निर्वाण खण्ड में ३२, ३३ और ३४ अध्यायों में श्रीराम की बन्दना की गई है । विश्वनाथसिंह ने इन्हीं तीनों अध्यायों की प्रबोधिका टीका लिखी है । मूल ग्रन्थ में शुक-तनक-संवाद के रूप में यहाँ राम-तत्त्व

१. रामरसिकावली : पृष्ठ ९८७ :

'एक समय महं काशि-नरेश । करि देवी भागवतहिं बैसा ॥
विश्वनाथ के निकट पठायो । यह भागवत सत्य अस गायो ॥
दुर्जनमुख-वपेटिका नामा । ग्रन्थ पठायो अतिहिं ललामा ॥
पितु किय चण्ड-भास्कर ग्रन्था । श्री भागवत सत्य सतपंथा ॥'
मुगलदास (विश्वनाथसिंह-चरित्र) ॥ अनुसार दुर्जनमुख के द्वारा प्रेषित 'वपेटिका-ग्रन्थ' के उत्तर में चण्ड-भास्कर भेजा गया था, जिसमें राम और कृष्ण में अमेद स्थापित किया गया । ४ पन्नों का एक 'दुर्जनमुख-वपेटिका' नामक ग्रन्थ भाण्डार में (बस्ता ८०।१३।२) है, जो रामाश्रम-कृत है ।

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र ।

३. बस्ता ८०।२२: 'श्री राधावल्लभो विजयते :—'हरिवंशं हृदि न्यस्य—
जयसिंहमुनिः धोमान्—।'

४. संस्कृत वसंतं अ० रा० ए० सो० : कलकत्ता : अक्टूबर : १९४० :
भाके० १।५१० : कैंटे० अथ-१०।२२ स० को० मा० रीवा में विश्वनाथसिंह के संस्कृत ग्रन्थों की सूची में इस ग्रन्थ का नाम है, पर ग्रन्थ नहीं है ।

का निरूपण है। कथा रावणवध के पश्चात् अयोध्या में राज्य करते समय श्रीराम की स्तुति के रूप में है। ये तीन स्तुतियाँ क्रमशः रुद्रगीता, विष्णुगीता और ब्रह्मगीता भी हैं। रामवन की प्रति का लिपिकाल संवत् १८९४ (१८३७ ई०) है किन्तु पुष्पिका में 'महाराजकुमार' शब्द होने हैं। रचनाकाल १८६१ वि० से पूर्व का होगा। टीकाकार ने अपना नाम 'देवदास' भी लिखा है।^१

७. भक्तिरसामृत-सिन्धु-टीका

सनातन-गोस्वामी-कृत भक्तिरसामृत-सिन्धु नामक ग्रंथ की विश्वनाथसिंह ने सं० १८८४ (१३२७ ई०) में टीका लिखी। संवत् १८६८ में लिखित इसकी एक प्रति उपलब्ध हुई है।^२

(ग) काव्य-ग्रन्थ

१. सङ्गीतनरपुनन्दनम् ।

२. रामचन्द्राह्निकम् ।^३

१. ग्रन्थ क्रमाङ्क २३८२ : टीका का आरम्भ इस प्रकार होता है—

‘श्रीरामं हनुमन्तं गणेशं चक्रुरं तथा ।

प्रियादासं गुहं नत्वा कुर्वे टीका प्रबोधिकाम् ॥

कृत्वा श्रीरघुनाथपादकमले बुद्धिप्रदं वन्दनं

भीताया रघुनन्दनस्य कुर्वते श्रीदेवदासमित्रः ।

टीकां नाम प्रबोधिकां परतर-श्रीरामभक्तिप्रदा-

मज्ञानान्ध-तमोनिवृत्ति-कर्णी मोदप्रदां सर्वदाम् ॥ २ ॥

..... स्कन्दपुराणे निर्वाणखण्डेऽध्यायवितयेन—शुकसनकसंवादमाश्रित्य श्रीरामं निरूपयितुं सनकस्य प्रश्नमुत्थापयति... ।’

प्रथम अध्याय के अन्त में मूल—

‘इति श्रीस्कन्दपुराणे निर्वाणखण्डे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।’

टीका—‘इति श्रीमन्महाराजकुमार.....’

तृतीय अध्याय के अन्त की पुष्पिका—

‘इति श्री-महाराजाधिराजकुमार श्रीविश्वनाथसिंहदेवविरचितायां श्रीरामगीताटीकायां प्रबोधिकायां तृतीयोऽध्यायः । श्रीराम । संवत् १८६४ के साल । समाप्तवर्षाय ग्रन्थः ।’

२. सन् १८५६ में श्री रघुनाथ शास्त्री द्वारा रोवा में प्राप्त यह ग्रन्थ नागरीप्रचारिणी सभा, काशी को भेजा गया ।

३. सङ्गीत रघुनन्दन और रामचन्द्राह्निक के परिचय के लिए देखिये आगे अध्याय ५ (ख) ।

३. गोपालचम्पू^१ ।

४. आनन्दरघुनन्दननाटकम्^२ ।

५. वासुदेव-सहस्रनाम स्तोत्रम् । १७ पत्रों में सम्पूर्ण इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि रोवा में सुरक्षित है । इसमें २३० श्लोक हैं । यह वासुदेव की नामावली है । पुष्पिका में 'महाराजाधिराज' शब्द है और ग्रन्थ का लिपिकाल सं० १८६६ (१८४२ ई०) है । अतः रचनाकाल सं० १८६१ और १८९९ वि० के बीच होगा ।^३

(घ) लक्षण-ग्रंथ

१. धनुर्विद्या

रोवा में यह सम्पूर्ण ग्रन्थ १८६ श्लोकों में २२ पत्रों की पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्त है । इसमें धनुष के प्रयोग की विधियाँ हैं । इसी नाम से विश्वनाथसिंह का एक ग्रंथ हिन्दी पद्यों में भी प्राप्त है, जो सं० १८६६ (१८४२ ई०) की रचना है ।

२. धर्मशास्त्र (त्रिंशत्श्लोकी)

आचार-पद्धति पर विश्वनाथसिंह का यह ग्रन्थ ३० श्लोकों और २४ पत्रों में रोवा में प्राप्त है ।^४

विश्वनाथसिंह के हिन्दी-ग्रंथ^५

हिन्दी के क्षेत्र में विश्वनाथसिंह की कृतियाँ और भी अधिक हैं । इनकी सूची इस प्रकार है :—

१. हि० कला० सं० लिट्० : पृष्ठ ५१८-१९ : परि० ५४२ तथा टिप्पणी, मित्रा० १८७० ।

२. देखिये आगे अध्याय ६ ।

३. स० को० भा० : बस्ता १३० । १२८ : इस स्तोत्र में वासुदेव के सभी नाम 'वकार' से प्रारम्भ होते हैं, अतः इसे वकारादि-वासुदेव-सहस्रनाम स्तोत्रम् कहा गया है । अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्रीमहाराजाधिराज—विश्वनाथसिंहज्ज्योतिर्विरचितं वकारादि-श्रीवासुदेव-सहस्रनाम-स्तोत्रं समाप्तम् । लिपि शुक्ल महादेवराम । सं० १८६६ के सला (साल) मित्रि चैत्र शुक्ल ३ बुधवासरेकः ॥'

४. स० को० भा० ।

५. वही, बस्ता १२ । ११५ ।

६. इस जानकारी के स्रोत निम्नलिखित हैं—

(१) स० को० भा०, रोवा की सूची; (२) आचार्य रामचन्द्र ६ व०

१. आनन्द-रघुनन्दन नाटक^१

यह नाटक पहले हिन्दी में १८२० से १८३० ई० के बीच लिखा गया । यह हिन्दी साहित्य का प्रथम नाटक कहा जाता है ।

२—शान्तिशतक (लिपिकाल १८३८ ई०), ३—द्रुवाष्टक (८ कवित्त, लिपि० १८४० ई०), ४—धनुषविद्या, ५—गोतावली (पूर्वार्द्ध), ६—रामायण (आनन्द रामायण या भुशुण्डीरामायण १८२३ ई० में पूर्व रचित), ७—भजन (या फुटकर भजन या जयोध्या जी के भजन), ८—अष्टयामआह्निक (१८१७ ई०), ९—गोतरघुनन्दन (चैतन्य सम्प्रदाय के गोसाईं जमुनादास द्वारा प्रणीत काव्य) की प्रमाणिका टीका (१८४४ ई०), १०—परमतरङ्गप्रकाश, ११—राग-सागर, १२—परमधर्म-निर्णय, १३—कबीरदास-कृत बीजक की पाक्षण्ड-खगिहनी टीका, १४—अनुभव-पर-प्रदर्शनी टीका (कबीरदास के १२ ग्रन्थों की टीका), १५—विश्वभोजन प्रकाश, १६—वेदान्त-पंचक (सटीक), १७—उत्तम काव्य-प्रकाश, १८—गंगाष्टक, १९—अवोधनीति, २०—रामचन्द्र की सवारी, २१—विनयपत्रिका की टीका, २२—हनुमान जी के कवित्त, २३—मृत्तार के कवित्त, २४—अयोध्या-महोत्सवर्णन (या माहारम्य १८४४ ई०), २५—चित्रकूट माहारम्य, २६—दानमयूख, २७—कृष्णाह्निक, २८—विनयमाला आदि ।^२

पुष्पल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : काशी : २०१८ : पृष्ठ ५७८ ; (३) महाराणा उदयपुर (मेवाड़) पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों की सूची (श्री एम० एस० मेनेरिया द्वारा स्व० श्री पी० के० गोडे, सहायक ब्यूरेटर, भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च ई०, पुना की १९४६ ई० में प्रेषित) पृष्ठ १८८-२८६ ; (४) अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की सूची (श्री के० एम० शर्मा, ब्यूरेटर द्वारा श्री चित्राहरण चक्रवर्ती की १९३९ ई० में प्रेषित); (५) हिन्दी पाण्डुलिपियों के वार्षिक विवरण, प्रयाग, 'सन् १९०३, १९०४, १९०५, और १९०७ ई०); (६) बाबू क्यामसुन्दरदास द्वारा प्रस्तुत वार्षिक विवरण, प्रयाग, सन् १९१२ तथा १९१४ ई० ; (७) रामबहादुर होरालाल द्वारा प्रस्तुत हिन्दी पाण्डुलिपियों का शोध-विवरण, प्रयाग, १९२९ ई० ; (८) चित्राहरण चक्रवर्ती : 'संस्कृत वर्षा०' ; (९) गोडे 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वर्षा०' ।

१. प्रकाशित : १९६० ई० : विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, रीवा । साथ ही देखिये—हि० सा० को० भाग २ : पृष्ठ ३० ।

२. देखिए मेरा लेख—'विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ' : 'मध्यप्रदेश-सन्देश' : खालियर : २४ मार्च, १९४२ : पृष्ठ १५-१८ ।

रघुराजसिंह के संस्कृत-ग्रंथ

महाराज रघुराजसिंह^१ के निम्नलिखित संस्कृत-ग्रन्थ उपलब्ध हैं^२—

- (१) सुवर्मा-विलासः ।
- (२) जगदोशघनकम् ।
- (३) शम्भुशतकम् ।
- (४) नर्मदाष्टकम् ।
- (५) लोकनायाष्टकम् ।
- (६) रघुराज-मञ्जल चन्द्रावली ।

सातवाँ ग्रन्थ राजरञ्जन, जिसमें रथ-सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है, लुप्त है । महाराज ने स्वयं इन ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।^३

१. जन्म—कात्तिक कृष्ण ४, गुरुवार, सं० १८८० (१८२३ ई०) । राज्या-
रम्भ सं० १९११ (१८५४ ई०) । मृत्यु—माघ कृष्ण ९, सं० १९३६
(४ फरवरी, १८८० ई०) ।

२. विवरण के लिए देखिये आगे अध्याय ४ (५-ख) ।

३. रघुराजसिंह-कृत रामस्वयंवर : प्रकाशित : बम्बई : सं० १९८० :
पृष्ठ ४ :

‘रथों संस्कृत-ग्रन्थ कछु, शतक एक जगदीश ।

समा सुवर्मा-विलास इक, शम्भुशतक मठ ईश ॥

रथों राजरञ्जन बहुरि, सब रस मतन प्रकाश ।’

तथा पृष्ठ ९७००-७२ : ‘रथिर राजरञ्जन सुरबानी ।’

सूचना-गिभाग, रोवा से १९५७ में प्रकाशित पुस्तक ‘द्वितीया-मुस्तकाल-
य’ में द्वितीया के पुराने महल में उपलब्ध ग्रन्थों की सूची में संस्कृत
ग्रन्थों में राजरञ्जन (क्र० ६६४) का उल्लेख है किन्तु यह रघुराज-
सिंह कृत नहीं है । यह किसी माधव कवि द्वारा रचित हस्ति-विज्ञान-
परक ग्रन्थ है । श्री वृजकिशोर त्रिवेदी, रोवा ने सूचित किया है कि
रामवन में रघुराजसिंह-कृत संस्कृत-ग्रंथ यादवेन्द्राष्टक की ९ पद्यों की
१ पत्रा की पाण्डुलिपि सुलभ है । यह ठीक हो तो संस्कृत-ग्रन्थों की
संख्या ८ होगी । साथ ही, देखिये मेरा लेख ‘रघुराजसिंह की संस्कृत
रचनाएँ’ : ‘विश्वशिक्षा’ : रोवा : १९५६ ।

रघुराजसिंह ने श्रीमद्भागवत की हिन्दी (वज्रभाषा) टीका सं० १९०७ (१८५०) में लिखी । रोवा में एकादश^१ और द्वादश^२ स्कन्धों की टीकाएँ सुरक्षित हैं । प्रारम्भिक दश स्कन्धों की टीकाएँ नहीं मिलीं । इस टीका का नाम 'व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका' है और यह महाराज विश्वनाथसिंह द्वारा संशोधित है । द्वादश-स्कन्ध के आरम्भ में विश्वनाथसिंह द्वारा की हुई चन्दनाएँ संस्कृत में प्राप्त हैं ।

कुछ हिन्दी ग्रन्थों में देवस्तुतियाँ हिन्दी-छन्दों में किन्तु संस्कृत भाषा में प्राप्त हैं^३ तथा पुष्पिकाएँ भी संस्कृत की शैली में हैं ।^४

रघुराजसिंह के हिन्दी ग्रन्थ

रघुराजसिंह का कविरस मुख्यतः हिन्दी के क्षेत्र में प्रस्तुत हुआ है । उनके हिन्दी काव्य-ग्रन्थ निम्नलिखित हैं^५—

१. स० को० 'भा० (वस्ता ८०।१२) : ३३५ पत्रा । अन्तिम पुष्पिका—'इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सिद्धिशीमहाराजाधिराज-जयसिंह-देवामञ्ज-सिद्धिशी - महाराजाधिराज-विश्वनाथसिंहजुदेवामञ्ज-मुखराम - रघुराजसिंहजुदेव-कृत-व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिकायां समाख्यायां टीकायां सात-संशोधितायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ सं० १६११ के मित्ती चैत्र सुदी ४ शनी ॥ । इदं पुस्तकं मकादशेन लिख्यतं दामोदरेण ॥ श्री सीताराम ॥ श्री राधाकृष्ण ॥'

२. वही, वस्ता ८०।२१।५७ पत्रा । चन्दना में—

'मास्वदिसिंहासनस्य स्मितयुतवदनं विश्वनाथोऽहमीडे ।'

३. 'रामस्वयंवर', पृष्ठ ९७७ : 'तव पदपङ्कजमिष्टदं, ये व्मायन्ति परेश ।
तेषामिह भवसागरे, न भयं भवति रमेश ॥
नमोऽभ्युताय राघवाय रावणान्तकारिणे ।....'

४. बान्धवाम्बुनिधि : अध्यायो के अन्त में पुष्पिकाएँ—

'इति सिद्धिशीमन्महाराजाधिराज-बान्धवेद-विश्वनाथसिंहात्मज—
रघुराजसिंह जु देव कृते..... ।'

५. देखिये—स० को० भा०, रोवा में प्राप्त रघुराजसिंह के हिन्दी ग्रन्थों की सूची । ९ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं । साथ ही देखिये हिन्दी-साहित्य-कोष : भाग २ : सं० २०२० पृष्ठ ४४२ : तथा तुलसी-संग्रहालय, रामवन (सतना) रघुराज-वंश के ग्रन्थ ।

(क) प्रबन्ध-काव्य

१. इन्दिषो परिणय—२१ सर्गों का महाकाव्य, रचनाकाल १८५० ई० । प्रकाशित रोवा १८७९, बम्बई १८९६, १९२४ ई० ।

२. धामन्दाभ्युनिधि (भाषा-भागवत—पुराण-कथा, १८५०-५४ ई०) प्रका० रोवा १९०१ ई० ।

३. रामरसिकावली (भक्तमाला)—विरचित, १८६४ ई० । प्रका० काशी १८७०, बम्बई १८६३ ई० तथा ३ आवृत्तियाँ ।

४. मृगशयशतक (रघुपति शिकार शतक)—अष्टयाम, १८६८ ई० । प्रका० बनारस १८८९ ई० ।

५. रामस्वयंवर—२३ प्रकरणों का महाकाव्य, १८७५-७७ ई० । प्रका० रोवा १९००, बम्बई १९०३, १९३३ ई० ।

६. सुन्दरशतक (हनुमत्शतक)—सप्तशतक, १८४७ ई० । पाण्डु० राम-वन । ४२ कवित्त रामस्वयंवर में सम्मिलित ।

(ख) मुक्तक

७. रघुराजविलास (पदावली)—प्रका० बम्बई १९०४ ई० ।

८. जगन्नाथशतक—१८५६ ई० । प्रका० बम्बई १८५७ ई० ।

९. वितथत्रिका—१८५० ई० । पाण्डुलिपि स० को० भा० ५।१७।१ खण्डित, ८५।६३६ सम्पूर्ण ।

१०. वितथप्रकाश—स. को. भा. खण्डित, ५ पत्रा पत्र १९—४९ ।

११. विप्रकूट-अष्टक ।

१२. विप्रकूट-महिमा ।

१३. गङ्गाशतक ।

१४. यदुराजविलास (सन्दिग्ध) ।

} अनुपलब्ध

(ग) अन्य

१५. नाटक—परमप्रवीण—स. को. भा. ५।६८, खण्डित ।

१६. विष्णुसहस्रनाम (पद्य) प्रका० बनारस १८६८ ई० ।

१७. भक्तिविलास (लक्षण)—१८७१ ई० । प्रका० रोवा १८७१ ई० ।

१८. पद्यशतक—(अनुपलब्ध, सन्दिग्ध) ।

१९. तात्पर्य-टीविका-बाल्मोकि-रामायण को हिन्दी टीका : नागरो-प्रचारिणी-समा, काशी । (सम्भवतः विश्वनाथसिंह-कृत तात्पर्य-टीका का हिन्दी अनुवाद ।)

रघुराजसिंह ने आनन्दाम्बुनिधि के अन्त में अपनी काव्य-रचना के सहायक-विद्वानों के नाम दिये हैं। इसमें तो रत्नाचार्य^१ संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् थे। उन्होंने रघुराजसिंह के ग्रन्थ जगदीशशतक की टीका लिखी है^२। संस्कृत के अन्य विद्वान् समासर्षों में पौराणिक बिहारीराम, वासी ३ विश्वनाथ शास्त्री, गुरु बलदेवराम अग्निहोत्री, मैहर के स्वामी अवधररण, पूर्वोक्त विद्यागुरु रामानुजशास्त्र एवं लक्ष्मणबाग के महन्त स्वामी लक्ष्मीप्रपन्न थे। महाराज के सेनापति दादू बलदेव सिंह ने भारत-भ्रमार्थ प्रेस का सञ्चालन करते हुए उत्प्रेषकों शरी के अन्तिम भाग में तथा बीसवीं शती के आरम्भ में महाराज के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कराये। रघुराजसिंह के पुत्र वैकटरमणसिंह के राज्यकाल में भी ग्रन्थों का प्रकाशन होता रहा।

काव्यों के भेद-प्रभेद एवं वर्गीकरण

उपयुक्त साहित्य में से बहुत से ग्रंथ संस्कृत टीकाएँ, दार्शनिक विवेचन, लक्षणग्रन्थ आदि होने से हमारी आलोचना की परिधि में नहीं आते। थोड़े उल्लिखित हिन्दी रचनाओं से भी आलोचना का सम्बन्ध नहीं है। यहाँ हमारे समीक्षात्मक मूल्याङ्कन की सीमा में वे ही ग्रन्थ आते हैं, जिनकी रचना का लक्ष्य प्रचलित: बोधार्थक सामग्री प्रस्तुत करना नहीं है, अपितु जो भावप्रधान, रस-प्रबण, अलङ्कृत, ललित एवं हृद्य है और इसीलिए हम जिन्हें काव्य कह सकते हैं। इनका वर्गीकरण यहाँ प्रस्तुत किया जायगा।

संस्कृत के आचार्यों ने काव्य का प्रथम विभाजन गद्य और पद्य के रूप में किया है^३। दूसरा महत्त्वपूर्ण विभाजन उन्होंने अनिवृद्ध और निवृद्ध नाम से

१. 'बलिन यादवादि के वासी। अति सुधील सुन्दर मति रासी ॥

जिनकी नाम अनन्ताचारी। तिनके पुत्र नृसिंहाचारी ॥

रंगाचार्य पुत्र है तिनके। शील स्वभाव अनूपम जिनके ॥

व्याय वेदान्त व्याकरण आदिक। सकल शास्त्र ज्ञाता मर्यादिक ॥

जति घंटावतार परकासा। तिनके शिष्य सुबुद्धि विशाला ॥

२. जगदीशशतक की टीका के आरम्भ में रत्नाचार्यकृत श्रद्धा है। अन्त में समर्पण का श्लोक इस प्रकार है—

‘श्रीबान्धवेश-रघुराज-विनिर्मितस्य
नीलाद्रिनाथ-शतकस्य महार्घपूर्तेः।

बाधूल-सत्कुलभवो विरचय्य

रत्नाचार्यो जगत्पतिपदेर्जयति स्म टीकाम् ॥’

३. मामहः काव्यालङ्कारः कश्चि संस्कृत सितरीज ६१ : १९८५ वि-
प्रथम परिच्छेद : श्लोक १६ :

‘शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यञ्च तद् द्विधा ।’

किया है ।^१ यद्यपि स्पष्टतः कहा नहीं गया, ती भी अनिवद्ध काव्य के भेद-प्रभेद केवल पद्य में ही बतलाये गये हैं ।

भामह ने अनिवद्ध काव्य के अन्तर्गत गाथा और श्लोक-भावादि दो प्रभेदों की गणना की है ।^२ दण्डी ने मुक्तक, कुलक, कोप और सङ्घात ऐसे चार प्रभेदों की चर्चा कर इन्हें सर्गबन्ध के अङ्ग मान लिया है और उनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानी ।^३ धामन ने अनिवद्ध के प्रभेदों का उल्लेख नहीं किया । राजशेखर ने शरीर-भेद छोड़कर विषय के अनुसार मुक्तक और प्रबन्ध दोनों के १—शुद्ध, २—चित्र, ३—कथोत्प, ४—संविधानकम्, ५—आख्यानकान् प्रभेद लिखे ।^४ आनन्दवर्धन ने अनिवद्ध और निबद्ध (या मुक्तक और प्रबन्ध) दोनों के प्रभेद एक साथ गिना दिये हैं । अभिनवगुप्त ने लोचन टीका में अनिवद्ध के अन्तर्गत आनन्दवर्धन द्वारा बतलाए हुए इन प्रभेदों को दो खण्डों में बाँटा है । पहला खण्ड है मुक्तक, जो मुक्त हो और दूसरे से स्पृष्ट न हो ।^५ अग्निपुराण के अनुसार एक ही श्लोक, जो चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ हो, मुक्तक

१. विश्वेश्वर (आचार्य) : हिन्दी काव्यालङ्कारसूत्र (धामन) : आरमा-
राम एव संघ, दिल्ली : १६५४ ई० : अधिकरण १ अध्याय
३।२१, २७ :

‘काव्यं गद्यं पद्यञ्च—तदनिबद्धं निबद्धञ्च ।’

२. भामह : काव्या० : १।३० : ‘अनिबद्धं पुनर्गाथा-श्लोकमात्रादि..... ।’
३. दण्डिन् : काव्यादर्श : भाष्यकारक ओ० रि० इ० : पूना : १९१८ :
प्रथम परिच्छेद श्लोक ११-१२ ‘मुक्तकं कुलकं कोपः सङ्घात इति
छादुः । सर्गबन्धांशरूपश्चात् ।’

४. सारस्वत-वैद्यनाथ शर्मा : काव्यमीमांसा (राजशेखर) : बिहार
राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना : १९५४ : अध्याय ९ : पृष्ठ ११४ :
‘स पुनर्दिष्टा । मुक्तकप्रबन्धविषयत्वेन । तावपि प्रत्येकं पञ्चधा ।
शुद्धः चित्रः कथोत्पः संविधानकम् : आख्यानकवाचि ।’

५. धन्यालोक (आनन्दवर्धन) : अभिनवगुप्तकृत लोचन व्याख्या सहित :
दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरंग परब : काव्यमाला २५ : निर्णय-
सागर प्रेस बंबई : १८९१ अधोत ३ श्लोक ७ की वृत्ति :
‘यतः काव्यस्य प्रभेदा मुक्तकं संस्कृतप्राकृतपञ्चानिवद्धम् । सन्दानितक-
विरोपक-कलापक-कुलकानि पर्यायबन्धः ।—मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव
रसबन्धामिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते ।—पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन
रसचर्चणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।’

कहलाता है ।^१ धानन्दवर्धन के अनुसार कवि लोग मुक्तकों को भी रसवन्ध करते हैं । मुक्तक में पूर्वापर-निरपेक्ष रसनिष्पत्ति होती है । अर्थात् मुक्तक ऐसा एक ही श्लोक है जो अपने विषय की पूर्ति में स्वतन्त्र हो, अन्य श्लोक की अपेक्षा न करे । यह मुक्तक प्रबन्धों के मध्य भी रहता है । इसकी रचना संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश किसी भी भाषा में हो सकती है ।^२ आमह ने इसी मुक्तक को श्लोक लिखा है ।^३ कभी-कभी वाक्य दीर्घ होने से एक ही श्लोक में क्रिया की समाप्ति नहीं होती । तब दो श्लोकों में सम्पूर्ण होने वाले मुक्तक को सन्दानितक, तीन में विशेषक और चार में कलापक कहा जाता है ।^४ विश्वनाथ दो श्लोकों के मुक्तक का नाम युग्मक और तीन का सन्दानितक बतलाते हैं । पाँच श्लोकों में समाप्त होने वाले मुक्तक को कुलक कहा जाता है ।^५ हेमचन्द्र और नमिसाधु के मत से यह कुलक पाँच से अधिक श्लोकों तक का हो सकता है^६ ।

भानुकर और रामचन्द्र भट्ट के मुक्तक

पौष्टे हमने 'बभेनसण्ड में साहित्य-निर्माण की गतिविधि' के अन्तर्गत

१. अग्निपुराण : अध्याय ३३७ :

'मुक्तकं श्लोक एवैकवचनकारणतः सताम् ।'

२. ध्वन्यालोक : ३।७ अग्निवचनमुक्तकव्याख्या : '—मुक्तकमप्येन नालिङ्गितम् । तेन स्वतन्त्रतया परिणामान्निराकाङ्क्षापर्यन्तं प्रबन्धमप्यवति मुक्तकमितिमुच्यते । मुक्तकस्यैव विशेषणं संस्कृतेत्यादि ।'

३. काव्यालङ्कार (आमह) : १।३० ।

४. काव्यानुशासन : (हेमचन्द्र) शिवदत्त और परब । काव्यमाला ७० : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९०१ : अध्याय ८ पृ० ३४० : 'एकद्वित्रिचतुष्टयान्धोर्मिमुक्तक-सन्दानितक-विशेषक-कलापकानि ।'

५. साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) : शालग्राम शास्त्री (हिन्दी व्याख्या) : मोतीलाल बनारसीदास : वाराणसी : १९५९ : पृष्ठ परिच्छेद : श्लोक ३१४-३३ : ।

'छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्ततेन मुक्तकम् ।

द्राव्यां तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते ।

कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम् ॥

६. काव्यानुशासन : अ० ८ : 'पञ्चादिभिरष्टतुर्दशान्तिः कुलकम् ।'

तथा काव्यालङ्कार (रुद्रट) : काव्यमाला २ : निर्णयसागर प्रेस :

बम्बई : १९२८

अध्याय १६।३३ : नमिसाधु की टीका : पृष्ठ १७२ :

चोरमानु से सम्बद्ध मानुकर के तीन स्फुट श्लोकों की चर्चा की है। अनेक सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्कलित होते हुए भी ये परस्पर-निरपेक्ष और क्रम-रहित हैं। इसी प्रकार रामचन्द्र मठ के एक श्लोक की भी चर्चा हुई है। इन चारों श्लोकों को अनिबद्ध काव्य की प्रथम कोटि में रखते हुए 'मुक्तक' मान्य कहा जा सकता है।

डा० बलदेव उपाध्याय ने मुक्तक काव्यों के लौकिक और धार्मिक दो रूप माने हैं।^१ सामान्यतः मनुष्य की स्तुति और विशेषतः राजाओं या राजवंशों की प्रशस्ति के रूप में लिखित स्फुट श्लोक लौकिक मुक्तक हैं तथा देवों की स्तुति के रूप में लिखित स्तोत्र या स्तुति-गीत धार्मिक मुक्तक हैं। इस आधार पर उपर्युक्त सम्बद्ध मुक्तक लौकिक पद्धति के हैं।

अनिबद्ध काव्य का दूसरा सङ्ग है मुक्तकों का क्रम-सापेक्ष सङ्कलन। इस सङ्कलित रूप की ओर ही मामह ने 'गाथा' शब्द से संकेत किया है, जैसा पीछे लिखा जा चुका है। आनन्दवर्धन ने इसी को पर्यायबन्ध कहा है, जिसे स्पष्ट कर अमिनवगुप्त ने बतलाया है कि बोध में क्रिया समाप्त होने पर भी बसन्त-वर्णन आदि एक वर्णनीय (विषय) के उद्देश्य से प्रवृत्त (लिखित या सङ्कलित) मुक्तकों के एकत्र रूप को पर्यायबन्ध कहा जायगा।^२ हेमचन्द्र का भी कथन है कि मुक्तकों का विषयानुसार सङ्कलन होता है, जिसे पर्या कहते हैं। यह सङ्कलन कोषों में होता है। स्वकृत तथा अन्य कवि-कृत सूक्तियों का सङ्कलन हो कोष है, जैसे सप्तशती आदि। जब एक कवि द्वारा एक ही विषय पर एक छन्द में रचे हुए मुक्तकों को एकत्र किया जाय, तब वह रचना वृन्दावन या मेघदूत काव्य की भाँति सङ्घात कहलाती है।^३

१. संस्कृत-आलोचना : प्रकाशन म्यूरो : सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश : १९५७ : पृष्ठ ६५ मुक्तक-मेघ, साथ ही देखिये-हिन्दी साहित्य कोष : भाग १ : सं० २०१५ : पृष्ठ : ८६६।

२. ध्वन्यालोक की ओचन टीका : काव्यमाला : बम्बई : १८९१ : उ० ३।७ : 'अवान्तर-क्रिया-समाप्तावपि वसन्तवर्णनाद्येकवर्णनीयोद्देशेन प्रवृत्तः पर्यायबन्धः।'

३. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३४०-४१ : 'मुक्तकानामेव प्रवृत्तिकोपनिबन्धः। अवान्तरवाक्यसमाप्तावपि वसन्ताद्येकवर्णनीयोद्देशेन मुक्तकानामुपनिबन्धः पर्या। सा कोशेषु प्रचुरं दृश्यते। स्व-र-कृत-सूक्ति-समुच्चयः कोशः यथा सप्तशतकादिः। -----एकप्रवृत्ते एक-कविकृतः सूक्तिसमुदायो वृन्दावनमेघदूतादिः सङ्घातः।'

नमिसाधु के मत से भी मुक्तकों का ही विषयानुकूल सङ्कलन पर्याययोग या कोष कहलाता है ।^१ विश्वनाथ ने परस्पर-निरपेक्ष श्लोकों के समूह को कोष कहा है तथा उसके प्रज्या क्रम से सङ्कलन अर्थात् सजातीय मुक्तकों के एकत्र सन्निवेश को मनोरम बतलाया है ।^२ इस प्रकार एक विषय पर आश्रित मुक्तकों के सङ्कलित रूप के लिए पर्यायबन्ध, पर्या, पर्याययोग और कोष नाम मिलते हैं ।

हेमचन्द्र ने एक अन्य प्रभेद 'संहिता' की चर्चा की है, जो यदुवंश, दिलीपवंश आदि की भाँति विप्रकीर्ण वृत्तों का एकत्र सन्निवेश हो ।^३ यही सङ्कलन एक कवि के द्वारा एक छन्द में सोमित होने पर सङ्घात कहा जायगा ।

हेमचन्द्र ने सङ्घात-प्रभेद को अनिवद्ध काव्यों के अन्तर्गत स्पष्टतः मानते हुए मेघदूत को उदाहरणार्थ रखा है, जब कि विश्वनाथ ने मेघदूत को खण्डकाव्य के रूप में उदाहृत किया है ।^४ काव्यादर्श की टीका में हरिनाथ ने सङ्घात के उदाहरणार्थ मेघदूत को प्रस्तुत करते हुए 'कल्पितवस्तुक' शब्द का प्रयोग किया है^५, अर्थात् सङ्घात में कथा का आधार स्वीकार किया है । अतः हम यहाँ मान कर चलते हैं कि मेघदूत इसी अर्थ में सङ्घात है कि वह एक कवि द्वारा एक विषय पर एक ही छन्द में रचे हुए श्लोकों का सङ्ग्रह है, अन्यथा वह कथाश्रित एवं नायकाश्रित होने से प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य है । उपर्युक्त आधारों पर विचार करने पर अनिवद्ध काव्य की क्रम-सापेक्ष-सङ्कलन की द्वितीय कोटि के अन्तर्गत हमें बघेलखण्ड के ९ और काव्य प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. काव्यालङ्कार (रुद्रट) : काव्यमाला २ : बंबई : १९२८ : नमिसाधु की टीका : 'तथा मुक्तकानामेव प्रघट्टकोपनिबन्धः पर्याययोगः कोषः ।'

२. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९५६ : पृष्ठ परि० श्लोक ३२९-३० : 'कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादभ्योपन्यासपेक्षकः ।

प्रज्याक्रमेण रचितः स एवातिमनोरमः ॥'

वृत्ति-सजातीयानामेकत्रसन्निवेशो प्रज्या यथा मुक्तावल्यादिः ।'

३. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३४१
'विप्रकीर्ण-वृत्तानामेकत्रसन्ध्यां यदुवंश-दिलीपवंशादिवत्-संहिता ।'

४. साहित्यदर्पण : ६।३२९ : 'खण्डकाव्यं... यथा मेघदूतादिः ।'

५. काव्यादर्श (दण्डिन्) : पूना १९३८ : १।१३ : रत्नाचार्य रट्टिशास्त्री द्वारा सङ्घृत हरिनाथ की टीका—'कल्पितवस्तुक एकच्छन्दो-निर्घृष्टः सङ्घातः मेघदूतादिः ।'

२. रामचन्द्र-यशःप्रबन्धः—

राजा रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति में लिखे हुए ३७ श्लोकों का यह सङ्कलन लौकिक पद्धति का कोपग्रन्थ है। इसमें 'प्रबन्धः' शब्द पद्य-बन्धन मात्र का द्योतक है, चरित-बन्धन का नहीं। विश्वनाथ ने गद्य-पद्यात्मक राजस्तुति को विरुद्ध माना है।^१ यदि अनिविद्ध कोटि में केवल पद्यात्मक राजस्तुति को भी विरुद्ध माना जाय तो इस ग्रन्थ को विरुद्ध या प्रशस्ति-प्रभेद में सीमित करना अधिक उपयुक्त होगा।

३. रामपरत्वम्

विश्वनाथसिंह (१८१४-५४ ई०) द्वारा पद्य-गद्य के रूप में अनन्ताचार्य के समीप प्रेषित यह एक पत्र है, जिसमें प्रारम्भ के ८ श्लोक अनन्ताचार्य की स्तुति में और परवर्ती ८ श्लोक पत्र-वृत्तान्त के रूप में प्राप्त है। इसके अनन्तर गद्य-भाग में राम का ब्रह्मत्व प्रतिष्ठापित है, जो दार्शनिक विवेचन है। यहाँ विचारार्थ केवल प्रारम्भिक श्लोकों का काव्यत्व है। अतः इन श्लोकों को भी लौकिक पद्धति के कोप-प्रभेद में रखना उचित है। यदि लौकिक व्यक्ति की स्तुति को विरुद्ध या प्रशस्ति माना जाय तो यह भी वही है।

४. वघेल-वंश-वर्णनम्

इस ग्रन्थ में रूपणि मिश्र (१६७८ ई०) ने १०० श्लोकों में बघेल राजाओं का प्रशस्ति-परक वंश-वर्णन किया है। ये श्लोक भी अपने आप में सुवृत्तक हैं, जो क्रम-सापेक्ष रूप में सङ्कलित हैं। अतः हेमचन्द्र के मत का परिपालन करते हुए हम इस कृति को 'संहिता' प्रभेद के अन्तर्गत एक वंशायत विरुद्ध या प्रशस्ति मानते हैं।

५. जगदीश-शतकम् ६. शम्भू-शतकम् ७. लोकनाथाष्टकम्

८. नर्मदाष्टकम्

धार्मिक पद्धति के मुक्तकों के संकलित रूप हमें आलोच्य काव्यों में शतक और अष्टक रूप में प्राप्त हैं। रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) के द्वारा भिन्न-भिन्न वृत्तों में रचित, देवपरक स्तुति-गीतों के इन चार क्रम-सापेक्ष सङ्कलनों-जगदीशशतकम्, शम्भूशतकम्, लोकनाथाष्टकम् और नर्मदाष्टकम् को हम धार्मिक पद्धति के कोप या पर्यायबन्ध प्रभेद के अन्तर्गत रख सकते हैं।

९. सुधर्माविलास

रघुराजसिंह का ग्रन्थ सुधर्माविलास भक्तिदर्शन के एक साम्प्रदायिक मत के

१. साहित्यदर्पण : धाराणसो : १९४६ : परि० ६।३३७

'गद्यरचनया राजस्तुतिर्विरुद्धमुच्यते।'

राजाओं के यशोवर्णन को खट्ट ने प्रशस्ति नाम दिया है। देखिये—

काव्यालङ्कार (नमिसाधु-व्याख्या) : १६।३६ : व्याख्या—

'तत्र यस्यामोश्वरकुलवर्णनं यशोऽर्थं क्रियते सा प्रशस्तिः।'

अनुसार साधक के कल्पित उत्क्रमण का आधार लेकर कृष्ण की समा सुधर्मा तथा अनेक देवाधिष्ठित शक्तियों और स्थितियों के विवरण के रूप में है। प्रत्यकार ने इसे १७ उल्लासों में विभाजित किया है। इसमें कयागत या नायकादि-सम्बन्धी किसी आधार को ग्रहण नहीं किया गया है। बीच-बीच में गीतगोविन्द की लयों के अनुकरण के रूप में अनेक भावप्रवण स्तुतिगीत प्रवित हैं। अतः उल्लास-बद्ध होने पर भी मुक्त विवरण या भावधारा पर आधारित मुक्तकों का क्रम-सापेक्ष और एक विषयान्वित सङ्कलन-भात्र होने से इसे अनिबद्ध कोटि में ही रखना उचित है। अतः यह भी धार्मिक पद्धति के कोष या पर्यायबन्ध प्रभेद के अन्तर्गत आता है।

१०. रघुराज-मङ्गल-चन्द्रावली

रघुराजसिंह द्वारा प्रणीत स्तुति-गीतों का रघुराजमङ्गल चन्द्रावली नामक लघु-काव्य एक विषय पर एक ही छन्द में लिखे हुए दशकों का समूह है, जो क्रम-सापेक्ष सङ्कलन में प्रस्तुत होने पर भी परस्पर-निरपेक्ष है। राजशेखर ने पटित वृत्त पर आधारित मुक्तक को कपोत्य संज्ञा प्रदान की है।^१ ये दशक भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में प्राप्त कृष्ण कथा पर आधारित एवं तदनुसार ८६ अध्यायों में सङ्कलित स्तुतिगीत हैं। कवि का लक्ष्य कथा-वर्णन नहीं, अपितु भावार्थमय देवबन्धना है। अतः इस ग्रंथ की कपोत्य सङ्ख्यात प्रभेद में रखा जा सकता है।

इस प्रकार अनिबद्ध कोटि के अन्तर्गत हमें १० ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें से ६ स्तुति-गीत, १ पत्र-गीत और तीन राजस्तुतियाँ हैं। ये सभी लघुकाव्य हैं।

स्वरूप की दृष्टि से भामह ने अनिबद्ध के अतिरिक्त काव्य के चार अर्थ भेद १. सर्गबन्ध, २. अग्निनेयार्थ, ३. आख्यायिका और ४. कथा बतलाए हैं। सर्गबन्ध की उन्होंने महाकाव्य माना है।^२ स्पष्ट ही ये भेद निबद्ध काव्य के हैं, जिसके लिए वामन ने निबद्ध, सुन्दर्य और प्रबन्ध^३ तथा राजशेखर^४, आनन्दवर्धन^५ और

१. काव्यमीमांसा (राजशेखर) : पटना : १९४४ ई० : अध्याय ६ पृष्ठ ११४ : 'वृत्तेतिमुक्तः कपोत्यः'।

२. काव्यालङ्कार : १।१८ :
सर्गबन्धोभिनेयार्थं तथैवाख्यायिका-कथे ।
अनिबद्धञ्च काव्यादि सत्पुनः पञ्चबन्धोच्यते ॥'

३. काव्यालङ्कारसूत्र : १।३।३० : वृत्ति—'सुन्दर्येषु प्रबन्धेषु ।'

४. काव्यमीमांसा : पटना : १९५४ : अध्याय ९, पृष्ठ ११४ :
'स पुनर्दिष्टा । भूतक-प्रबन्ध-विषयत्वेन ।'

५. श्रव्यालोक : ३।७ वृत्ति '... प्रबन्धेष्विव....'। तथा अभिनवगुप्त की टीका ।

रुद्रट^१ ने प्रबन्ध शब्द का प्रयोग किया है। उपर्युक्त चार श्रेणों में हैं विस्तृत पद्यात्मक प्रबन्ध के रूप में केवल सगुणस्वोक्त है। दोष तीन में से कथा के लिये हेमचन्द्र ने कहा है कि यह गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है।^२ रुद्रट ने सभी प्रबन्धों के लिए महत् और लघु दो रूप बतलाए हैं।^३ विश्वनाथ ने महाकाव्य की परिभाषा पूरी करने के पश्चात् निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं—

‘भाषा-विभाषा-नियमात् काव्यं सर्गसमुज्जितम् ।

एकादश-प्रवर्णैः पद्यैः सन्धि-सामग्र्य-वर्जितम् ॥

स्रष्टव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च ॥’^४

इन पंक्तियों का ‘सर्ग-समुज्जितम्’ शब्द पाठ-भेद हैं ‘सर्ग-समुत्थितम्’ भी मिलता है; साथ ही ‘सन्धि-सामग्र्य-वर्जितम्’ शब्द के अर्थ पर भी टीकाकारों में मतभेद है।^५ फिर भी इतना स्पष्ट है कि महाकाव्य से न्यून कौटि का, सम्पूर्ण

१. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बम्बई : १६२८ : अध्याय १६।२ :
‘सन्ति द्विधा प्रबन्धाः’ तथा नमिसाधु की व्याख्या ।

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : अध्याय ८ : पृष्ठ ११८ : ‘धीरशान्तनायका गतेन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ।’ तथा इसी की वृत्ति : ‘—काचित् पद्यमपि यथा लीलावती ।’

३. काव्यालङ्कार (रुद्रट) : १६।२
‘सन्ति द्विधा प्रबन्धाः काव्यरूपाव्यायिकादयः काव्ये ।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महत्लघुत्वेन भूयोऽपि ॥’

४. साहित्यदर्पण : रामचरण तर्कवागीश-टीका : निर्णयसागर प्रेस :
बम्बई : १९२२ : पृष्ठ ३७५ इलोक १२८ : ‘यावत् सन्धिरहितं यत्तत्काव्यमित्यर्थः ।’

५. साहित्यदर्पण :
(१) जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३७ :
इलोक १८३ : ‘सर्ग-समुज्जितम् सर्गबन्धरहितम् । एकादशप्रवर्णैः
एकाग्रप्रतिपादकैः एकवाक्यसामन्नीरिति यावत् । मुख्य-प्रति-
मुखादि-सन्धिसमुदायहीनं यत् तत् काव्यम् ।’

(२) हरिदत्तसिद्धान्तवागीश-टीका : कलकत्ता : चक्रानन्द १८६७ :
पृष्ठ ४२५ : इलोक ३०६ ‘सर्गसमुज्जितम् । अध्यायवर्जितम् ।
...एकविषयप्रतिपादकैः पद्यैः निबद्धम् । सन्धीनां सामग्र्येण
समुदायेन वर्जितम् ।’

(३) शिवदत्त कविरत्न-टीका : वैकुण्ठेश्वर प्रेस बम्बई : पृष्ठ ५४२
इलोक ६२५-२६ : ‘सर्गसमुज्जितम् सर्गहीनम् ।सन्धि-

कथा पर आधारित प्रबन्धात्मक पद्यकाव्य केवल 'काव्य' कहा जायगा तथा एकदेशीय कथा पर आधारित प्रबन्धात्मक पद्यकाव्य खण्डकाव्य कहा जायेगा। रूद्रट के मत से इस खण्डकाव्य में अनुवर्ण में से एक ही वर्ग फल-फल में सिद्ध किया जायगा तथा उसमें अनेक रसों का स्पर्श कर एक रस का सम्पूर्ण परिपोष होगा।^१ नमिसाधु ने लिखा है कि नायक के चरित्र का बन्धन हो प्रबन्ध है।^२

इस प्रकार पद्यात्मक प्रबन्ध काव्यों के तीन भेद हो जाते हैं—महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि खण्डकाव्य के पर्याय के रूप में लघुकाव्य या लघु-प्रबन्ध शब्द का प्रयोग अनुरूपक है। खण्डकाव्य भव्य हो लघुकाव्य या लघुप्रबन्ध है, उसी प्रकार लघु-काव्य या लघु-कथा भी लघु-काव्य या लघु-प्रबन्ध है। साथ ही अनिबद्ध कोटि के सङ्कुचित क्रम-सापेक्ष या विषय-सापेक्ष सूत्रक भी लघुकाव्य कहे जाते हैं, जैसे मर्तुहरि का शृङ्गार या वैराग्यशतक या धर्मचरितक। इसी प्रकार महाकाव्य जिस प्रकार महा प्रबन्ध है, उसी प्रकार नाटक और प्रकरण आदि बड़े रूपक या कादम्बरी वृक्षकथा आदि बड़े कथाकाव्य भी प्रबन्ध है।

रूद्रट का यह स्वीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि सभी प्रबन्धों के उत्साह और अनुत्साह दो स्वस्व हो सकते हैं। जिन प्रबन्धों का सम्पूर्ण घटित कवि द्वारा उत्साहित हो और नायक की उत्पत्ति कथित हो, ऐसे प्रबन्ध उत्साह कहे जायेंगे। इतिहासादि (रामायणादि कथा) में प्रसिद्ध पञ्चर (कथाचरी) को सम्पूर्ण या आंशिक रूप में आधार बनाकर जिनमें कवि उस पर धरना बाणो

सामग्र्या सहितं मुखादिपालि सर्गहीनं यत् तत् काव्यं नाम काव्यम्।^३

(४) भास्वग्राम शास्त्री : हिन्दी टीका : मोतीलाल बनारसीदास : बाराणसी : १९५६ : पृष्ठ २२४ श्लोक ३२८-२९ : 'सर्ग-समुत्पत्तिम्।' टीका—'एक कथा का निरूपक पद्यबद्ध सर्गमय ग्रन्थ, जिसमें सब गन्धियाँ न हो, काव्य कहलाता है।'

१. काव्यालङ्कार : १६।६ : 'ते लघवो विज्ञेया येऽन्यत्रतो भवेच्चनुवर्णान् । असमप्रानेकरमा ये च समप्रेकरस-मुक्ताः ॥'

नमिसाधु—'ते मेघदूतादयो लघवः ।'

२. बहो : १६।२ : नमिसाधु की दृष्टि :

'प्रबन्धाः प्रवक्ष्यन्ते नायकचरितमैतरेऽस्मिन् कृत्वा ।'

का आवरण चढ़ाता है, वे अनुत्पाद्य प्रबन्ध होते हैं ।^१ इस प्रकार प्रथम धेनो के उदाहरण के रूप में कादम्बरी और दूसरी के रूप में किरातार्जुनोप को प्रस्तुत किया जा सकता है । नमिसाधु ने भूल से लिखा है कि उत्पाद्य में प्रसिद्ध नायक को स्वीकार कर उसका चरित्र-बन्धन माय काव्य की भाँति कवि-कल्पित होगा ।^२ नमिसाधु का यह तर्क मानने पर दोनों कोटियों में अन्तर करना दुष्कर हो जायगा, क्योंकि दोनों ही कोटियों में कवि कल्पना तो रहेगी ही ।

महाकाव्यों में से अधिक संख्या उनकी है, जो अनुत्पाद्य हैं, अर्थात् जो रामायण, महाभारतादि की प्रसिद्ध कथाओं को आधार बनाते हैं । उत्पाद्य-वस्तु वाले महाकाव्य, जिनमें मर्यादा बलित आधार हो, अल्प हैं । कवियों ने अपने समकालीन नरेशों और कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर उन पर कहना का आवरण चढ़ाते हुए ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य लिखे हैं । वास्तव में यह तीसरी कोटि है, किन्तु यहाँ हम इन्हीं की उत्पाद्य मान कर चलते हैं, क्योंकि वे दृष्ट के उत्पत्तियों के लक्षण का अनुसरण करते हैं । कथा आदि के क्षेत्रों में यह विभाजन स्पष्ट है ।

— ११. धीरमानूद्य काव्यम् ।

उपनिषत् पद्यात्मक प्रबन्धों के अन्तर्गत सर्गबन्ध रचना धीरमानूद्यकाव्य हमें प्राप्त है । यह महाकाव्य के लक्षणों से युक्त ऐतिहासिक शैली का द्वादश सर्गात्मक उत्पाद्य प्रबन्ध है ।^३

१२. सङ्गीतरघुनन्दनम्

विश्वनाथसिंह की १६ सर्गों में रचित शृङ्गार-धीषक कृति सङ्गीतरघुनन्दनम् गीतगोविन्द की अनुकृति है । धीराम के रास-विलास की सामान्य आंशिक कथा लेकर इसका प्रथम हुआ है । अतः यह अनुत्पाद्य सण्डकाव्य है । कवि ने यहाँ रसात्मक वाक्यों का सङ्गीतात्मक सन्निवेश किया है और शेष-धीष में उचित-परिवर्तनों के लिए निर्देशात्मक प्रास्ताविक गद्य भी दिये हैं । सासेन ने गीतगोविन्द की एक गीतिनाट्य (लिरिक ड्रामा) और पिरोल ने भावमय शृङ्गार-नाट्य लिखा

१. काव्यमलङ्कार : १९।३-४ :

‘ततोत्पाद्या धेनो धारीरमुत्पादयेत् कविः सकलम् ।

कल्पितमुक्तोत्पत्तिः नायकमपि कृत्रयित् कुर्यात् ॥

पञ्जरमितिहासादि-प्रसिद्धमस्त्रिसं सदेकदेशं वा ।

परिपूरयेत् स्व-वाचा यत्र कविस्ते स्वनुत्पाद्याः ॥’

२. वही १६।३ : व्याख्या—‘नायकं प्रसिद्धं गृहीत्वा—यथा मायकाव्ये ।’

३. विस्तृत चर्चा के लिए देखिये भागे—प्रपाग ३ (स)

है ।^१ सङ्गीतरघुनन्दन के गद्य-निर्देशों ने इसे गीतगोविन्द की अपेक्षा और भी अधिक गीतिनाट्य बना दिया है ।

गद्य-प्रचण्ड

गद्यारम्भक प्रवर्णों में आख्यायिका और कथा को सभी ने मान्यता दी है । दण्डी ने आख्यान की सभी जातियों को इन्हीं दोनों में अन्तर्भूत कर दिया है ।^२ शिवनाथ का भी यही मत है ।^३ आनन्दवर्धन ने इन दो प्रभेदों के अतिरिक्त परि-कथा, सङ्कलकथा और सङ्कटकथा—ये तीन प्रभेद और गिनाए हैं ।^४ हेमचन्द्र ने आख्यायिका के अतिरिक्त इन सभी प्रभेदों का कथा में अन्तर्भाव कर दिया है तथा आख्यान, निर्देशन, प्रवहिका, मतलिका, मधिकुत्सा, उपकथा और गृहकथा—ये ७ प्रभेद कथा के अन्तर्गत अधिक बतलाए हैं । उन्होंने आनन्द-वर्धन के अनुसार ही सकलकथा को समस्त फलों के लाभ में पर्यवसित होने वाली एवं इतिवृत्तवर्णन पर आधारित परित बतलाया है । सङ्कटकथा के सम्बन्ध में हेमचन्द्र का कथन है कि अन्य ग्रन्थ में प्रसिद्ध इतिवृत्त का मध्य से या किसी छोर से वर्णन करने वाली सङ्कटकथा कहलाती है ।^५

१. कीच - ए० बी० (डा०) : ए हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ १६१ कीच, सासेन और पिरोल से इस रूप में असहमत है कि गीतगोविन्द एक नाट्य है । वे सर्वप्रथम रचना होने से इसे प्रबन्धकाव्य ही मानते हैं, साथ ही उसका सङ्गीत निमित्तक उद्देश्य स्वीकार करते हैं । सङ्गीतरघुनन्दन का भी यही रूप है । यह भी उसी की भाँति राग-ताल-लय-बद्ध है ।

२. काव्यादर्श : १।२३ : 'अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा ।' तथा १।२८ : 'तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा-द्वयाङ्गिता ।

अर्धशान्तर्भवन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः ॥'

३. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९१६ : परिच्छेद १।३३२-३४ : वृत्ति-
'आख्यामादयश्च.... ।'

४. ग्रन्थालोक : ३।७-वृत्ति : 'यतः काव्यस्य प्रभेदाः.... । परिकथा-सकलकथा-सङ्कटकथा-सर्ववन्द्योपनिषेधार्थमाख्यायिका कथेत्येवमादयः ।' अभिनवगुप्त-भ्याख्या-'आदिग्रहणाच्चवम्पूः ।'

५. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३३८-३४० : 'मध्यादुपान्ततो वा ग्रन्थान्तरप्रसिद्धमिति वृत्तं यस्यां वर्ण्यते सेन्दुरमत्यादिवत् सङ्कटकथा । समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना समरादित्यवत् सकलकथा (चरितम्) ।'

१३—दशकुमारपूर्वकथासारः

वीरभद्रदेव ने दण्डी के दशकुमारचरित को पूर्वपीठिका का सार गद्य में ही प्रस्तुत किया है। इसे हम उपर्युक्त गद्य-प्रभेदों में से छप्पड़कथा मानते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण कथा के एक अंश पर अवलम्बित है। कल्पित कथा होने से यह उत्पाद्य लघु प्रबन्ध है।

मिश्र-काव्य

दण्डी ने काव्य के गद्य और पद्य - दो प्रमुख भेदों में मिश्र भी जोड़ दिया है। उन्होंने नाटक को इसी मिश्र काव्य के अन्तर्गत माना है। पहला सम्भवतः इसलिए कि उसमें गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग होता है, दूसरा इसलिए कि उसमें प्राकृत आदि भाषाओं का मिश्रण रहता है। इस प्रकार भामह तथा अन्य अनेक भाषायों द्वारा स्वीकृत अभिनेयार्थ नामक प्रबन्ध यहाँ मिश्र काव्य का अङ्ग है। दण्डी ने मिश्र के अन्तर्गत चम्पू को भी माना है।^१

हेमचन्द्र ने काव्य का विभाजन भिन्न रूप से प्रेक्ष्य (अभिनेय) और श्रव्य नाम से किया है। उन्होंने प्रेक्ष्य के भी पाठ्य (नाटकादि) और गेय दो भेद किये हैं। श्रव्य के प्रमुख भेद उन्होंने महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू और अनिवद्ध बतलाए हैं। यहाँ से चम्पू को निबद्ध काव्य के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। हेमचन्द्र के मत से यह संस्कृत भाषा में गद्य-पद्य दोनों में मिश्रित रूप में उच्छ्वासों में निबद्ध होती है।^२ विश्वनाथ ने हेमचन्द्र की भाँति ही काव्य को विभाजित किया है और प्रेक्ष्य को दृश्य संज्ञा दी है। गद्य-पद्य से मिश्रित काव्य की कोटि में उन्होंने चम्पू और विरह की गणना की है।^३

१. काव्यादर्श : १।३१ : 'मिश्राणि नाटकादीनि...' ।

गद्यपद्यमयी काव्यश्चम्पूरित्यभिधीयते ॥'

तथा १।३७ : 'नाटकादि तु मिश्रकम्।' टीका-'नाटा भाषामि-
मिश्रितम्।'

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : पृष्ठ ३ '७-४० :

'काव्यं प्रेक्ष्यं श्रव्यं च, प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च। प्रेक्ष्यमभिनेयम्। पाठ्यं
नाटकादिः। श्रव्यं महाकाव्यमाख्यायिका कथा चम्पूरनिबद्धं च।—
गद्यपद्यमयी साङ्ख्योऽसौ चम्पूः संस्कृतभाषां गद्यपद्याभ्यां
रचिता। प्रायेण यान्यङ्गानि स्वनाम्ना परनाम्ना वा कविः करोति
तैर्मुक्ता। उच्छ्वासनिबद्धा चम्पूः यथा वासवदत्ता दमयन्ती वा।'

३. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९५६ : परि० ६।१ 'दृश्य-श्रव्यत्व-
भेदेन पुनः काव्यं द्विधा स्मृतम्। दृश्यं तत्राभिनेयं तद् रूपारोपात्

वस्तुनः काव्य के मूलतः तीन भेद—गद्य, पद्य और मिश्र होते हैं। गद्य-पद्य तो श्रव्य ही होते हैं। मिश्र भी श्रव्य ही होता है किन्तु उसका एक अंश दृश्य (प्रेक्ष्य या अभिनेय) भी होता है। भरत ने नाट्यवेद को दृश्य-श्रव्य (दोनों) माना है।^१

१४—आनन्दरघुनन्दन नाटक

हेमचन्द्र ने नाटक को प्रेक्ष्य काव्य के पाठ्य प्रभेद के अन्तर्गत माना है। विश्वनाथ ने दृश्य काव्य के अन्तर्गत १० रूपक और १८ उपरूपक गिनाए हैं। रूपकों में सर्वप्रथम नाटक माना गया है।^२ इस प्रभेद के अन्तर्गत विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित आनन्दरघुनन्दन नाम का नाटक हमें आलोच्य काव्यों में उपलब्ध है। इतिहास-प्रसिद्ध कथा के कारण इसे अनुत्पाद्य प्रबन्ध माना जायगा।

१५—वीरभद्रदेव-चम्पू

पद्यनाम मिश्र द्वारा रचित यह चम्पू काव्य कवि के समकालीन एवं आध्यात्म-दाता राजकुमार वीरभद्र की नायक रूप में प्रस्तुत करता है। यह ७ उच्छ्वासांशों में विभक्त प्रशस्त्यात्मक चम्पू है। वस्तु के आधार पर वीरभद्रदेव-चम्पू उत्पाद्यवस्तु है।

१६—रामचन्द्रचम्पू या रामचन्द्राह्निकम्

अनुत्पाद्यवस्तुक कोटि का चम्पू काव्य विश्वनाथसिंह का रामचन्द्राह्निक या रामचन्द्रचम्पू है इसके नायक श्री राम हैं। श्री राम की आठों प्रहर की दिनचर्या इसमें आठ यामों में विभाजित है। इन यामों को उच्छ्वास-स्थानीय माना जा सकता है।

इस प्रकार निम्न कोटि के अन्तर्गत हमें ६ ग्रन्थ प्राप्त हैं, जिनमें से १ महाकाव्य (वीरभानुदयम्), १ खण्डकाव्य (सङ्गोत्तरघुनन्दनम्), १ खण्डकथा (दशकुमारपूर्यकथासारः), १ नाटक (आनन्दरघुनन्दनम्) और २ चम्पू-काव्य (वीरभद्रदेव-चम्पू तथा रामचन्द्राह्निकम्) उपलब्ध हैं। वस्तु को दृष्टि से वीरभानुदय महाकाव्य, दशकुमारपूर्यकथासार खण्डकथा और वीरभद्र-देवचम्पू तीन उत्पाद्य प्रबन्ध और सङ्गोत्तरघुनन्दनम् खण्डकाव्य, आनन्द-

रूपकम् ॥' तथा ६।३३६—'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।'।

और ६।३३७।

१. नाट्यशास्त्र १।११ :

'क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यश्च यद् भवेत्।'।

२. साहित्यदर्पण : ६।३—७

रघुनन्दनम् नाटक एवं रामचन्द्र-चम्पू तीनों का पञ्जर रामायण पर आधारित होने से वे अनुत्पाद्य प्रबन्ध हैं ।

इस वर्गीकरण को एक ही दृष्टि में निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :—

अनिबद्ध काव्यः (१) लौकिक पद्धति के मुक्तक—प्रशस्तियाँ

(क) क्रमहीन शुद्ध—

(१) चार मुक्तक (भानुकर के तीन और रामचन्द्रभट्ट का एक दलोक ।

(ख) क्रम-सापेक्ष, संकलित,
कोप या पर्यायबन्ध—

राजस्तुति—

(२) रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः ।

मुनि-स्तुति—

(३) रामपरत्वम् ।

वंशप्रशस्ति—संहिता—

(४) बघेलवंशशर्बर्णनम् ।

(२) धार्मिक पद्धति के मुक्तक—स्तुतिगीत

क्रम-सापेक्ष, कोप या पर्यायबन्ध— (५) जगदीशशतकम्

(६) शम्भुशतकम्

(७) लोकनायाष्टकम्

(८) नर्मदाष्टकम्

(९) यादवेन्द्राष्टकम्

(१०) सुषर्माविलासः

(ग) कथोरथ—सङ्गीतकाव्य—

(११) रघुराजमङ्गलधन्दावली ।

निबद्ध काव्यः (१) पद्य-प्रबन्ध

(क) उत्पाद्य सर्गबन्ध महाकाव्य

(१२) वीरभानुदयकाव्यम् ।

(ख) अनुत्पाद्य सण्डकाव्य

(१३) सङ्गीत-रघुनन्दनम् ।

(२) गद्य प्रबन्ध

उत्पाद्य सण्डकथा

(१४) दशकुमार-पूर्वकथासारः ।

(३) मिश्र-प्रबन्ध

(क) अनुत्पाद्य दृश्यकाव्य नाटक

(१५) आनन्दरघुनन्दनम् ।

(ख) १ उत्पाद्य श्रव्यकाव्य-चम्पू

(१६) वीरभट्टदेवचम्पू ।

२ अनुत्पाद्य श्रव्यकाव्य-चम्पू

(१७) रामचन्द्रचम्पू या

रामचन्द्राह्निकम् ।

वीरभानूदयकाव्यम्

(क) परिचयात्मक विवरण

१. पाण्डुलिपि और उसका प्रकाशन

वीरभानूदय काव्य की प्रकाशित प्रति में उसकी पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध हैं। दीवान बहादुर पं० जानकीप्रसाद चतुर्वेदी^१ ने प्राक्वचन (फोरवर्ड) में लिखा है कि पाण्डुलिपि का समीक्षात्मक परीक्षण लगभग १२ वर्ष पूर्व हो चुका था।^२ डा० हीरानन्द शास्त्री ने १९३८ में लिखित आमुख (प्रिफेस) में लिखा है कि श्री चतुर्वेदी ने बहुत वर्षों पूर्व उनके पास 'एकमात्र उपलब्ध पाण्डुलिपि' भेजी थी। १९२५ ई० में श्री शास्त्री ने इसके आधार पर 'दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा' (रोवा का बघेल राजवंश) निबन्ध लिखा। प्रो० एच० एच० होद्रीवाल की आलोचनाओं के कारण श्री शास्त्री ने सन् १९३० में 'फर्दर नोट्स आन दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा'^३ (रोवा के बघेल राजवंश पर अतिरिक्त टिप्पणियाँ) निबन्ध लिखा।

प्रस्तुत प्रकाशित प्रति का सम्पादन और अंग्रेजी सारानुवाद धार के उत्तमानीन इतिहास-विभाग के प्रमुख (हिस्ट्री आफिसर) श्री काशीनाथ

१. वर्तमान रोवा नरैण के पिता महाराज गुलाबसिंह के दीवान, १९१८ ई० में रोवा कौंसिल के होम-मेम्बर, १९२२ ई० में दरबार सेक्रेटरी। देखिये बि० प्र० इ० पृष्ठ २७९ तथा रोवा राज्य का इतिहास (यादवेन्द्र सिंह) : रोवा; १९४० : पृष्ठ १५०-५१।

२. नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में प्रकाशित। इस प्रति में प्रकाशन-तिथि नहीं है। साथ में प्रकाशित चतुर्वेदी जी के 'फोरवर्ड' में भी तिथि नहीं है, किन्तु डा० हीरानन्द शास्त्री ने आमुख (प्रिफेस) में ९ जुलाई १९३८ तिथि दी है।

३. 'ज० बि० ओ० सो०' में १९३० ई० में प्रकाशित।

कृष्ण लेले ने किया था। आपके सहायक श्री लक्ष्मण उपाध्याय के पुत्र पं० अनन्त शास्त्री थे।^१

प्रकाशित प्रति के अंग्रेजी अंश के अन्त में यह सूचना प्रकाशित है कि ग्रन्थ की प्रतिलिपि (संशोधित) श्री लक्ष्मण के पुत्र अनन्त शास्त्री ने फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, सं० १९७७ वि० (मार्च, १९२१ ई०) की की।

इससे प्रतीत होता है कि श्री चतुर्वेदी ने १९२० ई० के निकट पाण्डुलिपि संशोधनार्थ श्री लेले के समीप धार भेजी थी और श्री अनन्त शास्त्री द्वारा संशोधित प्रतिलिपि तैयार होने पर दोनों प्रतियाँ बड़ोदा में डा० हीरानन्द शास्त्री के समीप भेजी गईं। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, सम्भवतः १९३५ ई० तक में शास्त्री जी ने ग्रन्थ का समीक्षात्मक विश्लेषण (क्रिटिकल एनलिसिस) तैयार किया, जो साथ ही प्रकाशित है। श्री शास्त्री लिखते हैं कि (उपर्युक्त दो लेख, १९२४ और १९३० ई० में प्रकाशित करने के पश्चात्) उन्होंने ग्रन्थ को प्रकाशित कराने की आवश्यकता पं० जानकी प्रसाद को सूचित की, जिसके साथ समीक्षात्मक विश्लेषण भी प्रकाशित हो।

डा० हीरानन्द शास्त्री ने, जो बड़ोदा के पुरातत्त्व विभाग के संचालक थे, श्री पी० के० गोडे (पूना) को १५ मई, १९३५ ई० को पत्र लिखा था कि बीरभानूदयकाव्य उनके समीक्षात्मक विश्लेषण के साथ-साथ रोवा-शामन द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। श्री गोडे ने इस पत्र का उल्लेख अपने १९३५ ई० के लेखों में किया है।^२ महाराजा सा० (गुलाबसिंह) ने राज्य के व्यय पर यह प्रकाशन सहर्ष स्वीकार किया। श्री शास्त्री ने सरस्वती की सेवा के रूप में प्रकाशन-सम्बन्धी श्रम किया।

प्रकाशित प्रति में काव्य के मूल संस्कृत अंश के अन्त में रोमन अक्षरों में २०-५-३५ तिथि छनी हुई है। अतः इस समय तक श्री लेले तथा श्री अनन्त शास्त्री द्वारा मुद्रणार्थ ग्रन्थ सम्पादित हो चुका था। अंग्रेजी सारानुवाद और

१. बीरभानूदयकाव्यम् : 'फोरवर्ड', तथा 'प्रिफेस'। अन्तशास्त्री ने ही मुद्रणार्थ प्रति १९३१ ई० में तैयार की थी। (देखिये अंग्रेजी सारांश, पृष्ठ ५०) श्री निजामी के कथनानुसार मुद्रण के पश्चात् पाण्डुलिपि सरस्वती कोष भाण्डार, किला, रोवा में रख दी गई थी, किन्तु वहाँ पता नहीं चलता।

२. देखिये—ओ० ज० में प्रकाशित श्री गोडे के लेख—'सन इंटान' तथा 'आइडेंटिफिकेशन'। साथ ही देखिये श्री गोडे द्वारा बीरभानूदय काव्य की समीक्षा—एनल्स १९४७ : भाग २७ पृष्ठ १६३-६५।

नामानुक्रमिका (इंडेक्स) पीछे तैयार हुआ होगा । श्री शास्त्री का आमुख ९ जुलाई १९३८ ई० को (बड़ोदा) में लिखा गया । अतः १९३८ ई० के अन्त तक ग्रन्थ पूर्णतः प्रकाश में आ गया होगा ।^१ जानकी प्रसाद जी ने फोरवर्ड में महाराज रीवा की ओर से डा० हीरानन्द शास्त्री, श्री लेले और श्री उषाध्याय को उनके प्रीतिपूर्ण परिचय (लेबर आफ लव) के निमित्त धन्यवाद दिया है ।

श्री शास्त्री ने पाण्डुलिपि का परिचय इस प्रकार दिया है—

कादमोरी कागज पर लिखे हुए ५५ पन्ना, प्रत्येक १२" X ४'२" । प्रत्येक पृष्ठ पर आठ पंक्तियाँ । प्रत्येक पंक्ति पर प्रायः ४८ अक्षर । लिपि स्वच्छ एवं ललित ।^२

(२) कवि-परिचय और ग्रन्थ का रचनाकाल

वीरभानूदय काव्य के प्रणेता माधव ने ग्रन्थ के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर एक समान श्लोक^३ तथा अन्तिम सर्ग की समाप्ति पर कुछ और श्लोक अपने सम्बन्ध में दिये हैं । इन श्लोकों के आधार पर माधव के पिता भ्रम-चन्द्र ऊरव्य थे ।^४ माता का नाम दुर्गा था । इनका कुल उच्च एवं विष्णुपूजक था । बघेलनरेश वीरभानु के चरित्रवर्णन के रूप में यह भूपाश्रित काव्य लिखा गया है । अतः प्रतीत होता है कि माधव राज्याश्रित कवि था । वीरभानूदय काव्य की समाप्ति पर वीरभानु के लिए कवि ने 'आसीत्' शब्द का प्रयोग किया है ।^५ अतः वह वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र का समासद था । काव्य में

१. पण्डित अंडर दि अचारिटी आफ रीवा दरबार (रीवा दरबार के प्राधिकार से प्रकाशित) ।

२. वीर : १२।४२-४५ ।

भ्रमकुलविनुद्धः श्रीपतिप्रसन्नचित्तः शृतगुणितनतोपी माधवो यः प्रभाति ।

गुह्यनृपतिदयार्थी पापकर्मप्रमाथी जगति जयति काव्यं तस्य भूपाश्रयत्वात् ॥

ऊरव्योऽभ्रमचन्द्र एधितमशा यो भाति सापुत्रिय—

स्तस्याभात् पतिदेवता कुलत्रया दुर्गेति नाम्ना वधूः ।

मातुस्तेन सदुक्तभार्यगतिना श्रीमाधवेनोजितं

काव्यं राजति राजवर्णनशुभं तत्कीर्त्तिगङ्गामृतम् ॥^१

तथा—'रुतकाव्ये सुचरित्रवर्णनविधौ श्रीवीरभानुप्रभोः ।'

३. श्री लेले ने ऊरव्य का अर्थ वैश्य किया है । सम्भवतः उनका तर्क—

'ऊरु यदस्य तद् वैश्यम् ।' उक्ति पर आधारित है, (अंग्रेजी सारा-

नुवाद पृ० ५०) किन्तु हीरानन्द शास्त्री ने 'कायस्थ' अर्थ लिया है

(वीर० कि० ए० पृ० ५) ।

४. वीर० १२।४१ : 'आसीदेवं... ..श्रीमशा वीरभानुः ।'

माधव ने गहोरा राजधानी का, वहाँ के जीवन, निवासियों, भवनों, समीपस्थ नदियों और पहाड़ों तक का बड़ा सजीव वर्णन किया है ।^१ इससे प्रतीत होता है कि वह स्वयं गहोरा का ही निवासी था । वीरभानु और रामचन्द्र के शासन-काल में, सोलहवीं शती के प्रथम तीन-चतुर्थांशों में, विशेष रूप से मध्य भाग में कवि का स्थिति-काल माना जा सकता है । काव्य के अन्तःसाक्ष्य के बल पर कहा जा सकता है कि कवि माधव विद्वान्, सुशिक्षित और अनेक शास्त्रों से परिचित था । इससे अधिक कोई भी जानकारी कवि के सम्बन्ध में उपलब्ध नहीं है ।

वीरभानुदयकाव्य की यह 'एकमात्र उपलब्ध पाण्डुलिपि', संवत् १६४८ (१५९१ ई०) में लिखी गई, जैसा कि उसको पुष्पिका से चिह्नित होता है ।^२ ग्रन्थ की रचना अवश्य ही इससे पहले की होगी ।

हीरानन्द शास्त्री ने समीक्षात्मक विदलेपण (क्रिटिकल एनलिसिस) में ग्रन्थ के रचनाकाल पर पर्याप्त प्रकाश डाला है । आपका कथन है कि सम्भवतः पाण्डुलिपि रोवा-राज्य की उत्तराधिकार सम्पत्ति थी और वीरभद्र^३ को इसमें विशेष रुचि रही होगी, क्योंकि काव्य में उनके जन्मोत्सव का वर्णन है । पाण्डुलिपि के प्रथम और अन्तिम पृष्ठों पर दो मुहरें (पुयक्-पुयक्) हैं । पहली 'वीरभद्र बन्दह शाह अकबर १६५' और दूसरी है 'वीरभद्र बन्दह मुलतान सलीम' । आगे श्री शास्त्री लिखते हैं कि गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस में सोमदेव-कृत कथासरित्सागर की एक पाण्डुलिपि है, जिसके आवरण पृष्ठ पर लगभग इसी तरह की मुहर पड़ी है । उसमें हिजरी सन् ९७७ (१५६९ ई०) अङ्कित है तथा इसमें भी 'वीरभद्र' अपने को मुलतान सलीम का 'बन्दह' (गुलाम) कहता है । सलीम का जन्म इसी वर्ष हुआ था और वीरभद्र अन्त तक सलीम की सेवा में रहा (सलीम को जन्म से ही सुल्तान कहा जाता था^४) । अतः इन मुहरों का वीरभद्र वास्तव में 'वीरभद्र बघेल' ही है ।

१. वीर० २।७-३०

२. वीर० : अन्तिम पुष्पिका : पृष्ठ १४२ :

'संवत् १६३८ समये अगहन शुक्लपक्ष द्विती (ती) यायां भोमवासरे लिखितं (त) मिदं कायस्थ-तुलसिदास-पुत्र श्री नाइ काशिवासी (?) विश्वेश्वर सन्निधे ॥'

३. राजा रामचन्द्र बघेल का पुत्र, मृत्यु १५९३ ई०; संस्कृत ग्रन्थों का प्रणेता । देखिये आगे अध्याय ४ (२) ।

४. अहाँगोरनामा (अनु० बेवरिज) : १९०९ : पृष्ठ २ ।

अकबर का राजपारोहण १६३ हिजरी में हुआ। यह तिथि १८ फरवरी १५५६ ई० है।

श्री शास्त्री की इन सूचनाओं के अनुसार काव्य की पाण्डुलिपि पर प्राप्त पहली मुहर ६६५ हिजरी अर्थात् १५५८ ई० की होती है। मुहर की इस तिथि को हीरानन्द शास्त्री ने पर्याप्त महत्व दिया है, किन्तु मुहर के अक्षर अन्तःसाक्ष के विरुद्ध हैं। अतः इस सम्बन्ध में हमें यहाँ विस्तार के साथ विचार करना होगा।

वीरभानुदयकाव्य के अन्तिम सर्ग में वीरभद्र के जन्मोत्सव का विवरण है। इस उपलक्ष में 'दिल्लीश्वर-यवनाधिनाथ मुद्गलेश' हुमायूँ ने, जिसके साथ वीरभानु का 'भ्रातृभाव' था, वीरभानु के घर हुए पौत्र-जन्म को अपने घर का पौत्र-जन्म माना और उसने उपहार भेजे।^१

श्री शास्त्री का यह तर्क है कि 'उक्त उपहार भेजते समय हुमायूँ दिल्लीश्वर था। यह समय या तो १५३० ई० से १५४० ई० के बीच हो सकता है या १५५५ ई०, जब हुमायूँ ने पुनः सूर-मुस्तानों से दिल्ली वापस ली।^२ १५५५ ई० में वह अपनी चिन्ताओं में ही अत्यधिक व्यस्त था, अतः पहली अवधि को मानना ही उपयुक्त है। इस प्रकार वीरभद्र के जन्म के लिए १५३५ ई० को एक सम्भव तिथि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उक्त मुहर की तिथि (१५५७-५८ ई०) तक वीरभद्र लगभग २२ वर्ष का रहा होगा और इस समय वह अकबर के दरबार में आने पिता की ओर से प्रतिनिधित्व करता रहा होगा।'^३

१. वीर० १२।२०-२१, २३

'आकर्ण्य दिल्लीश्वर-भूपमोलिः श्रीमान् हुमाऊ यवनाधिनाथः ।

श्री वीरभानोस्तनयस्य जातं सुतं प्रमोदं बहुधा प्रपेदे ॥

स प्रेयमाभास निजैरमात्यचरैः शुभान्याभरणानि हृष्टः ।

अश्वाश्च वासांसि सुगन्धवस्तु आश्रीकृतस्तेन - हि वीरभानुः ॥

पौत्रं तमेवं नृप-वीरभानोर्जातं किलाहं निजमेव मन्ये ।

को भ्रातृपौत्रेभ्य निजे विशेष इत्याह लेखेन च मुद्गलेशः ॥'

२. हुमायूँ शेरशाह से चौसा की लड़ाई में २ जून, १५३९ ई० में हारा।

३. हुमायूँ की दिल्ली में वापसी २३ जुलाई १५५५ ई० में हुई और २७ जनवरी १५५६ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

४. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-७

श्री शास्त्री आगे कहते हैं कि 'काव्य का निर्माण स्पष्टतः वीरभद्र के जन्म-समारोह के उपलक्ष्य में किया गया होगा। सर अलेक्जेंडर कनिंघम के मतानुसार यह तिथि १५४० ई० के निकट होगी; किन्तु काव्य से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उसकी रचना वीरभद्र के जन्म के पश्चात् और वीरभानु के जीवन-काल में हुई।'^१

इस सम्बन्ध में शास्त्री जी ने काव्य के एक उल्लेख^२ की चर्चा की है और लिखा है कि '१५५५ ई० में इब्राहीम सूर से परास्त हो कर अदली (आदिल-शाह सूर) भाठ (बघेलखण्ड) आया। यह उल्लेख इसी घटना की ओर संकेत करता है। इम्पीरियल गेजेटियर के आधार पर वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र का शासनारम्भ १५५५ ई० से हुआ, यही वीरभानु की निधन-तिथि होगी। अतः काव्य की रचना (अदली के आगमन के पश्चात् और वीरभानु की मृत्यु से पूर्व) १५५५ ई० में हो गई होगी।'^३

शास्त्री जी के उक्त तर्कों पर विचार करते हुए हम सर्वप्रथम ग्रन्थ के रचनाकाल का निश्चय करना चाहते हैं। अवश्य ही ग्रन्थ की परिसमाप्ति वीरभद्र के जन्म और आदिलशाह सूर की भाठ-यात्रा के पश्चात् हुई, क्योंकि काव्य में इन तथ्यों के उल्लेख है, किन्तु हम शास्त्री जी द्वारा निर्णीत रचना-तिथि को और पीछे लाना चाहते हैं।

अन्तिम सर्ग में वीरभद्र के जन्मोत्सव-वर्णन के पश्चात् कवि वीरभानु के पुत्र-पौत्र से युक्त सुखमय जीवन बिताने का वर्णन करता है। आगे कवि लिखता है कि वीरभानु ने सुयोग्य पुत्र को राज्य-भार सौंप कर त्रिवेणी-वास किया। इस समय कुछ काल तक त्रिवेणी-तट पर जानियों के साथ वीरभानु की अभ्यात्म-चर्चाओं के भी उल्लेख है। अन्त में यद्यपि कवि वीरभानु की मृत्यु की दुःखप्रद सूचना देकर रसिकों का मन नहीं दुखाता, तो भी वह कहता है कि वीरभानु इस प्रकार के गुणवान् राजा थे। यहाँ स्पष्टतः 'आसीत्' शब्द का प्रयोग है।^४ स्पष्ट है कि काव्य राजा वीरभानु के जीवनकाल में नहीं, किन्तु उनके परलोकवास के पश्चात् सम्पूर्ण हुआ।

१. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-७।

२. वीर० : १०।१३ : 'स ईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरवाण-मुहम्मददिः।'।

३. वीर० क्रि० ए० : पृ० १-७।

४. वीर० सर्ग १२: श्लोक २४- 'रेजे सदानों तु सपुत्रपौत्रः श्रीवीरभानुः-।'।

श्लोक २८- 'धूरं धरादा विनिधाय धुये निजात्मजे रामगुणामिरामे।

श्रीरामचन्द्रे नृपवीरभानुस्तत्पात्र राज्योद्धहनप्रयासम् ॥'

काव्य में रामचन्द्र के वर्णन में तानसेन का भी उल्लेख है । (तानसेन के साथ रामचन्द्र का समय सानन्द बीता करता था^१ ।) तानसेन का अकबरी दरबार में १५६२ ई० में जाना ज्ञात है ।^२ अतः निश्चित रूप से प्रस्तुत काव्य की रचना १५५५ और १५६२ ई० के बीच हुई । १५६१ ई० के निकट बिट्टलेश्वर बाग्यवगढ़ आए थे । रामचन्द्र ने उनका स्वागत किया था । तानसेन से उनकी भेंट हुई थी^३ । अदली के जाने के पश्चात् रामचन्द्र ने नये आक्रान्ता इब्राहीम मूर को प्रायः उसी वर्ष बन्दी बनाया था और बाद में स्वागत भी किया था^४ । काव्य में इसमें से किसी घटना की चर्चा नहीं है, साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि अपने आग्रहदाता बीरभानु की महायात्रा की तैयारियों के वर्णन में और निघन के पश्चात् उनके लोकोत्तर गुणों के स्मरण में कवि का शीकीचूबास नवीन है । अतः काव्य की रचना बीरभानु के जीवनकाल में प्रारम्भ हुई होगी और उसकी सम्पुति १५५५ ई० के अन्त तक अथवा १५५६ ई० के प्रारम्भ में हुई, यह माना जा सकता है ।

पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में भी यहाँ चर्चा करना असङ्गत न होगा । पाण्डुलिपि पर अङ्कित बीरभद्र की दो मुहरों में से एक, जिसमें अकबर का नाम है, ९६५ हिजरी (१५५८ ई०) की बतलाई गई है । यह पाण्डुलिपि १५९१ ई० (सं० १६४८) में लिखी गई, जैसा कि प्रकाशित ग्रन्थ में भुजित है । जो

श्लोक २९—‘निधर्य चेतो विषयामिलापादुवास गङ्गायमुनोपकण्ठम् ।

निपेवितोऽलकपुरे सुतार्यः ...’

श्लोक ३०—‘अचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।’

श्लोक ४१—‘आसीत्वं...बीरभानुः ।’

१. बीर० : १०।२६-३१ : श्लोक २७—

‘अष्टौ स यामान् नयति स्म तेन रागादिना सरसमुदीरितेन ।’

२. आईन : ‘दि ग्रैण्डीज आफ दि इम्पायर (साधारण के गणनीय व्यक्ति) : क्र० ८९ राजा रामचन्द्र बख्श—राजा आफ भाठ (भाठ-बख्शखण्ड का राजा) : पृ० ४०६... (शासन के) सातवें वर्ष (१५६२-६३ ई०) शाहंशाह (अकबर) ने तानसेन को आगरा आने पर राजी करने के लिए जलालुद्दीन कुर्ची को भाठ भेजा ।...’

३. शैलत—जे० एम० अकबर : भाग २ : भार० वि० भ० बम्बई० : पृष्ठ २१८ तथा पारस—आई मणिलाल : श्री बल्लभाचार्य : राजकोट : १९४३ : पृष्ठ २६८ ।

४. लो—डब्ल्यू० एच० : बल—बदायौनी : भाग १ : पृष्ठ ५५३-५४ ।

पुस्तक १५९१ ई० में लिखी गई, उस पर (उससे पहले की) १५५८ ई० (१६५ हिजरी) की मुहर कैसे अंकित की जा सकती है, यह एक प्रश्न है । १५९१ ई० लगभग १९९ हिजरी होता है ।

शास्त्री जी ने १६५ हिजरी में बीरभद्र को लगभग २२ वर्ष का माना है और उसकी जन्मतिथि १५३५ ई० के समीप स्थिर की है । इससे भी सहमत नहीं हुआ जा सकता ।

बीरसिंहदेव की बाबर से मित्रता थी अर्थात् वे उसके समकालीन (१५२६-३० में) थे^१, किन्तु उनकी मृत्युतिथि ज्ञात नहीं है । बीरमानुदय काव्य के सातवें सर्ग में बीरमानु की गर्भवती रानी राजमती स्वप्न में बीरसिंह की धृकुण्ड से आकर गर्भस्थ शिशु को उपदेश देते हुए देखती है ।^२ इससे इतना निश्चित होता है कि बीरमानु के पुत्र रामचन्द्र के जन्म से पूर्व ही बीरसिंह की मृत्यु हो गई । बीरसिंह १५२७ ई० में कनवाहा में राणा सांगा के पक्ष से बाबर के विरुद्ध लड़े थे^३ । यदि १५२८ ई० में उनकी मृत्यु मानी जाय तो भी १५५८ ई० (१६५ हिजरी) तक तीस वर्षों की अवधि में कभी रामचन्द्र का जन्मकाल मानने पर रामचन्द्र के पुत्र बीरभद्र को २२ वर्ष की आयु देना सम्भव नहीं है ।

रीवा की स्थानीय जमाबन्दियों (लेखापत्रों) में बीरमानु का जन्म १४८६ ई०, रामचन्द्र का १५३५ ई० और बीरभद्र का १५५४ ई० में बतलाया गया है ।^४ बीरमानुदय काव्य में प्राप्त संकेत कि बीरसिंह की मृत्यु के बाद ही रामचन्द्र का जन्म हुआ, १५३५ ई० में रामचन्द्र के जन्म को सङ्गत कर देता है । काव्य में यह सूचना भी है कि रामचन्द्र का विवाह होने पर शीघ्र ही पिता बीरमानु ने उन्हें युवराज पद दे दिया ।^५ जमाबन्दियों में १५५१-५२ ई० में

१. बीरमानुदय० २।६७—'तस्माद् भियं प्राप स बहरोजि' तथा—

१२।१२—'श्रीबीरसिंहस्य यथा बभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण ।'

२. वही, ७।४०—'बोले श्री बीरसिंह च (वं) कुण्डभवनागतम् ।'

३. निरामो—ए० एच० : दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा : वि० यू० जर्नल : जिल्द २ क्र० २ : मई १९५८ : पृष्ठ २ ।

४. एकत्रा बाँधोगढ़ः—'—राजा बीरमानदेव का जन्म संवत् १५४३ के साल । राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५६२ के साल । सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक ।राजा बीरभद्र का जन्म १६१० के साल का ।'

५. बीरमानुदय ९।४१ : 'गौरापुरात् स्वनगरं समुपेत्य वीरं (रः)

रामचन्द्र का राज्याभिषेक सूचित है। यह तिथि वास्तव में युवराज पद की प्राप्ति की ही हो सकती है, क्योंकि बीरभानु १५५५ ई० तक जीवित थे। इस प्रकार यह निष्कर्ष समीचीन प्रतीत होता है कि १५५१ ई० में १६ वर्ष की आयु में रामचन्द्र का विवाह हुआ होगा और तीन वर्ष पीछे बीरभद्र का जन्म १५५४ ई० में हुआ। यह तिथि इसलिए भी सङ्गत प्रतीत होती है कि बीरभानु इस समय जीवित थे और १५५४-५५ ई० में हुमायूँ पुनः दिल्लीवर हुआ। बीरभद्र के जन्म के पश्चात् १ वर्ष के भीतर ही हुमायूँ ने खिलजत और उपहार आदि भेजकर शेरशाह के साथ हुए युद्धों में परीक्षित अपने मित्र बीरभानु के साथ इन बुरे दिनों में सीहार्द सुदुःखतर बनाया होगा।

इस प्रकार बीरभद्र का जन्म १५५४ ई० में स्थिर होने पर केवल ३-४ वर्षों की आयु में १६५ हिजरी (१५५८ ई०) में उसका अकबरी दरबार में प्रतिनिधित्व करना असङ्गत ही नहीं, असंभव है।

रीवा के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता और लेखक श्री अस्तर हुसेन निजामी, जो बीरभानुदय काव्य के प्रकाशन और होरानन्द शास्त्री के पत्र-व्यवहारों से सम्पृक्त थे, पाण्डुलिपि पर १६५ अङ्क की पुष्टि करते हैं। ऐसी स्थिति में हमें मुगलकालीन परम्पराओं का स्मरण करना होगा, जब नमो शाहशाह के गद्दी पर बैठने पर उसकी अधीनता के चिह्न छोटे-बड़े राज्यों में प्रकट होते थे। प्रतीत होता है कि मुगल अधीनता की स्वीकृति के रूप में महाराज रामचन्द्र बघेल ने यह मुहर १६५ हिजरी (१५५८ ई०) में तैयार कराई और अपने स्वाभिमान को बचाते हुए शिशु बीरभद्र का नाम उसमें अङ्कित कराया (बीरभद्र बगवत शाह अकबर १६५)। आगे चलकर जब बीरभद्र ने १५९१ ई० (१६४८ वि०) में बीरभानुदय काव्य की प्रतिलिपि तैयार कराई तब उनके कोषाध्यक्ष ने पाण्डुलिपि पर यही मुहर अङ्कित कर दी।

३. अस्तु-तत्त्व

बीरभानुदय द्वादश-सर्गात्मक काव्य-ग्रन्थ है।^१ यह कुल ८८१ श्लोकों में

श्रीबीरभानुदय मन्त्रिगणैः समेत । श्रीविन्ध्यशैलशिखरे कनकासनस्थः

श्रीरामचन्द्रयुवराजपदं त्रिगो (विभे) जे ॥'

१. प्रकाशित प्रति में प्रारम्भ में ३५ पृष्ठों में 'फोरवर्ड', 'प्रिफेस' और 'क्रिटिकल एनजिसिस' है। इसके पश्चात् १४२ पृष्ठों में मूल संस्कृत अंश, ५० पृष्ठों में अंग्रेजी सारानुवाद और ८ पृष्ठों में 'इंडेक्स' है। यह प्रकाशित प्रति भी अब दुर्लभ है। सन् १९५५ में मैने ब्रिटिशिया, रीवा, के पं० चिन्तामणि भालवीय (भूत० प्राचार्य डिग्री कालेज, सोधी) से

है^१, जिनमें से १२ श्लोक सर्ग-समाप्ति के सूचक और परस्पर समान हैं।^२ अतः यह वान्तव में ८७० श्लोकों की रचना है।

प्रथम सर्ग में कवि ने बघेलों का वंश-वर्णन किया है। यह वर्णन राजा भीम से प्रारम्भ होता है।

'बघेल वंश में शत्रुओं का नाशक, नीतिमान्, विद्वान् एवं पराक्रमी राजा भीम हुआ। उसके पुत्र राणिहूदेव ने पृथ्वी जीती और राजभवनों से सज्जित गहोरा नगरी में रह कर शासन चलाया। वह कृष्णभक्त था। उसके पुत्र बालनदेव ने दीर्घकाल तक शासन किया। दान्ज का पुत्र बल्लारदेव गहोरा में अभिषिक्त हुआ। उसने अपना साम्राज्य बढ़ाया और उसे निष्कटक किया। कारी के चन्देल दशराजदेव की कन्या राजलमण्य देवी बल्लारदेव की रानी थी, जिसने अपने भवन से पूर्व की ओर बावलों और वायव्य कोण की ओर तालाब खुदवाया, जो सभी के नाम से प्रसिद्ध है और वीरमानु ने जिसकी गहरा कराया। इस तालाब के तट पर (हमारे) कुल की इष्टदेवी शोठला का मन्दिर है।

बल्लारदेव का पुत्र सिंहदेव और उसका पुत्र वीरमदेव हुआ। सिंहदेव ने पूर्वजन्म की किमी स्मृति से प्रेरित होकर त्रिवेणी में प्रवेग कर शरीर त्याग कर दिया। तब शोकानुर बल्लारदेव ने पुत्र वीरमदेव को उत्तराधिकारी बनाया। वीरमदेव से श्लेच्छ भय साते थे। उसने सेहूण्डा (सेवड़ा) नगरी जीत ली और वहाँ आवास बनाया। उसने दिल्लीश्वर गुबराज से भी विप्रह किया। उसकी रानी अपूर्व देवी से प्येष्ट पुत्र नरहरि हुआ तथा अन्य रानियों से बहुत से पुत्र हुए। नरहरि ने गहोरा में चिरकाल तक शासन किया। उसकी राजला

ग्रन्थ प्राप्त कर देखा था। वहीं के श्री रघुनन्दन मिश्र के समीप भी अन्य प्रति थी, जो अब मेरे पास है। उक्त दोनों महोदयों के प्रति मैं आभारी हूँ।

१. प्रथम सर्ग में १०१ श्लोक, द्वितीय में ७४, तृतीय में ९२, चतुर्थ में ६६, पञ्चम में १६६, षष्ठ में ४८, सप्तम में १०५, अष्टम में ४७, नवम में ४८, दशम में ४१, एकादश में ४९ और द्वादश में ४६ श्लोक हैं।

२. देखिये प्रथम सर्ग अन्तिम श्लोक —

‘ऊर्ग्योऽभयचन्द्र एधितदग्रा यो भाति साधुप्रिय-

स्तसञ्ज्ञात-कलेवरस्य मुधियः श्रीमाधवस्पाविते ।

काव्ये स्वात्मगत-ग्रमेय-रचने श्रीवीरभानुप्रभोः

सर्वज्ञस्य चरित्र-वर्णन-शुभे सर्गोऽन्तिमाद्योऽनवन् ॥ १०१ ॥’

नामक रानी का पिता गङ्गा-तट पर अवस्थित गङ्गा का राजा अर्जुन था, जिसने विन्ध्याचल पर स्थित इस क्षेत्र में शिवालय बनवा कर यहाँ कर्णतीर्थ (कर्णित) स्थापित किया था । राजला से भैरवचन्द्र उत्पन्न हुआ । उसने कानी, प्रयाग और गया को जीत कर राज्यों का संहार कर डाला । भैरवचन्द्र ने गङ्गा (गंगा) कहलाने वाली नदी के पूर्वी तट पर गहोरा में सुन्दर भवन बनवाये, जिन्हें बाद में वीरभानु ने और सुन्दर आकार दिया ।

भैरवचन्द्र की रानी उद्धरणदेवी बगोसर के वीर दासक सातन की पुत्री थी । उसके गर्भ से ज्येष्ठ राजकुमार बाहरराय उत्पन्न हुआ । उसकी मृत्यु पर उसकी तीन रानियाँ सही हो गईं । तब भैरवचन्द्र ने छोटे पुत्र शालिवाहन को राज्य दिया । हम्मौर चाहुवाण (चौहान) के वंशज पूरणमल्ल की कन्या कल्याणदेवी शालिवाहन की रानी थी, जिसका पुत्र वीरसिंह हुआ । शालिवाहन की अन्य रानी (अर्धदेवी)^१ से उदयवर्ण नामक पुत्र हुआ । इसने पिता द्वारा प्रदत्त धन और राज्य त्याग कर जगदीशपुरी की यात्रा की और वहाँ गज जाति के राजा पुरपोत्तम की कन्या से विवाह कर वह उत्कल देश में ही रहने लगा । वीरसिंह की रानी सुकुमार देवी थी, जिससे वीरभानु और यामिनीभानु दो पुत्र हुए । यामिनीभानु जेठे भाई का आज्ञाकारी था । वीरभानु ने गोसावनी नामक हैहय वंश की राजकुमारी से विवाह किया । इन सुखों के बीच शालिवाहन मृदुल हुए और उन्होंने यमुना तट पर प्राण त्यागा ।

द्वितीय सर्ग में वीरसिंह के राज्य-सञ्चालन और उनकी दिग्विजयों का वर्णन है । वीरसिंह विष्णुभक्त था । वह दानी, तैरस्वी और प्रजापालक था । वीरसिंह ने राजधानी गहोरा को विशेष रूप से बसाया और सजाया; भवनों, सड़कों और मन्दिरों का निर्माण कराया । कवि ने विस्तारपूर्वक गहोरा के चारों ओर स्थित नदी, पहाड़ और नगरी के बीच स्थित बावली, तालाब, निवासी आदि के वर्णन किये हैं ।^२

१. वीर० १।८४ : 'तस्याय (य) देवी कुलपालिकाऽसीत्' इस अंश के आधार पर हीरानन्द दास्त्री ने रानी का नाम अर्धदेवी (क्रिटिकल एनलिसिस, पृ० ९) और श्री लेले ने कुलपालिका (अप्रेजी अनुवाद पृष्ठ ६) लिखा है । प्रतीत होता है कि दो में से कोई भी रानी का नाम नहीं है । 'तस्यायदेवी' यही पाठ ठीक जान पड़ता है, जिसका अर्थ होगा 'उसकी महारानी कुल (कुटुम्ब) का पालन करने के गुण से युक्त थी ।'

२. वीर० २।७-३० ।

अपनी रणयात्रा में वीरसिंह ने सर्वप्रथम दक्षिण में नरो-दुर्ग के विक्रमा-
दित्य को घोर युद्ध में परास्त किया। वीरसिंह ने नरो नगरी को सुसज्जित किया।
तदनन्तर उसने गढ़ा पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा भाग गया। वीरसिंह ने
नर्मदा में स्नान किया और नरो लौट आया। उसने मैदानीति द्वारा नारायण
कुरुवंशी से बान्धव दुर्ग ले लिया; वहाँ रानियों और पुत्रों के साथ रहा। उसके
सेनापति (या मन्त्री) साहू ने विरोधी कुरुवंशियों को यमलोक पहुँचा दिया।
वीरसिंह ने गङ्गातट तक शत्रुओं को निर्मूल किया और अलर्क नगर (अरैल)
में निवास किया। पूर्वजों के अनुसार उसने दिल्ली के म्लेच्छ शासकों^१ के
साथ सन्धि कर ली। वीरसिंह ने रत्नपुर^२ को जीत लिया और कर उगाहा।
उसने डहल^३ और सहजोर^४ जीत लिया तथा भर^५ राजा को अधीनस्थ बनाया।
वीरसिंह से बम्बर (बाबर) भी भय खाता था।

वीरसिंह ने दोनों पुत्रों को नौति सिखायी और उनके विवाह सम्पन्न
किये। अन्त में उसने वीरमानु को राज्य सौंप कर त्रिवेणी-वास किया।

तृतीय सर्ग के कथानायक वीरमानु की कथा प्रारम्भ होती है। वीरमानु
ने गङ्गा (इलाहाबाद) में पिता को अन्त्येष्टि पूरी कर अलर्क नगर से सेना-सहित
प्रस्थान किया। वह शालिवाहनपुर पहुँचा और उसने नगर देखा। अपने फुफेरे
भाई रामचन्द्र को उसने नगरी दिखलाई और उसका वर्णन किया। इस वर्णन
में प्रकृति-चित्रण भी है। यहीं बाटिका में कुछ दिनों सेना ने विश्राम किया।
फिर वीरमानु ने राजधानी गहोरा को ओर प्रस्थान किया।

चतुर्थ सर्ग में वीरमानु की गहोरा की ओर यात्रा पूरी होती है। वह
यमुना-तट पर स्थित कोटर ग्राम पहुँचता है और यमुना में स्नान कर देवस्तुति
करता है। यहाँ वह विन्ध्य की तराई में स्थित तीर्थों में जाता है। कोटर से
गहोरा राजधानी पहुँचने पर प्रजाजन वीरमानु का स्वागत करते हैं।

पञ्चम सर्ग में प्रारम्भ में गहोरा में वीरमानु का अभिषेक वर्णित है।
इस अवसर पर अनेक अधीनस्थ राजाओं और सामन्तों ने भेंट दी। राजा
वीरमानु की शोभा-यात्रा निकली। उसने उपत्यका पर स्थापित अपने
कुलदेव कौरेदेव की अर्चना की। राजा में समस्त राजोचित शुभ गुण थे।

१. लोदी और मुगल।

२. रतनपुर (जिला बिलासपुर)।

३. डहल का अपभ्रंश-कैमोर-कैहैजुआ का पठार, नर्मदा का उत्तरी क्षेत्र।

४. सहजोल।

५. सतना जिले के भर-वंशीय क्षत्रिय।

वह मुशासक था। उसके पास अनेक दुर्ग थे, जिनमें से एक दुर्ग के आश्रित नगर में बह रहा था। इस वर्णन के साथ सर्गान्त तक विस्तृत रूप से राज्य-तन्त्र का पाण्डित्यपूर्ण विवरण है। वीरमानु ने क्षत्रियों का दमन किया और उज्जैन देश को जीत लिया।

षष्ठ सर्ग में वीरमानु द्वारा दासवानुकूल नीतिपालन और राज्य-मुख-भोग का वर्णन किया गया है।

सप्तम सर्ग में वीरमानु की पिय रानी राय (राज) मती गर्भवती ध्वस्वप्न में स्वप्न देखती है। स्वप्न में दशों अवतार तथा अनेक देवी-देशों के दर्शन होते हैं। कल्कि को देखकर रायमती चाहती है कि 'भलेच्छनाशक कल्कि भगवान मेरी कोख से जन्म ले।' अन्त में वैकुण्ठ से आकर वीरसिंह दर्शन देते हैं एवं गर्भवत्य शिशु को आशीर्वाद देकर राजनीति सिखाते हैं। वे बतलाते हैं कि गर्भवत्य शिशु कल्कि का अवतार है और उसमें चक्रवर्ती के चिह्न हैं। जागने पर रानी वीरमानु से स्वप्न बतलाती है और दोहद-कामना के रूप में कहती है कि उनके उद्दण्ड पिता, रतनपुर-नरेश दादूराय को परास्त किया जाय। वीरमानु यह कामना पूरी करने का सञ्कल्प करते हैं। तत्पश्चात् राजकुमार रामचन्द्र के जन्मोत्सव का वर्णन किया गया है।

अष्टम सर्ग में रामचन्द्र के विद्याभ्यास का वर्णन है। गणेश राउत नामक मन्त्री को यह कार्य सौंपा गया। कुमार ने द्वात्रिंश-सञ्चालन, राजनीति और दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। उसने गीत-नृत्य आदि कलाएँ भी सीखीं। राजा ने कुमार के सुशिक्षित होने पर गणेश राउत को पुरस्कारस्वरूप दुर्ग का आधिपत्य सौंपा और कुमार के विवाह की विन्ता की।

नवम सर्ग में कवि ने रामचन्द्र के विवाह और यौवराज्याभिषेक का वर्णन किया है। गौरनगर (या गौरापुर) के अरिष्टनेमि गोत्र के राजा कीर्तिसिंह की पौत्री, पदार्थ देवी और माधवसिंह की पुत्री तथा रतनसेन की बहन यशोदा के साथ विवाह स्थिर हुआ। भारद्वाज-वंशीय व्याघ्रपाद् गोत्र वाले बघेलों की बारात गौरनगर में पहुँची। बारात विन्ध्यशैल (बान्धवगढ़) से गई थी। विवाह सम्पन्न हुआ। माधवसिंह ने राज्य के अतिरिक्त सारी सम्पत्ति दहेज में दे दी। रतनसेन बहन को पहुँचाने आए।

विन्ध्य दुर्ग (बान्धवगढ़) पर वीरमानु ने मन्त्रियों से परामर्श कर रामचन्द्र को मुवराज-पद दे दिया। रामचन्द्र ने अधिकार सँभाला और वीर-मानु ने ब्रह्मविद्या में चित्त लगाया।

विन्ध्य दुर्ग (बान्धवगढ़) पर वीरमानु ने मन्त्रियों से परामर्श कर रामचन्द्र

को युवराज पद दे दिया। रामचन्द्र ने अधिकार संभाला और वीरभानु ने ब्रह्मविद्या में चित्त लगाया।

दशम सर्ग में रामचन्द्र का शासनारम्भ है। पिता-पुत्र का संयुक्त शासन चल रहा था। वीरभानु विरक्ति-भार्ग की ओर अग्रसर हुए और रामचन्द्र ने शत्रुओं का उन्मूलन किया। रामचन्द्र असाधारण राजा हुआ। अन्तर्वेद, कलिङ्ग और अमरकण्टक तक उसके राज्य की सीमाएँ थी तथा उसका प्रभाव दक्षिणी सागर तक था। सुल्तान मुहम्मद अदली स्वयं उसकी शरण में आया। गान्धर्व विद्या के साकार रूप तानसेन को रामचन्द्र ने करोड़ों टंका धन पुरस्कार में दिया। राज्य-सञ्चालन की अपूर्व क्षमता के कारण रामचन्द्र का यश चतुर्विध छा गया।

एकादश सर्ग में रामचन्द्र की आखेट यात्रा है। रामचन्द्र धर्म में धुंधिल, बल में भीम, शर-सन्धान में अर्जुन और कर्ण, अश्वारोहण में नकुल और पाण्डित्य में सहदेव को लज्जित करता था। वसन्त ऋतु में उसने आखेट यात्रा की और अनेक जन्तु मारे।

द्वादश सर्ग में रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र का जन्मोत्सव और काव्य का उपसंहार है। यशोदा के गर्भ से वीरभद्र का जन्म होने पर रायमती और वीरभानु को अपार आनन्द हुआ। उत्सव में घूम रही। यशोदा ने माता-पिता पदार्थ दे और माधवसिंह तथा भाभी रमावती और भाई रत्नसेन ने भी उत्सव मनाया। इस अवसर पर यवनराज हुमायूँ ने अमार्य और दूतों के हाथ उपहार भेजे।

राजा वीरभानु ने पुत्र-पौत्र के साथ कुछ समय सुख के साथ बिताया। उन्होंने धर्म से राज्य का भोग किया, बल से शत्रुओं को जीता, धन से विद्वानों को तृप्त किया और सन्तति देखकर मन में सुख माना। उन्होंने सर्वथा सक्षम रामचन्द्र पर राज्य का पूर्ण भार सौंप दिया और संसार को असार मान कर त्रिवेणी-तट पर अलर्कपुर में वास किया। वहाँ उन्होंने अपनी वृद्धा-वस्था सार्थक की।

वीरभानु इस प्रकार गुणवान् नरेश थे। उनके तेज से सूर्य, सम्पत्ति से इन्द्र और प्रतिभा से बृहस्पति स्पष्टी करते थे।

अन्त में कवि ने संक्षेप में अपने सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं—“विष्णु के भक्त, गुणीजनों को सन्तुष्ट रखनेवाले, गुरु और राजा को दया चाहनेवाले माधव का यह काव्य राज्याश्रित होने से यश प्राप्त करेगा।

अमयचन्द्र ऊरव्य की साखी पत्नी दुर्गा ने अपने पुत्र को सम्मार्ग पर रखाया । यह वीरभानूदय काव्य उसके यश रूपी शृङ्गा के समान सुशोभित है । यह सदा प्रसिद्ध रहेगा ।”

(ख) काव्यात्मक विरलेषण

महाकाव्य के लक्षण और वीरभानूदय काव्य का परीक्षण

वीरभानूदयकाव्य में १६ वीं शती में उत्पन्न बघेल नरेश वीरभानु का १२ सगों में सम्पूर्ण चरितवन्धन किया गया है । अतः छन्द की व्याख्या के अनुसार यह प्रबन्ध काव्य है । साथ ही यह पद्यात्मक सर्गबन्ध संस्कृत-रचना है ।

आचार्यों ने प्रबन्धकाव्य के चार प्रमुख भेद किये हैं—सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, आख्यायिका और कथा ।^१ सर्गबन्ध काव्य महाकाव्य और अन्य भी हो सकता है, जैसे अभिनन्द कृत अष्ट-सर्गात्मक कादम्बरीकथासार अथवा गीतगोविन्द आदि ।^२ इसलिए महाकाव्य बनने के लिए सर्गबन्धता-मात्र लक्षण नहीं हो सकता । अभिनेयार्थ शब्द नाटक आदि मिथ एवं दृश्य काव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है । आख्यायिका के सम्बन्ध में दण्डी^३ और हेमचन्द्र^४ ने स्पष्ट लिखा है कि वह गद्यकाव्य ही हो सकता है । हेमचन्द्र के मत से कथा गद्य और पद्य दोनों में लिखी जा सकती है ।^५ साथ ही कादम्बरीकथा-सार एक सर्गबन्ध कथाकाव्य के उदाहरण के रूप में प्राप्त है ।

सर्गबन्ध पद्यात्मक रचना होने से वीरभानूदय न तो अभिनेयार्थ है और न आख्यायिका । वह या तो कथा-प्रबन्ध है या चरित-प्रधान प्रबन्ध काव्य, जिसके अन्तर्गत महाकाव्य, काव्य और सङ्घकाव्य आते हैं ।

अतः प्रबन्धों के अन्तर्गत पहले हमें वीरभानूदय का कथा के क्षेत्र में परीक्षण करना होगा ।

१. भामह . काव्यालङ्कार : बनारस : १९८५ वि० । परि० १।१८ ।

२. ध्वन्यालोक : काव्यमाला २५ : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : उ० ३।७ : अभिनवगुप्त व्याख्या ।

३. काव्यादर्श १।२३ : ‘अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा । इति तस्य प्रभेदो द्वौ-’

४. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९०१ अध्याय ८, पृष्ठ ३३८ : ‘नायकाख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्यसंति वक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका ।’

५. वही, अ० ८ पृ० ३३८ : ‘वीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ।’

हेमचन्द्र ने कथा के दस प्रभेद किये हैं, जिनमें आनन्दवर्धन द्वारा निश्चित प्रभेद भी सम्मिलित हैं।^१ इनमें से आख्यान किसी को नीति, आचरण, धर्म आदि समझाने की दृष्टि से कथन के रूप में प्रबन्धों के मध्य में लाया जाता है। इसके अन्तर्गत उपाख्यान भी होते हैं। निदर्शन में पञ्चतन्त्र आदि की भाँति पशु-पक्षियों की चेष्टाएँ निर्णयों का आधार बनती हैं।^२ प्रवह्लिका और मतल्लिका में संस्कृतेतर भाषाओं का प्रयोग होता है। मणिकुल्या में आज-कल के जामूसी उपन्यासों की भाँति वस्तु का प्राकट्य अन्त में होता है। खण्डकथा और उपकथा आंशिक कथा या घटना पर आश्रित होती है।^३ इन आठ प्रभेदों के अन्तर्गत वीरभानूदयकाव्य पर विचार नहीं हो सकता। शेष दो अर्थात् परिकथा और सकलकथा के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है।

आनन्दवर्धन के परिकथा प्रभेद पर अभिनवगुप्त का मत है कि धर्म आदि किसी एक पुरुषार्थ को लक्षित कर प्रकार-वैचित्र्य के द्वारा अनन्त वृत्तान्तों का वर्णन प्रस्तुत करने वाली परिकथा होती है।^४ हेमचन्द्र ने यह व्याख्या स्वीकार की है और कहा है कि शूद्रक की भाँति कोई विजय का इच्छुक जब कुशल

१. काव्यानुशासनः काव्यमाला ७०: निर्णयसागर प्रेस बम्बई : अध्याय ८ पृ० ३४० : 'एते च कथाप्रभेदा एव ।'

२. वही, अध्याय ८ पृ० ३३९ : 'प्रबन्धमध्ये पर-प्रबोधनार्थं नलाद्युपाख्यानमिवोपाख्यानमभिनयन् पठन् गायन् यदैको ग्रन्थिकः कथयति तद् गोविन्दवदाख्यानम् ।—' तथा 'तिरश्चामतिरश्चां वा चेष्टामिर्नत्र कार्यमकार्यं' वा निरधीयते तत् पञ्चतन्त्रादिवत् घूर्तविटकुट्टिनीमत-मयूरमार्जारिकादिवच्च निदर्शनम् ।'

३. वही, अ० ८ : पृष्ठ ३४०-४१ : व्याख्या-

'लम्माद्धिताद्भुतार्था पिप्पलाचमापामयो महाविषया ।

मरवाहनदत्तादेशचरितमिव बृहत्कथा भवति ॥'

पृष्ठ-३३९-'...सार्धप्राकृतरचिता घटकादिवत् प्रवह्लिका । प्रेत-महाराष्ट्रभाषया सुद्रकथा—मतल्लिका ।—यस्यां पूर्वं वस्तु न लक्ष्यते पश्चात्तु प्रकाश्यते सा मतस्यहसितदिशन्मणिकुल्या ।'

पृष्ठ ३४०- : 'मध्यादुपान्ततो वा ग्रन्थान्तरप्रसिद्धमिति वृत्तं यस्यां वर्ण्यते छेन्दुमरयादिवत् खण्डकथा ।—एकतरचरिताश्रयेण प्रसिद्धकथान्तरोपनिबन्ध उपकथा ।'

४. ध्वन्यालोक : ३।७ : अभिनवगुप्त : 'एकं च धर्मादि-पुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकार-वैचित्र्येणानन्त-वृत्तान्त-वर्णन-प्रकारा परिकथा ।'

जनों से बहुत से प्रतियोगियों को कथाएँ क्रमशः सुनता है तब इन कथाओं के संपुक्त रूप को परिकथा कहते हैं।^१ इन व्याख्याओं से हम देखते हैं कि परिकथा वृत्तान्तों का एक संकुलित रूप है, जो इतिवृत्तप्रधान वर्णन होता है और जिसका लक्ष्य विस्मय उत्पन्न करते हुए जलौकिक तत्त्व प्रस्तुत कर अन्त में कुतूहल की धान्ति करना होता है।

आनन्दवर्धन ने सकलकथा को प्राकृत में बतलाया है।^२ अभिनवगुप्त ने उसे समस्त फलों की सम्पत्ति करनेवाली एवं इतिवृत्त-वर्णनात्मक लिखा है। हेमचन्द्र इस व्याख्या को मानते हुए सकलकथा को चरित बतलाते हैं।^३

सकलकथा भी इतिवृत्तात्मक है और उसका भी लक्ष्य लगभग वही है, जो परिकथा का है। इसके अतिरिक्त सकलकथा के लक्षणों की अतिव्याप्ति महाकाव्यों में भी होती है, क्योंकि वे भी इतिवृत्तात्मक, चरित और समस्त-फलान्त हो सकते हैं।

इन पद्यबद्ध कथाओं की वर्तमान आलोचकों ने कथा-काव्य नाम दिया है।^४ उनके आधार पर वीरभानुदयकाव्य में और कथा-काव्य में निम्नलिखित प्रमुख भेदक तत्त्व मिलते हैं—

१—कथाकाव्यों का आधार प्रणयकथाएँ होती हैं। उनमें मूलतः शृङ्गार-रस और गौण रूप से वीर-रस का परिपोषण होता है। इन कथाओं की वस्तु उत्पाद्य (पूर्णतः कल्पित) होती है। वीरभानुदय काव्य का आधार एक ऐतिहासिक राजा का जीवनचरित है, जिसकी कथा में कल्पना का बहुत कम योग है तथा इसमें प्रधान रस धान्त है, जो कथाकाव्य का प्रधान रस नहीं हुआ करता।

२—कथाकाव्य का नायक धीरशान्त कोटि का होता है। उसका जीवन समाज या जाति का प्रतिनिधि न होकर व्यक्तिमूलक होता है। वीरभानुदय काव्य का नायक राजा वीरभानु धीरोदात्त है तथा वह एक वीर, प्रजारञ्जक एवं नीतिधर्मपरायण शासक है, जिसका जीवन समाज का प्रतिनिधि है।

१. काव्यानुशासन : अ० ८ : पृ० ३३९-४० : व्याख्या—

‘पर्यायेणवहूनां यत्र प्रतियोगिना कथाः कुतलैः।

श्रूयन्ते शूद्रकवज्जिगीषुभिः परिकथा सा तु॥’

२. ध्वन्यालोकः ३।७ : वृत्ति—‘सख्यकथा-सकलकथयोः प्राकृतप्रसिद्धयोः।’

३. काव्यानुशासन : अ० ८ : पृ० ३४० : वृत्ति तथा व्याख्या—

‘सकलकथेति। चरितमित्यर्थः।’ वृत्ति—‘समरादित्यवत्।’

४. हि० सा० को० : भाग १ : कथाकाव्यः पृष्ठ १८२-८३।

३—कथाकाव्य का मूल लक्ष्य लोकरञ्जन होता है। उसमें कुतूहलजनक दृश्य विप्रलम्भ, सङ्ग्राम, कन्याहरण आदि विस्मयोत्पादक दिव्य अलौकिक शक्तियों के प्रयोग, रोमांसिक एवं साहसपूर्ण कथानक तथा अवान्तर कथाओं का बाहुल्य होता है। वीरभानूदय काव्य में इन वस्तुओं का समावेश नहीं है तथा उसका सद्देश्य चरित्र के उत्थान की प्रवृत्ति से समन्वित है।

इन कारणों से वीरभानूदय को कथाकाव्यों की कोटि में नहीं रखा जा सकता। पद्यात्मक काव्य के क्षेत्र में विश्वनाथ ने महाकाव्य के पश्चात् काव्य और खण्डकाव्य नामक दो प्रभेदों का उल्लेख किया है। सम्भूनायसिंह ने इस प्रसङ्ग में इस प्रकार लिखा है—

“विश्वनाथ कविराज ने ‘साहित्यदर्पण’ में महाकाव्य का लक्षण बताने के बाद खण्डकाव्य का उल्लेख इस प्रकार दिया है—

‘भाषा-विभाषा-नियमात् काव्यं सर्ग-समुत्थितम् ।

एकार्थ-प्रवर्गः पद्यैः सन्नि-सामग्यवर्जितम् ॥

खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च ॥ ६।३२८-२९’

इस परिभाषा के अनुसार किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध एवं एक कथा का निरूपक पद्यग्रन्थ, जिसमें सभी सन्धिपंक्त न हों, ‘काव्य’ कहलाता है और काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला खण्डकाव्य होता है। विश्वनाथ की इस परिभाषा का अनुसरण करके विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रबन्धकाव्य के तीन भेद किये हैं, महाकाव्य, एकार्थकाव्य और खण्डकाव्य। उनके अनुसार महाकाव्य और खण्डकाव्य के बीच की कड़ी एकार्थकाव्य है, जिसे विश्वनाथ ने केवल काव्य कहा है। ‘...खण्डकाव्य में एकार्थकाव्य की भाँति पूर्ण जीवन का कोई उद्दिष्ट पक्ष नहीं होता’^१ जिन प्रबन्ध काव्यों में किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण तो होता है, पर समग्र युगजीवन का चित्रण नहीं होता और न महाकाव्य के सभी लक्षण पाये जाते हैं, उन्हें एकार्थकाव्य कहना उचित ही है।”^२

उपरोक्त तर्कों से सहमत होने से पूर्व हमारे समक्ष कुछ कठिनाइयाँ हैं। प्रमुख कठिनाई है विश्वनाथ के उपरोक्त श्लोक में पाठभेद की समस्या अर्थात् साहित्य-दर्पण के अनेक संस्करणों में ‘सर्ग-समुत्थितम्’ नहीं अपितु ‘सर्ग-समुत्पन्नम्’ पाठ और उसकी टीकाएँ—सर्गबन्धवर्जितम्, अव्यायवर्जितम्, सर्गहीनम् आदि उपलब्ध हैं। साथ ही ‘सन्धिसामग्र्यवर्जितम्’ की परस्पर-विरोधित्व टीकाएँ (सन्धिसामग्र्यवर्जितम् तथा सन्धिसामग्री-वर्जितम् के आधार

१. वाङ्मयविमर्श, द्वितीय संस्करण : पृष्ठ ३९।

२. हिन्दी साहित्य-कोश : भाग १ : पृष्ठ २४६-४७ : खण्डकाव्य।

पर) 'सन्धीनां सामग्र्येण समुदायेन वर्जितम्' और 'सन्धि-सामग्र्या सहितम्' प्राप्त है। एकार्थप्रवणः के अर्थ 'एकार्थ-प्रतिपादकः, एकवाक्यतापन्नः, एक-विषय-प्रतिपादकः, प्रस्तुतार्थप्रतिपादनमात्रपरः' मिलते हैं।

विश्वनाथ ने काव्य-प्रभेद के उदाहरण में मिश्राटन और आर्याविलास नामक ग्रन्थों के नाम गिनाए हैं^१, जो अप्रसिद्ध हैं। नाम मात्र से ये ग्रन्थ सर्ग-बन्ध रचना की अपेक्षा 'एकार्थप्रवणपद्यों में निर्मित' अनिविद्ध कोटि के सङ्घात या पर्यायबन्ध जैसे सङ्कलनात्मक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। यह भी सम्भव है कि इतिवृत्तात्मक पद्यकथा के लिए विश्वनाथ ने काव्य-प्रभेद की व्यवस्था की हो, क्योंकि वे मानते हैं कि कथा में सरस रचना गद्य में ही सम्भव है।^२ कुल्लुमाचारियर ने मिश्राटन की गणना लघुकाव्यों के अन्तर्गत की है।^३ ऊपर हम यह देख चुके हैं कि कुछ को छोड़कर प्रायः सभी टीकाकारों ने काव्य-प्रभेद को सन्धिसमुदाय से रहित सर्गहीन प्रभेद माना है। अतः वीरभानूदयकाव्य का परीक्षण करते समय हम उसे इस प्रभेद में नहीं रख सकते, क्योंकि यह काव्य सन्धि-समन्वित एवं सर्गबन्ध रचना है, चाहे उसमें महाकाव्य की समस्त लक्षणों की पूर्ति नहीं भी होती हो। साथ ही एकदेशीय कथा पर आधारित लण्ड-काव्य या चतुर्थर्गों में से एक को लेकर प्रवृत्त होने वाले लघुकाव्य^४ के अन्तर्गत भी वीरभानूदय को नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह सम्पूर्ण कथा पर आधारित एवं समस्त फलान्त रचना है, जैसा हम आगे देखेंगे। अब हम वीरभानूदय काव्य पर महाकाव्य की दृष्टि से विचार करते हैं।

१. साहित्यदर्पण १-सामचरणतर्कवागीशः चतुर्थ संस्करण : निर्णयसागर, बंबई : ६।३२८ : १९२२ : पृष्ठ ३७५ : २-जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३७ : ३-शिवदत्त कविरत्न : बेंकटेश्वर प्रेस बंबई : पृ० ५४२ : ४-पी० वी० काणे : द्वितीय संस्करण : बंबई : १९२३ : ६।३२८।

२. साहित्यदर्पण : निर्णयसागर : बम्बई : १९२२ : ६।३२८ : पृ० ३७५।

३. वही, ६।३३२ : 'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।'

४. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ८०।

५. रुद्रट : काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : निर्णयसागर : बम्बई : अध्याय ३६।६।

'ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेन्नतुर्वर्गत्।

'असमग्रानेकरसा ये च समग्रैक-रसयुक्ताः॥'

संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य प्रभेद की ओर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने किसी महाकाव्य के ग्रथन अथवा परोक्षण के लिए जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उनमें कहीं मौलिक अन्तर नहीं पड़ा है। स्थूल लक्षणों में अवश्य कुछ घट-बढ़ होती रही है, जिसके कारण ये वे पूर्ववर्ती महाकाव्य, जो सम्बद्ध आचार्य के समक्ष नव-प्रसिद्ध रूप में आ जाते थे। भामह ने रामायण और महाभारत तथा अन्य पूर्ववर्ती महाकाव्यों का अवलोकन किया होगा किन्तु दण्डी ने रघुवंश एवं कुमारसम्भव पर भी विचार किया होगा। इसी प्रकार हेमचन्द्र और विश्वनाथ की परिभाषाएँ किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषध से प्रभावित होंगी। इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी के महाकवि शास्त्रकारों के अनुगामी होते हुए प्रवीत होते हैं।

आचार्यों ने महाकाव्यों के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उन्हें हम स्थूल और सूक्ष्म दो तत्त्वों में बाँट सकते हैं। पहले हम स्थूल तत्त्वों पर विचार करेंगे।

१—महाकाव्य सर्गबन्ध रचना होती है।^१ ये सर्ग अत्यन्त संक्षिप्त या विस्तीर्ण नहीं होने चाहिए। उनको संख्या ८ से अधिक होनी चाहिए। कुछ मतों के अनुसार महाकाव्य की भाषा संस्कृत ही हो सकती है।^२ वीरभानूदय द्वादश सर्गों में तथा संस्कृत पद्यों में आबद्ध रचना है। इसके सर्ग अति संक्षिप्त या अति विस्तीर्ण नहीं है। प्रथम सर्ग में १०१, तृतीय में ९२ पञ्चम में १६५ और सप्तम में १०५ श्लोक हैं। इतनी विस्तीर्णता अन्य महाकाव्यों में भी मिलती है। विश्वनाथ के मत से नाटक के अङ्कों की भाँति सर्गों के अन्त में भावो कथा की सूचना होनी चाहिए।^३ वीरभानूदय में तृतीय, अष्टम और नवम सर्गों में इस नियम का पालन हुआ है। महाकाव्य का नामकरण कवि, वस्तु या नायक के आधार पर होना चाहिए।^४ प्रस्तुत काव्य का नामकरण

१. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१९ : काव्यादर्श (दण्डिन्) १।१४।

साहित्यदर्पण : ६।३१५ 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्।'

२. साहित्य० ६।३२० : 'नातिस्वल्पा नातिदोषीः सर्गा अष्टाधिका इह'।
तथा काव्यानुशासन : अ० ८ पृ० ३३० : 'असंक्षिप्तग्रन्थत्वं अविषम-
बन्धत्वं अनतिविस्तीर्णत्वं परस्पर-निबन्ध-सर्गादित्यम्'। अग्नि० :
अध्याय ३३७।२६-२७ : 'नातिविस्तरम्—नातिसंक्षिप्तसर्गकम्।'
तथा ३३७।२४ : 'आरब्धं संस्कृतेन यत्'।

३. साहित्य० ६।३२१ : 'सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।'

४. वही, ६।३२४-२५ : 'कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य'। तथा अग्नि० ३३७।३४ : 'विश्वविख्यातं नायकाख्यया।'

नायक धीरमानु के नाम पर आधारित है । साहित्यदर्पण^१ के अनुसार धीरमानुदय के सर्गों में एक वृत्तमय पद्य है, सर्गान्त में वृत्त-परिचय होता है तथा ३ सर्ग मानावृत्तमय है ।^२ कवि ने प्रमाणिका, उपजाति, स्वागता, भुजङ्गप्रयात, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, चार्दूलविक्रीडित और सग्वरा के प्रयोग किए हैं ।^३

२—शास्त्रकारों ने उद्दीपन और आलम्बन विभावों की लम्बी सूची प्रस्तुत की है, जिनका वर्णन वे महाकाव्य में उचित मानते हैं । इस सूची में कुछ वस्तुओं के साङ्गोपाङ्ग वर्णन भी सम्मिलित हैं ।^४ वास्तव में यह सूची अनेक महाकवियों की रचियों का सङ्कलन है ।

धीरमानुदयकाव्य में प्रारम्भ में नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश^५ प्राप्त हैं ।

१. धीर० १२।४४ । एकवृत्तमयः पर्यवसानेऽन्यवृत्तकैः ।

२. साहित्य० ६।३२०-२१ । मानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कञ्चन दृश्यते ॥'

३. धीर० सर्ग ६, ७ और ९ : इनमें से अनेक वृत्तों का प्रयोग अग्नि-पुराण (अध्याय ३३७।२६-२८) के निर्देशों के अनुरूप है ।

४. भामहः काव्यालङ्कार १।२० : अग्निपुराण ३३७।२६, २९-३१ । तथा दण्डिन् : काव्यादर्श १। ६-१७ :

'नगराणव - शैलर्तु - चन्द्रार्कोदय - वर्णनैः ।

उद्यान-सलिलक्रीडा - मधुपान - रतोत्सवैः ॥

विप्रलम्भविवाहैश्च कुमारोदय - वर्णनैः ।

मन्त्र-दूत - प्रयाणाजि - नायकाम्पुदयैरपि ॥'

एवं विश्वनाथः साहित्यदर्पणः जीवनानन्द-विद्यासागर-टीका : कलकत्ता:

१९३४ : परि० ६ पृ० ५३२-३३ : ।

'आदौ नमस्क्रियासीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।

क्वचिन्निन्दा खलादीना सतां च भुण्क्तीर्तनम् ॥...

सन्ध्या-सूर्येन्दु-रजनी - प्रदोष - ध्वान्त - वासराः ।

प्रातर्मध्याह्न - मृगया - शैलर्तु - वन - सागराः ॥

सम्भोग-विप्रलम्भौ च मुनि-स्वर्ग-गुराध्वराः ।

रणप्रयाणोपयम-मन्त्र-पुत्रोदयादयः ॥

वर्णनीया यथायोग्या साङ्गोपाङ्गा भवी इह ॥'

साय ही देखिये—रुद्रट : काव्यालङ्कार : १६।७-८ तथा हेमचन्द्र : काव्या-

मुशासन : काव्यमाला ७० : दम्बई : १९०१ : अध्याय ८ पृ० ३३४-३७ ।

५. धीरमानुदयकाव्यम् : सर्ग १।१-५ । . .

प्रकृत्यङ्गों में से यथावकान पर्वत^१ वन^२ नदी^३ उद्यान^४ ऋतु^५, उपःकाल^६, तथा सन्ध्या^७ के वर्णन प्राप्त होते हैं। राजा और राज्य से सम्बद्ध वस्तुओं, जैसे मृगया^८ नगर^९, अग्निपेक^{१०}, नायक का अम्बुदय, नीति और शासन^{११}, सेनाओं के प्रयाण^{१२} और शिविर^{१३}, मन्त्रणा^{१४}, युद्ध^{१५}, विवाह^{१६}, और कुमारोदय^{१७} आदि वर्णन विस्तार के साथ लिखे गये हैं। दुष्टों के प्रति निन्दात्मक और सज्जनों के प्रति प्रशंसात्मक वचन भी कहे गये हैं।^{१८} सम्मोग, रतोत्सव^{१९} तथा विप्रलम्भ^{२०} और दार्शनिक चर्चाएँ^{२१}, विरक्तिजनक, त्रिवेणीतट^{२२} आदि वर्णन भी उपलब्ध हैं। महाकाव्य में प्रतिनायक के पराक्रम आदि गुणों का वर्णन करते हुए नायक द्वारा प्रतिनायक की पराजय का वर्णन होना चाहिए।^{२३} इस तत्त्व की पूर्ति के लिए वीरभानूदय काव्य में वीरसिंह के प्रतिनायक विक्रमादित्य परिहार तथा वीरभानु के प्रतिनायक दादुराय के प्रसङ्गों को देखा जा सकता है।^{२४} सूर्योदय, प्रदोष, रात्रि, अन्धकार, चन्द्रोदय, मधुपान, जलक्रीडा और रतोत्सव के जो साङ्गोपाङ्ग वर्णन निर्दिष्ट हैं, उन्हें इस काव्य में स्थान नहीं दिया गया है। प्रतिनायक के उदय से सुख्य होकर जिस क्रम से नायक द्वारा मन्त्रणा, प्रयाण और युद्ध आदि के साङ्गोपाङ्ग वर्णनों की अपेक्षा लक्ष्मणों में निर्दिष्ट है, वह भी उस क्रम से यहाँ नहीं है। इसका मूल

१. सर्ग २।९, २. सर्ग ११।१३, २५, ३. सर्ग २।२१-२२, ४. सर्ग ३।१७-५०, ५. सर्ग ११।९-१०, ३०-३१, ३४-३५, ३७, ३९, ६. सर्ग ११।१८, २६, ७. सर्ग ११।३१, ८. सर्ग ११।११-४५, ९. गहोरा, सर्ग २।७-३० : मये २।४९-५५ : शालिवाहनपुर ३।८-१६ तथा रत्नपुर ७।७१-७५, १०. सर्ग ५।१-२३, ११. सर्ग ५, ६, १०, १२. सर्ग २।३१-४० : ३।२-७, ९१ : ९।१६-१८ तथा ११।१४-२१, १३. सर्ग ३।७१-८५, १४. सर्ग ५।५३, ५८, ७०-७२, १०६, ११९, १५. सर्ग २।४१-४८, १६. सर्ग ९।१-४०, १७. सर्ग १२।६-२३ वीरभद्र की उत्पत्ति, १८. सर्ग ५।४४-४५, १९. सर्ग ३।२१-२२, २६-३०; ६६-७० : सर्ग ६।४३ : सर्ग ७।-२ : सर्ग ८।२८, ३१ : सर्ग ११।६, १०, २०, ३२, ३५, ३९। २०. सर्ग ११।४०-४१, २१. सर्ग १२।३६, २२. सर्ग १२। ३७-३८।

२३. काव्यादर्श : १।२२ : 'वंशवोर्यथ्युतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।

तज्जयान्नायकोत्कर्षकयनं च धिनोति नः ॥'

२४. वीर० : सर्ग २।३१-४८ तथा सर्ग ७।६८-७५।

कारण यह है कि उपर्युक्त लक्षणों की पुष्ट्यूर्ति में शृङ्गार और वीर-रस-प्रधान महाकाव्यों की ही कल्पना है। यद्यपि विश्वनाथ ने शृङ्गार, वीर और शान्त तीनों में से प्रत्येक को अङ्गीरस होने का अधिकार दिया है,^१ तथापि लक्षणों का निर्देश करते समय वे अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति शृङ्गार-वीर-रसात्मक महाकाव्यों, विशेषतः किरात और शिशुपालवध का ही ध्यान रखते हैं। अतः ये सभी लक्षण शान्तरसप्रधान महाकाव्य के लिए नहीं माने जा सकते। वीरभानुदय के कवि ने शान्त रस की प्रतिष्ठापना की है और अनिवार्य प्रथाओं का पालन करते हुए भी क्रम और वस्तुवर्णन में स्वतन्त्रता ग्रहण की है।

सूक्ष्म और व्यापक तत्त्वों में हम कथानक और नायक, सन्धियाँ, ललित फल एवं शैली (रस और शब्दशक्ति) आदि ग्रहण कर सकते हैं।

भामह ने विषय-वस्तु की दृष्टि से महाकाव्यों के चार विभाग किये हैं—

१—घटित देवादिक्रित का सूचक २—उत्पाद्यवस्तु ३—कलाश्रित और ४—शास्त्राश्रित।^२ अग्निपुराण,^३ काव्यादर्श^४ और साहित्यदर्पण^५ में दो ही रूप ग्रहण किये गये हैं—१—इतिहास-कथा पर आधारित तथा २—सज्जनाश्रित अन्य।

चट्टट ने महाकाव्यों के स्वरूपों, विशेषतः वस्तु-वर्णन पर विस्तृत निर्देश दिये हैं^६। उनका मत है कि सभी प्रवन्धों के उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दो भेद होते हैं। जिन काव्यों का सम्पूर्ण शरीर कवि की प्रतिभा से जनित होता है, उन्हें उत्पाद्य और जिन काव्यों का पञ्जर इतिहास-प्रसिद्ध अर्थात् रामायणादि कथाओं में पूर्व वर्णित होता है और कवि उसके सम्पूर्ण या आंशिक रूप पर अपनी काव्य-कला का प्रयोग करता है, वे अनुत्पाद्य कहलाते हैं।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, रघुवंश, नैषध आदि महाकाव्यों को इसी आधार पर अनुत्पाद्य माना जायगा कि उनका पञ्जर रामायण, महाभारत आदि में प्रसिद्ध है। दूसरी ओर सर्वथा कविकल्पित काव्य को ही यदि उत्पाद्य

१. साहित्यदर्पण : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३२ :

शृङ्गार-वीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।'

२. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१७ :

वृत्तदेवादिक्रितशंसि चोत्पाद्यवस्तु च ।

कलाशास्त्राध्ययञ्चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः ॥'

३. अध्याय ३३७।२५ : 'इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम् ।'

४. परि० १।१५ ।

५. परि० ६ : पृष्ठ ५३२ : 'इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ।'

६. काव्यालङ्कार : १६।१-१८ ।

माना जाय तो ऐसे महाकाव्यों का सर्वथा अभाव है। अनुत्पाद्य कोटि से हट कर केवल ऐसे ही महाकाव्य सुलभ होते हैं, जिनका पञ्जर प्राचीन इतिहासों पर आधारित न होकर कवि के समकालीन इतिहासों पर आधारित है। रुद्रट ने उत्पाद्य महाकाव्यों के कथाबन्ध एवं ग्रथन के सम्बन्ध में जो विस्तृत निर्देश दिये हैं, उनका सर्वथा पालन नवीन इतिहास पर आधारित महाकाव्यों में हुआ है, जिन्हें हम ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य मानते हैं। रुद्रट के ये निर्देश कथा, नाटक आदि से सम्बन्ध न रखते हुए अत्यन्त स्पष्ट रूप से महाकाव्यों के लिए हैं। इसलिए हम रुद्रट से सहमत होकर ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यों को ही उत्पाद्य कोटि में रखना चाहते हैं।

इस प्रकार गजद्वहो, विक्रमाङ्कदेवचरित, नवसाहस्राङ्कचरित, पृथ्वीराज-विजय आदि काव्य इसी उत्पाद्य कोटि में गिने जायेंगे। वीरभानूदयकाव्य भी उत्पाद्य-वस्तु-परक है, क्योंकि उसके कथानक का आधार प्राचीन नहीं है।

रुद्रट के उत्पाद्यवस्तुपरक महाकाव्यों के अनुसार वीरभानूदय में प्रारम्भ में नगरी-वर्णन^१ तथा नायक के वंश^२ का अवतरण बतलाकर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) में परायण^३, सक्तित्रय (प्रभु, मन्त्र, उत्साह) से युक्त^४, प्रजारञ्जक^५ एवं विजिगीषु^६ नायक को प्रस्तुत किया गया है, जो सम्पूर्ण राज्य का विधिवत् पालन करता है।^७

रुद्रट का कथन है कि इसके पश्चात् प्रसङ्गतः शरदादि-वर्णन करना चाहिए।^८ वीरभानूदय में ११ वें सर्ग में ऋतुओं की संक्षिप्त वर्चा है।^९ नायक

१. वीरभानूदयकाव्यम् : सर्ग २।७-३० ।

२. वही ,, सर्ग १ ।

३. वही ,, सर्ग ५।३५ 'त्रिवर्गलब्धेर्भुवि दुर्लभायाः पदं नृपोऽभूत् ।'

४. वही ,, ५।१५१ : 'सक्तित्रयात् शत्रुमनासि भिन्दन् ।'

५. वही ,, ५।१२६ : 'तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः ।'

६. वही ,, ५।४० : 'द्विपज्जिगीषोपापितमानसोऽग्रम् ।'

७. वही ,, ५।४६ : 'तथा स सप्ताङ्गविचारनिष्ठः ।'

तथा ६।१ :

'स वैमवाय स्पृह्यालुचित्तस्तस्यानुकूलं विदधज्जिगीषुः ।'

अभूद्भुवं द्वादशराजचक्रे यथाऽभवद् दाशरथिः सुमन्त्रः ॥'

८. काव्यालङ्कार : १६।९-१८ ।

९. श्लोक ८-११, ३०-३१, ३५, ३७-३९ ।

की धर्मादि वगैरे को अपने निमित्त साधना ५ वें से १२ वें सर्ग तक बतलाई गई है ।^१

रुद्रट के मत से नायक का अपना दूत या कुलीन गुणों प्रतिपत्ती का दूत नायक की सभा में पहुँच कर प्रतिनायक के उदय का वर्णन करे । इसके अतिरिक्त घातु के कार्यों को अन्य स्रोत से भी जाना जा सकता है । वीरभानुदय काव्य में वीरभानु को रानी रायमती दोहद-पूति के रूप में अपने पिता दादुराय की अनीतिपरता का विवरण देती है और राजा दादुराय को जोतने का निश्चय करता है ।^२ इसके अतिरिक्त दूतों का प्रयोग संक्षेप में पहले ही बतला दिया गया है ।^३

इसके पश्चात् रुद्रट के अनुसार घातु के विरुद्ध मन्त्रणा और सैन्य-प्रयाण होना चाहिए । मार्ग में जनपद, पर्वत, नदी, वनस्थली, तालाब, पवन, मरुस्थल, समुद्र, द्वीप, शोक आदि के वर्णन हों । इसी के साथ मार्ग में शिविर स्थापित होने पर युद्धक सैनिकों की क्रीड़ा, सूर्यास्त, सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रात्रि, समाश, सङ्कोत, मधुपान और शृङ्गार (सम्भोग, विप्रलम्भ, रतोत्सव) आदि का वर्णन किया जाय । कवि पुनः कथा-मूल ग्रहण करे । क्रीडयुक्त प्रतिनायक समक्ष आवे और आवश्यकतानुसार नगरो-रोष का वर्णन हो । प्रातःकाल युद्ध हो और रात्रि में मधुपान, क्रीडा आदि । घातु के वर्ग में भेदनीति का प्रयोग किया जाय, व्यूहबद्ध सङ्ग्राम ही तथा कठिनाई के साथ घातु जीता जाय ।^४

इस अन्तिम तत्व के पालन के सम्बन्ध में हमारे कवि ने स्वतन्त्रता ग्रहण की है । उसने वीरभानु के पिता वीरसिंह की विजयों का वर्णन पहले ही द्वितीय सर्ग में किया है और प्रतिनायक का पराक्रम-वर्णन युद्ध के साथ ही कर दिया है । युद्ध कष्ट के साथ ही वीरसिंह की विजय में परिणत होता है । तीसरे सर्ग में वीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् युवराज वीरभानु (कथानायक) गङ्गातट से गहोरा राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं । यहीं पर सेना के प्रयाण, शिविर,

१. उदाहरणार्थ—धर्म : ५।९६ : 'स ब्रह्मयज्ञादिरतः शुभार्थी...'

पुराणवेदस्मृतिसादरात्मा ।'

अर्थ : ५।११५ 'ततः कुबेराधिकज्जातलक्ष्मोः ।'

काम : ६।४३ : 'पत्नीभिः कामलोला विदधति नृपती ।'

२. सर्ग ७।६८-७५ ।

३. सर्ग ५।१०२ : 'चारुभिर्मण्डलमीदातेजो ।'

४. काव्यालङ्कार : १६।९-१८ ।

उद्यान और कामक्रीड़ा आदि का वर्णन है। वीरमानु के प्रतिनायक दादुराय (रतनपुर) की चर्चा उपस्थित होती है, उसे जीतने का निश्चय होता है^१, किन्तु यह युद्ध दिसलाया नहीं गया।

काव्यकार ने कथानक में रघुवंश की छाया ग्रहण की है। उसने द्वितीय सर्ग में वीरसिंह का नायक की भाँति ही वर्णन किया है तथा दशम और एकादश सर्गों में वीरमानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र को भी नायक की भाँति ही प्रस्तुत किया है, तथापि पूर्व वर्णन को उपक्रम और परवर्ती वर्णन को उपसंहार रूप में लेकर शास्त्रोक्त धीरोदात्त^२ नायक रूप में वीरमानु को ही प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि वीरमानु के चरित्र का उद्यान सङ्घर्षों की उपस्थिति में नहीं किया गया, तथापि उसका आधार धर्म और न्याय-प्रियता होने से वीरमानु के व्यक्तित्व को आदर्शोन्मुख बताया गया है। विवाह, मृगया और पुत्र-जन्मोत्सव के सविस्तार वर्णन तथा तत्कालीन इतिहास के सन्दर्भ कथा में लोकरञ्जक तत्त्व छाते हैं।^३

आचार्यों के मत से महाकाव्य में नाटकों की सभी सन्धियाँ होनी चाहिए^४। वीरमानुदय का लक्ष्य है वीरमानु का कीर्ति-युक्त चरित्र-वर्णन,^५ अर्थात् एक महान् वंश के महान् राजा की जन्म से अन्त तक की सफल जीवन-साँकी प्रस्तुत करना। इस दृष्टिकोण के साथ बघेल नामक सद्वंश के प्रतापी नरेश वीरसिंह के वर्य पुत्र और उत्तराधिकारी के रूप में नृप-लक्षणों से युक्त वीरमानु के जन्म को^६ हम काव्य की सुखसन्धि^७ मान सकते हैं। यही कथानक का बीज और आरम्भ भी है।

१. वीर० : सर्ग ७।६८-७५

२. साहित्यदर्पण : ६।३१६ : 'धीरोदात्त-गुणान्वितः।'

३. काव्यादर्श : १।१९ : 'सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तरूपेण लोकरञ्जकम्।'

४. भामह : काव्यालङ्कार : १।२० : 'पञ्चभिः सन्धिमिर्युक्तम्।' तथा विश्वनाथ : साहित्यदर्पण ६।३१७ 'सर्वे नाटकसंघयः।'

५. वीर० १।२।४३ :

'काव्यं राजति राजवर्णन-क्षुणं तत्कीर्तिगङ्गामृतम्।'

तथा १।२।४५ :

'सत्काव्ये सुचरित्रवर्णनविधौ धीवीरमानुप्रभोः।'

६. वही, १।८८ : अयास्स देवी सुकुमारदेवी.....

सुते स्म पुत्रं नृपलक्षणं सा।'

७. दसरूपक (वनञ्जय-प्रणीत) : प्रथम प्रकाश : दलोक २४-२५ :

वीरमानु का राज्याभिषेक^१ प्रतिमुख सन्धि^२ है। यही बिन्दु की अवस्था है, जिसके पश्चात् राजा सत्ता की पुष्टि और वृद्धि में यत्नशील दिखलाई पड़ता है।^३ प्रताप की पूर्ण अभिवृद्धि के लिए वीरमानु आगे चलकर रत्नपुर के राजा और अपने पूर्वोदय के मार्ग में एक मात्र कष्टक दादूराय के दमनी का निश्चय करता है,^४ यही गभंसन्धि है,^५ क्योंकि निष्कण्टक धर्मराज्य के लक्ष्य की प्राप्त्याशा यहीं होती है। यहीं से वीरमानु के पुत्र रामचन्द्र के जन्म, विवाह, वीरराज्य और धर्म-नौतिमय शासन की स्थापना में पिता का सहायता का प्रकरण आरम्भ होकर अन्त तक चलता है, जिसे हम पताका मान सकते हैं। दादूराय के उपयुक्त प्रसङ्ग को प्रकरी के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि यह वहीं समाप्त हो जाता है। रामचन्द्र को वीरराज्य में अभिषिक्त कर वीरमानु राज्यचिन्ता से प्रायः मुक्त होकर वृत्तियों को ब्रह्मनिष्ठा की ओर मोड़ता है।^६ इस स्थिति को हम नियताप्ति नामक अर्ध-प्रकृति एवं विमर्श सन्धि मान सकते हैं।^७ काव्य के अन्तिम भाग में हम राजा वीरमानु को जीवन में पूर्ण तृप्त और सुमुख रूप में देखते हैं,^८ यही कार्यावस्था, फलागम एवं निर्वहण (या उपसंहार) नामक सन्धि है।^९ इस प्रकार काव्य सु-सन्धिवश से युक्त है।

‘मुखं बीज-समुत्पत्तिर्नानार्य-रस - सम्भवा ।

अङ्गानि द्वादशतस्य बीजारम्भ-समन्वयात् ॥’

१. वीर० सर्ग ५।१।

२. दशरूपकः १।३०।

३. वीर० सर्ग ५-६ ।

४. वही सर्ग ७।६८-७५ ।

५. दशरूपकः १।३६ ।

६. वीरः सर्ग १।४७ :

‘तनय-निहित-भारो वेदरत्नावतारी

नियतकृत-विचारो, धर्मकण्ठजहारः ।

क्षितिपतिरथ गङ्गातोयसंशुद्धिचित्तो

विरलभवननिष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत् ॥’

‘विहाय लोक-व्यवहारचिन्तामचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।’

७. दशरूपकः १।४३

८. वीर० १२।३० :

तथा १२।३१ : ‘रराज तस्यां सुकृती दद्यायां विदेहभूपाल इवोपशान्तः ।’

९. दशरूपक १।४८-४९ :

कुछ शास्त्रकारों का मत है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों की प्रस्तुति महाकाव्य में होनी चाहिए और उनमें से एक की फल-सिद्धि होनी चाहिए ।^१ अधिक मत इस पक्ष में है कि चारों वर्गों की सिद्धि होनी चाहिए ।^२ हम पीछे देख चुके हैं कि चरितनायक वीरमानु को त्रिवर्ग की सिद्धि प्राप्त हुई । काव्य के अन्त में वीरमानु का उपरान्त रूप उसके द्वारा चौथे पुरुषार्थ की सिद्धि प्रदर्शित करता है । इस प्रकार हम प्रस्तुत काव्य को चतुर्वर्गफलोपेत पाते हैं ।^३

शैली को दृष्टि से भी हमें वीरमानुदय में समस्त वृत्तियाँ, रीतियाँ, गुण और रस प्राप्त होते हैं । आचार्यों ने मुख्यतः रस को ही जीवित माना है ।^४ इस काव्य में शास्त्र रस का सर्वाङ्ग-प्रोषण हुआ है । इसके साथ ही अलङ्कारों के भी रमणीय प्रयोग हुए हैं ।

दण्डी का कथन है कि यदि महाकाव्य विद्वानों को संतोष प्रदान कर सके तो किन्हीं अङ्गों से होन होने पर भी वह दूषित नहीं माना जायगा ।^५ विशिष्ट चमत्कारों से युक्त होकर रस-परिपोष करनेवाला महाकाव्य कुछ स्थूल लक्षणों से रहित हो कर भी होन नहीं माना जायगा । 'भामह' के दृष्टिकोण के अनुसार

१. साहित्यदर्पण : ६।३१८ : 'चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।'
काव्यालङ्कार (भामह) : १।२१४ 'भूयसार्योपदेशकृत् ।'

२. अग्निपुराण : ३३७।३४ : 'चतुर्वर्गफलम् ।' तथा
काव्यादर्श : १।१५ : 'चतुर्वर्गफलोपेतम् ।'
काव्यालङ्कार (रुद्रट) : १६।१ : 'चतुर्वर्ग इति—सम्यक् सानमिदध्यात् ।'

३. उदाहरणार्थ वीर० सर्ग १२।२६ :
'धर्मेण मुक्त्वा पुषिर्वी बलेन जित्वारिभूषान् द्रविणप्रदानैः ।
सन्तर्प्य विद्वन्निकरानवाप्य सुखानि सन्तान-विलोकनेन ॥'
तथा सर्ग १२।४० :

'वात्ये विद्या परमधिगता यौवने राज्यलक्ष्मीः ।
.....तस्य को दुर्लभोऽर्थः ॥'

४. अग्नि० ३३७।३१-३३ :

'सर्व - वृत्ति - प्रवृत्तञ्च सर्वभाव - प्रभावितम् ।
सर्व - रीति - रसः स्पष्टं पुष्टं गुण-विभूषणैः ॥
वाग्-वैदग्ध्य-प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ॥'

५. काव्यादर्श १।२० : 'न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति ।
यद्युपात्तेषु संपत्तिराराधयति तद्विदः ॥'

६. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१९ : 'महतां च महच्च यत् ।'

वीरभानूदय आदर्शोन्मुख एवं उदार चरित्रबन्धन के महदुद्देश्य से प्रेरित है। अतः उपर्युक्त भूमिका के साथ हम वीरभानूदय काव्य को महाकाव्य स्वीकार करते हैं। राज-प्रशस्ति पर आधारित होने के कारण यह प्रशस्तिमूलक चरित्रप्रधान महाकाव्य है।

वीरभानूदय काव्य की शैली प्रशस्तिमूलक है तथापि वह महदुद्देश्य से प्रेरित है। काव्य का लक्ष्य एक राजा का, आश्रयदाता का यशोवर्णन है किन्तु राजा के चारित्रिक उत्थान का आधार धर्मपरायणता और नीतिकुशलता है। ग्रन्थ की वर्णनशैली जीवनचरित्र की शैली है। वह शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की भाँति अतिशय अलंकृत शब्द-चमत्कारपूर्ण या कोप व्याकरण आदि के पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से युक्त नहीं है। महत्त्वपूर्ण और कलात्मकता का आधार बनने वाली घटनाओं का समावेश काव्य में नहीं है किन्तु लोक-परिचित वस्तुओं नगरी, देवार्चन, नीति, पुनोत्सव, विवाह, मृगया आदि के वर्णन प्राप्त हैं। इन्हीं आधारों पर कवि की रचना सरल, स्वाभाविक, लोकोन्मुख, धर्मप्रवण और कल्याणभिनवेशी बन सकी है।

वीरभानूदय में जीवन का मयार्थ किन्तु आदर्शोन्मुख चित्रण है, अतः वह सत्य और शिव से समन्वित है। कथानायक छे पूर्वजों से आरम्भ कर उसके अपने जीवन के ऐतिहासिक घटना-परक पक्ष प्रकाश में लाए गए हैं। नायक का चरित्र आदर्श एवं शास्त्रानुकूल, धर्मशास्त्र के अनुयायी, समर्थ एवं सफल राजा के रूप में उतारा गया है। उसकी नीति-धर्म-परायणता ही सत्य में शिव का योग करती है। कवि ने कथा को सुसूत्र एवं पञ्चसन्धि से युक्त बनाया है और जीवन-कथा का कलात्मक, सुश्रुतिपूर्ण, अलंकृत एवं रसमय स्वरूप उपस्थित किया है। कथा का पर्यवसान सम्पूर्ण फल प्राप्ति, चतुर्वर्ग की सिद्धि एवं शान्त के पूर्ण पोषण में हुआ है। शान्त रस को प्रधान बनाकर कवि ने मुख्यतः वीर और शृङ्गार रस अङ्ग के रूप में रखे हैं। भक्ति को विशेष स्थान दिया गया है। अन्य रसों का भी स्पर्श हुआ है। इस प्रकार कथा में सुन्दर तत्त्व का समावेश सफलतापूर्वक किया गया है। शान्त रस की प्रधानता एवं स्मृत्यनुकूल जीवन-चर्या के साथ धर्मनिष्ठा और लोक-कल्याण की प्रवृत्ति का व्यापक आधार होने के कारण सम्पूर्ण ग्रन्थ में शिव तत्त्व उभर कर प्रधान बन गया है। यह समस्त काव्य प्रधान रूप में प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, सात्वती वृत्ति एवं शान्त रस से परिप्लावित है। काव्य के अन्तिम भाग के निम्नलिखित श्लोकों में ये चारो वैशिष्ट्य एकत्र हो गये हैं—

‘तं शान्तिवर्त्म-प्रतिपन्नचित्तं विलोक्य लोका जगदुः किलेति ।

सत्यं कलौ भूपतिरेव नूनं प्रवर्तयत्यत्र सुविस्मयोऽस्ती ॥ .

ददौ धनं यावत्क-मण्डलाय, त्रिगाय सर्वेन्द्रिय-वैरिवर्गम् ।
प्राणान् क्रमेणैव वशं निनाय, हित्वापि राज्यं न जहौ स राज्यम् ॥
वेदान्तसिद्धान्तविदो द्विजेन्द्रा वैशेषिका न्यायविदो महान्तः ।
मीमांसकाः साङ्ख्यनिविष्टचित्ताः पातञ्जलास्तं निपिपेविरे च ॥

आसौदेवविघ्न-गुणगणग्राम-विश्रामधाम—

क्षोणीशानो जगति विदित-श्रीयशा वीरमानुः ।

मानुर्यस्य प्रचुरमहसे सम्पदे देवराजो

देवाचार्यः पृथुलमनस्ये सस्पृहत्वं जगाम ॥

भाषा और पदावली : गुण-वृत्ति-रीति

प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण काव्य में प्रायः अल्प-समासमुक्त, प्रसाद गुण से पूर्ण, सरल एवं बोधगम्य पदावली का प्रयोग किया गया है । पाठक अर्थबोध के लिए उलझा नहीं रहता । यह शैली त्वरित रस-निष्पत्ति के लिए सहायक होती है । विलम्ब अलङ्कारों और गुंथायों एवं अनेकार्थों से बोझिल भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है । भाषा प्रयोज्य, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत है । कला-प्रदर्शन के लिए रामचन्द्र के दलपति और मृगया तथा वीरसिंह की रणयात्रा आदि स्थल चुने गए हैं, जो रमणीय पर्वों, प्रभावोत्पादक भावों और आह्लाद-जनक रसों-अलङ्कारों से पूर्ण हैं । समग्र दृष्टि से शैली शान्त रस के सर्वथा अनुकूल है । ललित एवं कोमल-काव्य-पदावली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मधुर-सरसगीतैर्लुङ्गकैर्लोभ्यमाना

नरपतिमुखचन्द्रालोकनानन्दभाजः ।

मदमुदितमृगीणामङ्ग-सङ्ग-स्मरान्धा

न निघ्नतमुपब्रम्भुः सायकात्तस्य यूनः ॥^१

प्रसादपूर्ण, सरल एवं स्निग्ध पदावली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

रामत्रयीव ज्वलनत्रयीव त्रयी श्रुतीनामिव पुष्कराणाम् ।

त्रयीव देवाधिपतित्रयीव त्रयी त्रिवेणीव रराज तेषाम् ॥^२

प्रजानुरागाद् दृढतामुपैति प्रजाविरागात् परहस्तगामि ।

राज्यं भवेन्नीतिरियं प्रमिद्धा तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः ॥^३

जीयाज्जलजपत्रासो जलदामकलेवरः ।

जलधौ सेतुकर्त्तासौ जलशायो जनार्दनः ॥^४

विवृत्य कुसुमान्येष राजतं घरणीश्वरः ।

अशोकपादपः कान्ता-सनूपुर-पदाहतः ॥^५

रस परिवर्तनों के साथ साथ अन्य गुणों, सभी वृत्तियों और रीतियों के प्रयोग काव्य में सुलभ है । माधुर्य गुण के साथ शृङ्गार रसात्मक कैदिकी की कोमल वृत्ति तथा पाञ्चाली रीति के प्रयोग निम्नलिखित श्लोकों में द्रष्टव्य है—

ये जना जित-कन्दास्तकटाश-धराहताः ।

प्रमोहं प्राप्नुवस्तेऽपि प्रेक्ष्य रूपवतीः स्त्रियः ॥^१

भजताऽऽनुपतोन्मार्यस्त्यक्त्वा मानं न लभ्यते ।

दोषनं गतमित्येव किं करोति पिकः स्वयम् ॥^२

पत्नीभिः कामलोलां बिदधति नृपतौ पुण्यदाभाभिरामे ।

भूमिःकन्दर्वापप्रकृतिमिश्रितं तं वरां कुर्यसीभिः ॥

बाणक्रोडेः कटाक्षं. सरसनूपमम् कम्पयन्तीमिरच्छैः ।

कामोद्दीपावतंगैः सुदधिरवदनं याति कालौ विशालः ॥^३

नगर-विविध-रघ्या-मदिसम्मद-मध्ये

नृप-भुत-वदनेन्दोः काम्ति-वीयूपसारम् ।

तत्रनु किरण-नालासङ्गिमिलोचनैः स्वैः

पपुरधिगतपुष्पैर्जलमार्गं तरुण्यः ॥^४

इसी प्रकार रौद्र और धीर रसात्मक गौरी रीति, आरम्भटी वृत्ति और ओज गुण से पूर्ण कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अथ तुरग कदम्ब-हेपया मत्त-वन्ति-

प्रलय-जलद-गर्जा-धोर-पष्टा-निनादः ।

रथ-वलमित-सिञ्जत्-किङ्किणीनां रवेण

क्षणमिति पुर-सिन्धौ कोऽपि कोलाहलोऽभूत् ॥^५

इति निगदितभावे तद् दृशीवाज्ञया तै-

र्गहनमखिलमार्गैर्वावृतं तत्तथैव ।

भुज-परिष-निदृष्टे जन्तु-जाले स कोपात्

सुरभि-रिपुरिति द्वाग्जघ्निवान् व्याघ्रमुक्चैः ॥^६

अघाश्ववारा ययुरस्ववारान् पदातयः पतिगणान्निहन्तुम् ।

आधोरणा हस्तिपकान्निजघ्नुर्युद्धं बभूवेत्यमतोव धोरम् ॥^७

ओज के साथ मात्त्वती वृत्ति का भी एक उदाहरण देखिये—

तं विक्रमादित्यनृपः प्रपेदे, युद्धाय चोन्मत्तकरीन्द्रयूथः ।

योधाग्रणीभिः परिहारजार्तवृत्तो महत्वानिव देवजार्तः ॥^८

भारती नामक व्यापक वृत्ति का कर्ण रस के साथ एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है —

तस्माद्विना राजनुनिर्विलापे कृत्वा निजप्राक्तन-कर्मनिन्दः ।
प्राणान् कथञ्चित् प्रतिगृह्य राज्यं स पालयामास निरस्तशत्रुः ॥^१

अद्भुत और भयानक रस के मिश्रण के साथ भारती वृत्ति का दूसरा उदाहरण द्रष्टव्य है—

विनिश्चय विविध प्रौढ सार्द्धल-कायं
कणिपुरमुपयात बोधय लीलावराहः ।
निशित-विकट-दंष्ट्राकोटि-निभिन्नभूमिः
प्रहरण-भयभीतो विस्मितोऽप्यास भूयः ॥^२

माधुर्यगुण, कैशिकी वृत्ति और शृङ्गार रस के साथ वैदर्भी रीति का एक उदाहरण देखिये । इस श्लोक में श्लेष अलङ्कार का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है । यह काव्य के उत्तम श्लोकों में से एक है—

मल-यान-कल-स्वनाङ्कगा परिरम्यंकनुजैत वल्लकी ।
हृदि रागवती निवेशिता रमणो रामनरीरमद् गुणः ॥^३

प्रसाद गुण के साथ वैदर्भी रीति का दूसरा उदाहरण देखिये—
नृपा न चोक्तं न हृदो व्यधायि न दैवमाञ्जलि महेश्वरेऽपि ।
वागो न रुशाभिहिताऽपि शत्रौ मुधिसिरेखेव नृपेण तेन ॥^४

रस

दृश्य काव्य के आचार्यों ने आठ ही रस माने हैं तथा शान्त रस का निवेश किया है, किन्तु उन्होंने अथ्य काव्य में शान्त रस को अस्वीकार नहीं किया । काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा-सम्प्रदाय के प्रतिपादकों ने, जिनमें अभिनवगुप्त प्रमुख हैं, दृश्य और अथ्य दोनों क्षेत्रों में शान्त रस का अस्तित्व मान कर उसे श्रेष्ठ रस कहा है । उन्होंने इसका स्थायी भाव क्षम बतलाया है ।^५ अतः महाकाव्य में शान्त की स्थिति निर्विवाद है ही ।

दशरूपक की टीका करते समय घनिक ने लिखा है कि शान्त रस अमिनेय नहीं होता, उसका नाट्य में समावेश नहीं किया जा सकता, सो भी उसका

१. सर्ग ११६६

२. सर्ग ११२७

३. सर्ग ८३१

४. सर्ग ५१४१

५. बलदेव उपाध्याय (डा०) : संस्कृत आलोचना : सूचना विभाग : उत्तरप्रदेश : वाराणसी : १९५७ : पृष्ठ २१०, २२९-२३० ।

काव्य का विषय होना नहीं रोका जा सकता ।^१ मम्मट ने निर्वेद की स्थायी भाव मान कर शान्त को नवम रस माना है ।^२ रट्ट सम्पक् ज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव मानते हैं और नमिसाधु के मत से भी शान्त रस को अस्वीकार करना ठीक नहीं है ।^३ विश्वनाथ ने राम की स्थायी भाव माना है तथा अनित्यता, निःसारता, परमात्मा का स्वरूप आलम्बन और पवित्र आश्रम, क्षेत्र, तीर्थ, तपोवन, साधुसङ्ग आदि की उद्दीपन रूप में ग्रहण किया है; साथ ही रोमाञ्च आदि को अनुभाव एवं निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि को व्यभिचारी माना है । उन्होंने महत्त्वपूर्ण बात यह लिखी है कि शान्त रस में निरहङ्कार-रूपत्व आने से दयावीर में उसका अन्तर्भाव नहीं हो सकता । युक्त (विषयव्यावृत्त) एवं विमुक्त (सिद्धिप्राप्त) दशा में अवस्थित राम रसरस को प्राप्त होता है । वह वैदिक सुख-दुःख के अभाव और तृष्णादय के मुख के रूप में होता है । जब धर्मवीर, दानवीर, दयावीर और देवताविषयक रति (भक्ति) सर्वथा अहङ्कार-शून्यता में परिणत हो जाते हैं तब इनका भी शान्त रस में अन्तर्भाव हो जाता है ।^४ विश्वनाथ का यह मत वीरभानूदय काव्य में शान्त रस के परिचोप का सम्पूर्ण समर्थन करता है ।

हम प्रारम्भ में ही कथानायक वीरभानु में देवता-विषयक रति पाते हैं । वह पद्मपुराणोक्त विवि से यमुना में स्नान कर सूर्य, कृष्ण आदि देवताओं की स्तुति करता है^५ तथा राज्याभिषेक के पश्चात् कुल-पूजित कीर्ति देव को अर्चना करता है ।^६ वह राज्याभारम्भ से ही मुधिष्ठिर को भावि धर्मनिष्ठ है ।^७ हम

१. दशरूपक ४।४४ : वृत्ति—‘शान्तरसस्य...काव्यविषयत्वं न निवार्यते’ ।

२. काव्यप्रकाश ४।३५ : ‘निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तरस नवमो रसः ।’

३. काव्यालङ्कार (रट्ट) : १५।१५-१६ : नमिसाधु की व्याख्या—
‘कैश्चिच्छान्तस्य रसत्वं नेष्टम् । तदयुक्तम् । भावादिकारणानामत्रापि
विद्यमानत्वात् ।’

४. साहित्यदर्पण : जीवानन्द विशासागर : कलकत्ता । १९३४ : पृष्ठ
२५६-२६१ . ‘सर्वकारमहद्गुरुरहितत्वं व्रजन्ति चेत् ।
अशान्तर्भावमर्हन्ति दयावीरादयस्तदा ॥’

वृत्ति—‘आदिशब्दात् धर्मवीर-दानवीर-देवताविषयरतिप्रभृतयः ।’

५. वीर० : सर्ग ४।१०-५२

६. सर्ग ५।२२-३१

७. सर्ग ५।३३—‘द्वितीय-धर्मात्मज एव जातः ।’ तथा ५।४१ । ‘मुधि-
ष्ठिरैस्तेव...’ ।

उसे कामादि-पङ्कग को जीतते हुए पाते हैं ।^१ वह गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक है ।^२ वह ऐसे ही कार्य करता है, जो ऐहिक और आमुष्मिक कल्याण के अनुकूल हों ।^३ ब्रह्मपुत्र में लीन राजा पुराणों, वेदों और स्मृतियों के प्रति आदर का भाव रखता है ।^४ वह संयम-नियम को उपासना करते हुए जितेन्द्रिय रूप प्राप्त कर विष्णु को प्रसन्न रखता है ।^५ वह पर-स्त्री-विमुख है ।^६ वह पुष्पलाम के लिए देवालयों और जलाशयों का निर्माण कराता है ।^७ वह दूसरों के स्वस्व पर अधिकार नहीं करता ।^८ वह हिंसा से बचने के लिए शास्त्रों द्वारा निषिद्ध मृगया का परित्याग कर देता है ।^९ वह वर्णाश्रम धर्म को मानता है ।^{१०}

इसी प्रकार हम वीरमानु को दयावीर के रूप में भी पाते हैं । अभियेक के समय पर वह बन्धियों को छोड़ देता है, बँलों का जोता जाना और गायों का दुष्ट जाना बन्द कराता है; क्रोड़ा के निमित्त पकड़े हुए शुक-सारिका आदि पक्षियों को भी मुक्त कर देता है ।^{११} वह आगे अपने कर्मचारियों के दुःख दूर करता है ।^{१२} वह अपने देश में अश्रुपात नहीं सहन करता ।^{१३}

वीरमानु के पास जो याचक पहुँच आते हैं, वे फिर याचक नहीं रह जाते । वे इतना धन दान में पाते हैं कि उनके पुत्र-पौत्रों के लिए भी वह पर्याप्त हो जाता है ।^{१४} उसके सेवक उससे इतना धन पाते हैं कि वे कुबेर का उपहास करते हैं ।^{१५} वह जनपदों में भी धन का वितरण करता है ।^{१६} यह वीरमानु का दान-वीररूप है । वीरमानु उन्माद-जनक आयु (यौवन), लक्ष्मी और रुन के उत्सेक (अभिमान) से सदा दूर रहा ।^{१७} क्रमशः देवता-विषयक रति तथा धर्मवीरता,

१. सर्ग ५।५० : 'कामादि-पङ्कग-जय-प्रतिष्ठम् ।'

२. वही ५।६७ : 'द्विजगोहितोऽमृत ।'

३. वीर० सर्ग ५।२० ४. सर्ग ५।९६ ५. सर्ग ५।९८

६. सर्ग ५।१०० ७. सर्ग ५।११८

८. सर्ग ५।१४७ : अनेन राजा परवित्तलिप्सा स्पन्देपि नालिङ्गि... ।'

९. सर्ग ६।३३ १०. सर्ग ६।११

११. सर्ग ५।७-८ :

स संयतान् मोचयति स्म सर्वान् वध्यान्पि त्याजयति स्म सद्यः ।

.....व्यसर्जयद् धर्ममतिः शुकादीन् ॥'

१२. सर्ग ५।६९ १३. सर्ग ५।१२३ ।

१४. वीर सर्ग ५।१०५ १५. सर्ग १६० १६. सर्ग ६।३५

१७. सर्ग ६।४५ : 'नोत्सेकवान् वयोलक्ष्मीरूपधन्मत्तताप्रदेः ।'

दयावीरता और दानवीरता के उत्साह भावों को हम निरहङ्कारता में परिणत देखते हैं। इस प्रकार भक्ति और वीररस के इन अङ्गों का शम भाव में अन्तर्भाव होता चला जाता है।

इस दिशा में विचार करने पर उदाहरणार्थ हम निम्नलिखित श्लोक ले सकते हैं, जिसमें उत्साह (दानवीर, धर्मवीर का स्वायीभाव) उत्पन्न होकर शम (दान्तरस) के रूप में परिणत हो जाता है—

‘ददौ धनं याचकमण्डलाय जिगाय सर्वेन्द्रिय वैरिवर्गम्।

प्राणान् क्रमेणैव वशं निनाय हिस्वापि राज्यं न अहौ स राज्यम् ॥’^१

यह (वीरभानु) याचकों को (जीवन के अन्तिम भाग में) दान दिया करता था, उसने समस्त इन्द्रिय रूपी वैरियों के समूह को जीत लिया था, उसने क्रमशः प्राणों को (योग द्वारा) वश में कर लिया। उसने राज्य तो त्याग दिया था पर राजापन (वीर-कर्म) नहीं त्यागा।

यहाँ राज्य त्यागने की बात एक सत्य है, जो प्रबल है और राजापन का त्याग न कर इन्द्रियों और प्राणों को वश में करने पर शीघ्र प्रकट करना उसी सत्य के लक्ष्य विरहित, मुमुक्षुत्व आदि की पुष्टि के लिए सुन्दर तत्त्व है। क्रिया के लक्ष्य शम की प्राप्ति, तृष्णा का शम ही उत्साह को शम में परिणत कर देता है। अतः वीर रस की उद्भावना अन्त में दान्त रस में बदल जाती है।

दान्त रस का सुन्दर परिपोष निम्नलिखित श्लोकों में हुआ है।

‘आलिङ्ग्यमानं जरसा वपुः स्वं विधाय विज्ञाय च लोकचेष्टाम्।

धुरं धराया विनिधाय धुर्यं निजःस्वमे रामशुभाभिरामे ॥

श्रीरामचन्द्रे नृपवीरभानुस्तस्याज राज्योदहन-प्रयासम्।

निवार्य चेतो विपयानिलापादुवात गङ्गा-यमुनोपप्लवम् ॥’^२

यहाँ अनिरयता आलम्बन है, जरावस्था उद्दीपन है, विचार उत्पन्न होना, राज्य पुत्र की सोपना अनुभाव है, भक्ति नामक सञ्चारी भाव है तथा विद्वयों का त्याग कर त्रिवेणी-वास करने से शम की सतत आगुति ही शम नामक स्वायी भाव है। यह भी कह सकते हैं कि निर्वेद यहाँ सञ्चारी और स्वायी दोनों रूपों में विद्यमान है। कुछ अन्य उदाहरण लीजिये—

‘विहाय लोक-व्यवहार-चिन्तामचिन्तयत् ब्रह्म परं प्रशान्तः।

रराज तस्यां मुकुती दद्यायां विदेहभूपाल इवोपशान्तः ॥’^३

‘गङ्गासरङ्गेषु कलिन्दजायाः कल्लोलमालामिलितेषु दृष्टिः।

विवेश वैष्णव-गतस्य तस्य सरस्वती द्रष्टुमिवातिगुप्ताम् ॥’

हर्यं परीवार-निषेव्यमाणः सुतेन तिष्ठन्नुपलब्धतत्त्वः ।

स वार्धकं बधितकीर्तिवर्तिनिनाय सार्धव्यमुदार-बुद्धिः ॥'१

अग्य रसों के उदाहरण पीछे प्रस्तुत किये गये हैं । बीभत्स^२ और हास्य^३ के प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु वे नगण्य हैं । अङ्गभूत रसों के रूप में वीर और शृङ्गार ही प्रयुक्त हुए हैं । वीर रस का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

‘श्री वीरसिंहस्य बलेन धीर्यात् शौर्विक्रमादित्यचमूविजिग्ये ।

जितां स्वसेनां महतीं विलोक्य स्वयं जगामाथ रणाय धन्वी ॥’४

विप्रयोग शृङ्गार को निम्नलिखित श्लोक में देखा जा सकता हैः—

‘अपि वरतरुणोमिस्तजितस्तर्जनाभिः

स्मितविकसितकान्तिः सम्भ्रमात् किञ्चिदस्यात् ।

इह हि नगरसीमिन् प्रेक्षितुं मामि धीते

क्षणमिह तुरगाणां घावतां कीतुकानि ॥’५

सम्भोग शृङ्गार के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं :—

‘युवति-तनु-मूदनां मूलिकानां निवाये

मृगमद-पुसूणार्धवासिते वासरान्ते ।

अशिषिल-परिरम्भारम्भि-कुम्भस्तनाभिः

सिन्धिर-समय-सौर्यं भाम्यवन्ती भजन्ति ॥’६

‘स्त्रियं सुललितां वीक्ष्य स्मराज्ञा-वर्तिनोऽभवन् ।

विजानन्तीऽपि भर्मादां कामः खलु दुरत्ययः ॥’७

‘एके मुक्तं लभन्ते स्म वारयोपिदिभरावृता ।

विपरीत-रतारम्भे शृङ्गारस्य महोदयो ॥’८

‘क्रीडन्ति मत्र स्फुट-वारिजाक्षयः प्रियैः कलाज्ञाः स्मरतन्त्रविज्ञैः ।

पीनोन्नतःश्रोणि-कुचाः पिवद्भिस्त्वदाननं पार्वण-चन्द्रमुख्यः ॥’९

‘तदनु मदन-लोलाचाप निर्धोषभाञ्जि प्रतिविपिनमलोनां मुञ्जिताग्न्याविरा।

रसिक-नृपति-चेतःप्रीतये प्रेषितानां कुसुम-समयमित्रेणैव तद् माधवनात्मा ॥’१०

अलङ्कार एवं माधव्यल्लना :

अलङ्कारों के क्षेत्र में वीरभानुदय काव्य में अच्छे चमत्कारपूर्ण पदों की कमी

१. वही १२।३७, ३९

२. वही, ११।४६

३. वही ९।२२

४. वही २।४५

५. वीर० सर्ग ११।४०

६. सर्ग ११।३९

७. सर्ग ३।७०

८. सर्ग ३।६८

९. सर्ग २।१९

१०. सर्ग ११।९

:

...

दृष्टिगत होती है। व्यञ्जना के स्थल कम हैं और अभिधात्मक शैली का अधिक प्रयोग है, तो भी बलङ्कारों का प्रयोग कहीं-कहीं रमणीय है। उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोग बहुत हैं। यमक, श्लेष, अनुप्रास के प्रयोग भी रुचिपूर्वक किये गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बलङ्कार भी प्राप्त होते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

अनुप्रास—‘रमामजानिः कमनोयवाणिः घोणाङ्घ्रिघ्राणिः कृतशत्रुहानिः ।

अनन्तसेनः प्रमया जितेनः पृथ्वीपतीनः पृथुवत्कुलीनः ॥’^१

यमक—‘यशोदया यशो-दया-सुरूप-सञ्चरिण्या ।

अरिष्टनेमि-सम्भवं पवित्रितं गुणैः कुलम् ॥’^२

‘नय-पास्त्रविचारतोऽभवद्विनयस्थोऽभ्युदयोऽयं नित्यतः ।

मलता च तथाऽप्रवक्षिसमाजलता वाऽप्यतुलप्रतापतः ॥’^३

श्लेष—‘नलघात-कलस्वनाद्गुणा परिरम्यैकभुजेन बल्लकी ।

हृदि रागवती निवेशिता रमणो राममरीरमद् गुणैः ॥’^४

‘अयमिष्टदलकमणान्वितः परशत्रुघ्नपराक्रमाञ्चितः ।

अयते भरताभिवन्दितो स्वगुणाद्रामपदं न नामतः’ ॥’^५

उपमा—‘वदरी फलभाषाजन्नुद्यानत्राणकारणात् ।

रोपिता शौरिवाभाति सनक्षत्राचलद्युतिः ॥’^६

‘दिवसानि ययुर्यथा यथा बभूवुस्तस्य गुणास्तथा तथा ।

गिरिजा इव सिन्धु-सम्मुलाः सरितः प्राश्रुपि नीरपूरिताः ॥’^७

सीतेव शुद्धवरिते गिरिजेव रूपे धर्मस्थितौ द्रुपदराजमुतेव साध्वी ।

सत्ये सतीव सुरसिन्धुरिव प्रभावे वंशद्वये वितनुते हि यशो यशोदा ॥’^८

अनल-विषम-दैव्य श्येनसम्पातभीतान्निजभुवि परिपक्षन् बिदपारावतीघान् ।

पिबिरिव शिवसेवां शीलयन् शीलराशिः शिशिरहृदनुकम्पा-सागरत्वेऽभिप्रेषि ॥’^९

अन न्वय—‘पयोधिराभाति यथा पयोधिरिदं विहायोऽस्ति यथा विहायः ।

दाने महत्वे महतीय माने रामो यथा राजति रामचन्द्रः ॥’^{१०}

उत्प्रेक्षा—‘गायन्ति यस्यां सुदृशः समन्तान्मञ्जु सुलोकादिव देवनार्यः ।

समागताः श्रीवदना गहोरासुखानि भोक्तुं दिवि दुर्लभानि ॥’^{११}

‘दहन्त्या स्नानमात्रेण जन्मिना कलुषव्रजम् ।

तत्पापदाह-सम्बन्धादिव श्यामलतोयया ॥’^{१२}

१. वीर० सर्ग २।२

२. सर्ग १०।७

३. सर्ग ८।२४

४. सर्ग ८।३१

५. सर्ग ८।३८

६. सर्ग ३।४०

७. वीर० सर्ग ८।३३

८. सर्ग ९।१०

९. सर्ग ११।६

१०. सर्ग १०।२५

११. सर्ग २।२०

१२. सर्ग ४।२

अतिशयोक्ति—‘धनुरानमनेन विट्पिपो नमितं तेन समुग्रतं शिरः ।

धृतजीवतया पुनः कृतं कतमेपामपि जीवकर्षणम् ॥’^१

व्यतिरेक—‘वलिवंलीयानपि दान-वारिप्रदानतोऽभून्निगडेन बद्धः ।

अयं तु नाना-नरपुङ्गवानां विच्छेद बन्वान् मणिहेमदानः ॥’^२

अर्थान्तरन्यास—‘स्त्रियं सुललिता वीक्ष्य स्मराज्ञावर्तिनोऽभवन् ।

विज्ञानन्तोऽपि मर्यादां कामः खलु दुरत्ययः ॥’^३

स्वभावोक्ति—प्रियतम-हरिणीनां शृङ्गकण्डूविनोदः

स्वपिति हरिणयूयं सर्वतः घाद्वलेपु ।’^४

अत्युक्ति—‘तत्पुत्रस्य तव प्रयाण-समये, जेतुं दिशां मण्डलं

धूलोमिः परिपूरिते त्रिभुवने, दीनोऽप्रतिभिर्वासवः ।

ब्रह्मा विश्वलयाकुलो, रिपुबधू रिक्ता बिभृषाम्बरः

लज्जार्थां च बिभीषणोऽभ्युषिवृत्तौ निद्रा-दरिद्रायते ॥’^५

‘दित्तो नरेन्द्रे सति रामचन्द्रे, बहुगुणरा नग्य-वराधिनीमम् ।

भीतोऽभवत् काञ्चन-शैलराजः, कपालि-सक्ष्यं कुरुते घनेशः ॥’^६

इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण अलङ्कारों के क्षेत्र में प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

कालिदास के काव्यों की छाया :

वीरभानूदय काव्य पर संस्कृत के अन्य काव्यों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । विशेष रूप से हमारा कवि कालिदास का ऋणी है । कथा-योजना, भाव और शब्दावली को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य के लिए रघुवंश उपजीव्य ग्रन्थ सहा रहा है । नीचे कतिपय श्लोक तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किये जाते हैं :—

वीरभानूदयकाव्यम्

रघुवंश०

असह्यतेजा नृपतिर्वभूव

विभावसुः सारथिनेव वायुना

तरस्विना तेन समोरखेन ।

..... ।

सक्षया शिखीव प्रवलेन सम्मक्

वभूव तेनातितरां सुदुःसहः

कपोलभेदेन यथा मजेन्द्रः ॥

कटप्रभेदेन करोव पार्थिवः ॥

(सर्ग १।८२)

(सर्ग ३।३७)

१. सर्ग ८।१०

२. वीर सर्ग १०।१६

३. सर्ग ३।७०

४. सर्ग ११।१३

५. सर्ग ९।३०

६. सर्ग १०।१८

स राज्यमस्मिन्ननये तनूजे
निषाय तस्यो भवने भुक्तेन ।
छन्ते दिनस्य शुमणिर्यथा स्वं
दोष्टिग्रजं वायुसत्ते समर्प्य ॥

(सर्ग ११८३)

अथ प्रदक्ष्ये द्विपतां जयाय
... रक्षितमूलदेवः ॥

(सर्ग २१३१)

अथाश्ववारा मयुरस्ववारान्
पदातयः पत्तिगणान्निहन्तुम् ।
आघोरणा हस्तिपकान्निजघ्नु-
मुद्धं बभूवैतपमतीव धोरम् ॥

(सर्ग २१४२)

भजताशु पतीन्नार्थ-
स्थक्त्वा मानं न लज्जते ।

यौवनं गतमिष्येव
किं करोति पिकः स्वनम् ॥

(सर्ग ३१२६)

॥ संयतान् मोषयति स्म सर्वान्
वध्यानपि स्याजमति स्म सद्यः ।

अवाहकत्वं च धुरन्धराणां
गवामदोह्यत्वमधीकरणम् ॥

नर्मप्रदान् पत्रिगणान् प्रविष्टो
व्यसर्जयत् धर्ममतिः दुकादीन् ।

विमोक्षसञ्जातमुखा विरावै-
स्तदाशिषः किं जनयन्ति ते स्म ॥

(सर्ग ५१७-८)

मृषा न चोक्तं न हठो व्यघ्रायि
न दैव्यमालम्बि महेश्वरेऽपि ।

वाणी न रूक्षाऽहिताऽपि शत्रो -- ॥

(सर्ग ५१४१)

स राज्यं गुरुणा दत्तं
प्रतिपद्याधिकं बभौ ।

दिनान्ते निहितं तेजः
सवित्रेव हृताशनः ॥

(सर्ग ४१२६)

स गुप्त-मूल-प्रत्यन्तः.....
प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।

(सर्ग ४१२९)

पत्तिः पदाति रथिनं रथैश्च-
स्तुरङ्गसादी तुरगाभिरुद्धम् ।

यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं
गुरुप-प्रतिद्वन्दि बभूव युद्धम् ॥

(सर्ग ७१३७)

स्यजत् मानमलं बत विप्रहं-
नं पुनरेति गतं चतुरं वयः ।

परभृताभिरितीव निवेष्टिते
स्मरमते रमते स्म बधूजनः ॥

(सर्ग ९१४७)

अग्न्यष्टेदं ॥ बढाणां
वषाहीनामवध्यताम् ।

धुमिणा च धुरो मोक्ष-
मदोहं वादिशद् गवाम् ॥

कीदा-पतत्रिणोऽप्यस्य
पञ्जरस्थाः सुकाश्यः ।

लब्धमोक्षास्तदादेशा-
द्येष्टमस्तयोऽभवन् ॥

(सर्ग १७११-२०)

न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे
न वितथा परिहास-कथास्वपि ।

न च सपत्नजनेष्वपि तेन वा-

गपरुषा परुषाक्षरमीरिता ॥

(सर्ग ९१८)

सम्बर्धमानः पितरं कृतार्थं
करोति तत्सङ्गमजाततोषम् ।

यथा जयन्तः पुष्टूतमङ्गे
क्रीडन्..... ॥

दिने दिने तेन तथाङ्कुमाया

नृपः सुखोभूय गुरुत्वमेति ।

यथा गणेशेन भृगाङ्कुमौलि-

यथा कुमारेण स एव देवः ॥

(सर्ग ७।९४, ९६)

उमा-वृषाङ्गो शरजन्मना यथा

यथा जयन्तेन शची-पुरन्दरी ।

तथा नृपः सा च सुतेन मागधी

ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥

(सर्ग ३।२३)

इसी प्रकार यज्ञ-तत्र मेघदूत के साथ भी भावों या शब्दों के साम्य देखे जा सकते हैं, जैसे—

अञ्जलिहृष्टे शान्तः

प्रागुमिः पर्वतरिव ।

(सर्ग ७।७२)

उच्चैः पयोदा इव भान्ति यस्यां

गृहाः सवित्राश्चलकेतुमालाः ॥

(सर्ग २।२३)

साक्षादिव स्वः समुपेतमस्यां

श्रीवीरसिंहस्य विशालधर्मैः ।

(सर्ग २।५५)

इसी प्रकार वीरभानूदय में कुछ अन्य काव्यों की छाया भी यज्ञ-तत्र प्राप्त होती है ।

प्रमुख चरित्र

वीरभानूदय काव्य का कथानायक राजा वीरभानु है । कवि ने प्रमुख रूप से इसी का चरित्राच्छुन किया है । वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र का चरित्र-वर्णन करने में भी कवि ने पर्याप्त उत्साह प्रदर्शित किया है । साथ ही वीरभानु के पिता वीरसिंह की विजयों का वर्णन भी कुरुचिपूर्ण है । यही तीन काव्य के प्रमुख पात्र हैं । इनके अतिरिक्त वीरसिंह के पूर्वज-वंशधरों और रानियों के तथा वीरभानु और रामचन्द्र के कुछ सहकारियों के भी उल्लेख हैं, जिनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक है । रानियों के सम्बन्ध में चर्चा करते समय उनमें पातिप्रत, देवभक्ति, शोककल्याण आदि गुण प्रदर्शित किये गए हैं । बल्लारदेव की रानी श्यामलम्बु देवी ने शहीदा में लालाच, सुदृढाया और उसके रट पर

शोतला देवी की प्रतिष्ठापना की तथा बावली बनवाई ।^१ भैदचन्द्र के ज्येष्ठ राजकुमार बाहरराय की मृश्य होने पर उसकी गन्धर्वदेवी आदि तीन रानियाँ सती हो गईं ।^२ वीरभानु की रानी राममती ने गर्भवती अवस्था में स्वप्न में दशावतारों के दर्शन किये ।^३ उसने दोहद पूति के रूप में अपने पिता को श्रनोति-परायण बतला कर वीरभानु से उसको जीतने के लिए कहा ।^४ रामचन्द्र की रानी यशोदा गङ्गा-जल से ही सदा स्नान करती थी और पर्यावरण में ही समय व्यतीत करती थी ।^५

१—वीरभानु :

कवि ने कथानायक वीरभानु को अरयन्त उदात्त रूप में चित्रित किया है । वह 'नेता' के शास्त्रोक्त गुणों^६ से युक्त है तथा महाकाव्य के लिए आवश्यक धीरोदात्त कोटि का नायक है ।^७

वीरभानु का जन्म सद्गुणों और समस्त पुण्यों से पूरित बघेल वंश में हुआ ।^८ वह दिग्विजयी सम्राट् वीरसिंह (और सुकुमार देवी) का ज्येष्ठ पुत्र, अतः जन्म से साम्राज्य का उत्तराधिकारी था ।^९ वह बघेल वंश के प्रतापी नरेश भीम और वीरम के वंश का केतु था^{१०}, जिनका गोत्र भारद्वाज व्याघ्रपाद था ।^{११}

वीरभानु में धर्म-प्रवणता का गुण प्रमुख रूप से प्रारम्भ से ही विद्यमान था । पिता वीरसिंह का त्रिवेणी में और्ध्वदैहिक कृत्य पूर्ण कर युवराज अवस्था में ही राजधानी गहोरा की ओर छोटते समय कोटर तीर्थ में हम उसे यमुना में स्नान और देवस्तुति करते हुए पाते हैं । इन स्तुतियों से वीरभानु कृष्णोपासक सिद्ध होता है ।^{१२} मार्ग में वह गुप्त-वागणसी तीर्थ की यात्रा भी करता है ।^{१३} गहोरा

१. वीर० १।२४-३०

२. वही, सर्ग १।६४-६५

३. वही सर्ग ७।१-६०

४. वही, सर्ग ७।६६-७४

५. वही, सर्ग १२।३-५

६. दशरूपक (धनञ्जय) : २।१-२ :

'नेता विनीतो मधुरस्वामी दलः प्रियम्बदः ।

रत्नलोकः शुचिर्वाग्मी रुढवंशः स्थिरो युवा ॥

बुद्धयुत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला-मान-समन्वितः ।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्र-ब्रह्मज्ञ धार्मिकः ॥'

७. वही, २।४-५ : 'महासत्त्वोद्भूति गम्भीरः क्षमावानविकल्पनः ।

स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढवतः ॥'

८. वीर० सर्ग १।५ : 'साद्गुण्य-समस्तपुण्य-सम्पूरितं तत्कुलम् ।'

९. सर्ग १।८६-९०

१०. सर्ग ५।१४६-४७

११. सर्ग ९।१५, २१, २८ । १२. सर्ग ४।१-५२ १३. स. अं ४।५३-५७

में राज्याभिषेक होने पर राजा वीरमानु सर्वप्रथम बघेलों के कुलदेव कौवेरदेव की अर्चना करता है ।^१ कवि ने राजा वीरमानु को 'द्वितीय धर्मात्मज'^२ कहकर उसकी युधिष्ठिर के साथ तुलना की है ।^३ वीरमानु काम आदि पङ्क्ति के जीतने में प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील रहता है ।^४ वह नित्य ही आतिथ्य सत्कार में लीन रहता है ।^५ वह जानता है कि अन्यायमार्ग पर चलने वाले राजा समूल नष्ट हो जाते हैं, अतः वह श्याय पर दृढता के साथ प्रवृत्त होता है ।^६ वह गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक है^७ तथा दयावश राज्याभिषेक के समय बन्दिनों की मुक्ति एवं बेलों के 'अवाहकत्व' का आदेश देता है और क्रोड़ा में सहायक शुक आदि पक्षियों को भी मुक्त करा देता है ।^८ वीरमानु ने भूतों का भी कष्ट दूर किया ।^९ वह ऐसे ही कार्य करता था जो ऐहिक और आमुष्मिक (पारलौकिक) दोनों प्रकार के कल्याण कर सकें ।^{१०} वह व्यसनों से मुक्त था । उसकी शास्त्रों और धर्मग्रन्थों में रुचि और निष्ठा थी । वह धर्म से सम्बद्ध विवादों पर स्वयं निर्णय देता था तथा ब्रह्मयज्ञ आदि किया करता था । वह जितेंद्रिय था तथा यम-नियम आदि का पालन एवं विष्णु की भक्ति करता था, साथ ही वह राजद्वार के चरणों का उपासक भी था ।^{११} वह अत्यन्त दानशील^{१२} और दयालु था^{१३} । अपने देश में वह अध्रुपात नहीं देख सकता

१. सर्ग ५।२२-३१ । २. सर्ग ५।३३ ३. सर्ग ५।४१

४. सर्ग ५।५० : 'कामादिपङ्क्ति-जयप्रतिष्ठम् ।'

मृपा न चोर्वत् न हठो व्यघामि, न दैन्यमालम्बि महेश्वरेऽपि ।

बाणो न क्लृप्ताऽभिहिताऽपि शत्रौ, युधिष्ठिरेखेव नृपेण तेन ॥'

५. सर्ग ५।६२ 'तस्यातिथौ सत्कृतिरस्ति नित्यम् ।'

६. सर्ग ५।६६ : 'अन्यायमार्ग-प्रवणाः समूलं

जग्मुर्ममिष्यन्ति च यान्ति नाशम् ।

महीमृतस्तन्य-मार्ग एव, प्रवर्तते "।" तथा सर्ग ५।१२१

७. सर्ग ५।६७

८. सर्ग ५।७-८

९. सर्ग ५।६७

१०. सर्ग ५।८० : 'यदैहिकामुष्मिकधर्मयोग्यं, तत्कर्म कर्तव्यमनोद्दं नो ।'

११. सर्ग ५।९४, १०० : पुराणवेदस्मृतिसादरात्मा ।' तथा

'यमान् विवेकी नियमानुपास्ते हरि-प्रसस्ये विजितेन्द्रियोऽयम् ।

हरि-प्रसादेन नरैर्दुरापा धर्मादयो नेति जनः कृतार्थः ॥'

१२. सर्ग ५।१०५

१३. सर्ग ५।११० :

'सांसारिकैः कष्टशतैरजस्रं तप्ताः प्रजाः सन्ति दयाजलोपैः ।

स्थेया भवन्तीति विचार्य राजा दम्भापरस्तास्वसृजत् सुखानि ॥'

था ।^१ वह लोकनिन्दा से भय खाता था । उसने पुण्यार्जन के लिये देवालयों और जलाशयों के निर्माण कराये थे ।^२ राजसमस्त देवी द्वारा सनाए हुए तालाब को उसने ही गहरा कुराया था^३ । वह चरित्रहीन सुन्दरियों की चर्चा से भी विरक्त था तथा पर-स्त्री-विमुख था ।^४ वह शास्त्रों द्वारा निषिद्ध कर्मों को कभी नहीं करता था ।^५ उसने पराये धन का लोभ कभी नहीं किया ।^६ वह वर्णाश्रम का परिपालक था ।^७ उसने प्रमादवश भी पाप नहीं किया ।^८ उसने हिंसा से दूर रहने के लिए भुगया का भी त्याग कर दिया था ।^९ उसने मधोमय, लक्ष्मी और रूप का कभी अभिमान नहीं किया ।^{१०}

वीरभानु का व्यवस्थित राजोचित गुणों से पूर्ण था । उसने विचार किया कि शत्रुओं की भूमि जीत लेनी चाहिए । उसने एक दुर्ग (वाण्यवगढ़ ?) का आश्रय लेकर शत्रुओं की जीतने का निश्चय किया ।^{११} इसके लिए उसने सप्ताङ्ग-नीति का अवलम्बन किया ।^{१२} उसने युद्ध के लिए समर्थ सेना का निर्माण किया ।^{१३} अर्जुन की भाँति नीतिज्ञ राजा वीरभानु ने कोप और दण्ड को व्यवस्था कर प्रताप बढ़ाया ।^{१४} उसने घोड़े और हाथी बढ़ाए^{१५} तथा गुप्तचरों की नियुक्ति की ।^{१६} वह अपनी मन्त्रणायें गुप्त रखता था ।^{१७} उसने प्रभु, मन्त्र और उत्साह तीनों शक्तियों के प्रयोग किये तथा सन्धि, विग्रह, यान, स्थान, द्वेष और संशय इन छहो गुणों के उपयोग में कुशलता प्राप्त की ।^{१८} वह प्रमादयुक्त सचिवों को हटा देता था ।^{१९} इस प्रकार शक्तिसम्पन्न हो कर उसने शत्रुओं की निर्मूलक कर

१. सर्ग ५।११७ २. सर्ग ५।११७-११८ ३. सर्ग १।२-२७

४. सर्ग ५।१२२, १०० :

५. सर्ग ५।१२४-निषिद्ध-कर्मणि विद्यातुमेव न सत्पूहोऽभूत्सुकृत-प्रसक्तः

६. सर्ग ५।१२८, १४७ ७. सर्ग ६।११ ८. सर्ग ६।२०

९. सर्ग ६।३३ १०. सर्ग ६।४५

११. सर्ग ० ५।३९-४० :

अनेक दुर्गेषु यदेकदुर्गं तदाधितं पतनमावसन् सः ।

----- -- -- -- द्विषजिगीपापित-मानसोऽयम् ॥'

१२. सर्ग ५।४६

१३. सर्ग ५।६४-६५

१४. सर्ग ५।७४ 'तस्मान्मन्त्रेन्द्रोऽर्जुनबलवज्रः कोरोष्येव दण्डेऽप्यवत् सयतः'

१५. सर्ग ५।६५-८८ : सर्ग ६।३६-३९

१६. सर्ग ५।१०२-१०३, १३१, १५१

१७. सर्ग ५।१०६ १८. सर्ग ५।१३१, १५१-५३ १९. सर्ग ५।१३६

दिया ।^१ सहस्रों शत्रु भी उसे सहन नहीं कर सकते थे । वीरमानु के पिता वीरसिंह ने प्रायः सभी शत्रु निरशेष कर डाले थे, अतः युद्धोन्मुख होते हुए भी वीरमानु के लिए रणयात्रा दुर्लभ थी, तथापि उसने शत्रुओं की वृद्धि नहीं होने दी और आक्रमण कर उज्जट देश को जीत लिया ।^२ क्रमशः वह द्वादश राज-चक्र का अधिकारी हो गया ।^३ इस प्रकार हम वीरमानु को स्थिरता, दृढ़ता, प्रजा, उत्साह, मान, शूरता और तेजस्विता आदि गुणों से सम्पन्न पाते हैं ।

वीरमानु व्यवहार में चतुर था ।^४ उसकी वाणी में अमृत था ।^५ वह उज्जनों को दूर नहीं करता था और दुर्जनों एवं नीच जनों को समीप नहीं आने देता था ।^६ वह प्रजा का सर्वथा अनुरञ्जन करता था, अतः लोकप्रिय था ।^७ उसकी वृद्धि तीक्ष्ण और शुद्ध थी ।^८ उसमें मिथ्या भाषण, हठ, कातरता, रुझता आदि दोष नहीं थे ।^९ उसके द्वार हितैषियों के लिए कभी बन्द नहीं होते थे ।^{१०} वह बहुत बार बहुत लोगों से बहुत कुछ सीखा करता था ।^{११} वह शम्भी^{१२} और सुचितासम्पन्न था ।^{१३}

कवि ने उपर्युक्त रीति से वीरमानु की भाष्यकोषित गुणों से विभूषित तो बतलाया ही है, साथ ही उसे शास्त्रोक्त नीतियों के आधार पर एक सफल, सतर्क एवं समर्थ शासक के रूप में भी उपस्थित किया है । वह राज्य का सुयो-जित सञ्चालन करता था । वह त्वरित कार्य करने में समर्थ होने से अपने कार्य सिद्ध कर लेता था ।^{१४} उसने दुर्ग की रक्षा के लिए ऐसे हितैषी और कुलीन कर्मचारी नियुक्त किये, जिन्हें शत्रु कभी फोड़ न सकें ।^{१५} यद्यपि वह एकान्त में ही राज्य के उदय के लिए मन्त्र की साधना करता था, तथापि वह प्रजा के अनुराग की प्राप्ति के लिए संभा में भी बैठता था ।^{१६} उसके परीक्षित कर्मचारी

१. सर्ग ५।५१ २. सर्ग ५।१५४-१५८ ३. सर्ग ६।१ :

‘अभूद् ध्रुवं द्वादशराजचक्रे ।’

४. सर्ग ५।५२ ५. सर्ग ५।१२६ ६. सर्ग ५।४४, ४५, ११४

७. सर्ग ५।१०९, १११, १२६, १२८ : ८. सर्ग ५।७३, १०७

९. सर्ग ५।४१ १०. सर्ग ५।४३

११. सर्ग ५।३४ :

‘युत्वा बहुभ्यो बहुधा बहूनि शिष्टेभ्य एव प्रतिपत्तिमाप्तात् ।’

१२. सर्ग ५।१०४ १३. सर्ग ६।१६

‘लोकांलोकमनोहरोऽयमसिपद् भद्रोऽस्त्रिभिः प्रत्यहं,
पन्थानं न दुर्वि विमुञ्चत जना यूयं स्वकामादितः ।’

१४. वीर० सर्ग ५।४२ १५. सर्ग ५।४८-४९ १६. सर्ग ५।५३

कार्यों में प्रमाद नहीं करते थे ।^१ आय-व्यय की चर्चा करते समय उचित सम्मति देने वालों का वह सम्मान करता था ।^२ वह निष्ठावान् सेवकों और सामन्तों को भूमि आदि देकर सन्तुष्ट रखता था तथा सैन्य और कोष की वृद्धि करने में उनकी सहायता लेता था ।^३ उसने कृषि का विकास किया^४ तथा वाणिज्य के मार्गों का निर्माण कराया ।^५ वह आय के अनुसार ही व्यय करता था । वह अच्छे जाने हुए लोगों को ही आय-व्यय के कार्य में नियुक्त करता था तथा प्रत्येक पक्ष या मास में यथावकाश स्वयं आय-व्यय का निरीक्षण करता था । वह वर्ष के आय-व्यय की आनुमानिक राशियाँ भी स्थिर करता था^६ और सिद्धि प्राप्ति के पूर्व कर्मपथ को छोड़ता नहीं था । वह कर्मचारियों पर ही आश्रित न रह कर स्वयं देख भाल करता था । वह कार्यों को करते समय तन्द्रा और व्यसन से दूर रहता था तथा शोघ्रता के साथ कार्य करता था, जिससे विघ्न बीच में न आ जायें ।^७ उसने कुबेर से भी अधिक लक्ष्मी अर्जित कर ली ।^८ वह प्रजा से घूस लेने वाले कर्मचारियों का घन छीन कर उन्हें दण्डित भी करता था^९ साथ ही अन्धायी सामन्तों को दण्डित करता था और उनकी भूमि और घन छीन लेता था ।^{१०} उसके राज्य के अन्तर्गत सुचारु व्यवस्था से सेवकों में सार्धसाह सूरक्षित रहते थे तथा पर्वत और नदियाँ भी सुविधापूर्ण थी ।^{११} न वह अत्यन्त तीव्र रहता था और न अत्यन्त मृदु । वह स्मृतियों में विहित मध्यम क्रम से ही प्रवृत्त होता था ।^{१२} सभी मनुष्यों के लिए ऋण लेना निन्द्य है, अतः राजा बीरभानु अपनी आय के आधार पर काम चलाता था ।

१. सर्ग ५।५७

२. सर्ग ५।१९-६०

३. सर्ग ५।६१

४. सर्ग ५।६८

५. सर्ग ५।७८

६. सर्ग ५।८३, ८९-९१, १६१-६२ तथा सर्ग ६।४०

७. सर्ग ५।९२ :

‘यत्कार्यमदाऽऽरभते विना तत् कलं न मुञ्चत्यवनीश्वरोऽयम् ।’

आरम्भ ये कार्यमुदासते ते न सिद्धिमाजः कथिता नयज्ञैः ।’

तथा सर्ग ५।९४

८. सर्ग ५।११५ : ‘ततः कुबेराधिक-जातलक्ष्मीः ।’

९. सर्ग ५।१४०-१४१

१०. बीर० सर्ग ५।१४४

११. सर्ग ५।१५० :

‘तस्मादपी सार्धसुखप्रदाऽसीत्तस्याद्रयो राजपथा इवेष्टाः ।

तस्य सक्न्तो पथिकद्रव्यानां स्वगेहवापीव तनोति धर्मं ॥’

१२. सर्ग ६।४

उसने सभी व्योहों के ऋण चुका दिये।^१ नीतिज्ञों के द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर भी वीरभानु उनकी चाटुकारिता के कुचक्र में नहीं उलझता था और अनुचित कार्य कभी नहीं करता था।^२

इस प्रकार बहुत वर्षों तक वीरभानु शासन करता है और अपने तरुण एवं सुयोग्य पुत्र रामचन्द्र का विवाह कर उसे युवराज-पद प्रदान कर देता है। यही कवि ने नायक वीरभानु की निस्पृहता का पक्ष उभारा है—

तनय-निहित-भारो वेद-रक्षावतारो

नियत-कृत विचारो धर्मकण्ठ-ह्वार ।

क्षितिपतिरथ गङ्गा-तोय-संशुद्धचित्तौ

विरल भवन-निष्ठां ब्रह्मनिष्ठा-परोऽभूत् ॥^३

वीरभानु दीर्घजीवी था। उसने पौत्र का मुख देखा और प्रभावी होने के कारण अपने मित्र मुगल सम्राट हुमायूँ से उपहार प्राप्त किये^४। वीरभानु ने धर्म के अनुकूल पृथ्वी का उपभोग किया, बलपूर्वक शत्रु राजाओं को जीत लिया, विद्वानों को धन से तृप्त किया और सन्तति देख कर सुख पाया।^५ उसने देखा कि उसका पुत्र राज्य करने में समर्थ है तथा प्रजा उस पर अनुराग रखती है, साथ ही उसका अपना शरीर वार्धक्य से आक्रान्त होता जा रहा है, तब संसार की गति का विचार कर उसने रामचन्द्र पर राज्य का भार रखा और स्वयं राज्यसंचालन का प्रयास त्याग दिया।^६ उसने विषयों से मन को खींच कर गङ्गा-यमुना के समीप बलकूपुर (अरैल) में निवास किया और सांसारिक चिन्ताओं को त्याग कर ब्रह्म-चिन्तन में लीन हो गया।^७ उस उपरान्त स्थिति में वह विदेहराज जनक-सा प्रतीत होता था। उसकी यह स्थिति देख कर लोग कहते थे कि यह राजा कलियुग में सत्ययुग का प्रवर्तन कर रहा है। इस प्रकार वीरभानु ने यावकों को धन दिया तथा क्रमशः इन्द्रियों को जीत कर प्राणों को भी वश में कर लिया। दार्शनिक और विद्वान् उसके

१. सर्ग ५।८६ : ६।१३, १४, १७ २. सर्ग ६।३०

३. सर्ग १४७

४. सर्ग १२।२०-२३

५. सर्ग ९२।२६ :

धर्मेण भुक्त्वा पृथिवीं वनेन जित्वारिभूपान् द्रव्येण-प्रदानैः ।

सन्त्यज्य विद्वन्निकरानवाप्य सुखानि सन्तानं विलोकनेन ॥'

६. सर्ग १२।२७-१८

७. सर्ग १२।२९-३० :

'निवार्य चेतो विषयाभिलाषादुवास गङ्गा-यमुनोपकण्ठम् ।

...विहाय लोक-व्यवहार-चिन्तामचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ॥'

समीप आ कर ज्ञान-चर्चा किया करते थे । भवन के ऊँचे भाग से वह त्रिवेणी के दर्शन किया करता था ।^१

वीरभानु ने बाल्यावस्था में विद्योपाजन किया, यौवन में राजलक्ष्मी का उपभोग किया तथा शत्रु राजाओं को अस्त रखा और वृद्धावस्था में त्रिवेणी में निवास कर उसे भी सार्धक बनाया । इस प्रकार का संसार में प्रसिद्ध महास्वी राजा वीरभानु था, जो गुणो और शान्ति का धाम था और जिसको तेजस्विता से सूर्य, सम्पत्ति से देवराज इन्द्र तथा वृद्धिमत्ता से बृहस्पति स्तुहा करता था ।^२

वीरभानु का उपसृक्त चरित्राङ्कन यद्यपि अतिरञ्जित एवं प्रशस्तिमूलक है, तथापि इसी आधार पर कवि का लक्ष्य मानव-जीवन के चरमोत्कर्ष की प्रकट करना भी स्पष्ट होता है । भारतीय जीवन अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि को ही लक्ष्य मानता है और इसी लक्ष्य को स्थापना कवि की प्रेरणा है ।

रामचन्द्र

वीरभानुदय काव्य में द्वितीय धंशों का चरित्राङ्कन वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र का किया गया है । रामचन्द्र के विवरण में अधिक अतिरञ्जन है तथा अलौकिक तत्वों का भी समावेश किया गया है ।

सातवें सर्ग में, जब रामचन्द्र गर्भ में है, उसकी माता राजमता स्वप्न में अवतारों के दर्शन करती है जिनमें कल्कि रूप, जो म्लेच्छ-नाशक है, प्रमुख है । वीरभानु के दिवङ्गत पिता वीरसिंह भी स्वप्न में हा प्रकट हो कर गर्भस्थ बालक को आशीर्वाद तथा निर्देश देते हैं और उसे म्लेच्छनाशक कल्कि का अवतार हो बतलाने है ।^३ स्पष्ट है कि काव्य पर यह प्रभाव तत्कालीन मुस्लिम शासकों के साथ बघेलों के पीढ़ियों से चले हुए ऐतिहासिक सङ्घर्षों के कारण है ।

चक्रवर्तिन के लक्ष्णों से सम्पन्न बालक रामचन्द्र का जन्मोत्सव उत्साह के साथ मनाया जाता है ।^४ उष्ण अवस्था की ओर अग्रसर होने वाले कुमार को

१. सर्ग १२।३९, ३३-३८ :

२. सर्ग २।३ -४ :

‘आर्षं देवविध-गुणगणधाम-विधामधाम, .

साणोशनो जयति विदित-श्रीयशा वीरभानुः ।

भानुर्यस्य प्रचुरमहसे न-पदे देवराजो.

देवाचार्यः पृथुलमतये संपूहृत्वं जगाम ॥’

३ वीर० सर्ग ७।१-६२

४. सर्ग ७।८०-९२

विज्ञान मन्त्री गणेश रावत ब्रह्म-शास्त्रों के सञ्चालन, मल्लविद्या, दर्शन नीति, घोड़े और हाथी के नियन्त्रण मोत-नृत्य आदि विद्याओं और कलाओं की शिक्षा देने हैं जिन्हें बालक अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा के कारण अत्यन्त गोप्यता के साथ ग्रहण कर लेता है ।^१ तबसे सर्ग में गौर नगर के राजा कोनिसिह को पौत्री यशोदा के साथ रामचन्द्र का विवाह हो जाता है और शीघ्र ही विन्ध्यमाल (दान्त्वदण्ड दुर्ग) पर उसका श्रीवराज्याभिषेक हो जाता है । यहीं में पिता के निर्देशन में रहने हुए भी रामचन्द्र सम्पूर्ण रूप से शासन अपने हाथ में ले लेता है ।

रामचन्द्र का प्रचार शीघ्र ही नगुओं के लिए दाहक हो गया ।^२ उनमें बल्लभदेव में कविज्ञ, अमरकण्ठक और दक्षिण समुद्र तक बयेल राज्य की सीमा का विस्तार कर लिया ।^३ रामचन्द्र गुणों का माता था । वह गम्भीर, स्थिर, घोर, उग्र और दानी था । स्वयं सुल्तान मुहम्मद तदली (मूर) उनकी शरण में आया था ।^४ उसका मश अगुल्य था ।^५ वह अपनी सभा के मायक तानमें को प्रत्येक राग प्रत्येक तान और प्रत्येक प्रुन्द पर करोड़ों टंका पुरस्कार दे चुका था तथा आठों प्रहर गीत सुनता था ।^६ वह अत्यन्त शूर, गम्भीर और मगस्वी हुआ ।^७ धारहवें सर्ग में रामचन्द्र की भुगया का वर्णन है, जिसमें उनका उत्साह और पराक्रम सूचित होता है ।

बारहवें सर्ग में रामचन्द्र के पुत्र शीरमद्र के जन्म का वर्णन है । रामचन्द्र को गौतमना को और कवि ने यही संकेत किया है । वह अपने पिता शीरमानु को उत्पत्ति में अपने प्रथम पुत्र के जन्म का समाचार सुनता है और यद्यपि उसके अन्तःकरण में उत्क्रान्त फूटता है, वह पिता के समझ लज्जित हो जाता है—

तदातिगूढातिमुखेन पूर्वः, शोल्लामिद्वक्त्रः सुवपेव चन्द्रः ।

गन्तः सरम्भानिव रामचन्द्रः, पितुस्त्रास-भय द्वावतम्ये ॥^८

१. सर्ग ८।०-१४

२. सर्ग १०।३ :

‘प्रतापतीन्द्रमूर्धनैः परेषा तामाय रामो मदमूढ क्षुरीणः ।’

३. सर्ग १०।७

४. सर्ग ६।१०-२१ :

५. सर्ग १०-२३

६. सर्ग : १०।३-३१

७. सर्ग १०।३१-३५ ।

‘अनन्यतानान्यगुणैकसिन्धुः संसारवन्धुर्न रामचन्द्रः ।

जोशय-शौर्यैक-निवासवानः परन्तपोऽयं गुह्यमस्तिदुर्गतः ।

महागभीरः प्रगते द्वावान् स रामचन्द्रो धरणीन्द्रचन्द्रः ॥’

८. चौर० सर्ग १२।१७

काव्य के अन्तिम भाग में बतलाया गया है कि वीरभानु ने रामचन्द्र की क्षमता पर सन्तुष्ट होकर ही निश्चिन्त भाव से विरक्ति ग्रहण की। इस समय रामचन्द्र राज्य-मंचालन में समर्थ था। वह गुणशामी था तथा राजा उसे चाहती थी।^१

३ वीरसिंह

प्रस्तुत काव्य में तीसरा महत्त्व वीरभानु के पिता वीरसिंह के चरित्राद्भुत को दिया गया है। तीसर महत्त्व का अर्थ यह नहीं कि वीरसिंह तीसरी श्रेणी का पात्र है, केवल इतना ही है कि उसका वर्णन द्वितीय सर्ग में संक्षेप में किया गया है।

वीरसिंह सुरूप, मधुरभाषी, कलाओं का मर्मज्ञ, विद्या-प्रेमी, उदार, दयालु, मुद्रिमान् वामी एवं संयमी था। वह शत्रुनाशक, राजाओं के लिए भयङ्कर, प्रभावी और अकम्पित था तथा उसने विशाल सेना खड़ी की थी।^२

वीरसिंह इसलिये भा महत्त्वपूर्ण है कि उसने राजधानी गहोरा को नया रूप दिया; उसे सड़कों और भवनों से सुसज्जित किया।^३

वीरसिंह ने बघेल राज्य का अत्यधिक विस्तार किया और शत्रुओं को निःशेष कर दिया। उसने कितने ही दुर्गों पर अधिकार किया और नगर बसाये। बाबर मुगल भी उसके पराक्रम से भय खाता था। उसने प्रयाग (अरैल) से लेकर गढ़ा (जबलपुर) तक का भूभाग स्वाम्य कर लिया था।^४ वीरसिंह की विजयों का समस्त उल्लेख ऐतिहासिक है।

महाकाव्यों की परम्परा और वीरभानूदय काव्य

भामह ने निम्नलिखित ४ काव्य-प्रभेदों की वर्गीकरण की है—(१) वे काव्य, जिनमें देवादिकों के पूर्वघटित चरित्रों का वर्णन हो। रुद्रट के अनुत्पाद्य प्रवच, जिनमें इतिहासादि (शमायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों) में प्रसिद्ध पञ्जर आधार

१. वही, सर्ग १२।२३

‘विलोक्य मृपासनयोग्य वीर्यं प्रजानुरागास्पदमात्मजं च ।’

तथा १२।२८—

‘धुरं धराया विनिधाय धुर्यं निजात्मजे रायगुणाभिरामे ॥’

२. वही, सर्ग २।१-६

३. सर्ग २।७ :

‘स राज्यामाप्त युवा गहोरां चतुर्विधा राजित-गजभागांम् ।’

४. सर्ग १।४०-६८ ।

बनाया गया हो, इसी कोटि में आते हैं। प्रायः समस्त उत्कृष्ट महाकाव्य इसी प्रमेद के अन्तर्गत आ जाते हैं—जैसे रघुवंश आदि पञ्च महाकाव्य तथा पीछे के नलाय्न्दय, रामचन्द्रोदय, शितिकृष्णविजय, ताराशशाबु, रामवीर काव्य आदि।

मामत द्वारा सूचित अन्य प्रमेद हैं २. उत्पाद्य-वस्तु, ३. कलाश्रयी और ४. शास्त्राश्रयी काव्य।

कलाश्रयी काव्य चमत्कार-प्रधान होते हैं, जिनमें यमक-श्लेष आदि के बल पर अनेकानेक प्रयोग किये जाते हैं, जैसे राजचूडामणि दाशित का राघव-न्याय-पाण्डुरोपम्, हरदत्त का राघव-नैपथ्यम् अथवा सूर्य कवि का राम-कुण्ड-विलोम-काव्य।

शास्त्राश्रयी काव्य या तो चन्द्रालोक, साहित्यदर्पण की भाँति विशुद्ध पद्यात्मक लक्षण ग्रन्थ हैं अथवा किसी आद्यपदांश को आधार बनाकर उनमें रस-अलङ्कार, नायिका-भेद आदि बतलाए गए हैं, जैसे मञ्जरजयशोभूषण, अम्भाराम-भट्टचन्द्रोदय आदि।

महाकाव्यों के क्षेत्र में दूसरा स्थान उन उत्पाद्यवस्तु महाकाव्यों को प्राप्त है, जिन्हें धार्मिक ऐतिहासिक शैली के प्रबन्ध काव्य कहा जाता है। इनमें प्राचीन कथा का आधार छोड़ कर आधुनिक दृष्टि से ऐतिहासिक आधार स्वीकार किया गया है। इनमें मानव का चरित-वर्णन पाया जाता है। ऐसे महाकाव्य भी धार्मिक और लौकिक दो आधारों पर लिखे गये हैं। धार्मिक आधारों पर प्रणीत उत्पाद्यवस्तु महाकाव्यों में गणनीय हैं अश्वघोष के बुद्धचरित, सौन्दरनन्द तथा पीछे के देवनन्दाम्बुदय, दिग्विजयमहाकाव्य, शङ्कराम्बुदय, पद्मजलिचरित सरयनायाम्बुदय, महावीरचरित आदि। इन महाकाव्यों में नायक को मर्त्य रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे तपोबल या पूर्व जन्म के प्रभाव से दिव्य-शक्तियों से सम्पन्न बतलाया गया है। कवि ने प्रायः अपने धर्म के प्रवर्तक को दिव्यादिभ्य नायक रूप में रखा है और उसका काव्य-प्रणयन का प्रमुख लक्ष्य अपने धर्म-विशेष के उरुर्ध्व की साधना रहा है। इस प्रकार महाकाव्य के अनेक लक्षणों से युक्त होने पर भी ये रचनाएँ कलाश्रयी और शास्त्राश्रयी काव्यों की भाँति हो बहुत कुछ एकाङ्गी हो गई हैं। उदाहरणार्थ सौन्दरनन्द में नन्द का नायकत्व उपहासास्पद हो जाता है। उसका व्यक्तित्व बुद्ध के अलौकिक प्रभाव से आक्रान्त, अतः पराश्रित है। उसमें हृद्यता का पक्ष निर्बल है और ज्ञान-साधना का पक्ष प्रबल। कवि लालित्य और रञ्जनात्मकता को साधन बना कर बौद्ध मत को साध्य बनाता है और नायक नन्द एवं नायिका सुन्दरी को मिश्र-मिश्रणी में परिणत कर देता है। काव्य-कला का प्रदर्शन लोक-रुचि को आकृष्ट करने का साधन-मात्र है।

लौकिक आधारों पर रचित प्रायः समस्त महाकाव्य राजाओं की प्रशस्ति की भावना पर आधारित है। ये राजा आधुनिक दृष्टि से इतिहास के केन्द्र-बिन्दु हैं। अतः इन्हीं को वास्तव में ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य कहा जा सकता है। ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में ऐसे महाकाव्यों की रचना अच्छी संख्या में उपलब्ध होती है। नवसाहस्राब्द-चरित, पृथ्वीराज-विजय और विक्रमादित्य-चरित इस कोटि के गणनीय महाकाव्य हैं। गुजरात में वारहवीं-तेरहवीं शताब्दियों में इस कोटि के अन्तर्गत कुमारपाल-चरित, वसन्तविलास, हम्मीर-महाकाव्य और कीर्तिकोमुदी जैसे सुन्दर ग्रन्थों की रचनाएँ हुई हैं। इसी कड़ी में १६ वीं शती में हमारा बीरभानूदय काव्य जुड़ जाता है। १७ वीं शती में संजोर केन्द्र में अच्युतरायाम्युदय, अच्युतेन्द्राम्युदय, रघुनाथाम्युदय, रघुनाथ-भूप-विजय जैसे महत्त्वपूर्ण महाकाव्यों की सर्जना हुई। अग्रप्र शिवाजी-चरित, ताराचन्द्रोदय, विशालराज-महाकाव्य और रावजीराव-कीर्ति-विलास जैसे महाकाव्यों के प्रणयन हुए। इन ग्रन्थों को दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि लौकिक-उत्पाद्य-वस्तु, ऐतिहासिक शैली के प्रशस्तिमूलक चरित-प्रधान महाकाव्यों की सर्जना करने की प्रवृत्ति ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में अत्यन्त बलवती रही है। बीरभानूदय की रचना इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। इन्हीं महाकाव्यों की परम्परा में बीरभानूदय को स्थान दिया जा सकता है।

ऐतिहासिक शैली के काव्य इतिवृत्तात्मक भी होते हैं, जैसे राजतरङ्गिणी। इनका कलेवर ऐतिहासिक घटनाओं के विवरणों से भर जाने से उसकी रसवत्ता और हृद्यता क्षीण हो जाती है। इनका मूल लक्ष्य ऐतिहासिक कुतूहल का निवारण हो जाता है, उनमें सन्धियों की अन्विष्टि नहीं होती। इसी कारण इन्हें महाकाव्य नहीं कहा जा सकता।

ऐतिहासिक शैली के चरित-प्रधान महाकाव्यों की शैली प्रायः जीवनचरित की शैली होती है। इनमें प्रारम्भ में ऐतिहासिक नायक के पूर्वज, माता-पिता या धर्मानुक्रम का वर्णन रहता है। किसी-किसी में नायक के जन्म से लेकर मृत्यु तक का वर्णन रहता है। ये प्रायः उद्देश्य-प्रधान होते हैं। इनका मूल लक्ष्य राजा की प्रशस्ति रहता है। यत्र-तत्र ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश करते हुए भी रसात्मकता को प्रधान रखा जाता है। कथावस्तु में अलौकिकता और कल्पना का समावेश भी पाया जाता है। उपर्युक्त तत्त्व नवसाहस्राब्द-चरित, पृथ्वी-राज-विजय, विक्रमादित्य-चरित, वसन्तविलास और बीरभानूदयकाव्य में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ समान रूप से पाये जाते हैं। विशेष अन्तर यह है कि उक्त चारों महाकाव्यों में जहाँ नायक के आशिक जीवन का चित्र है, वहाँ

वीरभानूदय में नायक के समग्र जीवन की झाँकी है। इसमें अपेक्षाकृत अधिक इतिहास-तत्त्व है। वीरभानूदय में महाकाव्य की परम्पराओं (युद्ध, चन्द्रोदय, मृज्जार झोंडाओं के परम्परात्मक वर्णनों) का इतना परिपातन नहीं है जितना अन्यत्र प्राप्त होता है। इसमें वस्तु-कल्पना का समावेश भी बहुत कम है। इनका ऐतिहासिक आचार अधिक ठोस है। तत्कालीन स्थितियों, समाज, संस्कृति, प्रदेशों, नगरों आदि के सम्बन्ध में वीरभानूदय काव्य में अपेक्षाकृत अधिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। समग्र रूप में यह कहना उचित होगा कि काव्य-कला की दृष्टि से वीरभानूदय उक्त काव्यों में नीचे हैं, यद्यपि बहुत नीचे नहीं। माय हो ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में वह उक्त काव्यों से ऊपर है। वीरभानूदयकाव्य के महत्त्व इस बात में है कि १६ वीं शती में वह ऐतिहासिक शैली की काव्य-परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी बनता है, जब कि इस अद्विष्ट में अन्यत्र इस श्रेणी के महाकाव्यों की सर्जना बन्द-सी दिखाई देती है। हम पीछे देख चुके हैं कि वीरभानूदय की काव्य-शैली भी उत्कृष्ट है।

संक्षेप में यह कहना उद्भुत होगा कि रघुवंश, कुमारसम्भव, नैपथीयचरित आदि प्रथम श्रेणी के महाकाव्यों की महनीयता के दर्शन हमें वीरभानूदयकाव्य में नहीं होते किन्तु महाकाव्य के लक्षणों की परिपाटी पर जो अन्य द्वितीय श्रेणी के महाकाव्य पर्याप्त संख्या में लिखे गये हैं, उनकी श्रेणी में स्थान पाने से वीरभानूदय काव्य को रोक नहीं जा सकता।

(१) काव्य में उपलब्ध ऐतिहासिक तत्त्व

वीरभानूदय काव्य में कथानायक वीरभानु के चरित्राद्भुत के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएँ भी प्राप्त हैं। ये सूचनाएँ निम्नलिखित तीन विभागों में बाँटी जा सकती हैं—

- (१) बघेलों की पूर्वज-परम्परा ।
- (२) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति ।
- (३) तत्कालीन बघेलखण्ड का समाज एवं संस्कृति ।

(१) बघेलों की पूर्वज-परम्परा

कवि ने काव्य के प्रथम सर्ग में वीरभानु की पूर्वज-परम्परा का वर्णन किया है। संस्कृत के अन्य काव्य बघेलवंशवर्णनम् तथा इतर साहित्य की देखने से हमें पूर्वजों के कुछ नामों पर प्रस्तुत काव्य की सूचनाओं से मतभेद प्राप्त होता है। बघेल-वंशवर्णनम् में प्रारम्भ में अधिक नाम प्राप्त हैं तथा स्थितियों में भेद है। इस भिन्नता की वर्या हम अगले अध्याय में बघेलवंशवर्णनम् पर विचार करते समय करेंगे और इस स्थान पर हम केवल वीरभानूदय काव्य में प्राप्त सूचनाओं पर ही अपने को सीमित रखेंगे।

प्रस्तुत काव्य के अनुसार पुण्यवान् बघेलवंश में भीम नामक राजा हुआ।^१ (यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि कवि यह नहीं कहता है कि भीम इस राजवंश का प्रवर्तक या मूल पुरुष था। साथ ही वह भीम की राजधानी भी भी नहीं बताता।) भीम के पुत्र राणिङ्गदेव ने कृपाण के बल से पृथ्वी को जीता और गहोरा का अधिकारी बनकर राज्यारम्भ किया।^२ यहाँ चलेकर वीरभानु तक सभी राजाओं की राजधानी गहोरा नगरी ही है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत काव्य गहोरा-शाखा की सम्पूर्ण सूचना से युक्त है।

१. वीर० सर्ग १।६-८ : '...भीमनरेन्द्र आसीत् । ...बघेलवंश्यः...लेभे स पुत्रं...राणिङ्गदेवं...' ।

२. सर्ग १।१० :

राणिङ्गदेवः पुयुराजबुद्धिजिता कृपाणस्य बलेन पृथ्वीम् ।

अशास नानानुपगेहमुषां लब्ध्वा गहोरां तपन-प्रतापः ॥'

वीरभानुदय काव्य में प्राप्त वघेलवंश की सूची हम एक दृष्टि में निम्न-लिखित रूप में पाते हैं—

१. भीम (वघेल) (भीमल, भीमल, भीमल, भीमल)

२. रामिङ्गदेव (गहोरा शाखा) (रामिक या अनिक देव)

यसरज चन्देल
(कारो)

३. बालनदेव (बलन)

राजलमल्ल देवी = ४. बल्लारदेव (बल्लाल, बोलार, बोल्लार)

सिंहदेव (युवराज अवस्था में दिवङ्गत)

अपूर्व देवी = ५. वीरमदेव भर्जुन (गङ्ग-कर्णतीर्थ-विन्ध्यतट)

सातन (बगीसर) ६. नरहरि = राजला (देवी)

उदरण देवी = ७. भैरवचन्द्र (भयद, भैरवदेव, राजा भीर या भीद)

बाहरराय = गन्धर्वदेवी < शालिवाहन या पुरणमल (हम्मीर-वंशीय बाहुवाण)

(युवराज तथा दो अन्य सारिवाहन = कल्याणदेवी = कुलपालिकादेवी
अवस्था में मृत) सुकुमारदेवी = वीरसिंहदेव या भयदेवी)

गोसाइनी = वीरभानु = रायमती देवी उदयकर्ण (उत्कल के गजपति पुरुषो-

(हैहय-राजकुमारी) मामितीभानु तम की पुत्री से
द्विवाह)

कीर्तिसिंह (गौर या गोरपुर का राजा)

माधवसिंह = पदार्थ दे

रामचन्द्र = यगोदा

रत्नसेन

(या राजा राम
या रामसिंह
बान्धवगढ़) वीरमद्र

(या रत्नसिंह) = रमावती

बल्लारदेव

जैसा उपर्युक्त बंशवृक्ष से विदित होगा, राणिङ्गदेव का पुत्र बालनदेव^१ और उसका पुत्र बल्लारदेव^२ था। अन्यत्र प्राप्त सूचनाओं के आधार पर बालनदेव तक के पूर्वज ठाकुर बहे जाते थे। बल्लारदेव ही प्रथम राजा हुआ तथा उसने विजय प्राप्त कर जिलालेख सुदवाया^३। इस समय कारी नामक स्थान पर चन्देल-वंशीय यसरराजदेव शासक थे। उनको पुत्री राजलमल्लदेवी बल्लारदेव की स्थाही गई थी। इस रानी ने राजभवन से पूर्व दिशा में गहोरा में बावलो खुदवायो और वायु-कोण में विमान तालाब का निर्माण कराया, जो कवि के समय तक उस रानी के नाम से प्रसिद्ध था, जिसे पीछे बीरमानु ने धीरे गहरा कराया था। इस तालाब के तट पर स्थापित द्योतना देवी की प्रतिमा को कवि ने कुलदेवी कहा है।^४ बल्लारदेव के जीवनकाल में ही उनके युवक पुत्र सिंहदेव ने, जिसे पूर्वजन्मों का स्मरण था, त्रिवेणी में प्रवेश कर स्वयं प्राण त्याग दिये^५। बल्लारदेव ने सिंहदेव के पुत्र बीरम-

१. बीर० १।१५ : 'तदात्मजो बालनदेव आसीत् ।'

२. बीर० १।१९ :

'पुत्रश्च संसारसमुद्रपोतो बल्लारदेवो बलिदान-शौण्डः ।'

३. बीर० क्रि० ए० पू० १७ : गहोरा-जिलालेख-१३५० ई०। विजयों के लिए देखिये—परिशिष्ट १ (क) तथा १ (ख)—जमाबन्दियों तथा परिशिष्ट ४ : (जिलालेख)।

४. बीर० सर्ग १।२४-३० :

'श्रीमच्चन्देलाभवयमण्डनं यः कारीपतिः श्रीयसरराजदेव ।
तस्माज्जनि प्राप्य ररात्र तन्वी या पर्वतेन्द्रादिव दत्तकन्या ॥
स्व-नेहृतः पूर्वदिशाविभागे यद्वापिका राजति पूर्णतोया ।
साज्य प्रिया राजलमल्लदेवी पत्नी तयाञ्जानि तद्गणसिन्धुः ।
स्वकीय-नेहादिनिमारुतस्य तदाख्यया यः प्रवितः पृथिव्याम् ॥
यः श्रीमता तत्कुलभूषणेन श्रीबीरमानुसितपेन नूनम् ।
अतीव निम्नो विहितो गभीर ।

तटे ... यस्यास्ति, देवी कलिकामधेनुः । सा शीतलाख्याया नः
कुलस्येष्टकरो ... ॥'

५. बीर० सर्ग १।३१-३४ : 'बल्लारदेवेन तनूमवोऽस्यां सिंहो..... ।
जातिस्मरोऽग्रे । प्राग्न सुतं बीरमदेवमार्यम् ।.....

स्मृत्वा स क्रिञ्चित् खलु जातु धीरः श्रीसिंहदेवः परमात्मदर्शी ।
नहौ तनुं बल्लुसुता बल्लोवे यमस्वसुवार्तिमिराम्बुजङ्गे ॥'
इस घटना की पुष्टि जमाबन्दियों से होती है। इनके अनुसार सिंहदेव

देव का पोषण किया और उसे राज्याधिकारी बनाया^१। बीरमदेव का सामना झेल्लू राजा और उनके घुड़सवार नहीं कर पाते थे। उसने सेहूँडा (सेवडा, जिला दतिया) नगरी को जीत कर वहाँ निवास किया तथा दिल्लीश्वर यवन से भी विग्रह कर दिया।^२ उसको रानी अपूर्व देवी से नरहरि उत्पन्न हुआ।^३ गज्जा के समीप गढ़ नामक स्थान के राजा अर्जुन ने विन्ध्य तट पर निवालय बनवाये थे। इस स्थान का नाम कर्गनीय (वर्तमान कन्तिन, उत्तर प्रदेश) था। इस

ने अपने रंग की अचयना की कामता में कान्छू में बैठकर प्राण छोड़े : देखिये एकत्रा - राजा विहदेव बेनी मह मरमारामायण के कौलू मह इहराइ होन्हेनि इह इका के के का हमारि सम्मानि अये राज्य करे। स० १ ६३ माघवदी ३० सोमे कहूँ। १९वीं शती की अन्य जमा-अन्तिमों में यह संवत् १३२५ गके माघवदि ३० लिखा हुआ है। शक संवत् होने में यह १४८० ई० के समान होगा किन्तु इसके पूर्व ही इसके पुत्र बीरमदेव (१३९१-१४१३ ई०) की स्मृति आती है (निजामी : मलिकजादा डायनैस्टी आरु कालपी : मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् : भोपाल : ११ अप्रैल, १९५७ में पठित लेख पृष्ठ २-३) अतः यह सम्भव सन्निग्य है। (देखिये परिशिष्ट १ (क) तथा (ख) ।)

१. बीर० सम १३५-३७ :

२. बीर० १३९ :

‘न गेते तेन धनुर्मुखा स्म झेल्लुविनाथा. सुवमद्वदुप्ताः ।’

तथा १४४ :

‘हूत्वा सहृग्ग-नगरी महीमोन्तामध्यवामाशु किमत्र चित्रम् ।

विगूह्य रजे यवनाधिपेन दिल्लीपरी-मत्यनिना यदेव : ॥’

बीरहवीं शती के अन्तिम भाग में दिल्ली के तुगलक मुल्तानों के विरुद्ध द्वार में विद्रोह खड़ा हुआ था, जो चलाता गया। इस समय कालपी में तब-प्रतिष्ठित नासिद्दीन महमूदशाह (१३१०-१४११) ने १३९५ ई० में महोरा के ‘मुकद्दम’ बीरम बघेल पर आक्रमण किया और अगले वर्ष महोरा को नेस्तनाबूद कर दिया (तारीखी मुहम्मदी : भो० विहानिद खानों - पृष्ठ ४७२ , । बघेलों ने जौनपुर के शर्की इब्राहिम-शाह (४००-४०) का साथ किया तथा उसके सहायक के रूप में दिल्ली के तुगलकों और कालपी के मलिकजादा (१४१३ ई०) पर कई हमले किये (निजामी : मलिकजादा डायनैस्टी आरु कालपी : म० प्र० इति० परि० १९५७ पृ० ३) :

३. बीर० १३६-१७ :

अर्जुन ने अपनी पुत्री राजला नरहरि वघेल को दी थी, जिससे भैरवचन्द्र का जन्म हुआ । भैरवचन्द्र ने काशी, प्रयाग और गया आदि अनेक देशों को जीत कर शत्रुओं को समाप्त कर दिया तथा गहोरा को और भी सजाया और गङ्गा (गन्ता) नदी के पूर्वीय तट पर कलात्मक भवन बनवाये । पीछे वीरभानु ने इन भवनों को अधिक कला वैभव से समृद्ध किया^२ । बगोसर (बक्सर-विहार)

१. धीर० १।५१-५३ :

..... श्री भैरवचन्द्रं सुपुत्रेण पुत्रम् ।

सा राजलास्या महिषो सुशोला हरेर्नरादेः परनामहन्तुः ॥

पिता यदीयोऽर्जुन नामघेयो गङ्गासमोपस्थ गङ्गाधिराजः ।

नरादयेऽदाद्धरये यदेनां वेदोक्त-वैवाहिक-कर्मरोष्या ॥

येनार्जुनेनाप्लवतीयमूर्ध्ना धोकर्णतीर्थस्य नितान्तशीभाम् ।

पार्श्वजिनेनैव विद्याल-विन्ध्यप्रभाव-युक्तस्य शिवालस्य ॥'

२. धीर० १।५६ : 'बागों प्रयागं च गयां च जिन्वा'

तथा १।५७ ६० : भैरवचन्द्र के नाम जयदेव, भैरवदेव भी मिलते हैं ।

इसका विवाह बक्सर में हुआ था और वहाँ तक तथा जौनपुर, कर्णित्त, मिर्जापुर, अरैल और प्रयाग से गहोरा तक उत्तरी क्षेत्र इसके अधिकार में थे । इसके राज्य-विस्तार तथा छोटी सुस्तानों से संबंधों के लिए देखिये—

(१) नियामतउल्लाह : तारीखी खानजहान लोदी : ईलियट एण्ड हाउसन : जिल्द ५ : पृष्ठ ८९, ९३-९५

(२) तारीखे फरिस्ता : क्रिस्त : जिल्द १ : पृष्ठ ५६९ ७१ :

(३) जलबदाजोमी : लो : जिल्द १ पृष्ठ ४०८ : इन समस्त उल्लेखों में भैरवदेव को जौनपुर के शर्की सुलतान के पक्ष में बतलाया गया है । मुस्लिम लेखकों ने राजा का नाम 'भौद' या 'भेद' लिखा है, जिसका अनूदित रूप अंग्रेजों ने 'भीर' रखा है । यह फारसी लिपि के 'दे' और 'दे' अक्षरों की लिपि के भ्रम के कारण है । साथ ही देखिये— एकत्रा परिनिष्ट १ (क) — 'राजा भैरवदेव यानेहि आए' सं० १४७२ के साल' । यह सं० भैरवदेव के जन्म का १४१५ ई० हो सकता है, क्योंकि इनके पुत्र शालिवाहन का जन्म इसी एकत्रा में सं० १४९२ (१४३५ ई०) है तथा अन्य जमावन्दियों (परि० १-ग) में इनका राज्य सं० शक १९९४ (१४७२ ई०) है । उपर्युक्त मुस्लिम लेखक इनकी मृत्यु १४९५ ई० बतलाते हैं ।

देश के राजा सातन की पुत्री उद्धरण देवी भैदचन्द्र की पत्नी थी। उसके गर्भ से ज्येष्ठ पुत्र बाहरराय हुआ। यह पराक्रमी राजकुमार युवावस्था में दिवङ्गत हो गया और उसकी गन्धर्वदेवी आदि तीन गनियाँ उसके साथ सती हो गईं।^१

ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से शोकग्रस्त राजा ने छोटे पुत्र शालिवाहन को राज्य दिया। वीर हम्मीर चाहुवाण (चौहान) के वंशधर पूरणमल्ल ने अपनी पुत्री कल्याणदेवी शालिवाहन को व्याहो, जिससे वीरसिंह का जन्म हुआ।^२ शालिवाहन की अन्य रानी (अर्धदेवी) का पुत्र उदयकर्ण था। उसने पिता द्वारा प्रदत्त धन और राज्य का त्याग कर उत्कल देश की यात्रा की तथा वहाँ के गज-

१. वीर० १।६१ : 'ज्येष्ठसती बाहरराय आसीत्'। एकत्रा बान्धोगढ़ मे शालिवाहन को ज्येष्ठ तथा बाहरराय को चौथा पुत्र बतलाया गया है। अन्य जमाबन्दा (परि० १ ग०) मे भैददेव द्वारा विजयगिरि की विजय और बादसाह (पातसाहि) की चढ़ाई का भी उल्लेख है। इसमें भी बाहरराय छोटा भाई है। साथ ही देखिये वीर० १।६२ : हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह बक्सर उत्तर प्रदेश में उन्नाव जिला केन्द्र से ३४ मील दक्षिण पूर्व है। नियामतउल्ला (ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द ५, पृष्ठ ८९) ने लिखा है कि बक्सर में राय तिलोकचन्द बहलोल लोदी का प्रशासक था और भाठ के राजा (भैदचन्द्र) के साथ (१४८४-८८ ई० में) उसके सघर्ष हुए थे।' (वीर० क्रि ए० पृष्ठ २१-२२)।

२. वीर १।६७ :

'ततः कनीयांसमदन्नवीर्यं यमास्थया वाहनमामनन्ति ।
श्री शालि-पूर्वं तमसी विधाय राजानमापद् वसुदेव-भूतम् ॥'
तथा १।७१ :

'तस्मात्तनूजं लभते स्म राज्ञी कल्याणदेवी स्वकुल-प्रवृद्ध्यै ।'
और १।७२ :

'यस्याः पिता पूरणमल्लनामा ।

श्रीचाहुवाणान्वय-चक्रवर्ती हम्मीर-वीरावतारायमाणः ॥'

वीरसिंह का जन्म जमाबन्दियों में संवत् १५२४ (१४६७ ई०) बतलाया गया है (परि० १ क)। साथ ही देखिये—वीर० क्रिटि० एन० पृष्ठ १८ : डा० हीरानन्द शास्त्री ने लिखा है कि यह पूरणमल्ल रायसेन (मध्यप्रदेश का संभागीय केन्द्र) का वही पूरणमल्ल प्रतीत होता है, जो महोत्त राजपूत पुरविया सलहदी का पुत्र था। इसे 'भैया' भी लिखा गया है। (ई० डा० : ग्रन्थ ४- तारीखी खान-

वंशो राजा पुरुषोत्तम को पुत्री से ब्याह कर वहीं बस गया ।^१ वीरसिंह की रानी सुकुमारदेवी से ज्येष्ठ पुत्र वीरमानु और उनसे छोटे यामिनीमानु हुए । यामिनीमानु (अन्यत्र जमुनीमान) बड़े भाई (राजा वीरमानु) के आज्ञापालक थे ।^२ हैहय वंश की राजकन्या गोसाइती के साथ वीरमानु का विवाह हुआ ।^३

जहान लोदी पुष्ट (१९१ और ३९७ टि०) । यह शेरशाह द्वारा १५४३ ई० में मारा गया । इस समय वह अत्यन्त बूढ़ था । शालिवाहन का राज्यारम्भ १५९५ ई० है । साथ ही देखिये इ० ग० : ग्र० पृ० ६३ । शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता कर वीरमानु न शेरशाह का कालिजर और रीवा पर आक्रमण मोल लिया था, इसका यह सम्बन्ध भी एक वाग्ण प्रतीत होता है (एन० बी० राय० सक्सेमर्स आरु शेरशाह : १९३४ - पृ० ६) ।

१. वीर० १।८४-८५ :

‘तस्माद्यदेवी कुलपालिकासीत् - आस्तु, वीरं ततः सौदयकर्णपुत्रम् ।

यस्तातदसं धनदेशमिष्टमुदारचेनास्तुणवद् विहाय ।

आराध्यमीमानमगाजगत्या गजेन्द्रनाथं पुरुषोत्तमं च ॥

सैनार्चयित्वाऽर्पित-राज्यलक्ष्मीः समं तु तस्थौ जनित-प्रतापः ।

पत्युर्गजाया च विवाह्य पुत्री तपूत्कलं देशमलञ्चकार ॥’

श्री क. सीनाथ कृष्ण लेले ने काव्य के अन्त में अंग्रेजी सारांश देते समय ‘तस्माद्य देवी कुलपालिकासीत्’ पाठ स्वीकार कर इसे वीरसिंह की रानी बतलाकर उदयकर्ण को वीरसिंह का पुत्र लिखा है (दे० वीर० अंग० पृ० ६) । किन्तु एकत्रा (परि० १ क) में हमें विदित होता है कि उदयकर्ण शालिवाहन के चौथे पुत्र थे—‘जेंठे राजा वीरसिंहदेव’, बाबू नागमल्ल केठटी के, बाबू भीलमदेव लूकभट्टा के, उदैकर्ण ।’ इसकी पुष्टि अन्य जमाबन्दियों से भी होती है ।

२. वीर० १।८८ : ‘अथाऽस्य देवी सुकुमारदेवी ।’ तथा १।९० : ‘श्री वीरमानुं....’ १।९३ . ‘श्री वीरसिंहात् सुकुमारदेवी श्रीयामिनीभानुमयापदध्यम् ।’ तथा १।९५ ‘श्री यामिनीभानुरुदयकीतिभर्तुनिवेशे किल वर्तमानः ।’ एकत्रा (लगभग १७३५ ई०) ने यामिनीभानु (जमुनीमानदेव) को मेहर (जिला सतना) का बतलाया है । (परि० १ क) ।

३. वीर० १।९८ :

‘गोसाइतीत्याहितनामधेयाम्..... ।

श्री वीरमानुः परिणीतवास्तां वशम्बदां हैहयवंशजाताम् ॥’

यह बात यहाँ ध्यान रखने की है कि इस रानी की आगे कोई चर्चा नहीं होती । सम्भवतः इससे कोई सन्तान नहीं हुई, क्योंकि हम बीरमानु के एक ही पुत्र रामचन्द्र से परिचित हैं, जिसकी माता राजमती (या राममती) है ।^१ जमाबन्दियों में बीरमानु का जन्म सं० १५४३ (१४८६ ई०) है, जब कि रामचन्द्र का जन्म बीरमानु की ५० वर्ष की आयु में सं० १५९२ (१५३५ ई०) दत्तलाया गया है, जो ठीक प्रतीत होता है ।^२ काव्य में बीरमानु के जन्म के पश्चात् पितामह शालिवाहन की मृत्यु का विवरण है^३ । १४९९ ई० में हम शालिवाहन की सिकन्दर लोदी से युद्ध करते पाते हैं । अतः बीरमानु का जन्म जबत १४८६ ई० मान लेन में कोई आपत्ति नहीं हो सकती । इसी प्रकार हम बीरसिंह को १५९५ ई० में सिकन्दर लोदी के विरुद्ध बघेल सेनापाठ के रूप में पाते हैं,^४ अतः इससे २९ वर्ष पूर्व १४६७ ई० में जमाबन्दियों द्वारा सूचित बीरसिंह की जन्मतिथि भी स्वीकार की जानी चाहिए ।

बीरमानु के पिता बीरसिंह की युद्ध एवं सन्धि से सम्बद्ध नीतियों पर भी काव्य में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है । बीरसिंह न गहंरा से दक्षिण का और प्रस्थान कर विक्रमादित्य परिहार की राजधानी तरौ पर आक्रमण किया और

१. बीर० सर्ग ७ ।

२. एकत्रा (परि० १ क) 'राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५१२ के साल । सं० १९-८ के साल राज्याभिषेक । बेटा २ जेठे राजा बीरमद्र । राजा बीरमद्र का जन्म १६१० के साल का ।' तथा अन्य जमाबन्दियाँ (पार० १ ग) ।

इस संदर्भ में प्राप्त रामचन्द्र के राज्याभिषेक का संवत् १६०८ (१५५२ ई०) और बीरमद्र के जन्म का संवत् १६१ (१५५४ ई०) है । किन्तु काव्य के अनुसार बीरमद्र का जन्म बीरमानु के जीवनकाल में हुआ । अतः यही प्राप्त सं० १५०८ राज्याभिषेक का न होकर यौराज्याभिषेक का होना, जब बीरमानु ने रामचन्द्र को सारे अधिकार सौंप दिये थे ।

३. बीर० १:१९९ ।

४. नियामतउल्लाह : तारीखी खानजहान लोदी : ई० डा० ग्रन्थ ५ : पृष्ठ ९४-९५ : तारीखे फरिस्ता : ग्रन्थ : ग्रन्थ १ : पृष्ठ ५९६-७१ : पृ० ४६२ तथा अलबदाओनी (मुन्सखव उक्ततारीख) : लो : ग्रन्थ १ : पृष्ठ ४१७ ।

अधिकृत नगरी को बसाया ।^१ नरा से उसके आक्रमण को वास्ता मुन कर गढ़ा का शासक वहाँ से भाग गया । गढ़ा पर अधिकार कर नर्मदा में स्नान कर वीरसिंह नरो-पुरो को लौट आया ।^२ वीरसिंह के पूर्वजों ने दिल्ली के जागल्लक म्लेच्छ सम्राटो से सन्धि कर रखी थी, अतः वीरसिंह ने भी दिल्लीश्वर से सन्धि कर ली ।^३ वीरसिंह ने बान्धव नामक दुर्ग को नारायण नामक कुद राजा से

१. वीर २।४०-४८ :

‘तस्यायत दीर्घाविधि विधूय जिगाय तं विक्रम-भूमिपालम् ।’

२।४१-०६ :

‘ततो गहोरामिव देशपुक्ता जितां पुरं वीर्य नरोभिधानाम् ॥

स भासयामास वणिवायेन मनोरमां सर्वपदार्पभाजम् ॥

या कोट्टचक्रेण चर्वास्त दीर्घा श्रीवीरसिंहेन विधापितेन ।’

नरो एक एहाड़ी है, जो सतना से रोवा की ओर पक्की सड़क पर १० मील जाने पर दक्षिण की ओर सड़क से लगभग ३ मील दूर मिलती है । यहाँ प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष बतलाए जाते हैं । सड़क पर सज्जनपुर नामक एक पुराना कस्बा है, जो नरोपुरो कहलाता रहा होगा । नरो के परिहार इस समय पश्चिम की ओर गए होंगे । सम्भवतः नागोद-उंचेहरा (जिला सतना) के परिहार दक्षिण इसी विक्रमादित्य के वंशज हैं ।

२. वीर २।५६-५८ :

‘गढ़ापति जेनुमगाच्च वीर. ।’

नरो नगर्षामुपितं नृपेण यावन्नयज्ञेन जगर्ज सावत् ।

गढ़ापतिस्तस्य पुनः प्रयाणं श्रुत्वा दिशः सेवितवान् स भीतः ॥

पत्न्यौ गढ़ामाश्च पलायमाने

नर्मदाया, स्नात्वा जगाम स्व - नरोपुरीं सः ॥’

३. वीर २।६३ :

‘दिल्लीपुरी-स्वामिभिरस्त्य पूर्वं सन्धि प्रचक्रुः सवताप्रमत्तः ।

म्लेच्छाचिराजैरिति सोऽग्रमृद्ध्य दिल्लीपुरीशेन चकार सन्धिम् ॥’

गढ़ा (जिला जबलपुर) १६ वी सती के पूर्वार्ध में गोड़ सत्ता का प्रमुख केन्द्र और चौरागढ़ दुर्ग था । यहाँ का युवराज अमानदास पिता से विद्रोह कर वीरसिंह वघेल की शरण में आया । वीरसिंह ने उसे पुनर्वत् रखा और जब मुलतान सिक्न्दर लोदी की हाजिरी में गया, तब अमानदास को युवराज वीरमानु के संरक्षण में

भेद-नीति द्वारा छीन लिया। उसने वहाँ स्थित शत्रुओं को मार कर अपने लोग बसा दिये और स्वयं पत्नियों और पुत्रों सहित वहाँ निवास किया। उस समय जिन कुर्बंतियों ने उसका विरोध किया, उन्हें उसने अपने प्रधान (या सेनापति या दोनों) साहू के द्वारा ममलोक पहुँचा दिया^१। वीरसिंह ने

छोड़ गया। इस समय वीरभानु अल्पवयस्क था। (वीरभानु का जन्म १४८६ ई० है। अतः यह घटना १५०५ ई० के निकट की होगी।) बाद में अमानदास ने पिता की हत्या कर दी। गढ़ा के सरदारों ने यह समाचार वीरसिंह को भेजा, जो उस समय सिकन्दर लोदी के पास था। वीरसिंह सुलतान से छुट्टी लेकर गढ़ा पर बढ़ आया। अमानदास पहाड़ों में छिप गया। लौटते समय वह वीरसिंह से मिला और पिता कह कर रो कर समा माँगी। वीरसिंह ने गढ़ा का राज्य उसे शौटा दिया (अबुलफजल : अकबरनामा : ई० डा० : ग्रन्थ २ : कलकत्ता : १९५९ : पृष्ठ ३०-३३) इन विवरणों से दिल्लीसदर (सिकन्दर) से सन्धि और गढ़ा पर आक्रमण की काम्य की सूचनाओं की पुष्टि होती है। १४९६ ई० में हुसेन शर्की को हराने में शालिवाहन ने सिकन्दर की सहायता की थी, जिससे पूर्व-सन्धि की भी पुष्टि होती है। (देखिये — नियामतउल्लाह : ई० डा० : ग्रन्थ ५ पृष्ठ ९३-९५ तथा अन्य मुस्लिम लेख)।

• वीर० सर्ग २।५९-६१ :

‘श्री बान्धवाख्यं स ततश्च दुर्गं जग्राह भेदेन विनीत-विरवः ।
नारायणाख्यान्पतेः कुरुणा वितीर्ण-देशः पर-कौरवाय ॥
दुर्गं स तस्मिन् मुमुदे नृपालो वसन् सदारः समुत्तः ससैन्यः ।
तत्र स्थितं ये कुरवः कदाचित्तं कोपयाञ्चक्रुरतस्वयत्नम् ।
तान् सौजितीयन् कारितवान् यमस्य प्रधानसाह्वेन तथाज्ययोधैः ॥’
सर्ग २।६६ : ‘श्री बान्धवाख्यं जगृहे च दुर्गम् ।’

कटनी से बिलासपुर जाने वाली पूर्वी रेलवे के उमरिया स्टेशन से उत्तर की ओर रोवा मार्ग पर २० मील जाने पर पूर्व दिशा में बान्धव-गढ़ की पहाड़ी दिखती है। यह समुद्र तल से २६६४ फीट ऊँची है और २३°४१' उत्तरी अक्षांश तथा ८१°३' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। मध्य प्रदेश के गृहोल जिले में इसी नाम से एक तहसील है। रोवा के बपेल राजाओं की ‘बान्धवेरा’ उपाधि आज भी प्रयुक्त होती है। पुरातत्त्व की दृष्टि से यहाँ के अभ्नावशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं और

रतनपुर के राजा को जीत कर उससे कर लिया ।^१ उसने बहार और सहजोर

यह पर्याप्त समय तक बघेल राजधानी रहा है । परम्परा के अनुसार बघेलों के मूलपुरुष व्याघ्रदेव के पुत्र कर्णदेव के विवाह में सोमदत्त हैहय ने अपनी कन्या पद्मकुंवरि के साथ दहेज में बान्धवगढ़ दिया था । वीरभानुदय काव्य में हम पहली बार वीरसिंह को कुरुवंशियों से बान्धवगढ़ जीतते हुए पाते हैं । वीरसिंह का राज्यकाल अनुमानतः १५०५ से १५३० ई० तक है । किन्तु मुस्लिम लेखों (अब्दुल्ला-तारीखी दाऊदी-ई० डा० : ग्रन्थ ४-पृष्ठ १६२ : तथा अल बदाओनी-लो-ग्रन्थ १ पृ० ४१७) के अनुसार १४९८-१५०० ई० में सिकन्दर लोदी ने वीरसिंह के पिता बालिवाहन को बान्धवगढ़ में घेरा था । इन लेखों में यह दुर्ग इस क्षेत्र का सुदृढ़तम दुर्ग लिखा गया है । डा० हीरानन्द यादवी ने मुस्लिम लेखों को अस्वीकृत कर काव्य के आधार पर वीरसिंह को दुर्ग का प्रथम बघेल शासक माना है । पं० जानकी प्रसाद का कथन है कि वीरसिंह ने दुबारा दुर्ग पर अधिकार किया होगा, मुस्लिम लेख प्रामाणिक है । जानकी प्रसाद का मत ठीक प्रतीत होता है । साथ ही एक सम्भावना और प्रतीत होती है । बालिवाहन और भेदचन्द्र के राज्यकाल में भी वीरसिंह बघेल सेना का नेतृत्व करता था, जैसा पीछे लिखा जा चुका है । अतः सम्भव है, १४६८ ई० के पूर्व युवराज अवस्था में ही कभी वीरसिंह ने बान्धवगढ़ को कुरुवंशियों से छीना हो (वीर० क्रि० ए० पृ० २२ २३-२७) ।

१. वीर० २।१५ :

‘मदा नृपो रतनपुरस्य वर्ध्मन् शासनं मूर्धनि वैरसिंहम् ।
आदत्तवार्त्तं च तदा निजित्य करं च तस्माद् बहुधा भयार्त्तात् ॥’

यह रतनपुर मध्यप्रदेश के बिलासपुर से १६ मील उत्तर एक गाँव रतनपुर है । १० वीं शती में इसे रतनदेव कलचुरि ने बसाया था । यहाँ सैकड़ों मन्दिरों-तालाबों का अवशेष है । यहाँ १२ वीं शती के अन्तिम भाग तक तुम्माण शाखा के कलचुरियों का शासन ज्ञात है (डा. हि. ना. इ. पृष्ठ ८१९) संभवतः इन्हीं के वंशजों से बघेलों के संघर्ष हुए । काव्य में वीरभानु को पत्नी राजमती का पिता रतनपुर का दादूराज बतलाया गया है, जिसके साथ वीरभानु की शत्रुता थी । (वीर० ७।६८-७९) । इस समय रतनपुर की समृद्ध नगरी बतलाया गया है । यह संभव है कि

देश भी जीत लिया ।^१ उसने भर-वंशीय राजा को परास्त कर दिया ।^२ बम्बर

वीरसिंह द्वारा अधीनस्थ बनाया जाने वाला यही दादुराम ही तथा पोछे पुनः शत्रु हो गया हो । बघेलखण्ड के साहित्य में १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में पुनः वीरमद्र बघेल की रत्नपुर पर चढ़ाई की सूचना मिलती है । (देखिये आगे-अध्याय ५ क ।)

१. वीर० २।६६ : 'जितो डहारः सहजोरदेशः ।'

सीधी और सहडोल जिले में विन्ध्य पर्वत की कैमोर, केहुँजुआ और मेरुल नामक शृंखलाओं से घिरा हुआ क्षेत्र डहार कहलाता है । यह प्राचीन डहल-मण्डल का उत्तरी भाग और डहल शब्द का परिवर्तित रूप है । इस क्षेत्र में जजलपुर का उत्तरी क्षेत्र भी सम्मिलित है ।

सहजोर को शास्त्री जी ने वर्तमान सहडोल (कटनी-बिलासपुर रेलवे का स्टेशन) माना है (वीर० क्रि० ए० पृ० २४) ।

२. वीर० २।६७ : 'जितो मराणां नृपतिर्नुशंसः ।'

सतना के दक्षिणो-पश्चिमी क्षेत्रों में प्राचीन भारद्वाज-सत्ता के अनेक अवशेष उपलब्ध हैं, जिनमें प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप भरहुत भी है । इसका प्राचीन नाम भर (या भार-) मुक्ति होने का अनुमान है । इससे इस क्षेत्र में भर जाति के प्रचोन निवासी होने की सूचना मिलती है । बघेलों की सत्ता का आरंभ कालिंजर के भर-वंशीय शासकों के सेवकों के रूप में हुआ था (एकत्रा-परि० १ क तथा, बघेल० : श्लोक १२ : 'मरान्वये बीसलदेव एषितः...कलिंजरे ।'

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार जब चन्देलों और कलचुरियों की सत्ता टूटी, तब तेरहवीं शती में यमुना के दक्षिणी भाग में अनेक राजपूत जातिमें ने स्वतन्त्र सत्ताएँ स्थापित की, जिनमें भर-वंशीय क्षत्रिय भी थे (भाग ६ : पृष्ठ १४९ तथा ३४६) । महोबा और हमीरपुर (जिला बाँदा-उत्तर प्रदेश) की परम्पराओं से विदित होता है कि बुदेलखण्ड के पश्चिमोत्तर भाग में भर राजपूतों ने कम से कम १२५२ से १२८० ई० तक शासन किया (हबीबुल्ला : दि फाउण्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया : १९४५ : पृष्ठ १४२) । मिर्जापुर जिले के मुँदहार लोग अपने को भर राजाओं के वंशधर और सूर्यवंशीय राजपूत कहते हैं । देखिये—वसु : हिन्दी विश्वकोष : कलकत्ता : भाग १५ : पृ० ७२७-२८) ।

(बाबर मुगल) भी उससे भय खाता था । आगे चल कर काव्य के अन्तिम भाग में बतलाया गया है कि बाबर के साथ वीरसिंह का भ्रातृभाव था ।^१

(२) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त वीरभानूदय काव्य में ऐतिहासिक गवेषणा को आगे बढ़ाने वाले निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं :-

१—व्याघ्रपाद मुनि और भारद्वाज व्याघ्रपाद गोत्र : लगभग सभी वंशावलियों में प्राप्त होने वाले मूलपुरुष व्याघ्रदेव की वर्षा न करते हुए प्रस्तुत काव्य में बघेलों का भारद्वाज व्याघ्रपाद गोत्र बतलाया गया है, साथ ही बघेलों को व्याघ्रपाद मुनि के वंशज लिखा गया है ।^२

२—हुमायूँ : वीरसिंह का जिस प्रकार बाबर के साथ भ्रातृभाव था, उसी प्रकार वीरभानु का हुमायूँ के साथ था । वीरभानु के पौत्र (वीरभद्र) का जन्म होने पर दिल्लीश्वर यवनाधिनाथ मुद्गलेश हुमायूँ ने उपहार भेजे थे ।^३

१. वीर० १२।२२ :

‘श्री वीरसिंहस्य यथा वभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण ।’

तथा—२।६७ : ‘तस्माद् भियं प्राप स बहरोर्षि ।’

बाबरनामा के उल्लेखों के अनुसार १५२७ ई० में सीकरी से ५ कोस दूर कनवाहा के युद्ध में वीरसिंह ४००० घुड़सवारों के साथ बाबर के विरुद्ध राणा सांगा के पक्ष में लड़े थे । पीछे सन्धि हो गई और बाबर ने वीरसिंह को मानकार दिया । — ग्लो० बा०, रीवा-१९४८ पृष्ठ ३ तथा आई० न० पृ० ४०६ ।

२. वीर० ९।१३, १५, १९, २१, २८ :

३. वीर० १२।२०-२३ : वीरशाहसे पराजित हुमायूँ की सहायता वीरभानु बघेल ने की थी । विवरण के लिए देखिये (१) गुलबदन बेदम : हुमायूँ नामा (बेवरिज) पृष्ठ १३५-३६ : २७ जून १५३९ ई० की घटना— वीरभानु ने अरैल में हुमायूँ को नदी पार कराई और भूले सैनिकों के लिए बाजार लगवा दिया । (२) अत्किम : बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ : पृष्ठ १७४ : राजा परमान (वीरभानु) ने फरीद गौर और शाह मो० अफगन के बीच फँसे हुए हुमायूँ को आगे निकालने के लिए फरीद गौर से युद्ध किया । (३) जोहर : मेयायर्स आफ हुमायूँ : पृष्ठ १८—अरैलके राजा परवहान (वीरभानु) की सहायता स्वीकार की गई । (४) आ० रि० ६० : जिल्द २१ : पृष्ठ १०९ : असनी (उ० प्र०) और शेफा की प्रचलित बातों : उक्त मगदह में छूटी हुई हुमायूँ की एक बेगम को वीरभानु ने बहुत कह कर उसे शरण दी थी ।

३—सुलतान मुहम्मद अदली : सूर बंश का सुलतान मुहम्मदशाह आदिल (अदली) इब्राहीम सूर से परास्त होकर रामचन्द्र बघेल की शरण में आया । इस समय काव्य में रामचन्द्र युवराज है ।^१

४—तानसेन : जिन दिनों रामचन्द्र युवराज हो था, उसकी सभा में गायक तानसेन था । वह गान्धर्व-विद्या की प्रतिमूर्ति था । इस कलाकार की प्रत्येक ध्रुपद, प्रत्येक राग और तान पर रामचन्द्र ने उसे करोड़ों चन्द्रांकित टंका (स्वर्ण-मुद्राएँ) दान किये । तानसेन सभी भाषाओं में (सम्भवतः संस्कृत, हिंदी, फारसी) में बतुर था और समस्त विद्याओं का ज्ञाता था । ऐसा निर्दोष कला-मर्मज्ञ न कमो हुआ है, न उस समय था, न होगा । उसकी ध्रुपद के गीत रामचन्द्र के यश से मरे हुए थे ।^२

१. वीर० १०।१३ : स ईदिलिस्तं शरणामतोऽभूत् स्वयं सुरत्राण मुहम्म-
दादिः।' वीरमानु की मृत्यु १५५५ ई० में हुई और अदली १५५४ ई० में
आया था । इस प्रकार काव्य के उल्लेख की पुष्टि होती है । इस घटना
की खर्चा बनेक मुस्लिम लेखकों ने की है । (देखिये, अस्तिकन : बाबर
एण्ड हुमायूँ : भाग २ : पृष्ठ ४६४ । 'बहल्ले पन्ना किर बुनार गया ।'
तथा पृष्ठ ५०४ : 'मियां तानसेन ने अपने को (गीत-नृत्य में) अदली का
शिष्य स्वीकार किया है । (१५५४ ई० में तानसेन रामचन्द्र के पास
था) ।

२. वीर० १०।२६-३१ :

गान्धर्व-विद्यामय-देहभाजे मस्तानसेनाय कलाविदेष्टात् ।

रागं प्रतीह प्रतितानमेतत् प्रतिधुम् कोटि शशाङ्क-टङ्काः ॥

भूतो नविन्दन्नपि वर्तमानो न-तानसेनेन समो परेष्याम् ।

सामान्यतः भाववक्त्रि का मह वर्णन भावातिरेक से पूर्ण प्रतीत होता
है । किन्तु हम मुसलमान इतिहासकारों के लेखों में भी यही शङ्क पाते
हैं—(१) आई० पृष्ठ ६१२ : 'उसके समान गायक भारत में पिछले हजार
वर्षों में नहीं हुआ ।' तथा पृष्ठ ४७५-७६ : 'पाँचवें वर्ष (१५६१ ई०)
अलाल खां कुर्ची तानसेन को दरबार में आने की अनुमति प्राप्त करने
रामचन्द्र बघेल के पास गया ।' (२) अक० भाग २ पृष्ठ २७९-८० :
'इस वर्ष (१५६२ ई०) की घटनाओं में से एक थी तानसेन का दर-
बार में आना । वह पन्ना के राजा रामचन्द्र की सभा में दिन बिता
रहा था । राजा ने तानसेन को चलते समय बाँझ और बहुत सा धन
देकर उसे मुलाम बना लिया ।' (३) बदायूनी : ईलियट भाग ५ :

५—पुरुषोत्तम गजपति : छालिवाहन बघेल की एक रानी (अर्षदेवी) से उत्पन्न उदयकर्ण का विवाह उत्कल देश (उड़ीसा) के गजवंशीय नरेश पुरुषोत्तम की पुत्री के साथ हुआ था । हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह उड़ीसा के राजा कपिलेन्द्र (१४३५-६९) का पुत्र था । कपिलेन्द्र के काँची-विजय की घटनाएँ जगन्नाथ-मन्दिर (पुरी) की दीवारों पर चित्रित हैं ।^१ पुरुषोत्तम ने असमिया भाषा में नाममालिका और दीपिकाचन्द्र नामक ग्रन्थों की रचना की थी इनका अनुवाद माधव देव ने किया ।^२

६—राजा कीर्तिसिंह : यह गोरपुर या गौरनगर का राजा था । यह अरिष्टनेमि गोत्र का था । इसके पुत्र का नाम माधवसिंह और पुत्रवधू का पदार्थ दे था । राजा कीर्तिसिंह की पौत्री यशोदा थी, जो रामचन्द्र को ब्याही गई । यशोदा के माई का नाम रत्नसेन और रत्नसेन की पत्नी का रमावती था ।^३ रामचन्द्र का यौवराज्याभिषेक १५५२ ई० में हुआ ।^४ विवाह के पश्चात्

पृष्ठ ५३८ : 'यह रामचन्द्र शाही दरियादिली में बेमिसाल था । बहुत सी बीजों के साथ उसने मियाँ रत्नसेन गवैये को एक दिन में एक करोड़ जर (घोना) दिया । मियाँ राजा को छोड़ना नहीं चाहता था ।' (४) अहंगौरनामा (बेबरिज) १९०९ : पृष्ठ ४१३ : 'वर असल उसके सरीसा पाने वाला किसी वस्तु किसी जमाने में नहीं हुआ ।'

१. बीर क्रि० ए० पृष्ठ १७ । साथ ही देखिये बी० सी० मजूमदार : ओरीसा इन द सेकिंग : पृष्ठ २१३-१४ ।

२. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ १३४ : 'दीपिकाचन्द्र की पुष्पिका' ।

'पुरुषोत्तम मोर गजपति नाम ।

रचिली पयार डाकि बीला राम राम ॥'

तथा नाममालिका, छन्द ७ का अनुवाद—

'पुरुषोत्तम नामे नरेश्वर गजपति ।' साथ ही देखिये—प्रो० बी० के० बहशा : 'पुरुषोत्तम गजपति आफ ओरीसा इन अलों आसानीज लिटरेचर' : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अखिल भारतीय सम्मेलन के १२वें अधिवेशन १९४३-४४ में पठित निबन्ध, सम्पादक : अल्तेकर ।

३. बीर० सर्ग ९।९-१३, १८, २२, २६, ३१, ३४-३९, ४१-४२ : तथा सर्ग १२।१६-१८ देखिये तबकात-नासिरी (मिनहानुद्दीन-१९६० ई०) अनु० रेवटी : पृष्ठ ४८४-८८ : 'गंगा का सम्पूर्ण पश्चिमी प्रदेश, जिसमें जाजनगर, लखनावती, बंग, कामरुद और तिरहुत के इलाके थे, गौर कहलाता था ।'

४. एकत्रा (परि० : १-क) : सं० १५०८ : १ ।

सौम्य हो उसे युवराज पद दिया गया था ।^१ अतः विवाह १५५० ई० में मान सकते हैं । विवाह के समय यशोदा को विदा करनेवालों में रमावती का नाम नहीं है, किन्तु वीरभद्र का जन्मोत्सव मनानेवालों में उसका नाम आता है । अतः रत्नमेन यशोदा से छोटा प्रतीत होता है । उसका और रमावती का विवाह १५५० ई० के पश्चात् हुआ होगा । इसके अतिरिक्त कवि वीरभद्र के जन्मोत्सव के समय रत्नमेन के साथ नृप शब्द का भी प्रयोग करता है ।^२ इससे प्रतीत होता है कि १५५४ ई० के पूर्व रत्नसेन को युवराज पद प्रदान किया जा चुका था, क्योंकि कवि ने युवराज रामचन्द्र को भी नरेन्द्र आदि विशेषण दिये हैं ।^३

७—राघोश-राउत : यह वीरभानु का एक विद्वान् मन्त्री था ।^४ इसने कुमार रामचन्द्र को सम्पूर्ण शिक्षा दी और पुरस्कार-स्वरूप वह जागीरदार और दुर्गपति बनाया गया ।^५

८—रामचन्द्र (राजा) : यह कोई राजा था जो वीरभानु की फूसी का लड़का था ।^६ वीरसिंह का अन्तिम संस्कार कर प्रयाग से गहोरा लौटते समय यह वीरभानु के साथ रहता है ।^७ अमिषेक के समय यही छत्र-प्राप्ती बनता है ।^८

९—भगीरथ : यह यमुना के वज्रिणी तट पर कोटर गाँव में बसने वाला एक ब्राह्मण (सम्भवतः पंडा) था ।^९

१. वीर० ११४१

२. वीर० १०११८ :

‘नन्द चाकण्यं मुत्तं स्वदेते स्वसुनितामं नृप-रत्नमेनः ।

रमावती-वत्सलमया समेतः... ।’

३. वीर० १०११८ : ‘दिसी नरेन्द्रे सति रामचन्द्रे... ।’

४. वीर० ८१२, ५

५. वीर० ८१४४ : ‘विपमानगजान् गजान् पुनः पुनरस्मिं जवराजि-वाजिनः ।

पुपुवत् पृथिवीपतिस्तदा समदाद् दुर्गपतित्वमादृतः ॥

हीरानन्द शास्त्री के अनुसार बृन्देलखण्ड में ‘जुमौतिया ब्राह्मण

‘राउत’ बोले जाते हैं (वीर० क्रि० ए० पृ० १९) ।

६. वीर० ३१६, ३३ (‘—पैतृष्यसेय ।—’), ६०

७. सर्ग ३

८. सर्ग ५।१५ : ‘शुभ्रावपणेन च चामराम्यां तद्रामचन्द्रनितयेन विष्णुः ।’

९. सर्ग ४।३, ५ ।

१०—आटविक : रामचन्द्र की, मुगया में सहायता देने वाले ५ शवर आटविक बतलाए गए हैं, जो आदिवासी प्रतीत होते हैं। इनके नाम हैं—बघनक, सद्देव, मोर, जमानी और हरिकर्ण।^१

११—मल्लिनाथ उन्नाय : काव्य के अनुसार १५५०-१० ई० में उन्नाय कायस्थ गहोरा में समृद्ध जीवन बिता रहे थे। इनका वहाँ बहुत बड़ा धाग था। ये किन्हीं मल्लिनाथ के वंशज थे।^२ कवि माधव स्वयं कायस्थ (ऊरव्य) था^३, सम्भव है, वह भी इन्हीं कायस्थों में से कोई हो। इस काव्य की पाण्डुलिपि भी कृष्णदास और नाइ (उन्नाय) कायस्थ के पुत्र तुलसीदास ने तैयार की थी।^४

१२—गहोरा नगरी : उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में करवी से १४ मील पूर्व रैपुरा गाँव है। इसके दक्षिण जुड़ा हुआ गाँव गहोरा खास है, जो दो नदियों के बीच में है। इसके पूर्व नदी के दूसरे पार खेरवा गाँव है, जहाँ अभी तक प्राचीन महलों, मन्दिरों और धरों के अवशेष मिलते हैं। वास्तव में रैपुरा और खेरवा मिला कर प्राचीन गहोरा नामक बघेल राजधानी के स्मारक हैं। गहोरा के निकट गंगा, केवयी और धीरवती नदियाँ थीं, जो वर्तमान खेरवा के पास की गन्ता, केवई और धिरवा है। खेरवा के दो मील पश्चिम वाल्मीकि जो का आश्रम है, जिसके पास नैदारनाथ की प्रतिमा है। तीसरा पहाड़ और भी है, जिसे रामपुर का पहाड़ कहते हैं। सम्भवतः यही काव्य का शिलो-बन्ध है।^५

१. सर्ग ११।२३।

२. सर्ग २।२३ : 'श्रीमल्लिनाथान्वय-सम्भवानामुन्नाय-शब्द दधताम....।' तथा २।२८।

३. सर्ग १०।१।

४. सर्ग १२ के अन्त में पुष्पिका।

५. वीर० सर्ग २।८-९ :

'यस्याः समीपे प्रतिमानुहेषु कीवेरधण्डो-गिरिशाः जयन्ति ।'

कीवेर-नैदार-शिलोन्वयाद्याः प्रमान्ति यस्याः परितो महीधराः ।'

तथा २.२१-२२ : गङ्गा नदी यत्र चकास्ति ----- ।

या केवयी सूर्यमृताप्तसङ्गा प्रवर्धमानामृततोय-रम्या ।

बेणपदं धनुमिह समाऽऽस्ते सरस्वती-धीरवती-समेता ॥

देसिये वीर० क्रि० ए० पु० २०-२१ तथा ६० ग० भाग ६ पृष्ठ १८६ : गहोरा में एक 'रानी का छाया' कहलाता है, जिसकी काव्य में चर्चा हुई है—सर्ग १।२६-२०।

भीम के पुत्र राणिकुदेव को गहोरा का प्रथम अधिकारी बतलाया गया है।^१ जमाबन्दियों के अनुसार बीसल और भीम [अन्यत्र विसाल देव, भीमल देव, भीममल आदि] दो भाई कालिंजर के भर-वंशीय शासकों के सैनिक बने। इस समय गहोरा में लोघियों का शासन था। भीम ने लोघियों के मन्त्री तिवारी बाह्याण को आधा राज्य देने की लालच देकर फोड़ लिया और लोघी शासक को मार कर गहोरा को जीता तथा उसे कालिंजर में सम्मिलित कर लिया।^२ सम्भवतः राणिकुदेव प्रथम व्यक्ति था, जो गहोरा में स्वतंत्र रूप से बस गया। रीवा की परम्परा के अनुसार बघेल राजकुमार यशोपवीत संस्कार के समय गहोरा राज मोगा करता है।^३ सम्भवतः बघेलों के हाथ से गहोरा की अन्तिम रूप से छत्रसाल बुन्देले ने छीना। मुस्लिम लेखों में बघेल राज्य का नाम भाठ गहोरा मिलता है।^४ १५६६ ई० में जब कालिंजर रामचन्द्र बघेल के हाथ से अकबर के अधिकार में चला गया^५, तब से रामचन्द्र ने बान्धवगढ़ को राजधानी बना लिया होगा। इसके पूर्व लगभग ४०० वर्षों तक गहोरा बघेलों की राजधानी रहा।

१३-अलफ़पुर : बीरभानुदय काव्य के अनुसार यह गंगा-तट पर बसा हुआ नगर था। यहाँ बीरसिंह ने कुछ दिनों तक वास किया था^६। बीरभानु ने यहाँ पर बीरसिंह की अन्त्येष्टि क्रिया की थी^७ तथा अन्तिम दिनों में वे स्वयं यहीं रहते थे।^८ घालिवाहन के द्वारा यमुना-तट^९ पर और बीरम^{१०} एवं

१. बीर० १।१० : 'लम्बा गहोराम् ।'

२. एकत्रा तथा अन्य (पंरि० १ क, ग) ।

३. बीर० क्रि० ए० पृष्ठ २३-२४ ।

४. मिर्जागुद्दीन (१२६० ई० के निकट) :

तबकाठ-नासिरी (रैबर्ट) पृ० ७४३ :

'भाठ-गहोर, जिसका केन्द्र कालिंजर था कमरुद्दीन द्वारा १२४३ ई० में लूटा गया ।'

५. अक० : भाग २ : पृष्ठ ४९८-९९ ।

६. बीर० २।६२ : '..... रराज तिष्ठन् गङ्गा-तटस्थे नगरेऽप्यलके ।'

७. बीर० ३।१-२ । 'अन्त्येष्टि विधाति स्म..... ।'

: अथाऽऽकृत्ति स नगरात् गङ्गा-तीरं प्रतिष्ठितात् ।'

८. बीर० १।२।२९ : '..... उवाच गङ्गा-यमुनोपकण्ठम् ।'

निषेवितोऽत्र पुनरे सुतायैः..... ॥'

९. बीर० १।९९ : 'रवेः सुतायां, ततो जहाति स्म तनुं..... ।'

१०. बीर० १।४८ : 'जह्नु सुतामप्यप्यस्तत्याज देहं..... ।'

सिंहदेव^१ द्वारा त्रिवेणी में प्राण-त्याग करने का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि अलर्कपुर का उपयोग प्रायः बाघंक्षय बिताने के लिए ही होता था।

१४—शालिवाहनपुर : अलर्क से गहोरा के बीच में बीरमानु की यात्रा में शालिवाहनपुर नाम की बस्ती बतलाई गई है। यह शालिवाहन के नाम पर सम्भवतः बीरसिंह द्वारा बसायी गयी थी। इसमें ऊँचे भवन तथा समृद्ध बाजार थे^२ यही बीरसिंह द्वारा लगाया गया विशाल उद्यान था^३।

१५—कोटर-गुप्त-वाराणसी और कुमारहृद् सीर्थ : बीरमानु शालिवाहनपुर से (पश्चिम) चलकर यमुना तट पर अवस्थित कोटर सीर्थ पर पहुँचा था, वहाँ विष्णु शिव और सूर्य आदि की मूर्तियाँ थीं। यह गाँव यमुना तट पर बाँदा जिले में है। इसमें एक प्राचीन मण्डप और कई गुफाएँ हैं, एक में शिव की मूर्तियाँ भी हैं।^४

१. बीर० १।३४ : '.....श्री सिंहदेवः परमात्मदर्शी।

जहौ तमुं जल्लुमुता-जलौवे यमस्वसुर्वारिमिराप्तसङ्गे ॥'

यह अलर्क नगर ही त्रिवेणी तट का स्थान अरैल है (बीर० क्रि० ए ५० १३-२४)। सिकन्दरलोदी ने भैदचन्द्र के अधीनस्थ अरैल क्षेत्र को १४९४ ई० में लूटा था (नियामत उल्लाह : ई० डा० जिल्द ५ : पृष्ठ ९४) तथा बीरमानु को तत्कालीन मुस्लिम सेलकों ने अरिल या अरैल का राजा लिखा है। देखिये (१) गुलबदन बेगम : हुमायूँ-नामा : बेवरिज : पृष्ठ १०५ तथा जोहूर : मेयावर्ग आक हुमायूँ : पृष्ठ १८। ईलियट ने लिखा है कि राजा राम बघेल (१५५५-६२) ने अरैल के ब्राह्मणों को ३६० गाँव दान किये थे (मोट आन बीरसीज : सप्लीमेंटरी ग्लासरीज-संपादन बीम्स : भाग २ : पृष्ठ ५६)। १५९९ ई० में कालिजंद के बदले में अकबर ने रामचन्द्र को अरैल का परगना और प्रमाण की जामीन दी थी, जिसके अधीन तिरोहन (तरहार या रयोंथर तहसील, जिला रोवा) भी था (अल-बदायौनी : सी० भाग २ : पृष्ठ १२३)।

२. बीर० ३।८-९ : 'श्रीशालिवाहनपुरं महाजनवृतं पुरा।

अदर्शि युवराजेन प्रासादव्रज-शोभितम् ॥'

तथा ३।१०-१६ '---पितामहस्य नाम्नेदं वासितं नगरं पुरा।'

३. वही, ३।१७-५० तथा ३४ : 'वाटो सा बीरसिंहस्य।'

४. वही ४।१ : 'अथ प्रयातो बीरोर्यं कोटरं क्रमतोऽगमत्।

कालिन्दा : विष्णुशर्वादि-प्रतिमाभिरलङ्कितम् ॥'

कोटर से दक्षिण का क्षेत्र गुप्त-वाराणसी कहा जाता था । यहाँ अक्षयवट, मणिकर्णिका घाट और दुष्टिदेव की मूर्ति आदि पवित्र स्थल थे^१ । आगे चल कर कुमारहृद^२ नाम का सरोवर मिला था । उपर्युक्त रैपुरा गाँव से ७ मील पूर्व रामनगर नामक गाँव में एक मण्डप के साथ तालाब है, जो कुंवरहृद कहलाता है ।^३

यह कोटर गाँव मार्गसिंह बघेल (१६७१-९४ ई०) के राज्य की सीमा पर था ।^४

१६—सहृण्डा नगरी : काव्य में एक सहृण्डा नामक नगरी का भी उल्लेख है, जिसे जीतकर बीरमदेव ने वहाँ निवास किया था ।^५ यह दत्तिमा (म० प्र०) जिले के अन्तर्गत सेवड़ा गाँव है ।

१७—कर्ण तीर्थ : इस तीर्थ को शिव-मन्दिर से सुसज्जित करने वाले राजा अर्जुन ने, जो गढ़ का राजा था, नरहरि बघेल को अपनी पुत्री राजला प्रदान की थी^६ । यह स्थान गङ्गा के किनारे का वर्तमान कन्तिह है । अकबर के समय में इस कस्बे के पास हाथी पकड़े जाते थे । यहाँ एक किला भी था । यह इलाहाबाद की सरकार के अन्तर्गत था ।^७

१८—प्रदेश और जातियाँ : रामचन्द्र बघेल के युवराज होने पर बघेल राज्य की सीमा अन्तरावेद से कलिङ्ग, दक्षिणसागर और दूसरी ओर अमरकण्टक तक बढलाई गई है ।^८ यह अन्तरावेद स्पष्ट ही अन्तर्वेद (गङ्गा-यमुना के बीच का भू-भाग द्वाब -उ० प्र०) है और अमरकण्टक सहबोल जिला (म० प्र०) की दक्षिणी सीमा पर पहाड़ी है, जो नर्मदा और सोन नामक नदियों का उद्गम

तथा ४।१४-५२ (बीर० क्रि० ए० पृष्ठ २४-२५)

१. सर्ग ४।५३-५५ : 'कोटराद् दक्षिणामुर्वी' विन्ध्यपाद-विराजिताम् ।

गुप्तवाराणसीं प्रातुः..... ॥

यत्राक्षयवटोऽप्यस्ति यत्रास्ति मणिकर्णिका ।

दण्डपाणिः प्रभूर्यत्र यत्र दुष्टिविराजते ॥'

२. सर्ग ४।५८-५९ : 'गहोरा-गमनोत्क्रोशो कुमारहृदमाणतः ।'

३. बीर० : क्रि० ए० : पृ० २५ । ४. देखिये आगे अध्याय ४ (३)-

५. बीर० १।४४

६. बीर० १।५१-५३ :

७. ग्लोबलिन : अबुलफज्जकृत आइन-अकबरी : पृ० ३२०, ४८१ ।

८. बीर० १०।३ :

'कृत्वान्तरावेदमयो कलिङ्गं सीमेतरनामरकण्टकं च ।

आ-दक्षिणाम्भोनिधि यः प्रतापे रामः स राजाऽमरवद्वितीयः ॥'

स्पष्ट है। बीरमानु के द्वारा उज्जट देश की विजय का उल्लेख है, जिसकी जानकारी नहीं है।

इनके अतिरिक्त कवि ने परम्परात्मक अङ्ग, गौड़, मिथिला, गुर्जर और लङ्का तथा भारत देश के नामों के उल्लेख किये हैं।

साथ ही ग्लेच्छ, यवन, तुरष्क, मुद्गल आदि शब्द तत्कालीन मुस्लिम जातियों के लिए तथा पुलिन्द, भिल्ल, मल्ल, और शबर आदि शब्द अन्य जातियों के लिए प्रयुक्त किये हैं।^१

(३) तत्कालीन बघेलखंड का समाज एवं संस्कृति

बीरमानुष्य काव्य में ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्न होते हैं, जिनसे उस काल की बघेलखंड की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। यह काव्य १६ वीं शती के मध्य भाग में लिखा गया है, जब मुगल शासन देश में क्रमशः जड़ें जमा रहा था और मुसलमान शक्तियों में परस्पर तथा हिन्दू सत्ताधारियों के साथ संघर्ष चल रहे थे। तथापि यह कहा जा सकता है कि इस काल तक हिन्दू राज्यों की संस्कृति और सम्पदा पर मुसलिम प्रभाव नगण्य था, साथ ही प्राचीन धर्मशास्त्रों पर आधारित मानदंडों को परिवर्तित करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ था।

संस्कार

बघेलखण्ड जनपद में संस्कारों के रूपों में कोई अन्तर नहीं पड़ा था।

१. बीर- ५।९५८ : 'तेनोज्जटः सवुविनाशहेतोर्देषः.....।'।

२. वही, ९।२९ :

'यन्नाम्ना गुर्जरेशो गिरिविबरमगाद् दाग्निपात्याः पयोधि ।

पाश्चात्या भीतिमुक्तास्तुहिनगिरि-शिखा नौबरो गौडराजः ।'

९।३० : 'लङ्काया च विभीषणोऽप्युपिवृत्तो निद्रा-दरिद्रायते ।'

९।३१ : 'मल्ला भिल्लाः पुलिन्दा गिरिगहनचरा

अङ्ग-वङ्गाः कलिङ्गाः ।'

९।९ : 'सम्बन्धो मिथिलापतेः।'।

१२।४४ : 'आस्ते भूमरितम्.....।'।

१।३९ : 'न शेखे तेन धनुर्भूताः स्म ग्लेच्छाधिनायाः....।' तथा

२।६३ : ५।१४५ : ७।१५, २३

१।४४ : 'विगृहा रेजे यवनाधिपेन....।' तथा ३।५३ : १२।२० ।

४।४९ : 'तुरष्क-जलपिः....।'।

१२।२३ : 'हत्वाह छेद्येन स मुद्गलेषः ।'

११।३३ : 'शबरपरिवरादीत् ।'

राजघरानों और सम्पन्न घरों में संस्कारों के पालन अधिक व्यवस्थित रूप में होते थे। किसी रानी के (कम से कम प्रथम बार) गर्भवती होने पर पुंसवन आदि विधिर्पाई होती थीं।^१ गर्भ की पूर्णता के समय दोहद-पूति की जाती थी।^२ राजकुमार का जन्म होने पर राजा पुत्र का दर्शन करते थे।^३ पुत्र की उत्पत्ति पितृ-ऋण से मुक्ति मानी जाती थी।^४ इस समय विशेष उत्सव होते थे।^५ जातकर्म संस्कार के साथ नान्दीमुख श्राद्ध भी होता था।^६ राजा मुक्त रूप से दान^७ और संकल्प^८ करते थे। दान पाने वालों में ब्राह्मण, याचक, स्वजन, कुलबधुएँ, सेवक और अतिथि होते थे।^९ शिशु की माता के नैहुर में भी आनन्दोत्सव होते थे।^{१०} और अनेक स्थानों से उपहार आते थे।^{११} पुत्र-जन्म के पश्चात् नामकरण को विशेष महत्त्व दिया जाता था।^{१२}

१. बीर०, ७।७९ : '... पुंसवनादीनि कृत्वा कर्माणि निर्वृतः ।'
२. वही, ७।६५-६६ : 'सा पृष्टेत्यवदत् साध्वी दोहदं स्वस्य पूजितम् ।
कुशाङ्गो गर्भ-सम्पूर्णा गौरीव स्वल्पभूषणा ॥'
३. वही, ७।८५ । 'तस्मादुत्पाय तूर्णं नृपतिरपमनात् पुत्र-सन्दर्शनाय'
पश्यन् पुत्रं प्रहृष्टोऽभवदथ कुस्ते जातकर्मानवधम् ।'
४. वही, ७।८९ । 'राजा पूर्वर्णमुक्तः ... तेन पुत्रीदम्बेन ।'
५. वही, ७।८६ : 'शब्दायन्ते स्म वायानि ... ।' तथा ७।८१-८८ ।
६. वही, १२।८ : 'विधाय नान्दीमुखमागमोक्तम् ।'
तथा १।७४ : 'अथास्य चक्रे ... जातकर्म ।'
और १।९० : 'कृतजातकर्मा ... ।'
७. वही, ७।९१ : 'किमन्यत् स तथा दानं ददाति स्म सुतोद्भवै ।
याचकेभ्यो यथा हर्ष्यं देशे कोशे न शेषितम् ॥'
'हयान् गजान् काञ्चन-भूषणानि वासांसि रत्नानि च याचकेभ्यः ।
ददौ यथा येन न यावदायुः प्रायुः पुनस्तेर्षमश्न-प्रयासम् ॥'
८. बीर० ७।८५ : 'पुस्तं सङ्कल्पतोर्म विसृजति बहुलं वित्तमुद्दिश्य चानु ।'
९. बीर० ७।८९ :
'... द्विजेभ्यः ।
सर्वेभ्यो याचकेभ्यः स्वजनकुलबधू-किङ्कुरेभ्योऽतिथिभ्यः ।'
१०. सर्ग १२।१६ :
'यस्यैव गेहे नृपवीरभानोर्महोत्सवोऽमून्मुदितस्य भूयान्
तथाऽभवन्नाथवसिष्ठनाम्नो मातामहस्यापि सबल्लभस्य ॥'
११. सर्ग १२।२०-२१ ।
१२. सर्ग १।४७, ७६, ९० : ७।९२ : १२।१२ ।

अन्य संस्कारों में से चूडाकर्म की सूचना प्राप्त है।^१ उपनयन संस्कार का उल्लेख नहीं है, किन्तु यज्ञोपवीत पहने जाने की सूचना है।^२ विद्याभ्ययन की ओर कवि ने विशेष ध्यान दिया है।^३ राजकुमारों को शास्त्र के पूर्व शास्त्र-विद्या प्रदान की जाती थी।^४ सह्य और दाल के सञ्चालन के द्वयोः भेदों की चर्चा की गई है।^५ इसके अतिरिक्त धनुष-बाण के प्रयोग,^६ मत्स्यविद्या,^७ अश्वारोहण,^८ और हाथियों की वश में करने की शिक्षाएँ प्रमुख थीं।^९ इनके साथ चार विद्याएँ (आन्वीलिको, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति)^{१०} और पङ्कशन एवं राजनीति^{११} के अतिरिक्त सङ्गीत (गीत, वाद्य और नृत्य)^{१२} की भी शिक्षा दी जाती थी।

विवाह-यज्ञ वेद-विधि के साथ सम्पन्न होते थे।^{१३} यह राजकुमार का विवाह होने पर सार्वजनिक उत्सव बन जाता था।^{१४} विवाह स्थिर करते समय उष्य वंश के साथ गुणवती एवं रूपवती कन्या का विशेष विचार किया

१. सर्ग १।७८ :

‘कर्माणि चक्रे नितिलानि चूडाकर्मावयकादीनि यथाक्रमेण ।’

२. सर्ग १।१४ : ‘यज्ञोपवीतेन ।’

३. सर्ग १।८०, ९७ तथा सर्ग ८

४. सर्ग ८।९ :

‘गुहमिः प्रतिपादिताः क्रमात् परमर्षेष्ट स रामचन्द्रमाः ।

सहितः सितिपालबालकैः प्रथमं शस्त्रपरोचिताः क्रियाः ॥’

५. सर्ग ८।१० : ‘अग्निभेदानयमेकविंशतिः ।’

६. सर्ग ८-१० : ‘धनुरानमनेन ।’

७. सर्ग ८।१३-१७

८. सर्ग ८।१६ : ‘जवनेन नवेन वाजिना ।’

९. सर्ग ८।२७ : ‘स बलीकरणे मदभ्युता करिणां ।’

१०. सर्ग १।९७ : ‘आशाय विद्याः प्रयत्नवततः ।’

११. सर्ग ८।१८ :

‘गुरु-गौतम-शङ्कराशपाद् गुरु-पातञ्जल-साङ्ख्य-सम्प्रदायः ।’

तथा ८।१९ : ‘स नयं विनयादरोपिवत् ।’

१२. सर्ग ८।२९ : ‘स्वर-सप्तक-तालमूर्च्छिताः सह नृत्येन ।’

१३. सर्ग १।५२ : ‘वेदोक्त-वैवाहिक-कर्मरीत्या ।’

तथा १।८० :

‘विवाह-यज्ञं जनकोऽस्य सूतोरकारणद् वेद-विधानतोऽपि ।’

१४. सर्ग ९

जाता था ।^१ भारता रणवाहिनी को भीति सजती थी ।^२ कन्या पक्ष के पुरुष
भारत का सम्मान करते थे और स्त्रियाँ उपहास करती थीं ।^३ चौक पर सौ
सुधवाएँ रत्नदीप से वर को आरती उतारती थीं ।^४ कन्या का पिता भरपूर
दहेज देता था ।^५ मण्डप में गोत्रोच्चार होता था, जिसमें चारण लोग वंश और
कीर्ति का वर्णन करते थे । पुरोहित भी इसमें भाग लेते थे ।^६ विदा के पश्चात्
बधू का भाई उसे पहुँचाने जाता था ।^७ पति की नगरी में बधू की शोभा-
यात्रा निकलती थी, फिर बधू-प्रवेश होता था ।^८

विवाह के पश्चात् प्रायः शीघ्र ही तरुण राजकुमार को पुण्य निवास और
युवराज-पद प्रदान कर दिया जाता था ।^९ युवराज को क्रमशः सारे अधिकार
दे दिये जाते थे और राजा विरक्त-जीवन का अभ्यास करने लगता था ।^{१०}
अन्तिम समय में बघेल राजा त्रिबेणी-वास किया करते थे ।^{११} उनकी निवपन
आदि अन्त्येष्टि-क्रियामें प्रायः गङ्गा-तट पर ही होती थीं ।^{१२}

१. सर्ग ९।६-७ :

‘एतत्सुत्या यद्योदा सकलगुणवती कीर्तिसिंहस्य पौत्री ।

गौराक्ष्ये वत्तनाग्रे तुहिनगिरिसुतेवार्जस्त नाग्या धरायाम् ॥’

यद्योदया यद्यो-दया-सुरूप-सञ्चरित्रया ।

अरिष्टनेमि-सम्भवं पवित्रितं गुणैः कुलम् ॥’

२. सर्ग ९।१५-१६

३. सर्ग ९।२२ : ‘माघवेन बहुधा कृतमानो

निन्दितश्च हसितरवर्गधैः ।’

४. सर्ग ९।२४ : ‘साध्वी-शतैः प्रमुदितैः कृत-रत्नदीपः ।’

५. सर्ग ९।२६ : स्वापतेयमखिलं तनयार्थं मौक्तिकेभ्यदित माघवर्गिहः

६. धीर० ९।२७ : ‘—मण्डपे सन्निविष्टो ।’

गोत्राचार-अचारं रचयति मुदितो वंशसंसि-प्रवीणैः ॥’

तथा ९।३४ : विन्ध्य-दुर्ग-नरपाल-पुरोधा.—।’

७. सर्ग ९।३८ :

‘स च स्वमुः स्नेहमरेण राज्ञा सहैव मार्गे कतिचिद् दिनानि ।’

८. सर्ग ९।४० ।

९. सर्ग ९।४१-४६ : ‘पुत्रे दद्यामि युवराजपदं ततोऽहम् ।’

१०. सर्ग ९।४७ : ‘तनय-निहितमारो—’खितिपतिरय—’

विरलभवन-निष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत् ।’

११. सर्ग १२।२९ : ‘उवास गङ्गा-यमूनोपकण्ठम् ।’

१२. सर्ग १।१०० : ‘न च तनयनिवासे सुसुहृत्पौर्बमृत्युः ।’ तथा

राज्याभिषेक के उत्सव भी विविष्ट विधियों के साथ होते थे । प्राद्वण, जन-राजकुमार को सिंहासन पर बैठाकर मन्त्रोच्चारण करते हुए स्वर्णकलशों में भरे हुए तीर्थोदक से स्नान कराते थे ।^१ इस समय सूर्यनाद के साथ चारण शोग कीर्ति-गान करते थे ।^२ राजा दान करता था और बन्दिनों की मुक्ति के आदेश देता था ।^३ भद्रासन पर माला, घूर, चन्दन, ब्रह्मराग, रेशमी वस्त्र और रत्नजडित साफा से राजा का शृंगार किया जाता था ।^४ वह कुण्डल मोतियों के हार, अंगूठी, बेयूर और मणिमय कंकण भी धारण करता था ।^५

राजसभा में अधोनस्थ राजा और सामन्त तथा अन्य सभासद पहले से उप-स्थित रहते थे ।^६ राजा के सिंहासन पर बैठने पर प्रथम श्रेणी के सामन्त धुध-वर्ण का छत्र ग्रहण करते और खंवर हुलाते थे ।^७ राजाके चरणों के समीप नजर निछावर होती थी और हाथी, घोड़े और रत्न भेंट किये जाते थे ।^८ इसके पश्चात् राजा हाथी पर सवार होता था और राजधानी में उसकी शोभायात्रा^९

२।७३: 'भी वीरसिंहः... सन्त्यज्य देहं सुकृतिमयमसौ जह्नु कन्यापयस्सु ।'

और ३।१ : 'अथ तस्य स तातस्य विष्णुसामुभ्यमीमुपः ।'

अन्त्येष्टि विदधाति स्म वीरमानुर्ययाविधि ॥'

१. सर्ग ५।१ : 'राज्याभिषेकार्हुंगुहे निषण्णं सिंहासने तु क्रतुकर्मदक्षाः ।'

द्विजातयो राज्यधरं समन्त्रैस्तीर्थोदकीर्णैः स्नपयन्त्यय स्म ॥'

२. सर्ग ५।२-५ : 'तमस्तुवन् बोधकरास्तदानीम् ।'

३. सर्ग ५।१-७ :

'स संयतान् मोचयति स्म सर्वान् बध्मानपि त्याजयति स्म सद्यः ।'

४. वीर० सर्ग ५।९-१० :

'स्रग्वी स भद्रासनमन्यदेत्य सतो विविक्तालये-मध्यवर्ति ।'

घूपेन सौरभमयुजश्च केशान् कृत्वा वपुश्चन्दनलेप-धीभि ॥

उष्णीषमादत्त वरं द्विधाज्यं पट्टाम्बरेणाग्रि तथा च भङ्ग्या ॥'

५. सर्ग ५।१०-१३

६. सर्ग ५।१४ : 'अग्रात् सभा भूपतिमण्डितां तां सम्पूजनेः...'

७. सर्ग ५।१५ : 'शुभ्रातपत्रेण च चामराभ्याम्...'

८. सर्ग ५।१७ :

'तस्याहिघ्नमग्रा उपहीकृतानि हस्त्यस्वरत्नानि निवेदयन्त्यः ।'

९. सर्ग ५।२०

'आरुह्य राजा द्विरदंसहस्रैर्यसमातैः प्रचरन् पुरस्कृतः ।'

निकलती थी । अन्त में राजा कुलदेवता का विशेष पूजन करता था । बघेलखण्ड में कीबेरदेव का पूजन होता था ।^१

वर्ण

समाज में वर्ण-व्यवस्था पूर्ववत् प्रचलित थी । ब्राह्मणों का सम्मान था ।^२ जन्म, विवाह, अभियेक आदि संस्कारों और कृत्यों में ब्राह्मण पुरोहित का काम करते थे । वे श्रौत और स्मार्त विधियों के बेत्ता तथा नीतिज्ञ होते थे । उन्हें ज्योतिष का अच्छा ज्ञान रहता था । मन्त्री के पद पर भी इनकी नियुक्ति होती थी ।^३ क्षत्रिय युद्ध-प्रिय और संघर्षशैल थे । वे सबल और वीर होते थे तथा शास्त्र के साथ शास्त्र की भी शिक्षा ग्रहण करते थे । उनमें मृगया की रुचि विशेष थी ।^४ नगरों में समृद्ध लोग बसते थे । राजा बाजार सजवाता था ।^५ यह वैश्यों की स्थिति का द्योतक है ।

द्विजेतर जातियों के लोग भी द्विजों के अनुसार आचरण करते थे । कुछ लोग यज्ञोपवीत भी धारण करते थे ।^६ शबर आदि आदिवासी आखेट-प्रेमी होते थे

१. वीर. सर्ग ५।२२ : 'राजा महोरा-त्रिदशानयाऽऽर्चत् ।'

तथा ५।२३-२४ : 'कीबेरदेवं प्रथमं स राजा सम्पूज्य... ।'

अयं बघेलान्वय-वृद्धिहेतुः..... ॥'

२. सर्ग ५।६७ :

'गो-ब्राह्मणानां वधतो ग्रहान्ध न दुर्यतेऽद्वरणं मरणाम् ।'

तत्पूजया सर्वशुभानि नूनमिति प्रबुध्य द्विजगोहितोऽभूत् ॥'

३. सर्ग १।७४ : 'अयाऽस्य चक्रे सह जातकर्म, पुरोहितेन... ।'

सर्ग ५।१,२ : 'आमन्त्रमुक्तेद्विजवर्गमुष्यैः ।'

सर्ग ७।८५ : 'श्रौत-स्मार्त-द्विजेन्द्रैर्द्विजकृतिनिपुणैर्लौकिकज्ञानविज्ञैः ।'

सर्ग ९।२ :

'ज्योतिर्विदं धरणिदेवगण-प्रधानं..... ।'

आहूय भग्नकुशलो..... मन्त्रं सुतस्य सुविवाहकरं चकार ॥'

सर्ग ९।३ : 'विप्रोत्तमः प्रकृतिमण्डल-भग्यवर्ती ।'

४. सर्ग २।४२-४८ : ५।१३-१४, १८-१९ : ११।८, ११, १४ ।

५. सर्ग ३।१० : '.....मया यक्षपत्नं धनसम्पत्म् ।'

हृद्वचातोव रम्योऽस्मिन्..... ॥'

सर्ग २।२४ :

'तयोषिताः श्रीबहुला यथा स्युर्न तत्समृद्धिः कविनाऽपि वर्ग्या ।'

६. सर्ग ३।१५ : 'अद्विजातीनपि दलाभ्यानामसङ्गतिशोभनान् ।'

धृतोपवीतान् शुद्धमर्थं लौकिकाचारहेतुना ॥'

१२ व०

और धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे तथा मृगया करने में राजा की सहायता करते थे । इनके वस्त्र और शरीर काले रहते थे ।^१ वे हरिण पालते थे, सिर पर महूए की मञ्जरी धारण करते थे और राजा को भेंट में मांस लाकर देते थे ।^२ कुछ नाविक आदि के कार्य करते थे और शत्रुओं को पकड़ने में सहायता देते थे ।^३

वर्णाश्रम

यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य के अनुसार इस युग में आश्रम-व्यवस्था के चित्र नहीं मिलते । विद्याध्ययन की स्थिति मात्र को ब्रह्मचर्य अथवा मरणकाल में त्रिवेणीवास को वासिष्ठस्य या संन्यास का रूप नहीं दिया जा सकता । इतना अवश्य माना जायगा कि अन्तिम समय में गृहस्थांगी एवं विरह्य जीवन बिठाने की ओर रुचि शेष थी, क्योंकि हम धीरे-धीरे को इसी रूप में मोक्ष-प्राप्ति करते हुए पाते हैं ।^४

गृहस्थ-जीवन का महत्त्व अत्यधिक बढ़ चुका था, किन्तु इसे आदर्श रखने और शास्त्रानुकूल आचरण रखने की ओर अवश्य ध्यान था । राजा वर्णाश्रम की स्थापना करना अपना कर्तव्य समझते थे^५ तथा जितेन्द्रियता भी प्राप्त करते थे ।^६

१. वीर० सर्ग ११।११ : 'मृगयुकुलमुदञ्चव्यापवाणास्त्रजालं
शितिवसन-शरीरं दर्शयामासुरन्वैः ।'

२. सर्ग ११।१२ : 'अयमिह दासमांसोपायनं विभ्रदेष
प्रगुणहरिणकोद-व्यग्रहस्तः स पश्यात् ।
वनतटमधूकान् मञ्जरीं मूष्नि धृत्वा
कथयति मृगयायाः कौतुकं काननस्य ॥'

३. सर्ग २।१८ : 'विभ्राग्नि यन्नाटविकाः सकाण्डै-
र्धनुभिरनाञ्चितनाविकाश्च ।
वत्या विदग्धास्तद्वि-पण्डिता ये
कुर्वन्ति शत्रून्पि तत्र लभ्यान् ॥'

४. सर्ग १२।२८-४० ।

५. सर्ग १।१३ : 'वर्णाश्रमाणां गुरुरेष राजा
वर्णाश्रमान् स्थापयति स्व-धर्मं ।
स्वे स्वे चतुर्वर्गफलाप्तिहेतो
स्व-धर्मरक्षाहित-चित्तवृत्तिः ॥'

तथा सर्ग ६।११ ।

६. सर्ग ५।५० : 'काभादि-पट्वर्ग-जय-प्रतिष्ठम् ।'

वे धर्म और न्याय को प्रश्रय देने थे ।^१ लोक-कल्याण को दृष्टि से बाग लगवाते थे; सड़कें, ताज्जब और बावर्नियाँ निर्मित कराते थे;^२ लौकिक और पारलौकिक दोनों कल्याणों की साधना करने थे ।^३ ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण से मुक्त होना आवश्यक समझा जाता था ।^४ तीर्थ-स्थान, देव-पूजन, साधु-सम्मान, दान-आतिथ्य, पुराण-श्रवण, ब्रह्मयज्ञ, यन्त्र-निर्माण आदि का गृहस्थ-जीवन में महत्त्व था ।^५

दर्शन-प्राप्तना

वीरमानुष काय में पद्मदर्शन का महत्त्व सूचित होता है । रामचन्द्र को छात्रावस्थामें पद्मदर्शन पड़ाए जाते हैं ।^६ वीरमानु की त्रिवेणी-वास की अवस्थामें पद्मदर्शन के बेंग पण्डित उनके समोर आकर ज्ञानवर्षा करते हैं ।^७ वीरमानु अग्निम दिनों में ब्रह्म-चिन्तन करते हैं ।^८

इन काल में सामान्यतः सभी देवताओं के पूजन होते थे । वीरमानु कौटिल्य पर यमुना में स्नान कर सूर्य, गणेश, अग्नि, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और विष्णु की स्तुति करता है ।^९ वीरमानु को पत्नी रायमती गर्भवती अवस्थामें स्वप्न में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, चापन, परशुराम, राम, बलराम,

१. सर्ग २।१२३ : 'विचिन्ध चैतन् स करोति धर्मम् ।'

तथा २।११४ :

'स नीतिमाजामकरोच्च सङ्गं समासदां निर्मलमानसताम् ।'

और ५।१२१ : 'तस्मादयं न्यायपथानुवर्तते ।'

२. सर्ग ५।११८ : १।२५-२८ : २।२६-२७ :

३. सर्ग ५।८० : 'यद्वहिकामुष्मिकसमयोष्मं तत्कर्म कर्तव्यम् ।'

तथा ६।१४—'ऋणानि यानि प्रतिमान्ति लोके दैवार्थपिण्याणि च—' ।'

४. सर्ग ७।८६ : 'रात्रा पूर्वर्णमुक्ताः—' ।'

५. सर्ग ४ तथा सर्ग ५।४५ : 'निवर्ततेऽप्राप्नुवता न सम्यग्
वदन्ति तस्मान् स सतः समेति ।'

५।६३ : 'तस्माद्विद्यो सत्कृतिरस्ति नित्यम् ।'

५।६६ : 'स ब्रह्मयज्ञादिरतः शुभार्थी,
पुराण-वेद-स्मृति-मादरात्मा ।'

५।९८ : 'ममान् विवेकी नियमानुपास्ते
हरिप्रसूत्ये विविजेन्द्रियोऽयम् ।'

६. सर्ग ८।१८ ।

७. सर्ग १२।३६ ।

८. सर्ग १२।३० 'अचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।'

९. सर्ग ४।१-५६ ।

बुद्ध और कल्कि के दर्शन करती है ।^१ यह दशावतार की प्रतिष्ठा का द्योतक है । यम, नैर्ऋत्य, अग्नि, इन्द्र, वरुण वायु, कुबेर और शिव—ये आठों दिग्पाल गर्भ की रक्षा करते हैं ।^२ इसी स्वप्नावस्था में वीरमानु के पिता वीरसिंह भी पुत्रवधू को दर्शन देते हैं और वे सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—इन नवग्रहों की वन्दना करते हैं ।^३ स्वप्नवर्णन में रामचन्द्र को कल्कि का अवतार बतलाया गया है ।^४ गर्भ की रक्षा के लिए गङ्गा-यमुना, विष्णु के आयुध—शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म, मरीचि आदि मुनि, नारद, गरुड़, ब्रह्माद, बलि और भीष्म आदि प्रसिद्ध वैष्णव स्वप्न में रानी को दिखाई पड़ते हैं ।^५ इनके अतिरिक्त गहोरा में तथा सीर्यों में प्रतिष्ठित शिव, पार्वती, चण्डी, शीतला, कुबेर, यम, दुण्डि आदि देवमूर्तियों की सूचनाएँ भी काव्य में प्राप्त हैं ।^६ इस प्रकार हम इस काल में बघेलखण्ड में बहुदेवतावाद का सम्पूर्ण विस्तार पाते हैं ।

काव्य का दुष्टकोण भक्ति के अन्तर्गत समन्वय की स्थापना से प्रेरित है । कवि के अन्तःकरण में भगवान् कृष्ण की भूति प्रतिष्ठित है । वह वामुदेव की वन्दना से ही काव्यारम्भ करता है,^७ तथापि राम के प्रति उसके भाव अत्यन्त उच्च हैं ।^८ कथानायक वीरमानु विष्णु के ध्यान में मग्न रहा करता है,^९ अन्यत्र वही शिव का सेवक बतलाया गया है ।^{१०} शिव के अंशभूत और नन्दि-गणों के समबक्ष कीबेरदेव कथानायक के कुलदेवता हैं । उनकी विशाल प्रतिमा गहोरा की सीमा पर उपत्यका के ऊपर बने प्राकारयुक्त मठ में प्रतिष्ठित है ।

१. सर्ग ७।५-२० २. सर्ग ७।३८ ३. सर्ग ७।५१-५८

४. सर्ग ७।२३ : 'कल्किरूपो हरिः साक्षाद् दुष्टम्लेच्छापनुत्तये ।

मम निर्वर्तते कुक्षी मत्पुत्रत्वेन सृष्टिकृत् ॥'

तथा सर्ग ७।५९, ६२, ९४ ।

५. सर्ग ७।२६-३७

६. सर्ग १।२९ : २।८ : ४।५५, ६०

७. वीर० १।१ : 'अजोऽपि देवो वसुदेवजन्मा द्वितीयहोनीऽपि रमाबिहारी ।

जनादर्नः पालयिता जनानां कोऽपि श्रियं सन्तनुतां स ईशः ॥'

८. वही, १।७० :

'निमज्जतां प्राणमृतां समन्तात् पीतो भवाव्यो किल राम-शब्दः ।'

९. वही, ४।५२ : 'व्यरमत् प्रणमन्नेष वर्णयित्वेत्यमच्युतम् ।

एकाग्रचित्तस्तं पश्यन् हरिभक्तावरज्यत ॥'

१०. सर्ग ५।९९ : 'भवन्तुमावल्लभ-पादपद्म-सेवी.....।'

ये देव बघेल राजधानी के गौरव और वंश की सनातनी वृद्धि के हेतु है ।^१ एक ओर कवि गहोरा में राजलमल्ल देवी द्वारा तालाब पर प्रतिष्ठामित शीतला देवी को कुल की इष्टदेवी कहता है,^२ तो दूसरी ओर वह रामचन्द्र को म्लेच्छनाशक कल्कि के अवतार चतलाता है ।^३

समन्वय की इस वृत्ति के साथ-साथ कवि वासुदेव रूप में कृष्णावतार का विशेष रूप से और सामान्यतः वैष्णव धर्म का उपासक है । काव्य का सन्देश है कि सब कुछ छोड़ कर विष्णु की भक्ति करनी चाहिए ।^४ विष्णुलोक की प्राप्ति ही अन्तिम गति है । विष्णु में प्रविष्ट होने से (संसरण का) भय नहीं रहता ।^५

बीरभानुदय काव्य पर स्पष्टतः श्रीमद्भागवत का परिपूर्ण प्रभाव है । जगद्गुरु कृष्ण के बालचरित भी अद्भुत थे ।^६ जिन परमारमा के उदर में (प्रलयकाल में) सारे जगत् समाधिष्ट हो जाते हैं, उनकी गोवर्धन-धारण आदि वार्ताओं में आश्चर्य कैसा ?^७ शिशुराल आदि उन जगदीश का विरोध करके भी मुक्ति को प्राप्त हुए ।^८ प्राणी उन्हीं की माया में निमग्न रहते हैं ।^९

१. सर्ग ५।३० : 'शिवांसभूर्नन्दिगणेन तुल्यः ।'

तथा ५।२७ : 'उपस्यकाधिष्ठितमूर्तिरेव प्राकाररम्योच्च-मठ-प्रतिष्ठः ।'

५।२५ : 'यो मण्डनं नः कुल-राजधान्याः ।'

और ५।२४ : 'अयं बघेलाम्बयवृद्धिहेतुः सनातनी नो विदधातु वृद्धिम् ।'

२. सर्ग १।२९-३० 'या तः कुलस्फेकरी कृपानुः ।'

३. सर्ग ७।२३ ५९ : 'गुणसिन्धोर्हरेर्भागः कल्किरूपेण सिद्धयति ।'

४. सर्ग ७।४७ : 'विष्णुमन्त्रिविधातव्या विहाय सकलं विधिम् ।'

७।३१ : 'नास्ति लोके भयं किञ्चित् केवलं हरिकीर्तनम् ।'

७।३२ : 'अमृतं कलौ न पश्यामि नारायण-कथां विना ।'

मोक्षदं सुखदं नित्यं यद्गामिव..... ॥'

४।३९ : 'किशोरोऽस्तु मुदेऽस्माकं स्मरणेन हि तुष्यति ।'

२।५ : 'श्रीवासुदेव-स्मरण-प्रसन्नतः ।'

५. सर्ग १।६४ : 'विष्णु-प्रवेशे न पुनर्भयानि ।'

६. सर्ग ४।३४ : 'यस्याद्भुतानि वृत्तानि बालस्यापि जगद्गुरोः ।'

७. सर्ग ४।३६ : 'यस्योदरे विराजन्ति जयन्ति परमात्मनः ।'

तस्याप्या काङ्क्षमुता वार्ता पर्वतोद्धरणादिका ॥'

८. सर्ग ४।३३ : 'यं विरोध्यापि लोकेशं शिशुपालादि-भूमिपाः ।'

लेभिरे परमां मुक्तिं..... ।'

९. सर्ग ४।३७ :

'..... नरो मर्त्यैव मायया । न जहाति कुटुम्बाब्धिं मज्जयन्तं..... ।'

इसी कृष्ण रूपी अक्षय तट्य में कल्पशय के समय अन्य देव प्रवेश कर जाते हैं ।^१ वे वेदों, स्मृतिओं और पुराणों के सार हैं; उनके व्यक्त और अव्यक्त दोनों स्वरूप हैं । उनके स्मरण से समस्त पापों का नाश होता है ।^२

उपयुक्त सिद्धान्तों के साथ साथ वैष्णव मत में निश्चित मोक्ष के चार भेदों (साष्टि, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य) में से सायुज्य को सत्य माना गया है ।^३ इसके अतिरिक्त वैष्णव आचार-पद्धति के अनुरूप दीक्षा-ग्रहण पर विशेष दल दिया गया है तथा पञ्च संस्कार (जप, पुण्ड्र, नाम, माला, मन्त्र)^४ और नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन) के कुछ अङ्गों पर विशेष आग्रह है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है ।

यह स्मरणीय है कि १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध एवं मध्य में लगभग आधी शताब्दी से भागवत धर्म के महान उन्नायक स्वामी बलभार्गव और उनके पुत्रों एवं शिष्यों ने द्रव्याय के निश्चित अरैल संघ का अपना द्वार-केन्द्र बना रखा था । यही अरैल प्रस्तुत काव्य का अर्थ है, जो बपेलों का एक महत्वपूर्ण नगर बतलाया गया है । इसके अतिरिक्त बपेल-नरेशों के साथ अरैल के इन महात्माओं का सम्पर्क भी था ।

जन-जीवन

वीरभानुदय काव्य में जन-जीवन की कुछ ही श्रृंखला उपलब्ध है । सामान्यतः प्रजा राजा का अनुसरण करती थी । राजा से सम्बद्ध युद्धों और सत्सवों को सामूहिक रूप प्राप्त हो जाता था । राजा देवाल्यों, तालाबों और बाधलियों के निर्माण कराते थे तथा उद्यान लगवाते थे । ये वस्तुएँ तथा राजा द्वारा बनवाई हुई सड़कें और खोले हुए बाजार सार्वजनिक उपयोग की वस्तुएँ

१. सर्ग ४।४७ : 'एनमेव विशन्त्यस्ते सुराः कल्पशये सति । अक्षयोज्यं...' ।

२. सर्ग ४।५१ : 'कर्मसु क्रियमाणेषु...' स्मृतो दत्ते च महत्फलम् ।'

तथा ४।५२ : 'व्यक्तान्दक्तरूपेण साराय च नमो नमः ।'

३. सर्ग ३।१ :

'विष्णुसायुज्यमीयुषः ।' तथा २।७३ : 'श्रीशं सद्देवमीशं मिलितः...' ।

४. सर्ग ३।१३ : 'अदोक्षितानां लोकानां कर्मस्वनधिकारिताम् ।

दृष्ट्वा गोपाल-मन्त्राणां गृह्यालूनं समामृतः ॥'

३।१४ : 'गोपालमन्त्रदीक्षानिर्ध्वषुण्ड-विराजितान् ।'

३।१६ : 'गोपाल-भोग-भोज्येन कृतमोगान् कृपापयान् ।

स्मरतः कृष्णनामानि बल्यादोनि च वैष्णवान् ॥'

बन जाती थीं।^१ वाणिज्य की सुरक्षा की व्यवस्था होती थी^२ और सैनिक-शिबिरों के लिए भी बाजार खोले जाते थे।^३ इनमें विभिन्न देशों से प्राप्त बहुमूल्य वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं।^४ भूमि को खेती के योग्य बनाने के प्रयत्न होते थे।^५

कला के क्षेत्र में इस समय भवन-निर्माण की ओर विशेष रुचि दिखाई देती है। मेदचन्द्र, बीरसिंह, और बोरमानु ने उच्च कलात्मक भवनों के निर्माण कराये थे।^६ मल्लिनाथ उन्नाव के वंशजों के ऊँचे सचित्र भवन गहोरा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। भवनों पर पटाकाएँ फहराई जाती थीं।^७ पार्षत्य उपत्यकाओं पर मंदिर, मठ और दुर्ग भी बनते थे।^८

राज्य में सङ्गीत-कला का सम्मान था और ध्रुपद गायकी का विशेष विकास हो रहा था। ठानसेन के ध्रुपद गीतों की धूम थी। सङ्गीत की समाएँ प्रायः नित्य होती थीं।^९ उत्सवों में गणिकाओं के नृत्य भी होते थे।^{१०} राज-धानियों में गणिकाएँ और रूपाजीवाएँ बसती थीं, वे सैनिकों का मनोरञ्जन भी

१. बीर० सर्ग १।२५-२९ : २।२५-२८ : ५।११८

तथा सर्ग ३।६४ : 'वाटी सा बीरसिंहस्य.....।'

और सर्ग २।७ :

'स राजमानस मुवा गहोरा चतुर्दिशा राजित राजमार्गान् ।

प्रासादजातैर्जलितप्रसादैः ॥'

२. सर्ग ५।७८ : 'वणिक्पयान्—विधापयत्येष.....।'

५।१५० : 'तस्मादवी सार्धमुखप्रदासी तस्माद्रयो राजपया ह्वेष्टाः ।

तस्य सबन्ती पथिकप्रजानां स्वगेहवापीव तनोति शर्म ॥'

३. सर्ग १।६५ : 'नानादेशेषु जाठानि पश्य वस्तूनि बुद्धिमन् ।

अस्यापणेषु राजन्ति बहुमूल्यानि सम्प्रति ॥'

४. सर्ग ५।६८ ।

५. सर्ग १।५९-६० तथा २।७-१४ ।

६. बीर० सर्ग १।५९-६० तथा २।७-१४ ।

७. सर्ग २।३३ :

'उच्चैः पयोदा इव भान्ति यस्यां गृहाः सचित्रारचलकेतुमालाः ।'

८. सर्ग ५।२७, ३९ : 'अनेकदुर्गेषु यदेतदुर्गम्..... ।'

९. बीर० सर्ग १०।२६-३० : 'यस्य ध्रुवज्जीवति सर्वकालम् ।'

१०. सर्ग १।७५ : 'निर्घोषयामासुरनल्पबुद्धेर्गृहे च राज्ञः पदहानि मेघैः ।

मृदञ्जशब्दैर्ननुः सुमुख्यः सुनृतविज्ञाः किल वारनायः ॥'

करती थीं ।^१ अन्ध मनोरञ्जनों में मृगया^२, मल्लयुद्ध^३ एवं शुक-सारिका^४ आदि पक्षियों का पालना था । युद्ध के वाद्यों में राख, भेरी और ढबका थे ।^५ सज्जीत-सभाओं में मुदङ्ग, वेणु और वीणा का विशेष स्थान था । तूर्य, पटह और भेरी के भी उल्लेख हैं ।^६

काम्य-कला का राजा सम्मान करते थे । प्रस्तुत भूपाधित महाकाम्य स्वयं इसका उदाहरण है ।^७ अन्ध आदि उत्सवों पर कविता-पाठ होते थे ।^८ चारणों द्वारा कीर्ति गान^९ संभवतः हिन्दी काम्य के रूप में ही होते थे ।

नारियाँ भी सांस्कृतिक विकास में योग देती थीं । रानियाँ लोक-कल्याणार्थ तालाब, बावलो और देवालय निर्मित कराती थीं ।^{१०} पति और पिता के बीच युद्ध की स्थिति होने पर वे पति का पक्ष लेती थीं ।^{११} वे पतिव्रता, शीलवती और धर्मप्रवण होती थीं ।^{१२} स्नान करने और पीने के लिए वे गङ्गाजल का

१. सर्ग १।२०, ३० : 'बाराङ्गना यन..... क्रीडन्ति ।'

३।६६ : 'रूपाजोबाः स्म तन्वन्ति पटवेरमानि.... ॥'

तथा ३।६८ ।

२. सर्ग ११ ।

३. सर्ग ८।१३-१७ ।

४. सर्ग ५।८ ।

५. सर्ग २।३४ ।

'दम्बान भेरी रुबिरं पुरस्तात् कम्बुर्गभीरं च ननाद ढबका ।'

तथा २।४३ : 'ढबका जगजोभयतो गभीरं भृशं युयुत्सून् प्रतिदत्तहर्षा ।'

६. सर्ग १।७१ : ७।८६ : ततानि सुविराभ्यस्य घनानद्धानि मन्दिरे ।'

तथा ८।३१ : 'नखघातकलस्वनांकया परिरम्भैकभुजेन बल्लही ।'

हृदि रागवती निवेदिता रमणी राममरीरमद् गुणैः ॥'

७. सर्ग १२।४२ : 'जगति जयति काम्यं तस्य भूपाधयस्वात् ।'

८. सर्ग ७।८२ : 'नृत्यन्तर्कमासुरा सुकविता सम्मोदितपन्नुता ।'

९. सर्ग ९।२७ तथा ५।५ :

'तमस्तुवन् बोधकरास्तदानीं नानाविधैर्वृत्तद्युतैर्विनोताः ।'

१०. सर्ग १।२५-२९ ।

११. सर्ग ७।७० : 'मदीयः स पिता त्यक्तराजनीतिविजोयताम् ।'

१२. सर्ग १२।३ : 'पतिव्रतानां धुरि संस्थितायाः ।'

तथा सर्ग १।६५ :

'पत्न्योज्ज्वलान् प्रविश्य तिस्रोऽनुकूलाः धृतपास्त्रसाराः ।'

सपभोग करती थीं ।^१

सोमायाजाओं के समय नगर की कन्याएँ लाजा-मुष्क बरसाती थीं ।^२ हाटों और बाजारों में स्त्रियाँ शृङ्गार करके निकलती थीं । शृङ्गार में विशेषक (मुखचित्रण) भी होता था ।^३ वर को आरती सधवाएँ उतारती थीं ।^४ बारातियों को गीतों में गाली देने का भार भी नन पर ही था ।^५

राज्य-संघ

देश के अन्य भागों की भाँति धर्षेलक्ष्ण्ड में भी इस काल में राजा की सत्ता सर्वोपरि थी । राजा द्वारा नियुक्त प्रमुख अधिकारी के लिए काव्य में अनास्य, सचिव और मंत्री तीन शब्द प्राप्त होते हैं । गणेश राउत को सचिव और मंत्री दोनों ही कहा गया है ।^६ अतः सपर्युक्त तीनों शब्द पर्यायमात्र प्रतीत होते हैं । मन्त्री अनेक रखे जाते थे ।^७ ये राजा के हितैषी, धर्मार्य मत देने वाले, सजग, गुणवान् और स्मृतियों के ज्ञाता होते थे ।^८ राजा प्रायः

१. सर्ग १२।५ : 'न जाह्नवीवारि विहाय मस्याः

स्नानाय पानीयमभूत् कदापि ।

जलान्तरं प्राणमयेज्जि माञ्जात्

क्षणोऽपि धर्मावरणं विना च ॥'

२. सर्ग २।३६ : 'पीरात्मजाभिः कृतलाजदृष्टिः ।'

३. सर्ग २।५३ : 'मदीयहृद्दी मृगलोचनानां मञ्जोर-सङ्कार-रवेण रम्यः ।

जैह्वीयते मन्दगतिप्रसूनां लोकस्य हृद्दुःख-विरोधकानाम् ॥

४. सर्ग १।२४ ।

५. सर्ग १।२२ ।

६. वीर० ८।३ :

'...गणेश-राउतः । ...मन्त्रिणा, गणनामेति गणेषु योऽप्रतः ।'

८।४ । '...विलोक्य तं सचिवं ' ।' तथा ८।४३ 'सचिवं--' ।'

७. सर्ग ६।४१ : 'श्री वीरमानुरथ मन्त्रिगणैः समेतः ।'

८. सर्ग ५।५५ :

'अनात्मवर्गो नृपतेर्विकासो श्रियं पशं पुष्पति तद्वितैथो ।'

सर्ग ५।५६ :

'अनात्मवर्गः स्मृतिवेददृष्ट्या न लङ्घयन्ते पदवीम् ... ।

----- यथार्थवाद ----- प्रतिपन्नपुण्याः ॥'

सर्ग ५।७२ : '...तेज्रहिता इति स्युः ।'

तथा ५।११९ : '...स्मृतिवाक्यनिष्ठाः ।

प्रतिदिन इनसे राज्य-सम्बन्धी चर्चा करता था ।^१ मन्त्रणाएँ गुप्त रखी जाती थीं^२ और प्रमादो मन्त्रियों को हटा दिया जाता था ।^३

छोटे पदों के नाम काव्य में प्राप्त नहीं हैं । केवल सामूहिक शब्द 'भृत्य' और 'नियोगी' मिलते हैं । दुर्ग की रक्षा में कुलीन, सु-परीक्षित, सज्ज एवं शत्रु द्वारा अभेद्य मृत्यु नियुक्त किये जाते थे ।^४ भृत्य के सामान्य गुण थे राज्य की वृद्धि में सक्षम, राज्य-भर्त्ता, अप्रमत्त, कुल-परम्परा के पालक, राजा के हितदी एवं शुद्ध आचरण वाले होना ।^५ सफल भृत्यों और अनुकूल सामन्तों को सम्मानित एवं व्यवस्था का उल्लङ्घन करने वालों तथा प्रमादो एवं भ्रष्ट सामन्तों और भृत्यों को दण्डित किया जाता था ।^६

१. सर्ग ५।७० : 'निरन्तरं यस्य समामु चर्चा राज्यस्थिरत्वाय भवत्यसौपा ।
द्वेषं च रागं च भयं च मुक्त्वा प्रस्तूयमाना सचिवैरदुष्टैः ॥'

२. सर्ग ५।१०६ : 'मन्त्रं करोति प्रतिवासरं सः.....
जातोऽभवत् कैरपि नैव मन्त्रः.... ॥'

३. सर्ग ५।११६ : '...नृपतिः प्रमत्तानमात्यवर्गानिवमन्यते स्म ।'

४. सर्ग ५।४९ :

'रसात्मनस्तेन विभीतिनाऽपि मौलैः कृता ते न भवन्ति जातु ।
भेद्या रिपूणा इविर्गैर्महर्षैः शीलं प्रमाणं कुलमन्त्रः चास्ति ॥'

५।४८ : दुर्गे... हितं विभिः पालयते स भृत्यैः ।'

५. सर्ग ५।५४ :

'नियोगिनस्ते विधिषु प्रयुक्तास्तेन स्व-चिह्नं दधति स्म येऽमी ।
वृद्धिः समा राज्यपदस्य भवता जिष्णोरिवात्यक्त-कुलक्रमादथ ॥'

६. बीर० सर्ग ५।१४८ :

'प्रभुः स सर्वाधिकृतान् परीक्ष्य प्रसाददण्डो विदधाति विद्वान् ।'

तथा ५।१४२ :

'कार्य-व्यवस्थाहति-सम्प्रवृत्ति-नियोगिभिः शिष्टपदं बहद्भिः ।
राज्यं विपर्यस्तमयं विलोक्य यथोचितं दण्डमघादमीयाम् ॥'

सर्ग ५।१४० :

'उत्कोषभाजां चतुरत्वभाजा नृपेण हृत्स्वरव-हिरण्यजातम् ।
उदारलक्ष्येण गृहीतमासीद्..... ॥'

सर्ग ५।१४४ :

'सामन्तलोकानपि दण्डयित्वा..... ।
तेषामनीतिं भजतां च भूम्या स्वभूमि-देशस्य समर्थकोऽभूत् ॥'

दुर्ग, हाथी, घोड़े, ऊँट और पैदल योद्धा ये सैन्य-शक्ति के अङ्ग होते थे ।^१ घोड़े प्रायः वनायु देश के अच्छे समझे जाते थे^२ और हाथी विन्ध्य पर्वत के ।^३ घोड़ों के लिए शुद्ध पौष्टिक माना जाता था ।^४ राजधानी में अश्वशालाएँ और गजशालाएँ निर्मित की जाती थी ।^५ शिविरों में सैनिकों को मनोरञ्जन की छूट रहती थी ।^६ सामन्तों को अपनी सेनाएँ होती थी, जो युद्ध के समय राजा के उपयोग में आती थी ।^७ गुप्तचरों की सूचनाओं के आधार पर आक्रमण किये जाते थे ।^८ युद्धों में तलवार के साथ-साथ धनुष-बाण का भी प्रयोग किया जाता था ।^९ रथों के प्रयोग की भी सूचना प्राप्त होती है ।^{१०}

१. सर्ग ५।३९ :

‘अनेकदुर्गेषु यदेकदुर्गं तदाश्रितं पत्तनमावसन् सः ।

न शत्रुभीतिं मनसाऽथ वञ्चयत्..... ॥’

सर्ग ५।४८-४९, ११६ : ‘अगम्य-दुर्गस्थित-शत्रुवृन्दम् ।’

सर्ग ५।८१ : ‘गर्जश्च भूमिः स्थिरतामुपैति ।’

सर्ग ५।९५ : ‘अश्वैर्हि भूपैर्विजिता परोर्वी ।’

सर्ग ३।७२-७९ : ‘उष्ट्रा भरान् प्रसूताः ।’

सर्ग २।१७ : ‘पदातयो यत्र विराजमानाः ।’

२. सर्ग २।१५ : ‘वनायु-देशपाः.... ।’

३. सर्ग ६।३९ : ‘विन्ध्याद्रिप्रभवास्तदीय-करिणः ।’

४. सर्ग ३।७१ : ‘तुरङ्गा बलसङ्गस्य भुञ्जते स्म गुडादिकम् ।

यद् भक्षणाद् भवेत् क्षिप्रमोषां श्रमसंशयः ॥’

५. सर्ग २।१४ : ‘यथाश्वशालाः सुतरां विशालाः ।’

६. सर्ग ३।६६-७०

७. सर्ग ५।६१ :

‘संसेवने दत्तहृदः समस्तान् सामन्तलोकानपि भानयन् सः ।

तद्-भूपरिराम-विबृद्धराग्यैस्तैः सैन्यकोशैरपि बद्धितोऽभूत् ॥’

८. सर्ग ५।१०२ : ‘चारासिभिर्मण्डलमोसतेऽश्वी ।’

सर्ग ५।१०३ : ‘स्वेषां परेषां निखिलं चरित्रं.... ।

अबोधि चारैः प्रहितैः नृपालः ॥’

सर्ग ५।१५१ : ‘— शक्तिभयं तेषु निशम्य चारैः ।

उच्छिन्नवास्तान्..... ॥’

९. सर्ग ८।७-१२ : ‘शरवृष्टिर्न वृथाऽभवत्ततः ।’

१०. सर्ग ३।७२ : ‘शुष्ठु रिङ्गन् यताङ्गयः ।’

कोश की वृद्धि के लिए राजा सदान, सेती और वाणिज्य की सुविधाओं को और ध्यान देता था ।^१ अग्यायी सामन्तों और भ्रष्ट भूत्यों को भूमि और घन छोन कर तथा कर-सङ्ग्रह द्वारा राज्य और कोश की वृद्धि की जाती थी ।^२ व्यय का अनुमान पहले कर लिया जाता था और उसे आय के अनुरूप रखा जाता था ।^३ इस प्रकार आय और व्यय का संतुलन रखा जाता था ।^४ राजा अन्य कार्यों के साथ-साथ आय-व्यय का स्वयं निरोक्षण भी करता था ।^५ वह साम, दान, दण्ड और भेद का यथावश्यक प्रयोग करता था ।^६ ब्राह्मणों को दण्ड नहीं

१. श्लोक ५।७४ : 'कोशेऽपि दण्डेऽप्यभवत्सयनः ।'

सर्ग ५।७५ : 'कोशेन राज्यं दृढतामुपैति ।'

सर्ग ५।६८ :

'कृष्टा परीता च निवासिता च सितिर्नृपाणां दशना फलाय ।'

सर्ग ५।७८ : 'वणिक्पथान् कोशविवृद्धि-हेतोः ।'

सर्ग ५।८१ : 'सनिश्च राजाऽस्वद-कामधेनुः ।'

२. सर्ग ५।१४४ तथा ५।८५ :

'आयोचितं साधु करोति पूर्णं व्ययं नृपाणां कर-सङ्ग्रहोत्कः ।'

३. सर्ग ५।५९ : 'दैनन्दिनाय व्यय-वर्षकोऽयं..... ।'

सर्ग ६।४० ।

'वर्षे मेऽस्ति कियान् वरो व्यय इयानित्यादि सञ्चिन्तयन् ।'

सर्ग ६।१५ :

'राजा यथा रक्षति भूमिमेता तथैव भूमिस्तनुतेऽस्य वृद्धिम् ।'

अर्धैर्गजैराकर-रत्नदानैः कृष्टा मिरीत्या फलवृद्धिमत्या ॥'

४. सर्ग १।४३ : 'आयानुरूपं व्ययमेव कुर्वन् ।'

५. सर्ग ५।८९, ९३ :

'श्रमुः स्वयं यावदिदं न पश्येत्तावन्न सम्यक् फलयोगिकार्यम् ।'

६. सर्ग ५।१४५, १४९ :

'सामाध्यापायेषु नृपः प्रयुङ्क्ते येनैव साध्या रिपवस्तमेव ।'

सर्ग ६।२९ : 'सामादेशं सुतीतेः ।'

सर्ग ६।१८ : 'द्रागु दण्डयन् दण्डपातैः ।'

सर्ग ६।५ :

'अकारि कृत्यं स्वमवाप्य रन्ध्रं रिपुर्व्यभेदि स्वमगोपि चैतत् ।'

दिया जाता था, वे गाय की भाँति अवध्य होते थे ।^१ प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रखा जाता था ।^२

काव्य में नीति-शास्त्रों के आधार पर शक्ति-त्रय^३ (प्रभु, मन्त्र और उत्साह), षड्गुण^४ (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्रव्य और आश्रय) तथा सप्ताङ्ग नीति^५ (स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और बल) के उपयोगों का उल्लेख किया गया है । इनके अतिरिक्त आशु क्रिया,^६ और शून्याहीनता^७ भी राज्य वर्द्धि के लिए आवश्यक गुण बतलाये गए हैं । इन सूचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में प्राचीन धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रों का राज्यतन्त्र में पूर्ण अवलम्बन लिया जाता था ।

१. सर्ग ५।६७

२. सर्ग ५।१०९-११०; ११३, १२६ : 'तस्मात् प्रजारब्जन् एव सक्तः ।'

३. सर्ग ५।१३१ : 'शक्तित्रय-सद्विवेकः ।' तथा सर्ग ५।१५१

४. सर्ग ५।१३१ : 'स षड्गुणानामुपयोगविज्ञः ।'

५. सर्ग ५।४६ : 'तथा न सप्ताङ्ग-विचारनिष्ठः ।'

सर्ग ५।७१, ८८ : 'राज्यस्य सप्तस्वपि सावधानः, सोऽङ्गेषु...।'

६. सर्ग ५।४२ : 'क्रियाशुकारी...संसाधयति प्रहृष्टः ।'

७. सर्ग ५।९४ : 'अयं वितन्त्रः...।'

सर्ग ५।१४६ : 'राज्यस्य वैरी स यतः प्रमादः ।'

लघु काव्य

(१) प्रशस्तिकाव्य : रामचन्द्रयशः-प्रबन्धः

(क) परिचय

१९४६ ई० में प्राच्यवाणी से 'रामचन्द्र-यशः—प्रबन्धः' नाम से एक संस्कृत ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है।^१ इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल में सुरक्षित है।^२ हरप्रसाद शास्त्री ने सोसायटी के संस्कृत ग्रन्थों की सूची में इस पाण्डुलिपि की खर्चा की है।^३ बीकानेर महाराज के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की दूसरी पाण्डुलिपि की सूचना भी प्राप्त है।^४ प्राच्यवाणी से ग्रन्थ के प्रकाशन के समय सम्पादक डा० जतीन्द्र विमल चौधुरी को बीकानेर को पाण्डुलिपि निरोधनाथ नहीं मिल सकी थी।^५ अतः यहाँ पर हमारे विचार का आधार प्राच्यवाणी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ ही है। यह आठ पृष्ठों का है। प्रारम्भ में डा० चौधुरी की भंगेजी भूमिका है।

ग्रन्थ के अन्त की पुष्पिका सूचित करती है कि कवि का नाम गोविन्द भट्ट था और उसे 'अकबरी कालिदास' को उपाधि प्राप्त थी।^६ यह उपाधि

१. दि रामचन्द्र-यशः—प्रबन्ध आक गोविन्द भट्ट एलिमस अकबरोम कालिदास : (चौधुरी) : प्राच्यवाणी : ३, फेडरेशन स्ट्रीट : कलकत्ता : १९४६।

२. क्रमाङ्क ३१०९।

३. कैटलाग आफ संस्कृत मेन्सुक्रिप्ट्स : जिस्ड ४ : कलकत्ता १९२३ : पृष्ठ ८५ : क्रमाङ्क ८२६९—देशी कामज-देवनागरीलिपि-आकार १० “-३” पृष्ठ-सङ्ख्या १८-प्रत्येक पंक्ति पर यन्त्र-तन्त्र त्रुटिपूर्ण लेखन।

४. केटे० बीकानेरः पृष्ठ २४७ क्रमाङ्क ५२२।

५. राम० प्र० भंगेजी भूमिका।

६. अज्ञे, पृष्ठ ८ : 'इत्यकबरो-कालिदास-कवि-श्रीगोविन्दभट्ट-विरचित-श्री महाराजाधिराज-रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः समाप्तः।' नन्दन नामक व्यक्ति ने यह पाण्डुलिपि लिखी थी ('इदं पुस्तकं लिखितं नन्दनेन।')

कवि को मुगल बादशाह अकबर (१५५६-१६०५ ई०) का समकालीन सिद्ध करती है। सुमापित-सङ्ग्रहों में अकबर को लिखित कर लिखे गए इस कवि के अनेक श्लोक उल्लेख हैं^१, जो उक्त समकालीनता का पौषण करते हैं। अकबर का जन्म १५४२ ई० में हुआ था। उसने प्रौढ जीवन में सुस्थिर राज्य-काल में ही कवियों और विद्वानों को इस प्रकार की उपाधियाँ प्रदान की होंगी। अकबरी कालिदास की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् कभी गोविन्द भट्ट ने यह ग्रन्थ लिखा होगा। अतः अनुमानतः इस ग्रन्थ की रचना १५८० ई० के पश्चात् कभी हुई होगी, जैसा कि डा० चौबरी ने भी भूमिका में अनुमान प्रस्तुत किया है।

भूमिका के अनुसार ग्रन्थ महाराजाधिराज रामचन्द्र की प्रशस्ति है। यह रामचन्द्र अन्तःसाक्ष के अनुसार बघेल है और बीरसिंह तथा बीरमानु का वंशवर्धन है। ग्रन्थ में बीरभद्र नाम भी आता है^२, जो बघेलसंग्रह के शासक रामचन्द्र बघेल का पुत्र है। अतः यही बघेल (१५५५-९२ ई०) इस प्रशस्ति का लक्ष्य है। इस प्रकार ग्रन्थ की रचना की तिथि १५७० और १५९२ ई० के बीच है। कृष्णमाचारियर ने भूल से इस ग्रन्थ को बीकानेर के राजा की प्रशस्ति माना है।^३

“अकबरी (अकबरी) कालिदास” का एक श्लोक “दलपति-गृहिणी” को लिखित कर लिखा हुआ प्राप्त है।^४ १५६४ ई० में अकबर के सेनापति आसफ खाँ से लड़ते-लड़ते मरनेवाली रानी दुर्गावती दलपतिशाह गौड़ राजा की विधवा रानी थी। यह चौरागढ़ (गढ़ा-कटंगा-जिला जबलपुर) की शासिका

रचनाकाल या लिपिकाल नहीं दिया गया है। साथ ही देखिये डा० हार्दत्तगर्मा : ‘दि मूक्तिमुन्दर आफ मुन्दरदेव : ओ ज० : जनवरी, १९३६ : अकबरी कालिदास।’

१. पद्यवेणी० : ५३ ‘हुमाऊ-कुल-तिलकमणे’ तथा १३८, १६८ : पद्यामृत० ८९, ९७ ‘पद्य० २९।२७ : सूक्ति० १५८ : ... ‘बीर एवं कामुकम्बे-दकबर’ ।’ तथा १७४-‘जलाल-सोणिपाल’ (अकबर का नाम जलालुद्दीन भी था) : रसिक० १४।२९।
२. राम० प्र० पृष्ठ ४ : ‘बीरसिंहकुल-धुरन्धर बीरमानु-महोपति-वंश-करीर-कीरक राम जय ।’ तथा ‘बीरभद्र-सुरद्रुम’ और पृ० ८ : ‘प्रभु-रामबघेलमहं कलये ।’
३. हि० कला० सं० लिट्० : पृष्ठ २७४ : परि० १९९।
४. पद्यवेणी० ७९—‘दलपति-गृहिणि त्वद्यज्ञः-----’।

थी । बघेलखण्ड और इस गौड़ राज्य में निकट सम्पर्क था ।^१ अतः गोविन्द भट्ट ने दुर्गावती पर ही सप्तश्लोक लिखा है । इससे प्रतीत होता है कि गोविन्द की काव्य-कला १५६० ई० तक प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी । इससे गोविन्द भट्ट की जन्म तिथि १५३० ई० के निकट मानी जा सकती है तथा सोलहवीं शती का सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध उसका काव्य-काल माना जा सकता है ।

गोविन्द भट्ट ने एक स्थान पर किसी गुर्जरेंद्र की प्रशस्ति भी लिखी है ।^२ इन प्रशस्तियों से इतना ही ज्ञात होता है कि गोविन्द भट्ट अनेक राजसभाओं में पहुँचा था । उसने अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ लिखी हैं, जो मुभापित सङ्ग्रहों में प्राप्त हैं । अतः भक्ति-ग्रन्थ में यह किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध नहीं प्रतीत होता, तथापि यह किसी ज्वालामुखी या जालपा देवी का विशेष उपासक था ।^३

मुभापित-सङ्ग्रहों में प्राप्त मुक्तकों के अतिरिक्त उसके ग्रन्थों में से एक स्तुति-ग्रन्थ का पता चलता है, जो ज्वालामुखी देवी के सम्बन्ध में है ।^४ एक पद्य-मुक्तावली नामक ग्रन्थ भी गोविन्द भट्ट कृत बतलाया जाता है ।^५ इससे अधिक कवि के जीवन और कृतियों पर जानकारी प्रकाश में नहीं आई ।

१. अबुलफजल : अकबरनामा : ई० डा० : खिल्द २ : कलकत्ता : १९५९ पृष्ठ ३०-३३ ।

२. पद्यवेणी० : श्लोक ७७ : 'विस्फार्य ध्योमगज्जा...गुर्जरेंद्र ... ।'
तथा सूक्ति० : श्लोक ८० : यहाँ 'काविलेंद्र' शब्द है ।

३. पद्यवेणी० : श्लोक ३७ : '...अम्ब ज्वालामुखि... ।'
श्लोक ४६ : '...कनकच्छत्रमम्बायाः... ।'
श्लोक ४७ : '...देवि दुये... ।'
श्लोक ३८ : 'धोमगज्जालप्य पुष्पश्चरण... ।'

४. ए० डैस० की० : सूची क्रमांक ५६४८ : ज्वालामुखी (काष्ठा) देवी की स्तुति-७५ श्लोक : लिपिक गंगाधर : अन्त में अकबर के प्रति ६ श्लोक-इति अकबरी-कबरी-विलास-कुसुमीभवत्-पद्यान् गङ्गाधरोऽलिखदिमान्... ।' साथ ही देखिये-कृष्णमाचारिअर : हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३९० बी : परिच्छेद ३७३ ए० टिप्पणी) हरदत्त शर्मा ने भूल से अनुमान लगाया है कि गङ्गाधर अकबरी कालिदास का नाम होगा ।

५. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३८८ : परि० ३७३ ।

ऐतिहासिक तथ्य

रामचन्द्र यशः उदय में रामचन्द्र बघेल से सम्बद्ध कुछ ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है। कवि के वर्णन के अनुसार रामचन्द्र ने अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, कर्णाटक, चोल, उड्डा और लाट आदि देशों को कम्पित कर सागर तट तक राज्य का विस्तार किया था। यह वर्णन केवल परम्परात्मक प्रशस्ति प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के सङ्केत भी हैं रामचन्द्र ने किसी मराठा नरेश से कर लिया था तथा करहाटक के राजा को क्षुकाया था।^१

रामचन्द्र बघेल ने १५५५ ई० में इब्राहीमशाह सूर को परास्त किया था। इस घटना को मुस्लिम लेखकों ने पर्याप्त गृह्यत्व दिया है।^२ गोविन्दमट्ट ने प्रस्तुत लघु ग्रन्थ में चार बार इस घटना की ओर संकेत किया है। यहाँ इब्राहीम का नाम तीन बार 'बाराहिमनूप' और चौथी बार 'इबराहिम' दिया गया है। इस उल्लेख में यह भी स्पष्ट है कि इब्राहीम सूर के साथ साथ उसकी बेगम भी बन्दी बनाई गई थी।^३ अन्यत्र प्राप्त एक दशोक में आक्रामक 'काविलेन्द्र' को 'बघेल' द्वारा परास्त किये जाने की सूचना है।^४ कृष्णनाचरियर ने अक्षर की ही काविलेन्द्र लिखा है।^५ यह मत तर्कसम्मत नहीं प्रतीत

१. राम० प्र० : पृष्ठ ७ : 'मरहट्ट-महीपति-दत्त-करम् ।

करहाटक-भूपति-नित्य-नतम् ॥'

२. श्रुत-बदाओनी : (अनु०—सी) : भाग १ : पृष्ठ ५४९-४४, ५५३-५४, तथा अस्किन : बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ : पृष्ठ ५०१ तथा ४९४ ।

३. राम० प्र० पृ० २ : '(वारा) हिमनूपदारापहरणसार... ' ।

'कारागृहदूत-बाराहिमनूप राम' 'अय जय साहि-बाराहिम-श्रीठ... ।'

तथा पृ० ६ :

'विलुण्ठितेवराहिम-प्रचण्डसाहिवस्तमा-कचप्रपञ्चमल्लिका-सदचिता-इन्द्रि-पल्लव ।'

४. 'बेलामुल्लङ्घ्य हेला-दलित-धरणिभृद्-वाहिनी-कोटि-पूरे-

रदवेस्तत्-काविलेन्द्र-प्रबल-जलनिधिः प्लादनायोज्ज्वलमे ।

स्यान्मन्ना मेदिनीयं प्रबल-भुजबल-श्रीठ-चञ्चत्-प्रताप-

ज्वालाभिः सन्ततं-चेद्वहति न बढवा-वीतिहोत्रो बघेलः ॥'

(पद्यामृत० ७२ : सु० हा०-६७ : सूक्ति० १२१ : पद्यवेणो० ६६)

५. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ सं० ३९० बी-परि० ३७३-ए ।

१३ य०

होता । अकबर से परास्त हो कर रामचन्द्र को सन्धि करने पड़ी थी ।^१ दूसरी ओर गोविन्दमठ एक ही समय में अकबर और रामचन्द्र दोनों का कृपाराज था । अकबर पर रामचन्द्र की विजय की हास्यास्पद कल्पना यह नहीं प्रस्तुत कर सकता था । मूरवंश के बादशाह अरुगान थे । उन्हें काबुली (काबिलेन्द्र) कहा जा सकता है । अतः यह काबिलेन्द्र भी इशाहीममूर ही है । उसके पूर्व आदिलशाह मूर 'अदली' भी रामचन्द्र की धारण में आया था ।^२ प्रस्तुत काव्य में रामचन्द्र को सम्भवतः इसी अर्थ में 'पारसीक' राजा द्वारा वन्दित कहा गया है ।^३ काव्य में 'साहालम' और 'सिलेमेन्द्र' नाम भी आते हैं ।^४ सम्भवतः वे सुलतान सलोम के लिये प्रयुक्त हुए हैं । इनके अतिरिक्त रामचन्द्र ने किसी परिहार राजा और नारायण परमार को भी परास्त किया था ।^५ किसी दुर्ग देश के राजा से उसने कर लिया था ।^६ इनके अतिरिक्त रामचन्द्र के वैयक्तिक गुणों की ओर भी काव्य में अनेक संकेत हैं—जैसे वह यामलमन्त्र और गीत, नृत्य, भरत-नाट्य आदि जानता था; क्रीड़ा और कला का प्रेमी था ।^७

(ख) भाव व्यञ्जना और कला-सौन्दर्य

रामचन्द्र-महः प्रबन्ध में विविध छन्दोयोजना की गई है । इसमें १० अक्षरा छन्दों के अतिरिक्त बीच-बीच में ८ प्रबन्ध हैं । प्रथम प्रबन्ध में ८, ८ मात्राओं की यति के साथ दोष-पद-योजना है । कहीं नगण और यगण तथा कहीं सगण और दो गुरु हैं । यति के साथ तुकान्तता और लयबद्धता का ध्यान रखा गया है ।^८ दूसरे प्रबन्ध में सविण्णी की लय पर सम्पूर्ण प्रबन्ध केवल

१. अक० भाग २ पृष्ठ २८१-८३ । २. वही ।

३. राम० प्र० पृष्ठ ४ : 'पारसीक-महीपति-वन्दित ।'

४. राम० प्र०, पृष्ठ ३ : 'श्री सुरिनाम-साहालम....' तथा 'सिलेमेन्द्र-भूमीन्द्र—' ।

५. वही, पृष्ठ २ : 'नतपरिहारावनिवृत्ति-नारायणपरमार....'

६. वही, पृष्ठ ७ : 'करदान-दरिद्रित-दुर्गनृप....'

७. वही, पृष्ठ ४ : 'यामलोदितमन्त्रविदग्रज....' ।

एवं 'चिल्लोविलास-हृतदिलीपतिप्रभृति-हस्तोद्य-हास-जलवे ।'

तथा पृ० ५ : 'भरत-गदित-बहु-नृत्यक्रम-बुध.....' ॥

८. 'जय जय राम, स्तिथिर राम-प्रतिकृति-राम प्रतिनिधि-राम प्रतिभट-साम-स्वनि-रसकाम स्फुरदभिराम प्रतिनव-वाम....' 'मङ्गलालय पर शृङ्गारनिलय वङ्गाधिप-बृहदङ्गावनिप कलिङ्गा....' ।

रगण में है ।^१ तीसरा प्रबन्ध ११ अक्षरों में (र, म, स, ल, ग) यति देकर चलता है, किन्तु इसमें अनेक स्वयं पर यति-मङ्गल है और कहीं कहीं गद्यवत् प्रयोग है ।^२ चौथे प्रबन्ध में ४ सगणों के साथ २ गुरु चलते हैं ।^३ पाँचवें प्रबन्ध में तगण और भगण के साथ एक लघु देकर ७-७ अक्षरों के चरणों का प्रयोग चलता है ।^४ छठे प्रबन्ध में प्रमाणिका छन्द (ज, र, ल, ग,) का प्रयोग किया गया है ।^५ सातवें प्रबन्ध में एक पंक्ति का टेक (ध्रुव) देकर तोटक छन्द का प्रयोग है ।^६ प्रकाशित पुस्तक में इस छोटक प्रबन्ध के अन्तर्गत श्लोकों को सङ्ख्या दे दी गई है, जिसको आवश्यकता नहीं थी । अन्त में तीन पंक्तियों का आठवाँ प्रबन्ध है, जिसमें लघु अक्षरों के साथ सन्धिगो को लय-वृत्तना निश्चित है ।^७ प्रस्तुत मङ्गल्य का बन्धन कवि ने इन प्रबन्धों में नहीं माना है । अतः उक्त समस्त छन्द दण्डकजातीय कहे जा सकते हैं । ये सभी शब्दविशालक अक्षर काम्य हैं ।

डा० चौधरी ने इस पद-योजना के मन्वन्ध में लिखा है कि 'यह न तो गद्य है, न पद्य और न इसे चम्पू ही कह सकते हैं । इसका सम्पूर्ण गद्य भी पद्य है, फिर भी यति और विराम को कठिनाइयाँ आती हैं । अतः यह समग्र रूप से विधिवत् पद्य नहीं रह जाता । तो भी इसे पद्य-बन्धन ही कहा जायगा । यह दीर्घ-समास-युक्त लयवद्ध गेय-शैली भारत में मुस्लिम शासन के समय विकसित हुई जान पड़ती है ।'^८

१. '..... वीरमानु-समा-मण्डलाखण्ड-वंश-स्फुर-सौर-कलोलिनी-वल्लभ-प्रौढ-राका-सुधा-मूर्ति-विम्ब-प्रलम्ब-.....।'
२. 'रामचन्द्र-वधेल-मुरन्दर, कामकोटि-भनोहर-विग्रह।'
३. 'पुपुतर-मुजउट-जिउकरिकुम्भ द्रुतवर-कविकुल-नवनिधि-कुम्भ ।
द्विजकुल-सरसिज-विकसन-हिम्भ-सुमणि-किरणमर-मधुर-विजुम्भ ॥'
४. 'वीरारण-प्रमव ह्रीरानिराम-रद घोरारविन्द-सरणे'... '।' (यहाँ 'वीरारण' शब्द वीरमानु के अर्थ में है ।)
५. '.... 'वीरविह-भूमिपाल-वक्रवंश-दुर्धसिन्धुनाथ-पर्वशर्वरो कलत्र-विम्ब
वीरमानुमेदिनोन्द्र-चक्रवाल-भोलिरल-गोत्र-पुण्डरीक-.....।'
६. 'अतिसुन्दर-गुणमन्दिरनिन्दुमुखी-मदनम् ।
मदनारि-जटाविधु-चारुगुणें गुणि-घातक-चक्र मवोन-धनम् ।
धनसार-गटोरज-लिप्त-तनुं तनुमव्य-निबद्ध-लसप्रञ्जरम् ॥'
७. 'जय जय चण्डिकानाथ-लालाट-रत्नस्यलो-चण्ड-विनाविरञ्जित-
कीलच्छट-.....।'
८. यही, अंपेजी मुमिका : पृष्ठ ८ ।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, गोविन्द भट्ट बारमटी वृत्ति से युक्त, ओज गुण से पूर्ण, दीर्घ-समास-युक्त शैली स्वीकार कर वीर या रौद्र रस से भरी हुई कविता के क्षेत्र में अधिक सफल हुआ है। उसकी यह शैली रामचन्द्र-प्रबन्ध में क्रमबद्ध रूप से विकसित हुई है। इस शैली में चारणों द्वारा प्रयुक्त लय-बद्धता के भी दर्शन होते हैं और धातुसिद्ध पाण्डित्य के भी। इस रचना-शैली पर हिन्दी के वीरगाथा-युग का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत काव्य के दीर्घ प्रबन्धों में रस-निष्पत्ति, ध्वनि या व्यञ्जकता का कवि ने ध्यान नहीं रखा। इसके साथ ही यह मानना होगा कि इस कवि का पाण्डित्य और उसकी पद-योजना को 'लय' में बाँधने की शक्ति सचमुच प्रबल है। इस क्षेत्र में उसे अपने बाल का अजेय कवि मानना ही होगा। डा० चौधुरी ने उचित ही लिखा है कि अकबरी सभा के तत्कालीन श्रेष्ठ संस्कृत कवि को लेखनी से निःसृत इस प्रबन्ध में स्वभावतः अप्रतिम कला और सौन्दर्य है।^१ प्रबन्ध के श्लोकों में कुछ भाव-व्यञ्जनाएँ इस प्रकार हैं—

रामचन्द्र की दृष्टि कामधेनु है और वह शीघ्र ही अभिलाषाएँ पूर्ण कर देती है; मुक्ताहारों से सजी हुई रमनियाँ, मदमाते हाथी, काम्बोज देश के सबेग घोड़े, महल या भूमि— कौन सी ऐसी वस्तु है, जो नहीं मिल जाती ?^२

अरी गौरी मुन। बोल रम्भा, क्या कह रही है ? आ, सोने की नदी में क्रीड़ा कर ब्रह्मानन्द लें। अरी भोली, यह सोने की नदी कैसी है, किधर बह रही है ? अच्छा तो तू नहीं जानती ? राजा वीरभानु के वंश के उन्नायक (रामचन्द्र) के प्रताप की ज्वाला की उष्णता से गल कर स्वर्णचल धारा के रूप में बह निकला है।^३

१. राम० प्र० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ८

२. वही, श्लोक ७ (तथा पद्यवेणी, श्लोक १०५) :

'मुक्तालङ्कारवत्यः कुवलयनयनाः कुम्भिनः कुम्भकूट-

अश्वहान-प्रवाहाः पवनजवजितो दिव्य-काम्बोज-वाहाः ।

प्रासादाश्चन्द्रशाला विलिखितवियतो भूयसी भूतघात्री

सूते किं किन् सद्यः फलममिलपितं रामदूरु-कामधेनुः ॥'

३. वही, श्लोक २६ : (पद्यवेणी० ६५) ।

'हे गौरि ब्रूहि रम्भे कनकमयनदीमेहि लीलावगाह-

ब्रह्मानन्दाय मुग्धे कनकमयनदी कुत्र केयं प्रयाति ।

वीर-श्रीवीरभानु-सितितिलक-कुलस्तम्भ-वण्डप्रताप-

ज्वाला-कल्लोलताप-द्रुत-कनकगिरि-स्थन्द-धाराप्रवाहः ॥'

हे रामचन्द्र ! साधुजनों की उच्चता का सर्वत्र करने वाले, प्रगट का पालन करने वाले, शत्रु-सेना को बनायास ही भस्मसात् कर देने वाले, लाल, धाँवले और श्वेत रङ्गों से युक्त तुम्हारे कटाक्ष एक साथ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को लीला करते हैं ।^१

रामचन्द्र के सम्बन्ध में इस कवि के दो और मूकक पद्यवेणी में प्राप्त हैं । रामचन्द्र ने भिक्षुओं को जो हाथी दान में दिये हैं, उनको मद-धारा से सागर बन गये हैं—

‘राम त्वद्वत्त-मत्तेभ-कुम्भ-निःसरदम्बुभिः ।

दिक्षु भिक्षु-गृह-द्वारि वारां निधिरुदञ्चति ॥’^२

‘बघेल-केसरी (रामचन्द्र) के हाथों में तलवार नहीं, अपितु उनके प्रताप-रूपी सूर्य से विकसित हाथ-रूप कमल पर यह भीरों को लहराती पंक्ति है । यह अभयवृत्ति का सुन्दर उदाहरण है—

‘मृषैव निगदन्ममो जलद-कञ्जल-व्योतिषं

महासि-लतिकां करे सव बघेल-पञ्चानन ।

प्रतान-वपन-स्फुरत्-कर-सरोज-कोद्योत्थित-

द्विरेफ-लहरीति मे मनसि बुद्धिहवन्ममते ॥’^३

अन्यत्र अन्य नरेशों के वर्गन भी ओत्रपूर्ण हैं । अकबर के धनुष को टङ्कार से ही दूर गिरते हुए शत्रुओं के कङ्काल लङ्कान्वि विभोषण को भयार्त कर देते हैं :—

‘और एवं कामुकञ्चेदकवर कलयस्युध-टङ्कार-धोरं

दूरे सद्यः कलङ्का इव धरणिमृतो यान्ति कङ्काल-शेषाः ।

१. राम० प्र०; श्लोक ८ : (पद्यवेणी १०६) :

‘साधूनुन्वैः सूत्रन्तः प्रणतमनुदिनं सम्प्रमात् पालयन्तः

कुर्वन्तो भस्मसाच्च प्रतिनृपति-धमूमण्डलं लीलयैव ।

शोण-श्यामावदाताः शुभचरित शरच्चन्द्र-भीरस्थ-शालं

श्रीराम त्वत् कटाक्षाः कमलज-बलिजिन्धममु-लीलां भजन्ते ॥’

उपर्युक्त श्लोकों के अतिरिक्त श्लोक ३-‘तुङ्ग ब्रह्माण्ड-...’ पद्यरचना (श्लोक १४), सूक्तिमुन्दर (६३) और सुभाषित-रत्न-भाण्डागार (१३८।८९) तथा श्लोक ६—‘मासद्वैतण्ड-...’ पद्यवेणी (१०४) और सुभा० २० भाग्या० (४२।५३) में उद्धृत हैं ।

२. पद्यवेणी० श्लोक ९६ ।

३. वही, श्लोक १३९ ।

पद्यापन्नश्च किं कारणमिति मनसा भ्रान्ति पद्मायितेन

रथताहङ्कारमद्वाद् विसृजति गृहिणीं किञ्च लङ्काधिनाथः ॥^१

गोविन्दमट्ट अपने काल का अवश्य हो अजेय कवि था, यह उसकी स्वामि-
मान-पूर्ण उक्ति से स्पष्ट है—

‘अनाराध्य कालीमनास्वाद्य गौरी-

मृते मन्त्र-तन्त्राद् विना शम्भोर्वात् ।

प्रवर्णं प्रगल्भं प्रकृतुं प्रवक्तुं

विरिञ्चि-प्रपञ्चे मदन्धः कविः कः ॥^२

उपर्युक्त प्रकाशित्यों और स्तुतियों में अकबरी कालिदास की खेलनी की प्रौढ़ता प्रकट है । इनके अतिरिक्त सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्ग्रहीत अनेक कला-
त्मक मुक्तक इस कवि के नाम से प्राप्त हैं । इस कवि की समस्त रचनाओं में दीर्घ-समास-युक्त अलङ्कृत शैली का प्रयोग प्राप्त है । यह कहने में हानि नहीं है कि अकबर की सभा का कालिदास कहला कर भी यह कवि पांडित्य-प्रदर्शन में ही अपनी खेद्यता समझता रहा तथा कालिदास की प्रसादगुण-युक्त स्वरित रस-परिपाक कराने वाली शैली का इसने प्रायः अवलम्बन नहीं किया ।

देखिये, वसन्त की विरहिणी के एक वर्णन में कवि अनुप्रासों में ही उलझा रह गया और वह पाठक के मन में विरहिणी के प्रति सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर सका—

पिकाली बाबालो भवतु बहुभाञ्जलीक-कचने

मृणाली ब्यालीव व्यथयतु तरामङ्गमनिशम् ।^३

यत्र-तत्र रसामकता भी है—

कर्णं समाधाय मधुसूतं या

विस्मारयत्यम्बुजिनो-वियोगम् ॥^४

कवि की कुछ उपमायें बहुत अच्छी बन पड़ी हैं—

‘मदन-विजय-यात्रा-मङ्गलं धोतयन्ती

विराति जल-ध-मण्ये ताम्रपात्रीव मानुः ।

इयमपि पुरुष-प्रेमसी मूर्च्छि संस्थं

कलशमिव सुषार्धं साधुमुल्लालसोति ॥^५

१. पद्यामृत०, श्लोक ९७ तथा सूचित० श्लोक १५८ ।

२. पद्यवेणी, श्लोक ७८६ ।

३. पद्यवेणी, ६११ (तथा सुभाषित-सार-समुच्चय ३०९) ।

४. वही, ७३२ ।

५. पद्यवेणी, ५८० : सु० सङ्० स० २०५ ।

इस कवि का वास्तविक मूल्याङ्कन आरम्भटी वृत्ति के प्रयोग और बोज गुण के क्षेत्र में किया जा सकता है, यद्यपि वहाँ भी यह शब्दालङ्कारों का प्रयोग अनिवार्य मानता है। इन उचितियों में प्रशस्त्यात्मक कल्पनाएँ अच्छी बन पड़ी हैं।

(ग) प्रशस्तियों की परम्परा

‘प्रशस्ति’ शब्द का उल्लेख खट्ट ने किया है,^१ जिसकी व्याख्या नमिसाधु ने इस प्रकार की है—

‘तत्र दत्तामोरधर-कुल-वर्णनं यशोर्ध्वं क्रियते सा प्रशस्तिः।’^२

अर्थात् प्रशस्ति में राजाजों के कुल आदि का वर्णन उनके यशोगान के रूप में किया जाता है। यह लघु काव्यों के प्रकरण में है। अतः ‘प्रशस्ति’ से यहाँ वह लघु काव्य अभिप्रेत है, जिसमें राजा का यशोवर्णन हो। ‘प्रशस्ति’ प्रभेद के लिए यह व्याख्या ठीक है, किन्तु हम इसका व्यापक अर्थ भी ले सकते हैं और जहाँ भी राजा का यशोवर्णन काव्य के रूप में प्राप्त हो, उसे प्रशस्ति कह सकते हैं।

इस व्यापक अर्थ को ग्रहण करने पर हम देखते हैं कि संस्कृत काव्य में राजा के यशोवर्णन की प्रवृत्ति परम्परात्मक है और वह काव्य के लगभग सभी प्रभेदों में दृष्टिगोचर होती है। महाकाव्य के क्षेत्र में प्रशस्तिमूलक ग्रन्थों की चर्चा हो चुकी है।^३ दूर्य काव्यों में भी साहित्यिकानिमित्त जैसे अनेक रूपक उदाहरणार्थ मिल जायेंगे। क्या के क्षेत्र में राजतरङ्गिणी जैसे इतिवृत्तात्मक काव्य और हर्षचरित जैसे आख्यायिका-ग्रन्थ भी इसी प्रवृत्ति के सूचक हैं। मौतला-वंशावली चम्पू और बीरमद चम्पू जैसे ग्रन्थ चम्पू काव्य की कोटि में भी राज-यशोवर्णन से पूरित मिलते हैं।

अनिबद्ध कोटि में भी प्रशस्तियाँ सभी रूपों में प्राप्त हैं। सुभाषित-सङ्ग्रहों में शुद्ध मुक्तक सङ्कलित मिलते हैं और ऐसे प्रत्येक सङ्ग्रह में ‘राज-सरङ्ग’ होता है। इसमें अनेक कवियों की रचनाएँ सङ्गृहीत होती हैं, जो व्यापक दृष्टि का द्योतक हैं। राजवंशों के वर्णन-परक काव्यों को हेमचन्द्र ने ‘संहिता’ नाम दिया है।^४ इस कोटि में हम गुरुवंश, चोल-वंशावली-चरित,

१. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बम्बई : १९२८ : अध्याय १६।३६।

२. वही, नमिसाधु की व्याख्या।

३. पीछे, अध्याय ३ (ख)।

४. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : १९०१ : पृ० ३४१।

यधेलवंशवर्णनम् आदि काव्यों को ले सकते हैं। धातुवीय लक्षण-ग्रन्थों में ये रामवर्म-यशोभूषण और नञ्जराजयशोभूषण जैसी रचनाओं में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

रद्वट ने जिस प्रशस्ति-प्रमेद की चर्चा की है, वह वास्तव में लघुकाव्य है। यह भी दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। पहला रूप है वे गद्य-पद्यमयी राजस्तुतियाँ, जिन्हें विररनाथ ने 'विरुद' संज्ञा दी है,^१ और जो शिलालेखों के रूप में विरनार, प्रयाग, मन्दासोर, ऐहोल आदि की प्रशस्तियों के नाम से ज्ञात हैं। दूसरे वे प्रशस्तियों हैं, जो प्रायः पद्यात्मक लघुकाव्यों के रूप में हैं, जैसे वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति। श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने ऐसी प्रशस्तियों को 'विरुदावली' नाम दिया है। विरुदावली में ग्रन्थ का नाम वर्ण्य (राजा, आश्रयदाता) के नाम पर रखा जाता है; इसमें प्रचुर स्तुति रहती है और शब्दों और पाप्यों का भरपूर आडम्बर रहता है—

‘वर्ण्य-नामाङ्क-विरुद-वर्णन-प्रचुरोन्मयला।

वाक्याडम्बर-संयुक्ता कविता विरुदावली ॥’^२

प्रस्तुत काव्य रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध इसी विरुदावली कीटि में आता है, जैसा कि पीछे प्रदर्शित किया जा चुका है। उपर्युक्त प्रवृत्तियों को देखते हुए इस विरुदावली कीटि में रसात्मक अभिव्यञ्जना की कम आशा की जा सकती है। वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति में वर्णनात्मकता और इतिहास प्रचुर मात्रा में है और रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध में वाक्याडम्बर। शिलालेखों की प्रशस्तियों भी वाक्याडम्बरों से पूर्ण पाई जाती हैं, किन्तु उनमें प्राप्त इतिवृत्त कुछ गतिशील, प्रवाहपूर्ण रहता है और उसमें इसी कारण रोचकता रहती है। रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध शब्द-पाण्डित्य-पूर्ण, गतिहीन शब्दों का ऐसा आडम्बर है, जिसमें रोचकता का नितान्त अभाव है। तथापि संस्कृत के पण्डितों की रूढ़ि और उनकी व्यवस्था को देखते हुए ऐसे काव्यों को अनादृत नहीं किया जा सकता। अतः पाण्डित्यपूर्ण विरुदावली-ग्रन्थों के बीच रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध को गणनीय मानना पड़ेगा।



१. साहित्यदर्पण : १९३१ : पृ० ३७७ : श्लोक ३३७।

२. वही, पृष्ठ १७८ : श्री द्विवेदी की टिप्पणी।

(२) कथाकाव्य : दशकुमार-पूर्वकथासारः

(क) पाण्डुलिपि का विवरण

बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में 'दशकुमार-पूर्व-कथासारः' नाम से एक ग्रन्थ सुरक्षित है।^१ इस ग्रन्थ के आरम्भ में भैरव की वन्दना के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक है—

‘बघेल-मुवराज-श्रीवोरमद्र-गुनाब्धिना ।

स्फुटो दशकुमाराणा कथासारो विरच्यते ॥ २ ॥’

प्रथम परिच्छेद के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्री महाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-मुवराज-श्री वोरमद्रदेवेन कृते दशकुमार-पूर्वकथासारे प्रथमः परिच्छेदः ।’

रामचन्द्र बघेल के पुत्र इस मुवराज वोरमद्रदेव द्वारा रचित ‘कन्दर्पचूड़ामणि’ ग्रन्थ की खर्चा पहले हो चुका है।^२ इसी वोरमद्र के जन्मोत्सव पर हुनायू ने वोरमानु बघेल के पास उपहार भेजे थे।^३

दशकुमार-पूर्वकथासार की उपर्युक्त पाण्डुलिपि का उल्लेख हरप्रसाद शास्त्री ने किया है। यह पाण्डुलिपि केवल प्रथम परिच्छेद की है।^४ ग्रन्थ का शेष भाग लुप्त हो चुका है। ‘पूर्वकथासार’ शब्द से अनुमान होता है कि कवि ने कथासार को दो भागों में रचा, जो क्रमशः दशकुमारचरितम् की पूर्वपीठिका

१. क्र० बी०, ६३६८ : ग्रन्थ की इस पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि मेरे पास सुरक्षित है। यह प्रतिलिपि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के अविस्टेट लाइब्रेरियन (सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष) श्री गिरिजानाथ मट्टाचार्य ने २७-२-६३ की पूरी की थी। यह केवल प्रथम परिच्छेद है, जो २३ छोटे पृष्ठों में है। यही प्रतिलिपि हमारे द्वारा ग्रन्थ के मूल्यांकन का आधार है। मूल लिपिक का नाम या ग्रन्थ का रचना-काल या लिपिकाल कहीं नहीं है। मूललिपि में व्याकरण की दृष्टि से यत्र तत्र त्रुटियाँ हैं, जो प्रतिलिपि में ज्यों की त्यों हैं।
२. देखिये पीछे अध्याय २ (ग)।
३. देखिये पीछे अध्याय ३ (ग)।
४. ए डेस्क० की० ॥ कलकत्ता: १९३४ : पाण्डुलिपि क्रमांक ५३८४।

और उत्तरपीठिका के सार होंगे। पूर्वपीठिका के प्रथम उच्छ्वास में राजवाहन आदि दस कुमारों की उत्पत्ति की कथा है।^१ प्रस्तुत पाण्डुलिपि में इसी प्रथम उच्छ्वास का सार-वर्णन है।

(ख) कवि-परिचय

दशकुमार-पूर्वकथा सार का प्रणेता वीरभद्रदेव बघेलखण्ड का राजकुमार था। हीरानन्द शास्त्री ने वीरभानुदय काव्य की पाण्डुलिपि पर अङ्कित पहली मुहर का अङ्क ९६५ (हिजरी, सन् १५५८ ई०) पढ़ा, जिसके कारण वीरभद्र की जन्मतिथि उन्होंने १५३५ ई० के निश्चय स्वीकार की।^२ हम शास्त्री जी के इस मत पर पीछे विचार कर चुके हैं।^३ एकत्रा बान्धोगढ़ में रामचन्द्र की जन्मतिथि सं० १५९२ (१५३५ ई०) और वीरभद्र की जन्मतिथि सं० १६१० (१५५४ ई०) दी हुई है।^४ वीरभद्र के जन्मोत्सव पर उपहार भेजते समय हुमायूँ दिल्लीश्वर था।^५ वह १५५५ ई० में दुवारा दिल्ली का अधिकारी हुआ था।^६ अतः ये उपहार जन्म के कुछ मास पीछे आए होंगे।

गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस में सुरक्षित 'कथासरित्सागर' की एक पाण्डुलिपि पर 'वीरभद्र बगद्दुलतान खलीफ ९७७' मुहर अङ्कित है। खलीफ का जन्म ९७७ हिजरी (१५६९ ई०) में ही हुआ था।^७ इसी वर्ष रामचन्द्र ने कालिंजर दुर्ग का अधिकार त्यागा और वीरभद्र के हाथों किले की चाबी

१. देखिये दशकुमारचरितम् (दण्डिन्) : प्रकाशित प्रति : हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ९९ : खोलम्बा संस्कृत सोरीज : वाराणसी—१ : १९५७ : (पूर्वपीठिका) ।

२. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-५ ।

३. देखिये पीछे अध्याय ३ (क) ।

४. परिशिष्ट १ (क) : राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५९२ के साल । सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक । जेटा २, जेटे राजा वीरभद्र.....। राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का । सं०.....राजा विक्रमादित्य का जन्म १६३९ के साल । सं० १६४६ के साल राज्याभिषेक ।

५. वीर० १२।२० ।

६. वही, क्रि० ए० पृष्ठ १-५ ।

७. वही ।

अकबर के समीप भेज दो। तब से बीरभद्र अकबर के दरबार में हाजिरी के लिए रहने लगा।^१ इस समय वह १५ वर्ष का होगा, सम्भवतः जाते ही उसे सलीम की सेवा में नियुक्त कर दिया गया।

अकबर की समा में योहिन्द भट्ट (अकबरी कालियास), बीरबल और पद्मानभ मिश्र आदि हिन्दी और संस्कृत के अनेक कवि थे। इनके सम्पर्क में बीरभद्र का कवि-आयुक्त हुआ होगा। बीरभद्र के गुणों का पद्मानभ मिश्र ने अनेक ग्रन्थों में अभिनन्दन किया है। बीरभद्रानन्द और कथासरित्सागर की पाण्डुलिपियों पर प्रायः उपरुक्त मुहरों बीरभद्र की संस्कृत-मिष्टा प्रमाणित करती हैं। २३ वर्ष की आयु में उन्होंने योजितोषित विषय कामशास्त्र पर 'कन्दर्प-पूडामणि' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसी समय रचित अपने 'बीरभद्रचम्पू' ग्रन्थ में पद्मानभ मिश्र ने बीरभद्र को महान विजेता घोषित किया है। बीरभद्र ने रत्नपुर आदि स्थानों पर अधिकार किया था।^२ 'कन्दर्प पूडामणि' ग्रन्थ के परचाही बीरभद्र ने 'वराकुमारपूर्वकथासार' लिखा होगा। अतः इस ग्रन्थ का रचनाकाल १५८० ई० के निकट मान सकते हैं।

रामचन्द्र स्वयं अकबरी दरबार में हाजिर नहीं हो रहे थे। १५८३-८४ ई० में इधर अकबर का ध्यान गया और उसने रामचन्द्र का स्वाभिमान तोड़ने के लिए कौश को हुक्म दिया। बीरभद्र ने अकबर को कठिनार्थ से इस बात पर राजी किया कि बीरबल और खर्दैन खाँ कोका रामचन्द्र को बुलाने जायें। रामचन्द्र फतेहपुर सीकरी में अकबर से मिले और बीरभद्र की समय-सूचकता से बयेलसम्बन्ध बंध गया। जब रामचन्द्र लौटे तब से बीरभद्र की वही छोड़ आए। कुछ समय पीछे बीरभद्र को भी लौटने की अनुमति मिली।^३

बीकानेर के राजा कल्याण सिंह के पुत्र राजसिंह को पुत्री बीरभद्र को व्याही दी और उसीकी छोटी बहन १५८७ ई० में सलीम को व्याही गई।^४ बीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य ने बहली बार रीवा नगर को राजधानी का पद दिया।^५

१. आई० : पृष्ठ ४०६-७।

२. देसिये जाने अश्याय ५ (क)।

३. ईलिमर : हिस्ट्री आफ इण्डिया : भाग ५ (बरायुनी) : पृष्ठ ५३८।

४. आई० : पृष्ठ ३५७-५८

५. परिसिस्ट १ (क) : एकदा बाल्योवह : "रीवा का किला—विक्रमाजीउ से किले आरं"।

१५९२ ई० में रामचन्द्र को मृत्यु हुई। अकबर ने चोरमद का राजा को पदवी देकर बान्धवगढ़ भेजा। मार्ग में सुवासन से गिरने से चोरमद को घातक चोट लगी। उनका रक्त ज़िगड़ गया और असमय पर नहाने घोने से रोग बढ़ता गया। १००१ हिजरी (१५९३ ई०) में चोरमद को मृत्यु हो गई।^१

श्री रामचन्द्रे अग्निहोत्री ने मुझे चोरमद के एक पाट को नकल दत्तवाई थी, जो मथुरा में चोरमद के द्वारा सं० १९५३ का दान-पत्र था।^२ यदि यह ठीक है तो चोरमद १५९६ ई० में जीवित थे। उनको मृत्यु से उत्पन्न अभ्य-वस्था में ही १५९६ ई० में अकबर ने बान्धवगढ़ पर आक्रमण किया।^३ अतः सम्भव है, इसी वर्ष मथुरा से लौटने समय वे सुवासन से गिर कर मरे हों। इससे पीछे मृत्यु-तिथि नहीं लाई जा सकती।

चोरमद की मृत्यु सुन कर उनका राठौरिन रानी (रामसिंह की पुत्री) सती होना चाहती थी। अकबर ने उसे रोका और रामसिंह से मिल कर चोरमद के निधन पर शोक व्यक्त किया।^४ इन घटनाओं से प्रतीत होता है कि चोरमद अपने समय का महत्वपूर्ण व्यक्ति था।

जमाबन्दियों में चोरमद के पुत्र विक्रमादित्य का राजवामियेक सं० १६४६ (११९० ई०) में बतलाया गया है, अर्थात् इस प्रकार चोरमद की मृत्यु उससे पूर्व होती है, किन्तु मुस्लिम लेख पूर्वोक्त तिथियों को ही मूवना देते हैं। प्रतीत होता है कि लिपिक की भूल से १६४९ सं० (१५९३) को यहाँ १६४६ लिख दिया गया है।

(ग) कथातन्त्र—राजकुमारधरित की पूर्वपीठिका के प्रथम उन्मूषाव में दस कुमारों के जन्म की कथा है। मगध का राजा राजहंस मालवेश से परास्त होकर विन्ध्य के बनों में विरक्ति के दिन काटता है। उसके मित्र मिथिलेश्वर के दो पुत्र तथा विदेश गये हुए उसके तीन मन्त्रियों के तीन पुत्र उसके पास लाए जाते हैं। राजकुमार राजबाहन भी यहाँ विन्ध्याटवी में उत्पन्न होता है।

१. समसाम-उद्दोला : मासिर-उल-उमरा (अनु० ब्रजरत्नदास) : पृ० ३३०-३४, ३५४।

२. 'फागून वदि २, श्रीमे संवत् १६५३ का मथुरिया चौबे कमले चौबे की संतान का लिखि दीन।' श्री अग्निहोत्री ने यह प्रतिलिपि १९५७ ई० में लिखाई थी।

३. आईन० पृष्ठ ४०६-७।

४. समसाम-उद्दोला : मासिर-उल-उमरा (ब्रजरत्नदास) : पृष्ठ ३३०-३४ ३५४।

और राजा के पास रहनेवाले चार मन्त्रियों के भी एक-एक पुत्र होते हैं। इस प्रकार ये दस कुमार मिन की भाँति रहते हुए युवक होते हैं।^१

पूर्वपीठिका और कथामार की कथाओं में मौलिक अन्तर न होते हुए कुछ भिन्नता मिलती है। पूर्वपीठिका में प्राप्त राजहंस के एक मन्त्री शिवदर्मा और उसके पुत्र सत्यदर्मा का नाम दशकुमार-पूर्वकथासार में मतिशर्मा और सत्यशर्मा है, यद्यपि सत्यदर्मा का सत्यशर्मा का पुत्र दोनों स्थानों पर समझल ही है। पूर्वपीठिका में पहले राजहंस मालवेश मानमार पर आक्रमण कर उस परास्त करता है, यह अंश कथामार में नहीं है।

पूर्वपीठिका में मिमिदेन प्रहारदर्मा राजहंस की रानी दगुमती के सौमन्तो-रसव में सम्मिलित होकर वही कुछ समय तक रहता है। मानमार का आक्रमण होने पर वह मुद्र भी करता है, बन्दी बनाया जाता है और छोड़ दिया जाता है। वह प्रस्थान करता है तब उसके दो जुड़वाँ बच्चे और उनकी पालिकाएँ, एक बूढ़ा और उसकी कम्पा, पीछे छूट जाती हैं। स्याध से बस्त बूढ़ा पत्थर पर गिरती है और उसके हाथ का बालक छूट कर काला गाय के शव में धुन जाता है। स्याध गाय को पत्तीटता है। शवर उसे मार कर बालक को ले जाने हैं। बूढ़ा लौटकर अपनी कम्पा और दूसरे शिशु को नहीं पाती। वह एक तावम को समाचार बतला कर चली जाती है। तावस एक चण्डिका मन्दिर में पहुँचता है, जहाँ पहला बालक शवरों द्वारा बलि चढ़ाने के लिए लाया जाता है। तावस उसे अपना पुत्र कह कर प्राप्त कर लेता है और लाकर राजहंस को देता है, इसका नाम उपहारदर्मा रखा जाता है।

कथामार में एक मुनि इस बालक को गोबर में लिपटा हुआ पाता है और प्रणिधान से जानता है कि वह प्रहारदर्मा का पुत्र है। प्रहारदर्मा जब पुष्पपुर के सौमन्तो-रसव में सम्मिलित होने आता है, तब मार्ग में राजहंस की पराजय का वृत्तान्त पाकर लौट जाता है। मानमार के संकेत से पुलिन्द प्रहार दर्मा को झूठते हैं और यह बच्चा अकेले पीछे छूट जाता है।

पूर्वपीठिका में प्रहारदर्मा के दूसरे शिशु को एक शवर पाता है और अपनी पत्नी को देता है। राजहंस स्वयं उस शवरो की भोद में इस मुलक्षण बालक को देख कर प्रश्न करता है और समाचार जान कर बालक को अपने अधिकार में लेकर उसका नाम उपहारदर्मा रखता है। कथासार में प्रहारदर्मा

को लौटने पर जात होता है कि उसके राज्य पर उसके सम्बन्धी अधिकार कर चुके हैं। सब वह अपने भानजे सुहृद् नरेश के समीप जाते समय पुनः पुत्रियों द्वारा लूटा जाता है। दूसरा बालक भिक्षुओं के हाथ पड़ता है और भिक्षुव्रति उसे लाकर राजहंस को देता है।

पूर्व पोटिका के अनुसार राजहंस के मन्त्री पञ्चोद्भव का पुत्र रत्नोद्भव रत्नों का व्यापार करते करते कालगुप्त द्वीप में पहुँच कर वहाँ के कालगुप्त सेठ की कन्या सुवृत्ता को ब्याह कर समुद्र-मार्ग से लौटता है। उसका पोत टूट कर डूब जाता है। गर्मशती सुवृत्ता का उसको घायल लकड़ों के सहारे किनारे लगाती है। पुष्पपुर को ओर जाते हुए दोनों विन्ध्याटकी में पहुँचते हैं। सुवृत्ता के पुत्र उत्पन्न होता है और वह मूर्च्छित हो जाती है। घाय बालक को लिए हुए मार्ग का पता लगाने के लिए कुछ दूर जाती है और संयोगवश धामदेव के शिष्य सोमदेव चार्मा से उसकी भेंट होती है। इसी समय हाथी को देख कर घाय बालक को छोड़ कर भागती है। हाथी बालक को उछाल देता है जिसे ऊपर बन्दर पकड़ लेता है। फिर बन्दर उसे सधन पत्तों पर गिरा देता है। सोमदेव चार्मा उसे राजा राजहंस के पास लाते हैं। इसका पुण्योद्भव नाम पड़ता है। कथासार में ठीक वही कथा है किन्तु द्वीप का नाम यवन द्वीप और कालगुप्त की कन्या का नाम माहिष्मती है तथा पञ्चोद्भव को लाने वाला कोई 'मुनि' है।

पूर्वपोटिका में कहा गया है कि धर्मपाल मन्त्री का बिलासी पुत्र कामपाल मणिमद्र यज्ञ की कन्या तारावली से विवाह करता है। तारावली पुत्र को जन्म देती है और मणिमद्र को आज्ञा से राजवाहन की भावी सेवा के लिए अपना पुत्र रानी वसुमती के समीप दे जाती है। रानी इसे राजा के पास लाती है। बालक का नाम धर्मपाल रखा जाता है। कथासार के अनुसार मणिमद्र यज्ञ की कन्या तारावली लोपामुद्रा की उपासना कर लौटते समय कैलाश में प्रेतों के स्थान पर एक शिशु पाती है और लाकर पिता को बतलाती है। मणिमद्र उसे बालक सहित कुबेर के पास ले जाते हैं। कुबेर ध्यान द्वारा जानते हैं कि बालक कामपाल का पुत्र है और यज्ञ-कन्या कान्तिमती से उत्पन्न हुआ है। कुबेर के आदेश से तारावली बालक को रानी वसुमती के पास लाकर सौंप जाती है।

पूर्वपोटिका और कथासार दोनों में राजहंस के पास रहनेवाले सुमित्र का पुत्र मित्रगुप्त, समुद्रि का पुत्र प्रमति, सुमन्त्र का पुत्र मन्त्रगुप्त और सुधृत का पुत्र विश्रुत हो हैं।

कीय के मत के अनुसार दण्डी के मूल ग्रन्थ में परिवर्तन हुआ है। दण्डी के अनुसार अर्थपाल और प्रमति कान्तिमती और तारावली से कामपाल के पुत्र हैं तथा सोमदत्त, मित्रगुप्त और मन्त्रगुप्त वास्तव में कामपाल की दोप तीन पत्नियों के पुत्र हैं। पूर्वपोठिका और उत्तरपोठिका में अर्थपाल, प्रमति और विश्रुत के वर्णनों में विरोध है। पूर्वपोठिका और उत्तरपोठिका नामों से तत्काल प्रतीत होता है कि ये दण्डी की कृति के भाग नहीं हैं। इस परिणाम की पुष्टि प्रचुर साक्ष्य से होती है।^{१९}

इस मत को देखते हुए प्रतीत होता है कि ऊपर प्रदर्शित पूर्वपोठिका और प्रस्तुत दशकुमार-पूर्वकथासार में प्राप्त कथा का अन्तर क्रमिक परिवर्तनों के कारण है। वीरभद्रदेव को दशकुमारचरित की जो प्रति उपलब्ध रही होगी, उसी पर यह कथा-सार आधारित होगा, किन्तु इसे प्रमाणित करने के लिए पाठ-भेद के अन्य संस्करण उपलब्ध नहीं हैं।

(घ) काव्यकला : प्रस्तुत कथासार में कथा की मौलिकता नहीं ढूँढ़ी जा सकती। माया के क्षेत्र में भी हमारे कवि वीरभद्रदेव को दण्डी का आधार प्राप्त था। यह एक स्वतन्त्र काव्य-रचना नहीं है। तथापि वीरभद्रदेव ने अपनी माया का पर्याप्त प्रयोग किया है और इसी क्षेत्र में हम उनकी रचना-शक्ति के दर्शन कर सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि अपनी शब्द-योजना और वाक्य-रचना में कवि ने दण्डी की शैली से ही समन्वय किया है। इस भाषा में वैद्यों की रीति, पद-लालित्य और अभिव्यक्ति की स्पष्टता है। लम्बे वाक्यों और दीर्घ समासों का तथा गूढ़ता और जटिलता का परिहार वैसे ही अधिक हुआ है, क्योंकि यह रचना 'सार' है। साथ ही दशकुमार-चरित की भाँति ही यहाँ भी शब्दा-ढब्बर, अत्युक्ति और कर्क-कट् ध्वनियों से बचने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। शब्द-योजना में सौन्दर्य लाते हुए रस की अभिव्यक्ति की गई है।

मङ्गलाचरण में उपदेश और अनुशास का सुरम्य समन्वय है तथा काव्य-शक्ति का उसमें अच्छा निदर्शन है—

‘ताण्डवाढम्बरे यस्य सस्ता सगिव मस्तकात् ।

भाति भागीरथो भूमौ भूत्यं तं भैरवं भजे ॥ १ ॥’

शैली के निदर्शनार्थ दो गद्यांश यहाँ प्रस्तुत हैं—

‘मत्किल मगधाघोश-महामात्य-मतिरम्यसूनुः सत्यशर्मा तीर्थानि पर्यटन्मुं

१. ए हिस्ट्रो आरु संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ २९७-९९ ।

देशं प्रविवेक्ष । प्रविश्य च महान्तमनेहसमिहातिवाह्य कस्यचिदप्रहारस्य समान-
कुलघोलां कालीन्नाम कन्यामुपार्थस्त । तस्यां चानपत्यायां तत्त्वसारं गौरीं नाम
कन्यामुदबहत् । सा च पञ्चपु-सञ्चार-चतुरे वयसि वर्त्तमाना तस्य प्राणादपि
प्रियतमा समभवत् । सोऽपि तस्याः । एवं विषयोपभोगपरयोस्तयोः किमताचित्
कालेन सकलजननयना (नन्दन)-नन्दनस्समजनि । अहमेतस्य धात्रिकाप्नुं बालमा-
दाय सह कात्या विकट-तट-दुःसंचारारामाति गम्भीरायां सरिति विजित-प्रदेशे स्नातु-
मभ्ययासिषम् । असूया-कलुषाशया च कालो दुरधगाहे तत्प्रवाहे सवालं मां
पातयित्वा निजोद्भवसितमपासरत् । प्रवाहपतिता चाहुग्मज्जननिमज्जनाकुलित-
चेता बालेनावलम्ब्यमाना विषि-विलसितेनानेक-शालमशोकानोकहमवालम्बिषि ।'

.....ततो राजवाहन-पुरःसरा दत्त कुमारः कुमार-काम-अग्रह-भ्रमाधा-
यितो वसुमत्या भूयसा प्रयासेन सम्प्रयिता विविध-विद्याविनोद-मोदमान-मानसा
मदन-सर्वस्वमनेक-विलासोपदेश-वेशलभङ्गमापाङ्ग-विश्रामधाम वयः समाप्त-
दन् ।'

संस्कृत के अन्य कथासार

संस्कृत के प्राचीन एवं मध्ययुगीन काव्यों में ये अनेक ऐसे रहे हैं, जिन्होंने
जनमानस को आन्दोलित-उद्देलित किया है । कितने ही कवि अपनी मौलिक
काव्य-रचनाओं के साथ-साथ उक्त प्रभावकारी काव्यों के कथासार अपनी
शब्दावली में प्रस्तुत करने का शोभ संवरण नहीं कर सके हैं । ईसा की कुछ
शतियों के पश्चात् हमें यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगती है । यह पद्य और
गद्य दोनों क्षेत्रों में उपलब्ध है ।

वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव अद्भुत रहा है । इस उपजीव्य ग्रन्थ की
कथा का आधार लेकर जहाँ अनेक मौलिक काव्यों की सृष्टि हुई, वहाँ इसकी
कथामात्र को भी प्रस्तुत किया गया है । धीमेन्द्र की रामायण-मञ्जरी, अण्णय
दीक्षित का रामायण-सार-संग्रह, रघुनाथ का रामायण-सार-संग्रह और कृष्ण-
राज उदयर तृतीय की रामायण-कथा-पुष्प-मञ्जरी उदाहरण रूप में प्रस्तुत
किये जा सकते हैं ।

पुराणों में प्राप्त कथाओं के सार भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जैसे
महाभारत से धीमेन्द्र की भारत-मञ्जरी या कृष्णाराम का नैषधचरितसार,

1. पूर्वश्लोका से तुलना के लिए देखिये-दशकुमारचरितम् : दोसम्वा
संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी १ : १९५७ : प्रथमोच्छ्वासः
पृष्ठ ३९-३९ ।

हरिवंश पुराण से भोविन्द दीक्षित का हरिवंश-सार-चरित, अथवा श्रीमद्-भागवत से कृष्णराज उदयर तृतीय का कृष्ण-कथा-मुष्ण-मञ्जरी आदि ।

परवर्ती काव्यों में कथा-काव्य अधिक प्रभावकारी रहे हैं । बृहत्कथा के लघु संस्करण के रूप में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मञ्जरी और सोमदेव कथा-सरित्-सागर विख्यात है । इस कहीं में हम कृष्णदेवराय का ग्रन्थ सकल-कथा-सार-संग्रह पाते हैं ।

गद्य-काव्यों में कादम्बरी और दशकुमारचरित से विद्वज्जगत् सुपरिचित है । अभिनव ने कादम्बरी-कथासार नाम से सर्वबन्ध रचना की । सुमतीन्द्र ने अभिनव कादम्बरी नामक ग्रन्थ लिखा है । इसी प्रकार अप्पय दीक्षित का दशकुमार-चरित-संग्रह ग्रन्थ लिखा गया और बीरमद्वेव ने दशकुमार-पूर्वकथा-सार की सर्जना की ।^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि बीरमद्वेव का दशकुमार-पूर्व-कथासार (जिसका दुर्भाग्य से प्रथम परिच्छेद ही प्राप्त है) कथासार लिखने की परम्परा की ही आरम्भ करता है । मौलिक न होने पर भी वह संस्कृत-साहित्य की इस धारा की एक सुस्म्य तरङ्ग है ।



१. विषय विवरणों और उदाहरणों के लिए देखिये, हि० कला० सं० लिट्० लघुकाव्य ।

(३) संहिता (वंशावली-काव्य) : बघेलवंश-वर्णनम्

(क) पाण्डुलिपि और कवि का परिचय—संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची के अन्तर्गत हरप्रसाद शास्त्री ने सोमदेव द्वारा रचित 'कथासरित्सागर' की एक पाण्डुलिपि की सूचना प्रस्तुत की है, जिसका लिपिक रूपनि मिश्र है। यह पाण्डुलिपि रायल एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है। इसके पूर्वाह्न और उत्तरार्ध दोनों भागों के पृष्ठक्रम पुष्क-पुष्क है। पहले भाग में ४२२ पत्रों में ९ वें लम्बक-अलङ्कारवती तक की कथा है। पृष्ठ ४२२ पर निम्नलिखित श्लोक है :—

‘वैद्यालभासे सितकामतिष्ठ्यां
धीमार्गसिंहाख्य-नृवाणयैव ।

अथलेखि सद्गुणनिमिषकेण
पूर्वाह्नमेतत्तु बृहत्कथायाः ॥’

दूसरे भाग में ४१४ पत्रा हैं तथा ग्रन्थ के अन्त में निम्नलिखित उल्लेख है—

‘समाप्तोऽयं कथासरित्सागरः ।
शुभमस्तु । धीरस्तु । संवत् १८६९ ॥’

इसके पश्चात् ७ पृष्ठ और हैं, जिनमें लेखक ने अपने आश्रयदाता भाव-सिंह की वंशावली और उनके समासदों के भाग १०० श्लोकों में दिये हैं। अन्त में पुनः निम्नलिखित पृष्णिका है—

‘समाप्तश्चायं ग्रन्थो बृहत्कथाख्यः ।’

कथासरित्सागर के अतिरिक्त प्राप्त हुए १०० श्लोकों को १९३४ ई० में शास्त्री जी ने सूची में ही प्रकाशित कर दिया है।^१

तत्कालीन रीवा-नरेश महाराज गुलाबसिंह के प्रधान मन्त्री दीवान बहादुर पं० खानकी प्रसाद चतुर्वेदी ने इस वंशावली-काव्य को हिन्दी-अनुवाद

सहित प्रकाशित कराना चाहा । रोबा के श्री नन्दकिशोर पोष्टाचार्य ने हिन्दी-अनुवाद कर दिया । यह सानुवाद प्रति पंडित ब्रजेंद्रनाथ चतुर्वेदी के समीप गया पीछे प्रो० (मृतपूर्व) अखतर हुसेन निजामी के अधिकार में बघेलखंड हिन्दी रेकार्ड्स कमिशन में रहो आई । प्रो० (अब दिग्विपल) विन्तामणि मालवीय ने अनुवाद में संशोधन कर अंग्रेजी सारास भी तैयार किया । अनेक स्थानीय विद्वानों ने प्रकाशन-योग्य प्रति तैयार करने में सहयोग दिया । १९५७ ई० में दिग्वि सस्कृत-विश्व-परिषद् ने रोबा से इसे प्रकाशित कर दिया । इस प्रकाशित प्रति में मन्त्री, दिग्वि-संस्कृत-विश्व-परिषद् के अतिरिक्त नन्दकिशोर पोष्टाचार्य एवं श्री अखतर हुसेन निजामी की महत्त्व-पूर्ण भूमिकाएँ हैं । हिन्दी अनुवाद सहित मूल श्लोक हैं, जिनमें लिपि की त्रुटियाँ संशोधित रूप में छापी गई हैं और मूल शब्द (जो मूची में हैं), जिनमें परिवर्तन किया गया है, पाद-टिप्पणों में दे दिये गए हैं । अन्त में नामानुक्रमणी और अंग्रेजी सारानुवाद है । इस बंशावली का नाम इस प्रकाशित रूप में रूपनिरात्मणा कृतं 'बघेलवंशवर्गनम्' कर दिया गया है ।^१ अतः अब 'बघेल-वंशवर्गनम्' नाम से जानें इन १०० श्लोकों पर यही हम विचार करने जा रहे हैं ।

अन्तिम श्लोक में मञ्जल-कामना है । उससे पूर्व निम्नलिखित श्लोक है :—

‘पाण्डवाश्मृपिचन्द्रेभ्यो विक्रमाकृतु ममृतः ।

भाद्रे मासि मिते पक्षे पूर्णिमायामलोलिखत् ॥ ९९ ॥’

अर्थात् संवत् १७३५ की भाद्र पूर्णिमा (१६७८ ई०) को यह ग्रन्थ लिखा गया । जैसा ऊपर पुष्पिका में संकेत है, कलकत्ता में प्राप्त पाण्डुलिपि का लिपिकाल संवत् १८६६ (१८१२ ई०) है ।

कवि इन श्लोकों सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ को कहीं बृहत्कथा और कहीं कथासरित्-सागर कहता है —

नरवाहनदत्त-सञ्ज्ञता विविधाशब्दे-रसा बृहत्कथा ।

रचिता ननु सोमशर्म्मा कुशलां घं नृप-भाववर्म्माणः ॥ ९३ ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि गुणादय को पैशाची भाषा में लिखित बृहत्कथा पर आधारित होने से ग्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में सोमभट्ट द्वारा संस्कृत में

१. इस प्रकाशित ग्रन्थ में अन्तिम पुष्पिका का परिवर्तित रूप इस प्रकार है — ‘समाप्तश्चायं ग्रन्थो बघेलवंशवर्गनाख्यः ।’

लिखित कथासरित्सागर को सत्काशोन पण्डित बृहत्कथा भी कहते थे । दूसरी बात यह भी प्रतीत होती है कि इस वंशवर्णन के प्रणेता ने इन १०० दलों की अपनी ओर से कथा-सरित्सागर के अङ्गभूत ही बना देना चाहा है ।

रूपणि ने कथासरित्सागर की इस प्रतिलिपि की कहानी की ओर भी संकेत किया है—

‘कान्धाख्यान-कला-विदग्ध-धिपणः धीमार्वाविहो नूरः ।

काश्मीराद् भगवन्मुसोदगतमिदं प्राप्योत्पत्सद्वसम् ॥

संशोष्याखिल-पण्डितैः कृतचमत्कारं ततो रूपणि-

द्वाराऽलोलिखदमुत्तार्य-गहनं सर्वार्थसारप्रदम् ॥ ८८ ॥’

अर्थात् बघेल-नरेश भार्वाह (१६७५-९४ ई०) काव्य, आख्यान और कला के प्रेमी थे । उन्होंने भगवान् के मुख से उद्गत^१ इस सरस कथा (कथासरित्सागर) की काश्मीर से प्राप्त कर (अपनी सभा के) समस्त पण्डितों से संशोधित कराकर रूपणि से (सुदृढ रूप में) लिखवाया ।

नागरी-प्रचारिणी-सभा वाली की ओर से रीवा में प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने वाले श्री रघुनाथ साहनी की ‘ताराभक्ति-मुधार्यव’ नाम की एक संस्कृत-पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी, जो १९५६ ई० में काशी भेजी गई । इस ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार थी—

‘संवत् १५४६ समये कातिक-वृष्णपक्ष-त्रयोदश्यां दिने लिखामितं सिद्धि-
श्रीमहाराजाधिराज-श्रीभार्वाहदेवेन । लिखितमिदं पुरस्ततं रूपणि-मिषेण
बान्धवप्रदेतो अमरपट्टने ।’

इन पंक्तियों को देखने से ज्ञात होता है कि सम्भवतः रूपणि मिश्र अमर-
पाटन कस्बे (जिला सतना) का निवासी था और संवत् १७४६ (१६८९ ई०)
में भी वह संस्कृत ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ महाराज भार्वाह के लिए किया

१. तुलना के लिए देखिये कथासरित्सागर के अन्तिम उल्लेख—

‘इति नरबाहनदत्तः स्वकथामाख्याय भुविजनं निखिलम् ।’

‘.....इत्येषा शशिशेखरेण तुहिनक्षमाभूतमुताऽभ्यर्चनात् ।

सोत्साहेन बृहत्कथा निगदिता कैलासपृष्ठे पुरा ॥’

‘...एतां मद्वदनोद्गतां पठति यो यो वा शृणोत्यदरात् ।’

यही यह दृष्टव्य है कि कथासरित्सागर का प्रणेता भी इसे बृहत्कथा ही कहता है, अतः रूपणि की भूल नहीं मानी जा सकती ।

करता था। यह सहज ही समझा जा सकता है कि रुग्णि को संस्कृत का अच्छा ज्ञान रहा होगा।

बघेलवंशवर्णनम् के श्लोकों में से एक इन प्रकार है —

‘सभासदानां विशाणां श्लोकानां च समूहकः।

भावंसिंहस्य तोषायालेखि रूपणि-शर्मणा ॥ ९८ ॥’

अर्थात् सभासदों, विद्वान् ब्राह्मणों और भावसिंह को सन्तुष्टि के लिए रूपणि शर्मा द्वारा ये श्लोक-समूह लिखे गये। अथवा भावसिंह के सन्तोष के लिए सभासद पण्डितों द्वारा रचित श्लोक-समूह रूपणि द्वारा लिपिबद्ध किये गये। यह दूसरा अर्थ इस बात पर कि रूपणि ही इन सौ श्लोकों का रचयिता है, सन्देह उत्पन्न कर देता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह विशिष्ट श्लोक तथा इसके पीछे के दो और श्लोक^१ एवं काश्मीर से ग्रन्थ-प्राप्ति का सूचक उक्त श्लोक अवश्य ही रूपणि द्वारा लिखे गये।

इस पाण्डुलिपि को खोज करने वाले महामहोपाध्याय हृदयशिव शास्त्री^२ डा० हृदयशर्मा^३ और श्री निजामो^४ ने इन समस्त श्लोकों का रूपणि शर्मा (या मिश्र) द्वारा रचित ही माना है।

हम यह देख चुके हैं कि रूपणि में श्लोक-रचना को शक्ति थी और उसे संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। यद्यपि इन श्लोकों का रचयिता रूपणि ही है, इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं है। इन श्लोकों के अन्तर्गत भावसिंह को सभा के नी

१. श्लोक ९९—‘पाण्डवानां’ तथा १०० :

मङ्गलं लेखकानां च पाठकानां च मङ्गलम्।

मङ्गलं सर्वलोकानां भूमौ भूपति-मङ्गलम् ॥

२. ए० डेस० कै० : पृष्ठ ३२२ :

‘लिपिक (रूपणि) की रचना पाण्डित्यपूर्ण है और वह काव्य-सौन्दर्य से रहित नहीं है। प्रतीत होता है कि वह भाव (सिंह) देव की सभा का एक विद्वान् रहा होगा।’

३. ‘बाघेल रुलर्स’ : ‘रूपणि मिश्र एक विद्वान् पुरुष था। प्रतिलिपियों में उसने ९९ (१००) श्लोक जोड़ दिये, जिसमें उसने भावसिंह की वंशावली दो तथा उसके सभासदों का उल्लेख किया।’

४. ‘नाइन जेम्स’ : ‘रूपणि शर्मा ने स्वरचित श्लोक जोड़ दिये।’

तथा निजामो : ‘जीनियालाजिकल सोसैज आफ दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा’ नवम भारतीय इतिहास परिषद् : अन्नामलइनगर : दिसम्बर, १९४५ : विवरण : पृ० १५०-५३।

रत्नों के उल्लेख हुए हैं जिनमें रूपणि का नाम नहीं है। इससे प्रकट होता है कि वंश-वर्णन के साथ नौ रत्नों के उल्लेख भी रूपणि हो कर रहा है। अतः हमें उपर्युक्त श्लोक का पहला अर्थ स्वीकार होगा और 'अलेखि' शब्द को 'अरवि' के समान मानना होगा। वास्तव में यही तर्क-सम्मत है कि संतो-धित कथा-सरित्सागर की प्रतिलिपि को पूरी करते-करते अपने आश्रयदाता भावसिंह एवं सभा के विद्वानों की प्रसन्नता के लिए रूपणि ने यह प्रशस्त्या-त्मक वंशावली लिख दी।

ग्रन्थ के आरम्भ में दो श्लोकों में दर्शन-परक (ग्रह और प्रकृति की) वर्णनाएँ हैं। आगामी दो श्लोकों में बघेलवंश का गुणगान है। पाँचवें श्लोक में कर्णदेव से वंशारम्भ है। ३७ वें श्लोक तक रामचन्द्र तक १९ राजाओं का वर्णन है। ३७ से ५८ वें श्लोक तक रामचन्द्र और उनकी राजधानी रामनगर तथा दुर्ग बान्धवगढ़ (४००-४९) का काव्यात्मक वर्णन है। ५९ से ६४ वें श्लोक तक दोष राजाओं का उल्लेख है। ६५ से ७५ वें श्लोक तक भावसिंह की प्रशस्ति है। इस प्रकार कुल २४ राजाओं का वर्णन है। आगे भावसिंह की राजधानी रोधा और सभासदों (श्लोक ७९-८७) का वर्णन देवस्तुति, फटस्तुति आदि है।

(ख) ऐतिहासिक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन-बघेलखण्ड के इतिहास के सम्बन्ध में बघेलवंशवर्णनम् ग्रन्थ में जो सामग्री उपलब्ध है, उसे हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। पहला भाग है, कर्णदेव से बोलारदेव तक राजाओं की सूची, जिस पर मतभेद है। दूसरा भाग है, दोष राजाओं की सूची। तीसरा भाग है, विभिन्न स्थलों पर प्राप्त अन्य सूचनाएँ।

कर्णदेव से बोलारदेव तक पहला मतभेद संस्कृत के स्थानीय दो ग्रन्थों-वीरभानुदय और बघेलवंशवर्णनम् में ही है; दूसरा मतभेद बघेलवंशवर्णनम् और स्थानीय हिन्दी लेखों के बीच है। हिन्दी लेखों में एक वर्ग है स्थानीय जमाबंदियों का, जैसे एकत्रा बान्धोमढ़। ये लेख बहुत कुछ प्रामाणिक हैं। दूसरा वर्ग है १९ वीं शती की कविताओं का, जो प्रायः चारणों द्वारा लिखित हैं। इनमें प्रशस्तिमूलक कल्पनाएँ हैं। तीसरा वर्ग है राजघरानों में प्राप्त वंशावलिओं का, जिनमें परम्परा के साथ स्मृति का योग है। यहाँ यह बतलाना समीचीन होगा कि बोलारदेव तथा उसके पूर्ववर्ती नामों में ही मतभेद है। अतः उनमें से कुछ की ऐतिहासिकता पर भी संशय है। यहाँ पर हमारे विचार के मुख्य आधार संस्कृत के उपर्युक्त दो काव्य तथा जमाबंदियाँ हैं। वंश-सूची के जिस प्रारम्भिक भाग पर मतभेद है, उसका तुलनात्मक स्वरूप निम्न-लिखित है—

वीरभानूदयकाव्यम् सर्ग ११६-१९	बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ५-१६	जमावन्दिरी (परि० १)
<p>(व्याघ्रपाद मुनि का वंश या भारद्वाज व्याघ्रपाद गोत्र)</p> <p>१—भीम (नरेन्द्र)</p> <p>२—राणिज्जदेव (महोरा)</p> <p>३—बालनदेव</p> <p>४—बल्लारदेव</p>	<p>(गुर्जरेश्वर का सेवक बघेलवंश)</p> <p>१—कणदेव (गुजरात)</p> <p>२—सुहागदेव</p> <p>३—सारङ्ग</p> <p>४—धीसलदेव (कालिंजर)</p> <p>५—भीममल्ल</p> <p>६—रानिकदेव</p> <p>७—दलन</p> <p>८—दलक</p> <p>९—मलकेश</p> <p>१०—वरियार</p> <p>११—बोलारदेव</p>	<p>१—व्याघ्रदेव</p> <p>२—कणदेव</p> <p>३—सोहागदेव</p> <p>४—सारङ्गदेव</p> <p>५—धीसलदेव (अन्यत्र विलास या विशाल- देव) भाई कालि- जर गहोरा</p> <p>६—भीममल (या भीमल)</p> <p>७—रानिकदेव (अन्यत्र अनीकदेव)</p> <p>८—दलनदेव</p> <p>९—दलकेश्वर (या दलकेन्द्र)</p> <p>१०—मलकेश्वर</p> <p>११—वरियारदेव</p> <p>१२—बोलारदेव</p>

हिन्दी के सभी लेख व्याघ्रदेव के साथ यह वंशावली देते हैं, और उनमें कहीं भ्रमभाव नहीं है। वीरभानूदय काव्य में यह व्याघ्रदेव व्याघ्रपाद मुनि अथवा व्याघ्रपाद गोत्र के रूप में विद्यमान है।^१ बघेलवंशवर्णनम् में व्याघ्रदेव की कहीं वंशा नहीं है। इसके अनुसार बघेल छोग गुर्जरेश्वरों (सम्भवतः धौलपुरनरेशों) के सेवक थे तथा कणदेव गुजरात में ही था।^२ जमावन्दिरी कणदेव की गुजरात में स्थिति की पुष्टि करती है, किन्तु उनमें से कुछ उसका सम्बन्ध बालघनद से जोड़ती है। वही यह कणदेव व्याघ्रदेव का पुत्र और

१. वीर० : सर्ग ११५, १९, २१, २८ ।

२. श्लोक ४ : 'प्रतिपणानन्दित-गुर्जरेश्वरः ।'

तथा ५ : 'स कणदेवः प्रबभूव गुर्जरे ।'

कहीं भाई है^१ । सम्भव है, कर्णदेव ही गुजरात से आने वाला प्रथम व्यक्ति हो और इस कारण इस काव्य में वही वंश-प्रवर्तक रूप में रखा गया हो ।

बघेलवंशवर्णनम् में बोलदेव को कालिंजर के भर-वंशियों का सेवक बतलाया गया है । तथा भीममल्ल उसका पुत्र है ।^२ जमाबन्दियों में ये दोनों भाई-भाई हैं और कालिंजर के भर राजा के चाकर (सेवक) होते हैं । कहीं भर राजा का नाम भी बोलदेव है । इन भाइयों को गहोरा की जागोर और ठाकुर का पद मिलता है और भीममल्ल (या भीममल या भीमल) गहोरा के लोधी शासक के मन्त्री तिवारी को फोड़कर गहोरा पर अधिकार कर लेते हैं ।^३ बोरमानूदय में इसी भीम (मरेन्द्र) से वंशारम्भ होता है तथा उनके पुत्र रागिङ्गदेव के साथ गहोरा शासन का पहला बार उल्लेख होता है ।^४ बघेलवंशवर्णनम् तथा जमाबन्दियों में भीम के पुत्र का रानिकदेव एवं चारणों के लेखों में अनोकदेव नाम मिश्रा

१. परिशिष्ट १ (क)—एकना० : “बघेलन के औलादि लिखा जब से गुजरात से आए । पुरखा ठाकुर कहामें लागि । पुरखा ३—जैसिहदेव १ धीरमदेव २ व्याघ्रदेव ३ । गुजरात से आए पुरखा तीन भे हैं—कर्णदेव ४ सोहागदेव ५ सारंगदेव ६ ।” परिशिष्ट १ (ख)—बंसावली बांधीप (ति) । “गुजराति मा भे पुरखा तीन—१ जैसिहदेव २ धीरमदेव ३ व्याघ्रदेव भाई करनदेव । करनदेव के बंसावली गुजराति मा तीन ।” परिशिष्ट १ (ग) “.....१ व्याघ्रदेव भाई कर्णदेव के बांधी । व्याघ्रदेव के बंसावली ४ पुत्र करनदेव ५ सोहागदेव ।”

२. श्लोक १२ : ‘भरान्वये बोलदेव एषितः.....कलिञ्जरे....’
तथा १३ : ‘तत्सूनुरासीत्.....’ ‘तु भीममल्ल : ।’

३. परि० १ (क) : ‘कालिंजर हिया दुइ भाई भर राजा के चाकर भे । बोलदेव जेठे भीममल लहुरे गहोराहि आए ।.... भीममलदेव गहोरा के लोधिनि कहें मारि के गहोरा छड़ाइ लोन्हेनि ।’

परि १ (ख) : ‘कालिंजर जाइ दुइ भाई भर राजा बोलदेव के चाकर भे । गहोरा जागोरि पाइनि । ठाकुर के सिताच पाइनि । लोधिनि का मारिनि । गहोरा बमल मा ।’

परि १ (ग) : ‘.....तिवारी मिलाइ के आधा राज देइ काहीं होंसा । लोधिनि का मारिनि ।’

३. सर्ग १।६-१०

है।^१ बघेलवंशवर्णनम् के दलक और मलकेश का जल्लेख जमाबन्दीयों एवं अन्य लेखों में दलकेश्वरदेव एवं मलकेश्वरदेव नाम से हुआ है। वीरभानूदय में इनका तथा मलकेश के पुत्र बरियार का नाम नहीं है। साथ ही बरियार^२ के पुत्र के रूप में बघेलवंशवर्णन एवं जमाबन्दीयों में बाया हुआ बोलारदेव^३ वीरभानूदय में सीधे बालन (या बलन) का पुत्र है।^४ इसके पश्चात् कोई मतभेद नहीं है।

बघेलवंशवर्णनम् में बोलारदेव से आगे के नाम इस प्रकार हैं—१२—सिंहदेव, १३-वीरम, १४-नरहरि, १५ भयद (तथा भेददेव), १६-शालिवाहन, १७-वीरसिंह, १८-वीरभानु, १९-रामचन्द्र, २०-वीरमद्र, २१-विक्रमादित्य, २२-अमरसिंह, २३-अनूरसिंह एवं २४-भावसिंह (कवि का आश्रयदाता)।

बोलारदेव के पुत्र सिंहदेव से लेकर वीरसिंह तक नाम-सूची छोड़ कर इस काम्य में कोई ऐतिहासिक सूचना नहीं मिलती। केवल प्रशस्त्यात्मक उद्गार प्रत्येक राजा के लिए प्राप्त है। वीरभानु को सुकुमारदेवों का पुत्र बतलाया गया है,^५ जिसका समर्पण वीरभानूदय से होता है।^६ वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र के सम्बन्ध में नवीन सूचनाएँ हैं। रामचन्द्र के देश (राज्य) में बान्धव नामक दुर्गरत्न है।^७ दुर्ग के पार्श्व में रामचन्द्र की राजधानी रामनगर अवस्थित है।^८ उसके राज्य में ही प्रयाग है, जहाँ त्रिवेणी की शोभा है।^९ इसके आगे केवल भावसिंह के सम्बन्ध में कुछ नयी जानकारी दी गई है।

१. परिशिष्ट १ (क), (ल) तथा (ग)।

२. बघेल० श्लोक १८-: 'वरियारनामा.....।'

तथा १९ : 'बोलारदेवोऽभवदस्य सूनूर्बघेल-वंशान्निमणिर्महीशः।'

३. वीर० १९ : 'पुत्रश्च.....बल्लारदेवो बलिदान-शोण्डः।'

४. बंशारम्भ-सम्बन्धी विस्तृत ऐतिहासिक चर्चा के लिए देखिये—
पीछे अध्याय २ (क)।

५. श्लोक ३६ : 'अमूदयं श्रीसुकुमारदेव्या.....।'

६. सर्ग १।८८-९७ : 'अथाश्रय देवो सुकुमारदेवो...सूते स्म पुत्रं.....
श्री वीरभानुं.....।'

७. श्लोक ४० : 'देशे यस्य प्रसूतमहसो बान्धवो दुर्गरत्नम्।'

तथा ४१-४९।

८. श्लोक ५० : 'पार्श्वे तस्य शिविष 'नगरो....।'

तथा ५१ : 'विभाति रामनगरं....।' एवं ५२-५४।

९. श्लोक ५५ : 'तस्य श्रीरामनुपतैर्विषये शीर्ष-सेवितः। प्रयागोऽस्ति....॥'

भावसिंह अनूपसिंह की रानी कमला से उत्पन्न हुए।^१ ये बान्धवेश कहलाते थे।^२ दिल्लीश्वर (औरंगजेब) इनका मित्र था।^३ यवन सम्राटों से पीड़ित ब्राह्मणों का ये पालन करते थे।^४ बान्धवगढ़ उनका दुर्ग था। वे यज्ञ करते थे। उनकी राजधानी रेवा (रेवापुरी) थी। उनकी राज्य-सीमा पर ये गाँव थे—केदा, कोटर, हंसजात और टमकु।^५

श्री निजामी के अनुसार रामचन्द्र की राजधानी 'रामनगर' का तादात्म्य बान्धवगढ़ से ५ मील पूर्व स्थित रामपुर कस्बे के साथ हो सकता है।^६ वास्तव में यह रामपुर (नैकिन-ज़िला सीधी) बान्धवगढ़ (जिला शहडोल) से लगभग ६० मील दूर है और बान्धवगढ़ के निकट कोई अन्य रामपुर नहीं है। अतः यह रामनगर वर्तमान रामनगर कस्बा (तह० अमरपाटन, जिला सतना) हो सकता है, जो बान्धवगढ़ से लगभग ३५ मील उत्तर-पश्चिम है। यहाँ एक पुराना किला, बड़ी बस्ती और बाजार है। भावसिंह के छोटे भाई जुम्हारसिंह इसी रामनगर के इलाकेदार थे।^७

प्रयाग पर रामचन्द्र का अधिकार होने का प्रमाण जमावन्दियों में भी मिलता है।^८ साथ ही बीरभद्रचम्पू में भी यह अधिकार उल्लिखित है।^९

१. श्लोक ६५ : 'तद्व्राजो कमलाभिधा... प्रासोष्ट' श्री भावसिंहः।'

२. श्लोक ६६ : 'बान्धवगिरिः श्रीभावसिंहः प्रभुः।'
तथा ७८ : 'श्रीबान्धवेशमव्यादसी विन्ध्य-भूमिधर-वासिनी।'

३. श्लोक ७३ : 'यं ...दिल्लीशो मनुते हितं...-।'

४. श्लोक ७५ : 'सम्राजो यवना द्विजातिदमनाः...-।'

५. श्लोक ७६ : 'दुर्गो यस्य चकास्ति बान्धवगिरिः प्राग्याग्य-धारा-ह्रुते-
स्तुष्टो यस्य हुताघनोऽस्ति विदिता रेवापुरी मुन्दते।
केदा-कोटर-हंसजात-टमकु-धामाः परिच्छेदनाः
सीम्नो यस्य भुवः सदाऽवति सतः श्रीभावसिंहः प्रभुः।'

६. 'माइन जेम्स०'

७. परि० १ (क) एकत्रा। देखिये आगे अध्याय ५ (क)।

८. परि० १ (ग) : 'प्राग (प्रयाग) के किला के धूनि में सप्त कालि-
जर छँकि गी।' अर्थात् रामचन्द्र ने १५६९ ई० में प्रयाग में किले
की नींव डलवाई। किन्तु अकबर ने १५८४ ई० में प्रयाग का किला
बनवाया और उसका नाम 'इलाहाबाद' रखा। अतः इसके पूर्व ही
कभी प्रयाग रामचन्द्र के हाथ से चला गया होगा। (देखिये—
अकबर : निजामुद्दीन अहमद : ईलियट एण्ड कोउसन : भाग २ :
१६५२ : पृष्ठ १२१।

९. देखिये आगे अध्याय ५ (क)

कवि के आश्रयदाता भावसिंह के पिता अनूपसिंह का जन्म सं० १६८२ (१६२५ ई०) में हुआ था। उनके जेठे पुत्र भानसिंह को पिता से पूर्व मृत्यु हो जाने से भावसिंह को राज्य मिला।^१ अनूपसिंह का राज्य १६५० ई० में आरम्भ हुआ। औरछा (जिला दतिया) के पट्टारसिंह बुन्देल के आक्रमण से १६५१ ई० से ५ वर्ष तक अनूपसिंह रोवा के बाहर रहे। १६५६ ई० में वे साहजहाँ के दरबार में हाजिर हुए। उन्हें तीन हजारों मनसब देकर पुनः रोवा की गद्दी पर प्रतिष्ठित किया गया और बाम्बवगड़ दर भी उनकी सत्ता मान ली गई।^२

इस समय छत्रसाल बुन्देला का उदय हो रहा था। १६७२ ई० में उन्होंने रोवा (जमुनीमाल) बघेल वंश के बाम्बव महर (जिला सटना) के बघेल शासक को पाना-राज्य का अधीनस्थ बना लिया और पश्चिमी बघेलखण्ड की बहुत सी सीमा बुन्देलखण्ड में सम्मिलित कर ली। दिल्ली के संकेत पर भावसिंह के राज्यकाल (१६७५-९४) में मुगल सेनाओं ने छत्रसाल की बाड़ को पीछे धकेला।^३ सम्भवतः इसी वर्ष में रूपणि ने दिल्लीशहर को भावसिंह का मित्र बनलाया होगा।

भावसिंह का जन्म आश्विन कृष्ण १४, संवत् १७०३ (१६५० ई०) में हुआ था। उनकी बहुत साहिदेई निर्जा राजा जयसिंह कछाहा के पुत्र राजा रामसिंह को तथा एक लक्ष्मी राणा भीमसिंह के पुत्र सुजर्मल को (सन् १६८७ में) ब्याही गई थी। भावसिंह का पहला विवाह १४ वर्ष की आयु में जित्तौड़ के राजा राजसिंह की कन्या अजय कंवोरि के साथ हुआ था। इसके अतिरिक्त १८ विवाह और हुए थे। इनके अनेक पुत्रों में से कोई अधिक नहीं रहे, इसने इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र अनिरुद्ध सिंह (जन्म सं० १७१३-१६७६ ई०) को गोद लिया और यह व्यवस्था भविष्य में अनिरुद्ध सिंह की हत्या का कारण बनी। भावसिंह की मृत्यु संवत् शुक्ल ११ सं० १७५१ (१६९४ ई०) को हुई तथा अनिरुद्ध सिंह उसी वर्ष पौष शुक्ल १२ (सन् १६९५) को मारे गए।^४

रूपणि ने भावसिंह की राज्य-भोगा के जिन चार गाँवों का सम्बल किया है, उनमें कोटर का सम्बल वीरमानन्द काव्य में प्राप्त है। यह गाँव मनुना-

१. परि० १ (क)—एकवा :

२. आदिन० पृष्ठ ४०७।

३. मगवानदास शुक्ल (डा०) : महाराजा छत्रसाल बुन्देला : आगरा : १९५८ : पृष्ठ ४३, ५६-५९।

४. परि० १ (क) : एकवा।

तट पर था ।^१ इससे प्रतीत होता है कि भावसिंह के राज्य की उत्तरी सीमा यमुना-तट तक विस्तृत थी ।

अबवर ने १५९७ ई० में बान्धवगढ़ का ध्वंस कराया था और १६०२ ई० में बीरभद्र के अवध पुत्र दुर्बोधन को बान्धवगढ़ की सत्ता सौंप दी थी ।^२ किन्तु जहाँगीर ने सं० १६११ (१६०५ ई०) में बादशाह होते ही अपने 'बन्दह' बीरभद्र के वध पुत्र विक्रमादित्य को राजा बनाकर १८ परगनों की सत्ता उन्हें सौंपी । विक्रमादित्य दिल्ली से लौटे किन्तु उन्होंने बान्धवगढ़ को राजधानी न बनाकर रीवा को बनाया ।^३ तब से रीवा ही बघेलों की राजधानी रही, यद्यपि उन्हें 'बान्धवेश' कहलाना आज तक प्रिय है । रूपणि ने इसी रीवा-राजधानी को 'रेवा-पुरी' लिखा है ।

रूपणि ने भावसिंह के ९ समासदों के उल्लेख किये हैं । इनमें से ६ विद्वान् थे । बालकृष्ण सूरि शास्त्रों के ज्ञान में अजेय थे, साथ ही धैर्यवान्, बदार, सुशील, गम्भीर और विचारशील थे ।^४ किशोर समस्त विद्याओं के व्यसनी और पण्डितों को मुग्ध करने में चतुर थे ।^५ गोवर्द्धन बाजपेयी साहिब और न्याय के मर्मज्ञ थे ।^६ पादशाह गौड़ वंश के लालमणि विद्वान्, सज्जन और

१. बीर० ४११ : 'मय प्रयातो बीरीश्व' कोटरं क्रमतोऽगमत् ।

कालिन्दा विष्णुशर्मादि-प्रतिमाभिरलङ्कृतम् ॥'

तथा ४१४, ५३, ५८ : सम्भवतः यह एरब (सार्स) से १४ मील पूर्व है ।

२. आई० पृष्ठ ४०६-७ ।

३. परि० १ (क) : एकजा- 'तकसोम परिगने माफिक फरमान जहाँगीर साह का राजा विक्रमाजीत की जागीर का "तक सं० १६६१ के साल । फरमान सरकार महाल परगने १८ । रीमा का किला सलेमशाह बनवावा । विक्रमाजीत से किले आए ।' अर्थात् १५४४ ई० में जब बीरशाह सूर ने कालिंजर पर आक्रमण किया, तब उसके पुत्र सलोमशाह ने रीवा पर अधिकार कर किला बनवाया था । विक्रमादित्य बघेल से इस किले में रहना प्रारम्भ हुआ ।

४. बघेलवंशवर्णनम् : श्लोक ७९ :

'सूरिस्तस्य बिराजते नरपतेः श्री बालकृष्णाभिषः ।'

५. वही श्लोक ८० : 'तस्यास्ति विद्वाननघः किशोरः ।'

६. श्लोक ८१ : 'वकास्ति गोवर्द्धन-बाजपेयो ।'

मधुरभाषी थे तथा सामवेद कौयुमी शाखा पर उन्हें विशेष अधिकार था ।^१ औपगवि शास्त्रार्थ में कुशल, कवि-प्रतिभा में भारवि के समान, मत्तकर्त्ता, वेदज्ञ एवं राजा को विशेष प्रिय थे ।^२ कमलनयन दाक्षिणात्य वेदों में वारङ्गत, सवजन, कुलीन, परोपकारी एवं शिल्पशास्त्र के मर्मज्ञ थे ।^३ रूपणि ने सेठ गोपीनाथ, अंगरक्षक कोटू और प्रजापालक, राजरक्षक एवं गम्भीर बुद्धि वाले जगन्मणि माम के मन्त्री का भी वर्णन किया है ।^४

श्री निजामी के कथनानुसार रीवा ऐतिहासिक अभिलेख कभीराम द्वारा उपर्युक्त व्यक्तियों के वर्तमान वंशधरों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की गई थी, किन्तु उपर्युक्त विडानों की कोई कृतियाँ उपलब्ध नहीं हुईं ।^५

१. श्लोक ८२ : '.....पाश्चात्य-गोडाग्रणीः ।

प्राज्ञः सामसु कौयुमाह्वय-विटपञ्चान्दोग्य-वेत्ता हरेः ।

भक्तो कालमणिश्चकास्ति.....॥'

२. श्लोक ८३ :

'श्रीमानौपगविः समस्त-निगमैः काव्यैक-विद्याटवी—

प्रज्या-पञ्चमुखः कविबिजयते राज्ञः छविर्वस्त्रमः ॥'

औपगवि का नाम कल्याणदास अग्निहोत्री था । ये राजा भावसिंह के गुरु और अग्निहोत्र-यज्ञ के कर्त्ता थे । इनके वंशज रञ्जुक-राम ने सं० १८८५ (१८२८ ई०) में संस्कृत में 'अग्निहोत्रि-कुल-वंशावली' लिखी है, जिसकी पाण्डुलिपि रीवा में उन्हीं के वंशज श्री रामप्यारे अग्निहोत्री के समोप है । इसमें 'औपगवि' का विवरण इस प्रकार है—

'वेनदासस्य पुत्रो द्वौ ज्येष्ठौ औपगवि-नामकः ।'

तथा—'श्री भावसिंहो रणमेदिनीजयः कल्याण-औपगवैर्वभूव शिष्यः ॥

.....चक्रदहो-रुग्वाह्यश्च वंभीरीनामपत्तनम् ।

कन्दोडा-नामक-ग्रामा प्राप्ता औपगवि-श्रमंखे ॥'

उल्लेखनीय है कि कल्याणदास के वंशज अग्निहोत्री सतना जिले के चक्रदहो, रंगवा, बम्हीरी और कन्दोडा आदि ग्रामों में अब भी हैं । विशेष विवरण के लिये देखिए बघेल० संपादकोय टिप्पणी ।

३. श्लोक ८४ : 'कमलनयन-नामा शोभते दाक्षिणात्यः ।'

४. श्लोक ८५, ८६ और ८७ : 'जगन्मणिरयं मस्यास्ति मन्त्रिद्वजे ।'

५. 'नाइन जेम्स० ।'

(ग) भावसिंह—प्रस्तुत रचना में भावसिंह के सभी पूर्वजों की प्रशस्ति में रूपणि मिश्र ने कुछ न कुछ लिखा है। वे सभी बोर और यशस्वी थे। किन्तु इस वर्णन से उनके वास्तविक व्यक्तित्व की जानकारी नहीं मिलती। केवल रूपणि के आश्रयदाता भावसिंह के चरित्र पर यथार्थ प्रकाश पड़ता है।

भावसिंह विद्या और विद्वानों के प्रेमी थे, अन्यथा रूपणि प्रधानमन्त्री जगन्मणि से पहले विद्वानों की प्रशंसा लिखने का साहस न करता। कथासरित्सागर तथा सारामञ्जिमुष्णार्णव की उच्युक्त प्रतिलिपियाँ भावसिंह की साहित्य-सङ्ग्रही वृत्ति की प्रकाश में लाती हैं। भावसिंह श्रीराम के अनन्य भक्त थे।^१ वे गम्भीर, दानशील, प्रतिभाशाली, प्रजापालक, भुरूप, योजस्वी एवं धैर्यवान् थे।^२ वे गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक तथा यज्ञकर्ता थे।^३ उन्हें कवि ने काव्य, आश्रय और कला के मर्मज्ञ लिखा है।^४ पोछे जिन वैवाहिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है, उनसे भावसिंह के समय में बघेलवंश की उच्च प्रतिष्ठा घोषित होती है। रीवा के किले में कई देवमन्दिरों का निर्माण तथा विख्यात महामृत्युञ्जय की मूर्ति की प्रतिष्ठापना भावसिंह के द्वारा कराई गई बतलाई जाती है।

(घ) काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व—बघेलवंशवर्णनम् का प्रथम ऐतिहासिक महत्त्व यह है कि इसमें संस्कृत पद्यों में बघेल-वंश की क्रमवद्ध सूची प्रस्तुत की गई है। यह काव्य १६७८ ई० में लिखा गया। अतः यह सूची परवर्ती हिन्दी लेखों के लिए अपने आप में एक और प्रमाण बन जाती है और

१. बघेल० श्लोक ६५ : 'श्रीमिथिलाधिराज-जनया-प्राणेश-भक्त्याग्रणीः ।'

२. श्लोक ६६ :

'गम्भीर्येण महोद्धीनघरयन् दानेन वैरोचनि

मत्या देवगुहं प्रजाश्वनगुणेनेष्वाकुमुर्वीपतिम् ।

कामत्या मग्मयमोजसा दिनकरं धृत्या महोमण्डलं

जीष्मादेय चिराय बान्धवगिरेः श्रीभावसिंहः प्रभुः ॥'

तथा श्लोक ७३ :

'यं पत्न्यो मदनं वदन्ति रिपवो दावानलं साधवो

मान्वातारमुदीरयन्ति विविधा कल्पद्रुमञ्चाधिनः ।'

३. श्लोक ७५-७६ : '-----प्राज्याख्य धाराहृतं—

स्तुष्टो यस्य हुताशनोऽस्ति-----'

४. श्लोक ८८ : 'काव्याख्यान-कला-विदग्धविषयः-----'

५. उदाहरण के लिए देखिए—रघुराजसिंह कृत आनन्दाम्बुनिधि

(१८५४ ई०) पृ० ६१ ।

यह सिद्ध करती है कि कम से कम ३०० वर्ष पूर्व बघेलों के पूर्वजों की सूची इस रूप में थी; साथ ही यह बीरभानूदय आदि पूर्ववर्तियों से जो मतभेद उपस्थित करती है, उसके कारण वह इतिहासकारों को मतभेद के आधारों के परिपोष के लिए विवश करती है, इस प्रकार बघेलों के पूर्वजों के सम्बन्ध में जो विवाद या सन्देह है, उन पर स्वयं ऐतिहासिक प्रकाश डालते हुए यह काव्य अपने आप में एक आधार बन जाता है। इस काव्य के अभाव में सम्भवतः वर्तमान विद्वान् परवर्ती हिन्दी लेखों को अप्रामाणिक मान बैठते और डा० होरानन्द शास्त्री की भाँति बीरभानूदय काव्य की सूची को अन्तिम मान लेते। विषयाग्नर के मय से ऐतिहासिक तथ्यों एवं सम्भावनाओं के विस्तार को प्रथम न देकर हम मतभेदों के निवारण का भार यहाँ पर भावी इतिहास-प्रेमी लेखकों को सौंपते हैं और आशा करते हैं कि वे इस काव्य को सूचनाओं को उचित महत्त्व देंगे।

इस काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है महाराज भावसिंह की सभा और उनके व्यवित्त की एक झोंकी प्रस्तुत करना। कवि के द्वारा वर्णित सभासदों के वंशधर आज भी वर्तमान हैं। अतः स्वभाविक है कि कमसे कम वे ३०० वर्षों पूर्व रोवा राजधानी की एक झलक इस काव्य के माध्यम से पाने में सक्षि रत्ते। इतिहास के अन्वेषक तो इस दृष्टिकोण से सचि लेंगे। तथापि यह कहना होगा कि इस काव्य का मूल्य अधिकतः प्रशस्त्यात्मक है और बीरभानूदय जैसे ऐतिहासिक काव्य के गौरव का बहुत थोड़ा अंश ही इसे मिल सकेगा।

(ख) काव्यात्मक सौन्दर्य—प्रशस्त्यात्मक एवं ऐतिहासिक आधार होने पर भी बघेलवंशवर्णनम् में काव्य-सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में है। काव्य के मूल लक्ष्य के अनुसार इसमें स्वभावतः बीर एवं रौद्र रसों का परिपोष हुआ है। ऐसे स्थलों पर आरम्भटी वृत्ति, अञ्ज गुण और गोडो वृत्ति के दर्शन

बीरभुज व्याघ्रदेव करन सोहागुदेव

संगरामसिंह औ बिलामदेव जानिये ।

भीमल अनिक देव बलदेव दलकेन्द्र

मलकेस बरियार बुस्तार मानिये ॥

सिंहदेव भैरोदेव नरहरि भेददेव

त्यो शालिवाहन विरसिंहदेव मानिये ।

बीरभान रामसिंह बीरमद विक्रम जू

अमर अनूप भावसिंह को बतानिये ॥'

होते हैं। अलङ्कारों के क्षेत्र में अनुप्रास कवि की प्रिय श्रुति होता है। कुछ उदाहरण लीजिये—

‘सुवीर-पट्टादिक-वीरभूषणः प्रतिक्षण-सत्रियराज-भोषणः ।

विपदा-ललातिबलारि-दारणः समामु बभ्राम ययः-परायणः ॥ १० ॥’

‘तस्यासौत्तमयः सुभाषितनयः श्योनिज्जितेन्द्रात्मजः

शोणीपालमणिः प्रतापतरणिदनिपु चिन्तामणिः ।

मानासस्त्रबलः कलामु कुशलः प्रीडारि-कालानलः

कीर्त्यालङ्कृत-सप्तबाहि-बलयः श्रीवीरसिंहो नृपः ॥ ३१ ॥’

रूपि ने अन्य अलङ्कारों के प्रयोग भी सुन्दर किये हैं। रामचन्द्र के राज्य (प्रयाग) में बहने वाली गङ्गा का गौरव सुनिये, जिसमें उपमा का रम्य प्रयोग है—

‘हिमाद्रेः पार्वतोनाथ-करुणैव निरन्तरम् ।

आविर्मूला पुनायेया मृदनायां परम्पराम् ॥ ५८ ॥’

रोद्र रस के साथ भ्रान्तिमान् का एक उदाहरण निम्नलिखित है। वीर भानु के द्वारा काटे हुए शत्रुओं के हाथियों के रक्त से घरती आग्लावित हो रही है और रक्तों की आवाज नहीं बुँडे मिलता, क्योंकि बैलास रक्त से लाल हो गया है—

‘यत्सङ्गापाठ-विद्ध-प्रतिमट-वरम-प्रीत-कुम्भीन्द्र-कुम्भ-

व्याधत्-रक्तधाराः सितितलमसिलं चारु सिञ्चन्त्य एताः ।

बैलासं गौरिकाभा-रुचिरमग्निनवं व्यादिशन्त्यः समन्तात्

हृद्रानावासमूमेरपरिचय-भ्रमैर्ब्याकुलान् सन्दिशन्ति ॥ ३३ ॥

अत्युक्ति का एक प्रयोग देखिये। स्वर्णदान में रुचि रखने वाला भावसिंह केवल मृगमा के लिए बाहर निकला है, किन्तु स्वर्ण छिन जाने के भय से इन्द्र, शेष और मुमेष की चिन्ता हो गई—

‘यस्मिन् बाञ्छति हेमदेऽपि मृगमासौहिणीभिः समं

पाकारिर्नगरीं निजां कलयति द्वादत्त-लोहार्यलाम् ।

शेषोऽप्यनमितोन्नमत्-कणशतो घटे मणि कच्छपो

दुःखाद् भारमुरीकरोति नितरां मेरुः समुत्कम्पते ॥ ७४ ॥’

रूपि ने मान्धवगढ़ का १० श्लोकों में काव्यात्मक चित्राङ्कन किया है। इस स्थल पर प्रकृतिचित्रण भी सुन्दर रूप में है। इस ऊँचे पर्वत के ऊँचे शृङ्गों के बीच चमकने वाले तारागण पुष्पों की भाँति एवं आकाश की नीलिमा पत्तों की भाँति प्रतीत होती है। पर्वत इतना ऊँचा है कि मध्याकाश तक पहुँच कर

भी चन्द्रमा नहीं दिखता, केवल कुन्द के फूल गिलने में ही उसका उदय माना जाता है—

‘पृथोमन्त्रि तरौ तरौ स्फटिकता-शोभाञ्जुस्तारकाः

श्वोयन्त्रि च तारका-विरहिता नीला नमोऽप्या बहो ।

किञ्चोच्चतरमनः परं कुमुदिनी-प्रागप्रियश्चन्द्रमा

श्वोमनो मन्मथतोऽपि कुन्द-विकसित्याज्जीयते प्रत्ययम् ॥ ४६ ॥’

दुर्ग के मन्त्रों में वर्यां ज्यु का दृश्य सपम्पित रहता है, क्योंकि रमणियाँ बिजली के समान, इन्द्रनील मणि की प्रसृत कान्ति का प्रवाह मेघ के सदृश, हाथियों की बिम्बाङ्ग धन-भर्जन की भाँति प्रतीत होती है तथा ज्योत्स्ना से पित्रलने वाली चन्द्रकान्त मणिओं से बूँदें टपकती रहती हैं—

‘सौदामिन्यो हसितवदना यत्र कामिन्य एव

स्फीतश्रेणी धन-जञ्जन्चामिन्द्रनीलाञ्चिरोधः ।

शरजो मत्त-द्विरद-पदलो-चोत्कृतिर्विन्दु-संघः

चन्द्र-ज्योत्स्ना-प्रसर-विसरच्चन्द्रकान्त-प्रवाहः ॥ ४८ ॥’

वीरमद्वचम् , रामचन्द्रयशः-प्रबन्ध एवं वीरभानूदयकाव्य का इस कवि को परिचय प्राप्त था, क्योंकि उनकी छाया इस काव्य में यत्र-तत्र झलकती है। वीरमद्वचम् की अनुकृति में रामचन्द्र की राजधानी को यहाँ भी अयोध्या (अ + योध्या) कहा गया है—

‘अयोध्या नगरो दम्य पुरन्दरशरैरपि ।

मधीमानुचराः सर्व्वे प्रतिपन्न-विभीषणाः ॥ ३८ ॥

परमात्मज-बल-कलिता मृगोवराधिता यस्य ।

अङ्गद-वच्चिउ-शोभा सेना लङ्कां भयं तनुते ॥ ३९ ॥’

रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध में जैसे वीरार्णकार प्रबन्ध है, उसी प्रकार एक स्थान पर कवि ने भी प्रयोग किया है—

‘...अतिशक्तिन-काय-कैलास-कुन्देन्दु-शङ्खावदाती

द्वितीयां कदाविद्वधूः प्रथमेदित्थसौ संशमानोर्ध्व-

नारोश्चरोऽमृद् घूर्ध भाति मे ॥ ७१ ॥’

वीरभानूदय की शैली की छाया प्रशस्त्यात्मक श्लोकों में देखी जा सकती है, किन्तु प्रवाद गुण और अल्प-प्रमाणात्मकता न होने से रसनिम्पत्ति में उसकी तुलना में नहीं आती।

यानचरितमानस आदि हिन्दी के तत्कालीन काव्यों में हिन्दी के छन्दों में जैसे संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है,^१ उसी शैली की अनुकृति में प्रस्तुत

१. इन हिन्दी काव्यग्रन्थों में प्राप्त स्तुतियों में हिन्दी के साथ साथ

काव्य में दो छप्पय छन्दों के प्रयोग हैं। इनमें कोमल-कान्त-पदावली है और प्रयोग कलात्मक है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

‘नव-नोरद-रुचि-हरण सरणि-तनया-तट-नेतन,
मुरली-रव-माधुर्य-गोप-रमणी-हृत-चेतन ;
धृत-गोवर्द्धन-शैल जम्भरिपु-मान-विनाशन ;
चिर-निग्रह-गत-तात-हेतु-कंसामुर-नाशन ;
मगधाधिराज-सेना-दलन मधुमूदन करणायतन ।

यो भावसिंह-भूपालमव दन्दशूक-कालिय-दमन ॥ ७७ ॥’

रूपणि मिथ ने एक छन्द में प्राकृत भाषा और एकाक्षर—छन्दों के प्रयोग किये हैं—

‘वरुना सलपा-सहिर्भं वगहा कंधेन तिवक्त्रा महिम्नम् ।

गिरि-जल-बंवल-निवासी सौ देव तुम्हाणं जय ॥ ९७ ॥’

(ब्रह्मा, रुद्र और नारायण, अपनी परियों—सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के सहित वृषभ (गन्दी), गरुड़ और हंस के कन्धों पर सवार होने वाले, त्रिशूल, कमण्डलु और शक्र धारण करने वाले पर्वत (कैलाश) जल (क्षीर-सागर) और कमल पर निवास करने वाले त्रिमूर्ति के रूप में परिणत वह देव तुम्हारी जय करे ।)

मङ्गलाक्षरण को देखने से प्रतीत होता है कि रूपणि का दर्शन सम्बन्धी ज्ञान भी अच्छा था ।^१

संस्कृत के स्वच्छन्द मिथण मिलते हैं। देखिये—रामचरितमानस,
उत्तरकाण्ड : वेदस्तुति —

‘अभक्त मूलमनादि तह त्वच चारि निगमागम भने ।

पट बंध शाखा पंचविश अनेक पर्ण सुमन घने ॥

फल मुगल विधि कटु मधुरबेली अकेलि जेहि आश्रित रहे ।

पल्लवत फूलत भवल निव संसार विटप नमामहे ॥’

तथा—रघुराजसिंह : रामचरणधर : बम्बई १९८० पु०-१९७-५८ :

‘नमोज्जुताय राघवाय रावणान्तहारिणे ।

विदेहकन्यकाप्रियाय राजधर्मधारिणे ॥’

१. ध्येल० श्लोक २ : साङ्ख्य मत :

‘स्वात्मानं प्रकटोक्तरोति विधिना तत्त्वस्य वेत्तुः पुरो

यत्राविष्कुर्वते निजान्न विद्यमान् दोषान् यतः छद्मिता ।

ब्रह्माण्डं समवायि-कारणतया व्याप्नोति या सर्वतः ,

तां मूलप्रकृतिं प्रपञ्चमयतो मुक्त्यै सदोपास्महे ॥’

४. पत्र-काव्य : रामपत्रत्वम्

(क) कवि-परिचय—

‘रामपत्रत्वम्’ ग्रन्थ का परिचय देने से पूर्व हम ग्रन्थकार विश्वनाथसिंह के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानकारी प्रस्तुत करना चाहते हैं। विश्वनाथसिंह की साहित्यिक कृतियों के सम्बन्ध में पीछे कहा जा चुका है।^१ उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ बातें निम्नलिखित हैं—

पीछे भावसिंह के प्रकरण में उनके दत्त पुत्र अनिरुद्धसिंह का उल्लेख किया गया है।^२ अनिरुद्धसिंह के पुत्र अबचूत सिंह (१६९५-१७५५), उनके पुत्र अजीत सिंह (१७५५-१८०८), उनके पुत्र जयसिंह (१७६४-१८३४) और उनके पुत्र विश्वनाथसिंह थे। इनका जन्म वैशाख शुक्ल १४, सं० १८४९ (१७८९ ई०) में हुआ था। युवराज की अवस्था ही में १८१३ ई० में बिना जयसिंहदेव ने उन्हें राज्यकार्य सौंप दिया था। १८१४ ई० में अंग्रेजों के साथ हुई सन्धि पर जयसिंह के माय-साथ विश्वनाथसिंह के भी हस्ताक्षर हुए थे। इस सन्धिवत्त में विश्वनाथसिंह की रीवा नामन से सम्बद्ध बतलाया गया है।^३ युवराज के रूप में विश्वनाथसिंह ने २० वर्षों तक राज्य-कार्य किया। अत्यन्त सकल शासक थे। भौदूलाज पागडे उनके दीवान थे। उनकी ५ महा-रानियाँ, १ पुत्र यशराजसिंह और तीन कन्यायें थीं। इनकी एक कन्या विष्णु-कुँवर विदुषी थीं।^४

विश्वनाथ सिंह का राजारम्भ १८३४ ई० में हुआ और मृत्यु कातिक कृष्ण सप्तमी, सं० १९११ (१८५४ ई०) की हुई। जीवन के अन्त के लगभग ३५ वर्षों तक वे संसूत और हिन्दी में निरन्तर रचर्चा करते रहे। इनकी समा दार्शनिकों, कवियों और राजनीतिज्ञों से भरी रहती थी। ये स्वयं

१. अध्याय २ (ग)।

२. अध्याय ४ (३-ख)।

३. ऐचिसन—शी० मू० : रीवा अंडर दि क्राउन : ट्रोटीज ऐण्ड सनदस विम ब्रिटिश गवर्नमेंट : ब्रिट ५ : दिल्ली : १९३३; चतुर्थ सन्धि : पारा ७ : पृ० २५७ तथा आगे।

४. संसूत वर्णन : जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी।

कितने ही काव्यकारों एवं विचारकों के प्रेरणा-स्रोत थे। ये अपने बाल में उत्तर भारत में अत्यन्त विख्यात विद्वानों में से एक थे। चित्रकूट, काशी, मिथिला, अयोध्या, वृन्दावन, प्रयाग और काञ्ची जैसे विद्याकेन्द्रों के विद्वान् इनसे मिलने और शास्त्रार्थ करने आया करते थे। स्वयं भी अनेक स्थानों की यात्रा इन्होंने विद्वानों से वार्ता करने के लिए ही की थी।^१

पाण्डुलिपि

सरस्वती कोप-भाण्डार, किला रोवा में 'रामपरत्वम्' नाम से ११ पत्रा का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ सुरक्षित है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल अग्राह दुबल ११ सं० १८१७ (१८४० ई०) दिया हुआ है। यह विश्वनाथसिंह द्वारा रचित है।

भाण्डार के रजिस्टर में विश्वनाथ सिंह की संदृत रचनाओं में 'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह' नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख है। यह दूसरी पाण्डुलिपि के रूप में (दस्ता ११६ स्टोक १६) सुरक्षित है। इसमें १५ पत्रा हैं और ग्रन्थ सम्पूर्ण है। इसका लिपिकाल 'बुंवार यदि १ संवत् १९१०' (सन् १८५३) दिया हुआ है, किन्तु आगे फिर 'मिति घोष यदि १४ का लिखा थी तिवारी हरीराम' लिखा है। सम्भवतः किसी लिपिक की बुंवार (आश्विन) में पूरी की गई प्रति की दूसरी प्रतिलिपि हरीराम तिवारी ने घोष (१८५४ ई०) में पूरी की। इस ग्रंथ में सब कुछ वही है, जो उपर्युक्त रामपरत्वम् में है। अर्थात् 'रामपरत्वम्' की ही ये दो अलग-अलग प्रति हैं। इसका नाम 'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह' पड़ने का कारण यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः इस नाम से अनन्ताचार्य स्वामी ने कोई ग्रंथ लिखा था, जिसका यह प्रतिवाद है। ग्रन्थ का ५ वाँ दलोक इस प्रकार है—

‘भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह-प्रतिवादिकाः ।

श्रीविश्वनाथ-विहिता नतयः सन्तु सन्तजाः ॥’

स्वामी अनन्ताचार्य ने १५ दिन पूर्व ही विश्वनाथसिंह को कोई खर्चा (विवेचनात्मक पत्र) भेजा था, जिसका उत्तर विश्वनाथसिंह ने भेजा। स्वामी जी का पत्र १ वर्ष पूर्व विश्वनाथसिंह द्वारा भेजे हुए अन्य पत्र का उत्तर था।

-
१. रघुराजसिंह : रामरसिकावली (भक्तमाला) : प्रकाशित बम्बई : विश्वनाथसिंह का विवरण तथा युगलदास-कृत विश्वनाथसिंह-चरित्र (रचनाकाल सं० १९११) : सरस्वती कोप भाण्डार, रोवा। साथ ही देखिये सं० बा० दे० : पृष्ठ १३०-२२५।

सम्भवतः स्वामी अनन्ताचार्य चित्रकूट में इन दिनों स्थायी रूप से निवास कर रहे थे ।^१

स्वामी जी के सम्बन्ध में हमें अधिक बात नहीं है, किन्तु उनके साथ हुए विश्वनाथ सिंह के एक छात्रार्थ का, जो प्रस्तुत ग्रन्थ से सम्बद्ध विषय पर ही हुआ प्रतीत होता है, विश्वनाथसिंह के रासकलममुगलदास 'मुगलेश' ने उल्लेख किया है ।^२

रासपरत्पम् ग्रन्थ में प्रारम्भ में १६ श्लोक हैं, जिनमें से प्रारम्भ के ८ श्लोक आचार्य जी की प्रशस्ति के रूप में हैं । इन्हो ८ श्लोकों पर काव्यात्मक

१. रासपरत्पम्-श्लोक-१-१६ :

‘ओमता पत्रमायातं चित्रोदन्तेन सम्मतम् ।

” परामुष्टा दुष्टवेदं परमाद्भुतम् ॥

अनीमयदलं चारस्वदीयं तन्मदन्तिकम् ।

यदलेति महाचार्यः स्वपत्रे मां प्रति स्फुटम् ॥

आपाङ्क-कृष्णकादश्यां चित्रकूट-तटे विभो ।

निश्चितस्तद्युतोदन्तः..... ॥’

‘ओदासीभ्येन गमने जायते नैव कारणम् ।

इति स्वदीय दलतः शङ्का विज्ञात-पूर्विका ॥

आगम्यत इति प्रोक्तं मुक्तो हेतोश्च नाङ्गमतम् ।

आगम्यते कदा वेति पत्रो तां गतवापिकीम् ॥

स्वयैव प्रेषितां राजन् नूनं विस्मृतवानिति ।

समागमे प्रापमिके नव गच्छति भवानिति ॥

पुष्ट्याद् भवता प्रीत्या मापणादेरभावतः ।

अवस्थितेः स्वलादीनामप्रदर्शन-कारणात् ॥

मदीयासीर्यनः श्रुत्वा वैष्णवान्नामुमोदनात् ।

उद्दिश्य सदनस्वीयमनाकारण-कारणात् ॥’

‘अत्र प्रस्तुतरं किञ्चिद् विज्ञानं विज्ञापयामि वः ॥’

२. विश्वनाथ-प्रज्ञाश (या विश्वनाथसिंह-चरित्र) : स० को० मा० रोषा :

‘आचारिन में श्रेष्ठ जो प्रथित अनन्ताचारि ।

शास्त्रार्थ करि जोति लिय तिनने गभामंशारि ॥

यै सर्रा जो लिख्यो तैहि राण्डन कोन्हों धंस ।

ग्रन्थ विदित सो विमुष सब जानत कह जुगलेश ॥’

दृष्टि से यहाँ पर विचार किया जायगा। अन्तिम ८ श्लोक (जो पीछे टिप्पणी में दिये जा चुके हैं) दोनों ओर के पत्र-व्यवहार की एवं वार्ता की खर्चा करते हैं। १६ वें श्लोक के पश्चात् विश्वनाथसिंह दार्शनिक भूमिका पर उठकर राम के सर्वश्रेष्ठत्व का प्रतिपादन करते हैं। यह विवेचन गद्य में है, किन्तु ५ भाग ओर उद्धरण यमायान गद्य एवं पद्य दोनों में है। विवेचन भाष्य-शैली में है। वास्तव में यह दार्शनिक विवेचन ही, जो पत्र के रूप में लिखा गया, 'रामपरत्वम्' ग्रन्थ के रूप में बन गया तथा प्रारम्भिक श्लोकों की भूमिका-मात्र मानना चाहिए। यहाँ इतना और कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि युगलेश ने दार्शनिक में समा के बीच विश्वनाथसिंह की अनन्ताचार्य के ऊपर विजय का गौरवपूर्ण उल्लेख किया है, किन्तु विश्वनाथसिंह और स्वामी जी दोनों के ही पत्र अत्यन्त शिष्टापूर्ण और परस्पर प्रशंसात्मक हैं। विश्वनाथसिंह की भाषा में स्वामी जी की प्रकाण्ड विद्वत्ता के प्रति भावपूर्ण प्रणति है, उसमें विजय-गर्व की गन्ध कहीं नहीं है।

(ख) ग्रन्थ में प्राप्त काव्य-सौन्दर्य

प्रशस्ति के रूप में प्रारम्भ में प्राप्त ८ बलों में से प्रथम ३ काव्यात्मक विधीय हैं। इनमें एक ओर स्वामी जी की अनाद्य महिमा का दिग्दर्शन है, दूसरी ओर विश्वनाथसिंह की पाण्डित्यपूर्ण प्रौढ पदपोजना है। अनुप्रासों का गुम्फन दीर्घ समासों के साथ हुआ है। पहला उदाहरण कुलक का है—

‘स्वस्ति श्रीछाङ्गवेदाऽप्रतिम-सरसि नौस्लासना-भास्करेषु,
प्रस्कृज्जर्दनाली-गहनतर-वनो-वार-वञ्चननेषु ।
मन्दद-वन्दाद-भूमीपति-मुकुट-मिलन्मुग्ध-माणिष्यमाला-
(भा)बादित्यांशु-जाल-व्यतिकर-विकसमञ्जु-पाशम्बुजेषु ॥ १ ॥
ध्राजद्वैकुण्ठ-कुण्ठीकरण-करगणीद्भासि-साकेत-केतु-
श्रीराजद-रामचन्द्रातुलपद-युगलाम्भोज-पुष्पन्धयेषु ।
श्रीमन्नारायणेन्द्रुप-विमल-लसच्चन्द्रिका-पान-लोला-
(“”) चेतश्चकोरेष्वनुपम-कविता-सार-यायोधरेषु ॥ २ ॥
दृष्यद-वादि-द्विपेन्द्रोदित-करट-तटी-कूट-कुहाक-कोटि-
स्फूर्जद-“(?)-वचन-नख्येणि-“”कण्ठीरवेषु ।
माहात्म्याम्भोधि-पृथोदित-विशद-यशरञ्ज-विद्योत्तराजी-
विघ्नाजल्लघ्न-वर्णप्रकर-कुवलयोस्लास-लोकम्पुण्येषु ॥ ३ ॥

१. ग्रन्थ के अन्त में—‘तस्मान्निखिल-ग्रन्थानां प्रभुः श्रीरामचन्द्र एवास्तीति सिद्धान्तः ।’

येषां व्याख्यायते व्याख्या प्रतिवादि-मयङ्कुरा ।

तेषु श्रीमदनन्तार्य-पादाम्भोजेषु मञ्जुषु ॥ ४ ॥

भुक्ति-भुक्ति-सदानन्द-सन्दोह-प्रतिवादिकाः ।

श्रीविश्वनाथ-विहिता नतयः सन्तु सन्तताः ॥ ५ ॥

इसके पश्चात् प्रसादात्मक शैली में तीन श्लोकों में स्वामी जी की अत्यन्त भावपूर्ण प्रशस्ति है । इन श्लोकों में भक्ति का तोत्र प्रवाह है । इनमें प्राप्त भावोद्रेक इन्हें स्तुतिगीत बनाने में पूर्णतः संशय है । इनमें प्राप्त कवि के उत्तरङ्ग हृदय का उद्वेलन रसिक प्राणी का अभिप्रेरक कर सकता है—

योष्माकोणानुकम्पातः सम्पातः सर्वपाप्मनाम् ।

कल्याणानि प्रमाणानि संस्फुरन्ति निरन्तरम् ॥ ६ ॥

तमांसि त्वंसन्ते परिणमति भूयानुपशमः,

सकृत् संवादेऽपि प्रपद्ये इह चामुत्र च शुभम् ।

अथ प्रयासङ्गः कमपि महिमानं वितरति

प्रयन्नानां वाचः फलमपरिमेयं प्रतुवते ॥ ७ ॥

व्यतिकरित-दिग्गताः शोभमानैर्यशोभिः

सुकृत-विछिन्नानां स्थानमूर्जस्वलानाम् ।

अतुलित-महिमानः केतनं मङ्गलानां

कथमपि भुवनेऽस्मिन्स्वादुशाः सम्भवन्ति ॥ ८ ॥

दर्शन

विश्वनाथसिंह श्री राम के अनन्य उपासक थे । अनेक ग्रन्थों में माध्यमे से उन्होंने श्रीराम के परात्पर रूप की प्रतिष्ठापना की है । वही बात राम-परत्वम् में भी है । आप सखी-उपासना मानते थे । आपके मत के अनुसार श्रीराम निरम रासबिहारी हैं । रासमण्डल में प्रवेश ही भक्ति है । सखी रूप की प्राप्ति से ही रासमण्डल में प्रवेश सम्भव है । श्रीराम ही श्रीकृष्ण रूप से धन्वावन में, नारायण रूप से बैकुण्ठ में एवं राम रूप से ही चित्रकूट, मिथिला और साकेत में दासवत विहार करते हैं ।

श्रीकृष्ण के नखों की किरण से पूर्ण ब्रह्म का उद्भव होता है । श्रीकृष्ण के अंशों ही महाविष्णु आदि अनेक देव हैं । श्रीकृष्ण से ऊपर केवल श्रीराम-चन्द्र की सत्ता है । कृष्ण श्रीराम के शृङ्गार रूप हैं । इस प्रकार समस्त प्रभुओं के प्रभु श्रीरामचन्द्र ही हैं ।^१

१. रामपरत्वम् : स० को० भा० :

‘श्रीकृष्णस्य नखेन्दु-किरण-श्रेणी पूर्णब्रह्मणः एकं मुख्यं कारणम्-’

पत्र के रूप में प्राप्त यह शीति-शीली संस्कृत-साहित्य में एक दुर्लभ प्रयोग है। १९ वीं शती के मध्य भाग में प्राप्त होने से इस प्रयोग का मूल्य और बढ़ जाता है। यह निदर्शन इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि कम से कम १९ वीं शती में संस्कृत का परस्पर भावाभिप्रेयवित के रूप में उपयोग किया जाता था; साथ ही इस समय संस्कृत न केवल सप्रमाण एवं सशक्त भाषा थी, अपितु यह विनासशील थी। जो लोग बारहवीं शती को संस्कृत सञ्जन की अन्तिम शती मान बैठे हैं, उनके अधुर्ग्रहण के लिए अकेले राम-परमवत् पर्याप्त है।

(४)

त्यनेन पूर्णब्रह्मणः श्रेष्ठत्वं श्रीकृष्णस्य । श्रीकृष्णांशोऽथा एव महावि-
ष्णु-प्रमुखास्तथा च सर्वप्रभोः श्रीकृष्णस्यापि प्रभुः श्रीरामचन्द्र
इति । सुदर्शनसंहितायामपि-

‘कृष्णः शृङ्गाररूपश्च वृन्दावन-विभूषणः ।

एते चांशकलाः पुंसो रामस्तु मयवान् स्वयम् ॥’

विश्वनाथसिंह के दर्शन-ग्रन्थों और मतों की विस्तृत चर्चा के लिए देखिये—सं० वा० दे० पृष्ठ १८१-२१२ । अपने मत की सवि-
स्तार चर्चा विश्वनाथसिंह ने ब्रह्मसूत्र के राधावल्लभोप-मत-प्रकाशक-
भाष्य (स० को० भा०, शीवा) में की है ।

५. स्तुति-काव्य

(क) कवि रघुराजसिंह का परिचय

दशैकलक्ष में ६ स्तुति-काव्य प्राप्त हैं और एहो रघुराजसिंह द्वारा रचित हैं तथा संस्कृत कृतियों के रूप में रघुराजसिंह द्वारा संस्कृत में रचित केवल यही ६ ग्रंथ उपलब्ध हैं।^१ ये हैं—१. सुधर्माविलास, २. जगदीशशतक, ३. रामायणक, ४. नर्मदाष्टक, ५. लोकनायाष्टक एवं ६. रघुराज-मङ्गल-चन्द्रावली।

रघुराजसिंह ने रस-सिद्धान्तों पर संस्कृत में राजरञ्जन ग्रन्थ लिखा अवश्य है,^२ किन्तु यह ग्रन्थ लुप्त है। इसके प्राप्त होने पर रघुराजसिंह की काव्य-प्रतिभा पर यथार्थ प्रकाश पड़ेगा। आज हम विवरणपूर्वक इतना ही कह सकते हैं कि स्तुति के अतिरिक्त काव्यसाहित्य के क्षेत्र में भी रघुराजसिंह ने प्रवेश किया था।

रघुराजसिंह ने पितामह जयसिंहदेव और पिता विद्वनायसिंह की गौरव-मयी काव्य-सर्जन-परम्परा को एक ओर अक्षुण्ण रखा, दूसरी ओर उसमें नई धाराओं को जन्म दिया।

१८२३ ई० रानी सुभद्राकुँवरि के गर्भ से रघुराजसिंह का जन्म हुआ था। पिता विद्वनायसिंह इन्हें 'मागवतप्रसाद' कहा करते थे।^३ इन्हें लक्ष्मणबाग रोवा में ब्रह्मचाला से आए हुए स्वामी मुकुन्दाचार्य ने नारामण भग्न दिया था। कलकत्ता के नवकृष्ण चौधुरी ने अंग्रेजी की शिक्षा दी। उन्होंने जगदीश-पुरी, काशी और मयुरा में (तीन बार) अपनी शील भर स्वर्णदान किया था। उन्होंने विद्वनायसिंह के विरुद्ध विद्रोह भी किया था किन्तु पिता की

१. रघुराजसिंह के साहित्यिक परिचय के लिए देखिये पोछे—अध्याय २ (ग)।

२. रामस्वयंवर : बम्बई : १९८० वि० : पृष्ठ ४ :

'रत्नों राजरंजन बहुरि, सब रस भजन प्रकाश।'

तथा पृष्ठ ९७२ : 'रुचिर राजरंजन सुरवानी।'

३. देखिये जगदीशशतक, श्लोक ७८ :

'त्वद्गिरितो मत्पितरो प्रचक्रुर्मन्नाम यद् मागवतप्रसादम्।'

बुद्धिमत्ता से सङ्घर्ष बच गया । इनके प्रसिद्ध दीवान का नाम दीनबन्धु पाँडे था ।^१

१८४२ ई० में रघुराजसिंह को युवराजपद मिला । १८५४ ई० में वे पूर्णाधिकारी हुए और कुछ वर्षों तक तीर्थयात्राएँ कीं । सोहागपुर और अमरकंटक के क्षेत्र कभी मराठों द्वारा छीने जा चुके थे । १८५७ ई० में जब अंग्रेजों सत्ता के प्रति देश में क्रान्ति की सहर उठी तब रघुराजसिंह ने २,००० सैनिक अंग्रेजों की सहायता के लिए दिये । इन्होंने मैहर और विजयराघोगढ़ को भी जीता । क्रान्ति समाप्त होने पर अंग्रेजों ने सोहागपुर और अमरकंटक रघुराजसिंह को पुरस्कार-स्वरूप दे दिये ।^२ १८६२ ई० में इन्हें अंग्रेजों से गोद लेने की सनद मिली ।^३

रघुराजसिंह हिन्दी और संस्कृत के बिद्वान् थे तथा अंग्रेजी भी जानते थे । आप फारसी में भी कुशल थे । विश्वनाथसिंह के रामरहस्यग्रन्थ की प्रकाशनी टीका लिखने वाले रामानुजदास ने इन्हें विद्यागुरु के रूप में रामायण और भागवत पढ़ाई थी । रामानुजदास आगे चल कर अयोध्या के रत्नसिंहासन मठ के महन्त हुए थे ।^४ अपने रामस्यग्रन्थ के अन्त में रघुराजसिंह ने अपनी संस्कृत-रचनाओं की सहायकों के रूप में पं० गोकुलप्रसाद, सुदर्शनदास शास्त्री, रामचन्द्र शास्त्री और काशी के पं० विश्वनाथ के नामों का उल्लेख किया है ।^५

१. युगलदास इत्य विश्वनाथसिंह-चरित्र : स० को० भा० । तथा 'संस्कृत वर्षसं०' जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी ।
२. ग्लोरी आफ बान्धो : रोबा : १९४८ : पृष्ठ ९ ।
३. ऐचिसन : रोबा अंडर दि क्राउन : ट्रोटीज एण्ड सनद्स विथ ब्रिटिश गवर्नमेंट : जिल्द ५ : दिल्ली १९३३ । पंचम सर्चि—१८६२ रघुराजसिंह को 'नाइट ग्रेड कमाण्डर आफ दि मोस्ट एग्जास्टेड आर्डर आफ द स्टार आफ इण्डिया' की उपाधि प्राप्त थी ।
४. युगलदास : 'विश्वनाथसिंह चरित्र' तथा रामरहस्यग्रन्थ : टीका-रम्भ—श्लोक २ ।

‘श्रीरामानुजनामासावष्टश्लोकी यथाभति ।

श्रीविश्वनाथराजेन्द्राज्ञप्ती ध्याकुल्ये मुदा ॥’

५. प्रकाशित पृष्ठ : ९७० :

विद्यागुरु रामानुजदास । जन्म अवधपुर सदा निवास ।।

श्री भागवत और रामायण । वेद वेदांत श्रान्त पारायण ।।

बालकाल से मोहि पड़ायो । तिनसभ द्वितिय न दूय तर आयो ।।

रघुराजसिंह ने भागवत की जो ब्रजभाषा-टीका लिखी है, उसका संशोधन विश्वनाथसिंह करते थे ।^१ इससे प्रकट होता है कि पिता ने ही रघुराजसिंह को काव्य-सर्जन की ओर प्रवृत्त या प्रेरित किया । संवत् १८९८ (१८४१ ई०) में विश्वनाथसिंह ने रघुराजसिंह के शिक्षण के लिए रोवा से १ मील पर लक्ष्मणबाग आश्रम की प्रतिष्ठापना कर वहाँ उन्हें दीक्षित कराया । इनके अतिरिक्त लक्ष्मण-किला अयोध्या के महन्त युगलानन्दचरण का भी रघुराजसिंह पर प्रभाव पड़ा ।

रघुराजसिंह के अनेक विवाहों में से एक उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की बहन सीमायकुँवरि के साथ हुआ था । इनके अनेक पुत्रों में से अन्तिम बेंकटरमण सिंह थे, जो महाराज की मृत्यु (१८८० ई०) के समय केवल ४ वर्ष के थे । रघुराजसिंह विशालकाय थे । इनकी भारी तलवारें और बगूँ के धुबेला छद्महास्य (जिला छत्तरपुर) में सुरक्षित हैं । रघुराजसिंह धीकृष्ण के उपासक थे । बेंकटरमण सिंह ने उनके अनेक हिन्दी और संस्कृत ग्रंथ प्रकाशित कराए थे ।^२ हिन्दी के भक्ति और शृङ्गार के कवि के रूप में रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी गणना की है ।^३ युगलेश ने विश्वनाथसिंह-चरित्र में ठीक ही लिखा है—

‘यद्य प्रताप मंदिर कर्मो विश्वनाथ महाराज ।

तापर कलशा ताहि की धर्मो भूष रघुराज ॥’

(ख) स्तुति-काव्यों का विवरण :

१. सुधर्माविलास :

इस ग्रन्थ की प्रकाशित प्रतियाँ सरस्वती कोष-भाण्डार रोवा में प्राप्त हैं ।

काव्यकुञ्ज गोकुल परसादा । अति उदण्ड व्याकरण विवादा ॥

शास्त्री मुमति मुदर्शन दासा । उत्तम न्याय वेदान्त विलासा ॥

काशीवासी विप्रवर विश्वनाथ जिहि नाम ।

काव्य व्याकरण न्याय महें लोकवेद मति धाम ॥

रामचन्द्र दास्त्री मतिमाना । सब नैयायिक भाँह प्रचाना ॥

१. देखिये एकादश स्कन्ध की टीका : स० को० भा०, रोवा : बस्ता ८०।१२ : पुष्पिका ।

२. सं० बा० दे० : पृष्ठ २२६-२७ ।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास-काशी नागरी प्रचारिणी सभा : २०१८ वि० पृष्ठ ५५४ ।

एक प्रति रामवन (सतना) में भी है ।^१ ये सभी लिथो-मुद्रण की प्रतियाँ हैं । अन्त में 'मार्ग सुदि ८ का संवत् १९२४ के सहर राज रोवा' छपा है । इससे प्रतीत होता है कि इसका प्रकाशन रोवा से १८६७ ई० में किया गया होगा । यह भी सम्भव है कि यह इस वर्ष की पाण्डुलिपि हो, जो पीछे प्रकाश में आई हो । ग्रन्थ की रचना स्पष्टतः बान्धवगढ़ में रघुराजसिंह द्वारा अगहन शुक्ल ४, संवत् १९१३ (१८५६ ई०) में की गई—

‘गुण-ब्रह्म-सण्डेन्दु-वर्षस्य राधेऽवलक्षान्धपथे चतुर्थ्या’ कृतोऽयम् ।
सुधर्माविलासः स्थितो बान्धवाश्री महाभूभुजा विद्वनायात्मजेन ॥’

इस ८८ पृष्ठों में प्रकाशित ग्रन्थ में १७ उल्लास और ८५० श्लोक हैं । प्रथम उल्लास में ९७ श्लोकों में भगवान् कृष्ण को वैकुण्ठ के अतर्गत अवस्थित द्वारका नगरी और सुधर्मा नामक समा का विवरण है ।^२ द्वारका में समस्त यदुवंशो, अप्सरायें, गन्धर्व, सूत, वन्दोजन आदि भी निवास करते हैं ।

द्वितीय उल्लास में ९१ श्लोकों में भूमि से वैकुण्ठ पहुँचाने के लिए मार्ग-

१. रामवन में प्राप्त सुधर्माविलास की इस प्रति में अन्त में इस प्रकार उल्लेख है—

‘संवत् १९२२ के कातिक वदि ३० गुरी (गुरुवार) का लिया लाला ध्याकरण श्री गोविन्दगढ़ बंटे ।’ अर्थात् ध्याकरण लाला ने गोविन्दगढ़ में १८६५ ई० में यह पाण्डुलिपि तैयार की । गोविन्दगढ़ रोवा से सीधे रोड पर १२ मील पूर्व एक कस्बा है । इसे रघुराजसिंह ने राज्य के दूसरे वर्ष १८५५ ई० में बसाया था । उनके द्वारा बनवाए हुए राजभवन और विद्वनाथ-सागर नामक विद्यालयाव दर्शनीय हैं । रामवन के सुधर्माविलास तथा लोकनायाटक आदि कई ग्रन्थ श्री राममिश्र चतुर्वेदी वर्तमान प्राचार्य, ठाकुर रणमत्त-सिंह महाविद्यालय रोवा (म० प्र०) द्वारा प्राप्त हुए हैं ।

बड़ोदा में भी सुधर्माविलास की एक प्रति उपलब्ध है (देखिये—
राधवन नैन्धियार : ऐन अल्फावेटिकल लिस्ट आफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द थोरियेण्टल इन्स्टीट्यूट आफ बड़ोदा : भाग २ : १९५० : पृष्ठ १०५२ : ग्रन्थ क्रमाङ्क ८५३ । १३०४०) ।

२. ‘द्वारका सा सुधर्मा च वैकुण्ठे तिष्ठते सदा ।’

तथा—सुधर्माया विराजन्तं यदुभिः परिवारितम् ।

हेमसिंहासनासीनं बलभद्र-समन्वितम् ॥’

निर्देश है ।^१ एकाग्र-चिन्तन आदि साधनाओं द्वारा शक्ति प्राप्त कर साधक उत्क्रमण कर सकता है । मार्ग में मेघमण्डल, रविमण्डल, अल्प-नृमण्डल, विपुल भानुमण्डल, चन्द्रमण्डल, भुवलोक, स्वर्ग, महलोक, जनलोक, तपोलोक, सत्य-लोक, ध्रुवलोक, लोकालोक, महान्वकार, पञ्चभूत-मण्डल, सौवर्णो धरणी, समुद्र, मुधा-सरोवर तक पहुँचने पर दिव्य रूप की प्राप्ति होगी । फिर वैकुण्ठ के अन्तर्गत भूमा मारायण का वैकुण्ठ, रमा-वैकुण्ठ श्रीमन्नारायण का वैकुण्ठ और बिरजा नदी से हो कर कृष्ण के वैकुण्ठ तक पहुँचा जा सकता है । मार्ग में पड़ने वाले उपयुक्त स्थानों के लक्षण-रूप भी बतलाए गए हैं ।

तृतीय उल्लास में वैकुण्ठ के प्रथम आवरण और भक्तों के वर्णन ८५ श्लोकों में है । ये भक्त सालोचय-मुक्त, साष्ट्य-मुक्त, सामीप्य-मुक्त, शरणागत, कैङ्कर्यकारी आदि कोटियों के हैं ।

चतुर्थ उल्लास में सावेष्ट और गोलोक पर १०१ श्लोक हैं । पाँचवें उल्लास में २७ श्लोकों में वैकुण्ठ का चतुर्ध्वज और छठे उल्लास में ४६ श्लोकों में विशेष सभा वर्णित है । यहाँ तक लगभग आधा ग्रन्थ विवरणात्मक स्वरूप में है और वह सम्प्रदाय विशेष की धारणाओं का पद्यबद्ध निदर्शन-भाष्य है ।

सातवें उल्लास में भक्त द्वारा भगवान् की प्रशंसा ४९ श्लोकों में वर्णित है । आठवें में दशावतार-स्तुति के रूप में १२ पद हैं । इन पर गीत-गोविन्द की छाया है यहाँ से कवि की भावधारा नया मोड़ लेती है और आगे भी कवि गीत-गोविन्द की ही अनुकृति में स्तुति-गीत प्रस्तुत करता है । नौवें उल्लास में रामावतार (रामायण) परक ११ पद हैं । दशम उल्लास श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित १०८ पदों में कृष्ण-स्तुति है । ग्यारहवें उल्लास में कृष्ण और राम दोनों पर २८ श्लोक हैं । भगवान् के दयालुत्व आदि गुणों का गान बारहवें उल्लास में ८५ श्लोकों में है । ११ वें उल्लास में धनमन्त्र-स्तुति ८५ श्लोकों में प्रस्तुत की गई है । चौदहवें उल्लास में २३ श्लोकों में प्रद्युम्न और पन्द्रहवें उल्लास में १७ श्लोकों में अनिष्ट की स्तुतियाँ हैं । गुरु मुकुन्दा-धर्म की वन्दना सोलहवें उल्लास में ९ श्लोकों में है । अष्टिम सप्तहवें उल्लास में साधक के वैकुण्ठ से निदर्वन (लौटने) का वर्णन है ।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, यह सम्पूर्ण ग्रन्थ सम्प्रदाय के पोषण और प्रचार की दृष्टि में रख कर लिखा गया है । यह मूलतः दर्शन-ग्रन्थ है । गीत-गोविन्द की अनुकृति में जो स्तुतियाँ और पद लिखे गए हैं, उनमें मौलिकता

१. 'यदिच्छेद् गमनं तस्यां यदीच्छेद् हरिदर्शनम् ।

सदंतादृश-भागेण कर्तव्या भावना सदा ॥'

का अभाव है। अनुकृति के कारण स्वामाविक भावोद्भूत नहीं लक्षित होता। तथापि इन स्तुतियों और पदों को काव्यात्मक स्वरूप देने का प्रयत्न है, जिसके कारण ग्रन्थ काव्य की परिधि में प्रविष्ट हो जाता है।

२—जगदीशशतकम्

लिपि-मुद्रण के रूप में ही प्राप्त दूसरा ग्रन्थ जगदीशशतकम् है, जिसके अन्त में इस प्रकार की पंक्तियाँ हैं—

‘रामेन्दुलण्ड-विष्णुभिम्बितेऽदे संप उत्तमे।

रत्नावमायां शतकं जगदीशस्य निमित्तम् ॥ ११० ॥

‘इति सिद्धिथी-बान्धवेश-महाराजाधिराज-धीमहाराजा-धीराजावहादुर-श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारि-श्रीरघुराजसिंहजुदेव-विरचितं जगदीशशतकं समाप्तम् ॥’

अर्थात् यह ग्रन्थ पीप अमावास्या, दानियार, संवत् १९१४ (१८५७ ई०) को पूर्ण हुआ। रघुराजसिंह के ग्रन्थों में केवल इसी पर टीका हुई है। इसके टीकाकार रङ्गाचार्य बाधूल थे।^१ इस ग्रन्थ का प्रथम लिपि मुद्रण संवत् १९२२

१. टीका के अन्त का श्लोक—

‘श्रीबान्धवेश-रघुराज-विनिमित्तस्य;

मीलाद्रिनाथ-शतकस्य महार्चपूतः।

बाधूल-सरबुलभबो विरचय्य रङ्गाचार्यो

जगत्पति-वदेऽर्पयति स्म टीकाम् ॥’

टीका के आरम्भ के मङ्गलाचरण के चार श्लोक रङ्गाचार्य का सुन्दर कवि रूप प्रकट करते हैं। उदाहरणार्थ—

‘नव-जलधर-गार्ग्य नीरजस्पर्शिनैर्,

स्मित-विक्षिप्तवक्त्रं सिन्धुकम्पा-कलत्रम्।

दामित्र-नम्रदामित्रं शेषशय्यातपत्रं,

परमतम-पवित्रं वातु मां पार्यमितम् ॥

मस्थाः श्रीरघुराजसिंह-नृपतिः प्रज्ञावदप्रेसरो

भाषा संस्कृत-भण्ड-काव्य-रचना-चातुर्य्य-धूम्यः षडिः।

श्रीमन्नीलगिरिप्रभुहि विषयो निस्सीम-भूमाशयो,

गम्भीरो विवरीतुमीदृशकृति को वा कृतो शक्नुयात्।

अपने ग्रन्थ आनन्दाम्बुनिधि के अन्त में रघुराज सिंह ने लिखा है कि रङ्गाचार्य दक्षिण के यादवगिरि के वासी अनन्ताचार्य के पीत्र और नृसिंहानार्य के पुत्र थे। ये न्याय, वेदान्त, व्याकरण आदि

(१८६५ ई०) में^१ और द्वितीय मुद्रण सं० १९३१ (१८७४ ई०) में रोवा में ही हुआ। टीका के साथ अन्य ४९ पृष्ठों का है। शतक में १९८ श्लोक हैं। फलस्तुति मिलकर कुल ११० श्लोक हैं।^२

अनुयुति यह है कि रघुराजसिंह संवत् १९१३ (१८५६ ई०) में रोवा से जगन्नाथ स्वामी (पुरी-उड़ीसा) के दर्शनार्थ गये थे, किन्तु वहाँ पट बन्द हो गए। तब इन्होंने जगद्गुरु की स्तुति में एक शतक हिन्दी और दूसरा संस्कृत में रचा। तत्पश्चात् पट खुल गये।

उक्त पट बन्द होने की अनुयुति में जो कुछ सत्य हो, किन्तु रङ्गाचार्य के लेख के अनुसार रघुराजसिंह जगद्गुरु-दर्शन के लिए जाते समय बहुत ही भाव-विमोह थे और मार्ग ही में उन्होंने दिग्भ्रम-प्रेरित होकर ये श्लोक लिखे^३।

शास्त्रों के मर्मज्ञ थे तथा धन्दावतार परकाष्ठ धर्म के शिष्य थे। ये रोवा आकर आनन्दाम्बुनिधि की रचना (सं० १९०७-११-सन् १८-५०-५४) में सहानुभूति हुए थे। इस प्रकार कम से कम १८५० से १८६० ई० तक ये रोवा में अवश्य रहे। टीका की तिथि का निर्देश नहीं किया गया। युगन्धर के अनुसार इन्हीं रङ्गाचार्य ने सं० १९११ (१८५० ई०) में रघुराज सिंह का चित्रण किया।

१. मूलमात्र, पृ० १८ : सं० को० भा० वस्ता २२।१४१ : बनारस लाइट छापाखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित की।

२. देखिये टीका के अन्त में बघेली हिन्दी में उल्लेख :

‘इति स्वस्ति श्री सानराज (नाभराज) श्री महाराजा श्री
गुणचन्द्र कृपापात्राधिकार (रि)—श्रीमन्मूर्ति-श्रीराजसिंहजू
देव बहादुर-जी० सो० देव० आई० कृत जगदीश (श) स (श)
तक-सतिलक। विशालय छापाखाना में छपा। मुकाम रोवा। लिखा
कृपानाथ प्रधान। सोधा वंश गोपाळ कवि। छपा बदरु कारीगर।
दुनी अनाद सुदि १२ सुनी का संवत् १९३१। सनापन् ॥ शुभमस्तु ॥’

३. टीका-रम्भे—‘अथ सन् श्रीमन्महाराजगिराज—श्रीरघुराजसिंह नामा
.....श्रीमन्नीलाचलगिराज-सन्दिग्धना प्रसिद्धो मन्त्रेणं तर्जुन-
विलम्बमसहमानः कदा कदा द्रव्यमोनि तर्जुनीन्पुण्यातिरेकाविष्टमना-
स्तमेवानवतुमनुसन्दधानो.....वाचानि तनेव सोष्टुपमानस्तदनु-
न्यानवनिउ-प्रेम-परोवाहृत्वा—.....श्रीमन्मन्त्रायचतुकाश्वां स्तुतिमरी
रचन्।’

हिन्दी के शतक की ओ रचना-विधि यही है। यह पुरी पहुँचते-पहुँचते हिन्दी भाषा-प्रेमियों के निमित्त लिखा गया।^१

धार्मिक गीतियों के क्षेत्र में जगदीशशतक का स्थान जैसा रहेगा। इसमें देवता-परक-भक्ति या उद्वेक तीव्र है। इसमें भक्त के अन्तःकरण की ऐसी तृप्ति है, जो भक्ति रस को एक स्वतन्त्र रस बना देती है, जो पाठक को भाव-विह्वल बनाए बिना नहीं छोड़ती। तुलना के लिए कह सकते हैं कि मोरा के 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' में जो पीटा है, उसी पीटा की झटक रघुराजसिंह के इन श्लोकों में प्राप्त है। इनमें ते अनेक प्रारम्भिक श्लोक दर्शन-सिद्धान्तों से पूर्ण भी हैं, जिनकी व्याख्य एवं विवेचनात्मक टीका विद्वान् रङ्गाचार्य ने की है। भावपूर्ण शब्द-योजना पर जैसा अधिकार रघुराजसिंह ने प्रदर्शित किया है, रङ्गाचार्य की भाष्यात्मक शक्ति उससे अंशमात्र घटकर नहीं है। यह सहज ही कहा जा सकता है कि लेखकों में उनको बहुधुत अभिव्यञ्जना-शक्ति सर्वे

१. हिन्दी ग्रन्थ का नाम जगन्नाथशतक है। यह भाषा दुबल २ संवत् १९१४ (१८५७ ई०) को खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई द्वारा प्रकाशित किया गया। ७१ पृष्ठों की प्रकाशित प्रति रामवन में प्राप्त है। इगुका दुगग संस्करण भी रामवन में है, जो भारतभ्राता प्रेस, रीवा से पोप, १९५८ वि० (१९०२ ई०) में दिनेश कवि द्वारा संशोधित रूप में छपा। इसकी भूमिका रीवा राज्य के तत्कालीन सेनापति छाल बलदेवसिंह ने लिखी है—'संवत् १९१४ में जगदीश के दर्शनार्थ महाराजसिंह अपनी कई हजार प्रज्ञ के सहित पुरी के लिए प्यारे। यात्रा प्रारम्भ करने के दिन मे ही श्रीमान् विद्वत्पालक के दर्शन-अभिलाषा में निमग्न हो संस्कृतलिखित छन्दों में जगन्नाथ जी की स्तुति आरम्भ किये और वहाँ पहुँचते-पहुँचते जगदीशशतक नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ। पुरी पहुँच जाने पर श्रीमान् ने भाषा-प्रेमियों के चित्त-विनोदार्थ पुनः श्री जगन्नाथ जी की वन्दना ललित भाषा छन्दों में किया और इसका नाम जगन्नाथ-शतक रखा।'

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत ग्रन्थ की रचना पहले हुई। यही यात्रा का संवत् १९१४ दलदाया गया है, किन्तु जगदीश-शतक में रचना का संवत् पोप १९१३ वि० है। अतः महाराज की यात्रा पोप १९-१३ वि० के पूर्व प्रारम्भ हुई और कई मास तक ये पुरी में रहे। हिन्दी का ग्रन्थ इसी वर्ष (१९१४ वि०) बम्बई से प्रकाशित हो गया।

प्रवादित हुई है। जगदीशरायक बघेलसम्ब के उत्कृष्टतम संस्कृतकाव्यों में से एक तथा रघुराजसिंह की सर्वोत्तम कृति है। यह एक ही कृति इस कवि को संस्कृत के क्षेत्र में अधिकार प्रदान कर देती है।

३. रघुराजमङ्गलचन्द्रावली

रक्षा के मरस्वती-कोप-माण्डार में १७५ पत्रा की यह पाण्डुलिपि सुरक्षित और सम्पूर्ण है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्रीमानार्द्ध-वाधर-विरचितायां विलासस्तुत्य-रसावल्यां श्रीरघुराज-मङ्गल-चन्द्रावल्यां परो बागी-विलासस्तम्भूरः ।’^१

अर्थात् ग्रन्थ का नाम रघुराजमङ्गलचन्द्रावली है। इसका लक्ष्य है स्तुति द्वारा कृष्ण में रक्षा और मङ्गल की याचना। यह ग्रन्थ मासाह^२ अर्थात् १५ दिनों के प्रयत्न में पूर्ण हुआ। इस बात से रघुराजसिंह की काव्य-निष्ठा और श्लोक-रचना की शक्ति प्रकट होती है। ग्रन्थ के दो भाग किये गये हैं, जिसमें से ४८ अध्याय तक ‘पूर्वबाणोविलास’ और आगे ‘परबाणोविलास’ है। कुल ८६ अध्याय हैं। ये ११५ वें पत्रा तक श्लोकबद्ध रूप में समाप्त होते हैं। १५६-५७ पत्रा फलस्तुति के हैं तथा १५८ से १७५ वे पत्रा तक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रारम्भ के २४ पत्रा तक श्लोक-संख्या ७३ है। तत्परचात् श्लोक-गणना नहीं की गई है। रचनाकाल का निर्देश कहीं नहीं है और न पाण्डुलिपि का लिपिकार हो है।

ग्रन्थ के अध्याय-विभाजन का आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय है। तदनुसार श्लोक कृष्णचरित्र पर आधारित हैं। इन श्लोकों में कृष्ण-कथा का सङ्केत मात्र होता है, कथावर्णन लक्ष्य नहीं है। प्रत्येक अध्याय में भागवत के उसी अध्याय में वर्णित कृष्ण-चरित्र पर आधारित कृष्ण के स्वध्वन का ध्यान किया गया है और उस भगवत्स्वरूप से कवि ने अपने लिए रक्षा या आशीय वादी है। अतः अध्यायों की समाप्ति पर कथा के अनुसार पुष्पिकाएँ रखी गई हैं और उनका नाम आशीय ही है। अन्तिम उदाहरण इस प्रकार है—‘इति श्रीमानपरोत्तराहं—दशमस्कन्धे द्विजकुमारहरणा-निधानम्—नवाशोतिनाम्नाय—प्रतिपादनानाष्टमुत्र—श्रीमन्नारायण-प्रतिपन्ना-स्तुतिः ॥’

ये अध्याय अत्यन्त संक्षिप्त हैं। प्रत्येक श्लोक में ‘रघुराज (अथवा राजा

रघुराज) की रक्षा करें', इस आशय की सन्दावली है । उदाहरण के लिए आरम्भ के श्लोक इस प्रकार हैं—

‘रक्षतु सा राधा जगदनुराधा राघारमण-सुराधा ।
 दूरीकृत-बाधा दुरितदुःखाद्या नृप-रघुराजमगाधा ॥ ५ ॥
 वृन्दावन-पारो रासविहारो रक्षतु जगदवतारो ।
 राधापतिभाजं नृपरघुराजं व्रज-कीर्तुहल-कारी ॥ ६ ॥
 देव्यागमित-रोहिणीतनयो बलदेवो बलशाली ।
 पातु राज-रघुराजमुदारं शरणागत-जनपाली ॥ ७ ॥

ग्रन्थ के अन्त में मध्य में वज्रराज-यदुराज शब्द की व्याख्या की गई है । अतः समग्र रूप में यह ग्रन्थ भी साम्प्रदायिक लक्ष्य रख कर लिखा गया है ।

४. शम्भुशतकम्

सरस्वती-कोप-माण्डार, रोषा तथा रघुराज-स्मारक रामवन (सतना) में शम्भुशतक की लिखी-मुद्रित प्रतियाँ सुरक्षित हैं । यह मुद्रण ‘वनारस लाइट छापाखाने’ में १९२३ ई० में हुआ । ग्रन्थ की रचना मङ्गलवार, आश्विन कृष्ण द्वादशी संवत् १९१८ (१८६९ ई०) को गोविन्दगढ़ में पूर्ण हुई ।^१

रघुराजविह इस वर्ष चरण-रोग से असमर्थ पीड़ित थे । इसी विकलता के बीच रोग-निवारण के लिए आपने मृत्युञ्जय राक्षस की स्तुति में यह शतक रचा ।^२

५. नर्मदाष्टकम्

इस ग्रन्थ की भी मुद्रित प्रतियाँ रोषा और रामवन दोनों स्थानों में सुरक्षित हैं । यह ग्रन्थ सोमवार, पीप शुक्ल द्वितीया, संवत् १९१३ (१८५७ ई०)

१. अंतिम उल्लेख :

‘सिद्धि-ब्रह्म-निधीन्द्रव्य इये कृष्णे कुजे तिथौ ।
 द्वादश्यां शम्भुशतकं गोविन्दनगरे कृतम् ॥’

२. शम्भुशतकम् :

दुःखार्णवे शोक-सरङ्ग-सङ्कुले, पीडा-ग्रहेऽहं पतितः स्व-कर्मणा ।
 नाज्यो गतिर्मेऽद्य ज्ञाते भवन्तं, कृपा-कटाक्षेण नयस्व पारम् ॥ ३६ ॥
 वक्रेण नक्रेण यथा हरिर्गजं, व्रस्तं हि चक्रेण समुज्जहार ।
 सयैव मां पादद्वया ग्रहीतं, त्वमुद्धरस्वाशु शशाङ्क-शेखर ॥ ३८ ॥

को निमित्त हुआ ।^१ अन्य में कुल ११ श्लोक है, जिनमें से प्रारम्भ के ९ श्लोक वन्दना के हैं । नर्मदा मेकल कम्पा है, उसके तटों पर स्थित वृक्षों, वन्य जातियों, और पक्षियों के उल्लेख दिये गये हैं ।

६. लोकनायाष्टकम्

रामयन में 'रघुराजसिंह' कुछ लोकनायाष्टकम् नाम से एक पाण्डुलिपि प्राप्त है । लिपिकाल का निर्देश नहीं है । यह रचना रघुराजसिंह द्वारा शुक-वार, ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमी, संवत् (१८५६ ई०) को पूर्ण की गई ।^२ रघुराज-सिंह के उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों में यह पहली रचना है । इसमें प्रारम्भ के ८ श्लोकों में भगवान् शिव की वन्दना है ।

ग्रन्थों की रचना-तिथियों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि संवत् १९१३ का वर्ष रघुराजसिंह को संस्कृत-सर्जना की ओर प्रवृत्त करने वाला विशेष वर्ष था । इस वर्ष उन्होंने ज्येष्ठ में लोकनायाष्टक, मार्गशिर में सुधर्माविलास, पौष कृष्ण में जगदीशगतक और पौष शुक्ल में नर्मदाष्टक की रचना की । नर्मदाष्टक का पौष शुक्ल द्वितीया का रचनाकाल यह सूचित करता है कि इस तिथि को महाराज ने अमरकण्टक में नर्मदा स्नान किया, जैसा युगलेश ने भी लिखा है । जगदीशगतक की समाप्ति इसके ठीक दो दिन पूर्व बतलाई गई है । अतः प्रतीत होता है कि पौष मास के प्रारम्भिक दिनों में रीवा में जब जगदीश-यात्रा की सैयारी हो रही थी, तभी भाव-भग्न होकर रघुराज सिंह ने जगदीशगतक की रचना प्रारम्भ की । अतः इन शतक का कुछ अंश रीवा में ही लिखा गया और अमरकण्टक पहुँचते पहुँचते ग्रन्थ पूर्ण हो गया ।

१. 'रैवाष्टकमिदं दिव्यं' रघुराज-विनिर्मितम् ।

अस्य प्रवृत्तनाम्नाया नर्मदा मे प्रसीदतु ॥ १० ॥

मिते संवत्सरे पौषे गुण-ब्रह्म-निधोऽमुभिः ।

सिते सीमे द्वितीयाया निमित्तं नर्मदाष्टकम् ॥ ११ ॥

२. 'लोकनायाष्टकमिदं' रघुराज-विनिर्मितम् ।

पञ्चां श्रुयतां शरवश्लोकनायः प्रसीदतु ॥ ९ ॥

अग्नि-ब्रह्मास्तु-शुभाशु-मितेऽग्ने तपसीष्टदम् ।

लोकनायाष्टकं वाण-तिथौ कृष्णे कृतं कवी ॥ १० ॥

इति सिद्धिप्रो-बान्धवेश-महाराजाधिराज-ओमहाराजामहापुर-
ओद्दामधन्व-कृपापात्राधिकारि-ओरघुराजसिंहजुदेव-विरचितं लोकनाया-
ष्टकं समाप्तम् ॥ शुभमस्तु ॥

धर्मरक्तक से आगे की यात्रा में संस्कृत जगदीशशतक नहीं लिखा गया (शेष यात्रा में हिन्दी का जगन्नाथशतक लिखा गया होगा) ।^१

ग—प्रस्तुत काव्यों में प्राप्त दर्शन

उपर्युक्त स्तुति-काव्यों में जो दर्शन उपलब्ध है, उसे हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—१ : परम्परात्मक २ : साम्प्रदायिक । परम्परात्मक दर्शन वह है, जो वेदान्त के अन्तर्गत भक्ति के रूप में विकास को प्राप्त हुआ और जिसकी एक निश्चित सोमा को समस्त उपासना-परक सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं । अन्तर यह पड़ता है कि अन्य देवों को अस्वीकृत न करते हुए विशिष्ट सम्प्रदाय अपने इष्टदेव को परात्पर ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठापित करता है और शेष देवों को उस इष्टदेव के अपोमत्स्य रूप में प्रस्तुत करता है । विष्णु और उनके नारायण, राम, कृष्ण, आदि अवतारी रूप तथा विष्णु ॥ अतिरिक्त शिव, शक्ति (काली, दुर्गा, चण्डी आदि रूप), गणपति तथा सूर्य की उपासनाएँ ब्रह्म रूप में होती रही हैं । इनकी स्तुतियों में कितने ही शतक, अष्टक आदि ग्रन्थ भी लिखे जाते रहे हैं ।

रघुराजसिंह के सुधर्मा-विलास को छोड़कर शेष पाँचों ग्रन्थों को हम इन्हीं परम्परात्मक प्रतिष्ठाओं से युक्त पाते हैं । इनमें से रघुराज-मङ्गल-चन्द्रायली को इसलिए पृथक् किया जा सकता है कि उसके लेखन में भागवत का आधार है और उसमें कोई अपनी दार्शनिक शक्ति कवि ने प्रदर्शित नहीं की । शेष ४ ग्रन्थों में से तीन ग्रन्थ शम्भुशतकम्, लोकनाथाष्टकम् और नर्मदाष्टकम् शिव-ब्रह्मरूप परक है । इनमें स्तुति और स्तोत्र के लक्षण मिश्रित हैं । अर्थात् कवि भगवान् के गुणों और विभूतियों की चर्चा करते हुए निवेदन करने लगता है ।

भगवान् शङ्कर अपने दासों को मृत्यु के मुख से मुक्त कर सकते हैं ।^२ देव, असुर और मानव तथा गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि सभी उनकी

१. रामरसिकावली में जुटे हुए युगलेश कवि द्वारा रचित अंश में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना प्राप्त है—

‘तहँ मज्जन करि दै बहु दाना । रेवा अष्टक रच्यो सुजाना ॥’
‘शतक संस्कृत यक जगदीश । विरच्यो मैं निज अखिन दीश ॥’
भाषा-शतक कवित में दूजो । विरचन लग्यो सोऊमग पूजो ॥’

२. शम्भुशतकः श्लोक ३७ :

‘मृत्योर्मुक्षान्मोचयसे स्व-दासांस्तस्माद्भि मृत्युञ्जय-नामधेयः ।’

बन्दना करते हैं और किसी फल की प्राप्ति के लिए उन्हीं की आराधना करते हैं ।^१ वेद और पुराण, उपनिषद् और संहिताएं उनकी प्राप्ति के मार्ग बतलाती हैं, वे ब्रह्मा और इन्द्रादि देवों द्वारा बन्द्य हैं ।^२ नर्मदा शिव की ही प्रिया है ।^३

रघुराजसिंह अपने को 'श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारी' लिखते थे । वे वास्तव में भगवद्रूप श्रीकृष्ण के उपासक थे । श्रीकृष्ण की ही उन्होंने परास्पर ब्रह्म रूप में स्वीकार किया है । रघुराजसिंह के जगदीशशक्त में उनकी यह कल्पना साकार हुई है । प्रस्थान-त्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता) में ब्रह्म के जिस सच्चिदानन्द, विष्णु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकारण-रूप की उद्गाहना की गई है, उसी में करुणा-वरुणालय, जगद्धितैषी, अवतारी स्वरूप की संयुक्त कर जगदीशशक्त में प्रस्तुत किया गया है । इस भावना की हम इस रूप में परम्परात्मक मानते हैं कि समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में परमात्मा का यही 'विदन्विद्विग्रह' प्राप्त है । केवल इष्ट का अन्तर है । नाम-मात्र के लिए परमात्मा का नाम कहीं कृष्ण या राम है, तो अग्यत्र नारायण आदि है, किन्तु विभूतियाँ यही हैं । जगदीशशक्त के टीकाकार ने अधिक विषय एवं विस्तृत रूप में दर्शन को स्पष्ट किया है ।

श्रीकृष्ण के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व भासित है । सूर्य, चन्द्र, तारागणों में भी उन्हीं का प्रकाश है । उनके भ्रू-विकास-मात्र से प्रलय, उत्पत्ति और पालन

१. शम्भुशक्तः श्लोकः ३९ :

'देवामुराणां च तथा नराणां गन्धर्व-विद्यापर किन्नराणाम् ।
त्वया न सेवा-फट्प्रसीद शोषितं प्रसीद मय्यागु शिवाधुतोय ॥'

२. लोकनायाटकम् : श्लोक १ ।

'देव वेदः पुराणेष्वपि पदवली-संहितामिस्तुगम्यं
गम्यं सिद्धमुनीशरति-रतिसहितैर्यस्य पादारविन्दम् ।
विन्दं ब्रह्मेन्द्र-बन्धं विरति-निरतिदं ब्रह्म-विज्ञान-वेदं
वेदं बन्दे विद्यालं कलि-कनूप-हरं कामदं वामदेवम् ॥'

३. नर्मदाटकम् : श्लोक २ :

'गिरीश-रूप-शोभिते गिरीश-भाव-भाविते
सुरपि सिद्ध-बन्दिने-----सुरेन्द्र-हर्ष-सम्पदे ॥'
तथा 'शिवस्वरूप-दायिके सरिद्वयस्य नायिके
मुक्ताम्बिताय-दायिके ह्यम्बिके मुक्तायिके ।
सुमानसस्य दायिकस्य दायिकस्य पाप्मनः
प्रहारिके त्रितापहे नयामि देवि नम्ये ॥ ९ ॥'

होते हैं । देवगण उनके चरण-रज की प्राप्ति के लिए सयत्न रहते हैं ।^१ सिद्ध, मुनि, सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, दिव और ब्रह्मा कल्पान के लामार्थ निरन्तर उनका ध्यान करते हैं ।^२ श्रीकृष्ण ही सृष्टि के पूर्व थे; वे अनादि, अलिप्त, अनन्त एवं विभु हैं ।^३ श्रीकृष्ण से ही जगत् की उत्पत्ति होती है, उन्हीं की आमा जगत् में स्थिति-काल में व्याप्त रहती है और उन्हीं में जगत् का लय होता है ।^४

श्रीकृष्ण भगवान् के विश्वरूप की कल्पना भी श्रुग्वेद और श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रस्तुत की गई है—

‘यः पातालपदो महो-कटितटः स्वर्लोक-दीर्घोऽस्ति यो
मार्तण्डेक्षण दिक्श्रुतिः श्रुतिमुखी गीर्वाणबाहुः कपीः ।
माया-लोचनको जगद्बपुरजो होनो हृदिर्व्यगुण-
स्तन्मोलाचलवासिनं यदुपति बन्दे जगद्बन्धितम् ॥ ७ ॥’^५

आगे चल कर भक्ति-सिद्धान्तों और साकार-रूप-कल्पनाओं पर आधारित

१. जगदीशघटकम् : श्लोक १ :

‘यद् भासा सुविभाति विश्वमलिलं साकेंद्रु-सारगणं
यत्किञ्चिद्-भृकुटी-कटाक्षकलया नाघोद्भूतो पालनम् ।
यत्पादाम्बुज-धूलि-धारणविधौ कुर्वन्ति यत्नं सुरा-
स्तन्मोलाचलवासिनं यदुपति बन्दे जगद्बन्धितम् ॥’

२. श्लोक २ :

‘यं सिद्धा मुनयः सुरामुरगणा गन्धर्व-यक्षोरणा-
स्तेजानाः सप्तर्षुक्षाः प्रतिदिनं ध्यायन्ति सां प्राप्तये ।’

३. श्लोक ३ :

‘यः पूर्व’ जगतामनादिरमलोजन्तः परो भूष्यगः
स्रष्टा शोषयिता कटाक्षकलया हन्ता नियन्ता विभुः ।’

४. श्लोक ४ :

.....यस्मान्जगज्जायते

मस्याभा-परिपूरितं जगदिदं यस्मिन्व तल्लोयते ।’

५. पुरुषसूक्त (श्रुग्वेद) : १०।९०।१३ : ‘यसो : सूर्यो अजायत ।

तथा १०।९०।१४ :

‘नाम्या आलोदन्तरिणं लोप्यो दीः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिदिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ॥’

एवं श्रीमद्भागवतः २।२

अनेक प्रसङ्गों के उल्लेख किये गये हैं। गङ्गा के जन्म एवं पावनत्व की कथा का सङ्केत देखिये—

‘यत्पाद-पद्मज-जलं चतुराननोऽसौ
 बुद्धये कमण्डलुमुखे सुतरा दधार ।
 अद्यापि मूर्धनि शिखी बहतीष्टरूपं
 बन्दे प्रभुं पतितपावन-नामधेयम् ॥ १० ॥’

श्रीराम और श्रीकृष्ण में अभेद मान लिया गया है और रामावतार की स्त्रोताओं का भी पाँच श्लोको में स्मरण किया गया है।^६ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

‘विज्ञान-मणित-विरतीष्ट-सुधर्म-हीना
 नीचा महावनचरो घबरो हि तस्यै ।
 भुक्त्वा सदपित-फलं प्रददो गति यो
 बन्दे प्रभुं पतितपावन-नामधेयम् ॥ २८ ॥’

श्री कृष्ण के ही दश रूपों को दशावतार मान कर परम्परात्मक रूप में सुधर्माविलास में वादना की गई है—

‘मीनं कूर्मं वराहं भरहरिमतुलं वामनं विश्वनाथं
 रामं रामं च कृष्णं खलमतिदरणं बुद्धरूपं विचित्रम् ।
 म्लेच्छ-भ्यूहन्दुणन्तं कृत्युगकरणं कल्किनं वाजिबाहं
 बन्देऽहं वासुदेवं दशविधवपुषं देवकीनन्दनशम् ॥’^७

रघुराजसिंह के भविष्य-दर्शन के परम्परात्मक स्वरूप पर सम्पूर्ण रूप से श्रीमद्भागवत और उससे निःसृत वैष्णव-सम्प्रदायों की परिकल्पनाओं का प्रभाव है, यह सहज ही कहा जा सकता है। यही बात उनके साम्प्रदायिक दर्शन के सम्बन्ध में बहो जा सकती है, किन्तु इसके साथ सम्बद्ध सम्प्रदायों का विस्तृत परिकल्पनाओं की अधिक महत्व देना पड़ेगा। यह साम्प्रदायिक दर्शन ब्रह्माण्ड और श्रीकृष्ण की साकार विभूतियों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है, जो रघुराजसिंह के सुधर्माविलास ग्रन्थ के चित्रणों के रूप में उल्लेख है। उत्कमण का नार्ग-वर्णन, श्रीकृष्ण की सुधर्मा समा और श्रीकृष्ण, बलराम, द्रुपद और अनिरुद्ध का चतुर्भुजात्मक स्वरूप ये सम्प्रदायों की उद्भावनाएँ हैं। इन उद्भावनाओं पर विपुल साहित्य का निर्माण हुआ है।

१. श्लोक २६—३०

२. उल्लास ८, पद १० : तुलना के लिए देखिये—अयदेव । गीत-गोविन्द : सर्ग १ अष्टपदी १।१२ । ‘वेदानुद्धरते—’ ।

सगुण उपासना में पाञ्चरात्र या^१ भागवत मत का विशेष समर्थन हुआ है। सुधर्माविलास की रचना भी इसी कड़ी की आगे बढ़ाती है। इस मत के अनुसार ब्रह्म (यहाँ पर श्रीकृष्ण) में संप्राप्त गुण भी हैं। यह पद्मगुण-रूप और सगुण-रूप है, अतः उसकी भगवान् संज्ञा है।

भगवान् (श्रीकृष्ण) जगत् के सम्पूर्ण के लिए स्वतः व्यूह, विभव, अर्चावतार और अन्तर्यामी चार रूपों की सृष्टि करते हैं। गूह चार हैं— वामुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।^२ पद्मगुण-युक्त भगवान् ही वामुदेव हैं, यही रघुराजसिंह ॥ सुधर्माविलास के श्रीकृष्ण हैं। दोष तीन व्यूहों में दो दो गुण ही विद्यमान रहते हैं। भगवान् का यह विश्वव्यापी व्यूह रूप विभव-रूप में भी परिणत होता है, जिसे अवतार (मुख्य दशावतार तथा दोष गौण मिल कर चौबीस अवतार) कहते हैं। अर्चावतार भगवान् की घालग्राम आदि शिला-मूर्तियाँ हैं, जिनके सहारे साधक अर्चना कर सकें। अन्तर्यामी रूप नित्य प्राणियों के हृदय में निवास करने वाला भगवद्रूप है। इस पाञ्चरात्र मत का सङ्कराचार्य ने सञ्जन किया था किन्तु रामानुज ने इसे पुनः प्रामाणिक ठहराया और समस्त परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों ने इसे स्वीकार किया।^३

यह कहना कठिन है कि सुधर्माविलास में श्रीकृष्ण की जिस विभूति और ब्रह्माण्ड की जिस रचना की परिकल्पना प्रस्तुत की गई है, उसके आधार भूत ग्रन्थ कौन-कौन हैं। ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें इष्टदेव का ब्रह्मत्व स्थापित किया गया है, किन्तु दोष परिकल्पनाएँ मूलतः उमान हैं। निपाद-विभूति-महानारामणोपनिषद् में विभूति-वर्णन के मुख्य सत्त्व निम्नलिखित रूप में प्राप्त होते हैं—

‘ब्रह्म पाद-चतुष्टयमक है—१. अविद्यापाद, २. सुविद्यापाद, ३. आनन्दपाद और ४. तुरीयपाद। इनमें ॥ प्रथम पाद नीचे और तीन पाद ऊपर हैं।^४ ऊपर की

१. पाञ्चरात्र-परमसंहिता : गायकवाड़ ओ० सिरोजः बड़ोदा: ३।७

‘निराकारे तु देवेशे नार्चनं सम्भवेन्नृणाम् ।

न च ध्यानं न च स्तोत्रं तस्मात्साकारमर्चयेत् ॥’

२. पाण्डे-कपिलदेव (डा०) : मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद : पौषम्बा : वाराणसी : १९६३ : पृष्ठ ३७३ : व्यूहरूप ।

३. हिन्दी साहित्य-कोश (भाग १) : बनारस : २०१५ वि० : पृष्ठ ८०५ ।

४. तुलना के लिए देखिये पुरुषसूक्त : ऋग्वेद १०।९०।१-५ ।

त्रिपाद्-विभूति अखण्ड अमिउ तेजोराशि से प्रज्ज्वलित है। मध्यम पाद में तेज-प्रवाहाकार नित्य वैकुण्ठ है। उसके मध्य महाविष्णु का परम पद है। सूर्यमण्डल के अन्तर्गत जैसे सूर्य है, उसी प्रकार दिव्य सुदर्शन-तेज के अन्तर्गत सुदर्शन आदिनारायण है। वही तुरीय ब्रह्म है।^१

साकार के दो भेद हैं १—सोपाधिक या अव्योपाधि। यह सावयव होने से अनित्य है। २—निरुपाधिक, जिसके तीन प्रभेद हैं—ब्रह्माविद्यासाकार, आनन्दसाकार और उभयात्मक-साकार। उन तीनों की दो दो विधाएँ हैं—नित्य साकार और मुक्त साकार। नित्य साकार आद्यन्त-क्षुण्ण शाश्वत है। उपासना से मुक्ति को प्राप्त होने वाले मुक्त-साकार कहलाते हैं। अखण्ड ज्ञान से आविर्भूत यह साकार भी शाश्वत है। तुरीय परमेश्वर से अनन्तशीर्षा सगुण-निर्गुण रूप स्फूर्त विराट्स्वरूप होता है। यह अव्योपाधि के समस्त अण्ड में व्याप्त है। इसके एक एक रोम-कूप में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक अण्ड में एक नारायण हैं। नारायण से हिरण्यगर्भ, अण्ड विराट्, स्रष्टा, प्रजापति, एकादश रुद्र, अखिल लोक, आदित्य-इन्द्रादि सर्व देव उत्पन्न होते हैं।^२

‘भक्त की उत्क्रान्ति के समय वैकुण्ठ-पार्षद् आते हैं। प्राकृत-देह-त्याग के पश्चात् साधक को महाविष्णु का साहचर्य-विग्रह प्राप्त होता है। वह आनन्दमय नदी में स्नान कर अनेक पुण्य लोकों का अतिक्रमण करता है। फिर क्रमशः सत्यलोक (ब्रह्मा का लोक), शैवलोक, महर्षिमण्डल, सूर्य-सोम-मण्डल, ध्रुवमण्डल, शिशुमार-चक्र को पार करता है। तब वैकुण्ठ में विरजा नदी में स्नान कर ब्रह्ममय वैकुण्ठ में प्रवेश करता है। यहाँ ब्रह्मा-नन्दाचल में ज्योतिर्मय स्थानों में पद्मकनिका में शुद्ध-शेष-भोगासन पर स्थित आदिनारायण की अराधना कर उनको अनुज्ञा से पञ्चवैकुण्ठों को पार कर अण्डविराट् कैवल्य के समीप परमानन्द को प्राप्त होता है।’^३ इसी प्रकार विस्तृत विवरण और भी हैं।

(घ) रचना-शैली

रघुराजसिंह की रचना-शैली प्रसाद-गुण-पूर्ण है। उसमें क्लिष्ट, दोष एवं कठिन समास-युक्त अथवा अनेकार्थक पदावली का बहुत कम प्रयोग हुआ है। भक्ति-रस के अनुकूल सात्वती वृत्ति और वैदर्भी रीति प्रयोग में

१. त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषद् : अध्याय १।

२. वही, अध्याय २।

३. वही, अध्याय ५।

लाई गई है। स्वरित रस-परिपाक रघुराजसिंह की विशेषता है। पांडित्य-प्रदर्शन की उल्लङ्घन प्रायः नगण्य है, यद्यपि उनकी बहुश्रुतता के सर्वत्र दर्शन होते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि रघुराजसिंह के स्तुति-गीतों में गीत-गोविन्द की शैली का अनुकरण है। इस अनुकृति की सुषर्माविलास की स्तुतियों और पदों में, विशेषतः ८ वें से १० वें उल्लास तक देखा जा सकता है। शैली की अनुकृति होने पर भी विषयान्तर के साथ रघुराजसिंह की अपनी पद-योजना दृश्य है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

‘निशिचरकुल-कृत-महिमण्डल-बहुभारम् विलुलित-सकल-सुधर्माचारम् ।
 दोनमुनीनवल्लोच्य दयाकर-वेशम् प्रकटन-याचित-कोसल-दैवम् ।
 जनक-सरयता-रक्षण-विपिन-विहरणम् कृत-रण-खर-द्रूपण-संहरणम् ।
 कृतकपिसहय-रचित-सागर-वरसेतुम् कन्दित-सकल-निघाचर-केतुम् ।
 श्रीरघुनाथन्मीमि जय यदुनाथ हरे ॥८१७॥
 मधुकुल-जलधि-विवर्धन-मुसद-शशाङ्कम् सुन्दावन-विहरण-मकरन्दम् ।
 पदकुल-कण्टक-कन्दन-चटिन-कुठारम् अवतारित-जगतीतल-भारम् ।
 पाण्डव-रथ-सारथिमतिशोभित-वेशम् रणरजरञ्जित-कुञ्चित-केशम् ।
 पौडश-दश-शत-रमणी-विरचित-रासम् द्वारवती-कमवीर्य-विलासम् ।
 श्रीगोविन्दन्मीमि जय यदुनाथ हरे ॥८१८॥’^१

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता कि वृत्त में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु जहाँ गीतगोविन्द में प्रत्येक अवतार के लिए केवल दो पंक्तियाँ हैं, वीररा पंक्ति ध्रुव (टेक) के साथ रहती है, वहाँ उपर्युक्त पदों में प्रत्येक अवतार के लिए ८-८ पंक्तियाँ हैं और गौरी पंक्ति ध्रुव के साथ है।

गीतगोविन्द के १८ पंक्तियों से युक्त दूसरे पद^२ की अनुकृति में ठीक १८ पंक्तियों से युक्त सुषर्माविलास के एक पद की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

‘मधु मुरली-रवकारित गोपीमोहन ए । रसिक-शिरोमणि-कान्त जय गोपीश हरे ॥
 विविध-विलास-विद्यालिक वनमालिक ए । मदन-मद-मयन-रूप जय गोपीश हरे ॥

१. तुलना के लिए देखिए—गीतगोविन्द-सर्ग १।१ :

‘प्रलय पयोधि-जले धृतवानसि वेदम् । विहित बहिनचरित्रमखेदम् ।
 केशधृतमीनशरीर जय जगदीश हरे ॥’

२. ‘श्रित-कमला-कुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।

कलित-ललित-वनमाल जय जय देव हरे ॥.....’

....गोपीमण्डल-मण्डित रस-वण्डित ए । रचित-रुचिर-रस-रास जय गोपीश हरे ॥
 गीत-नृत्य-मुविहारद धारद सुख ए । विहित धन्य-रघुराज जय गोपीश हरे ॥
१०।५८-६५॥'

रघुराजमङ्गल-चन्द्रावली में गीतगोविन्द के २८ मात्रा वाले छन्द^१ की अनुकृति में सम्पूर्ण ग्रन्थ एक ही छन्द में लिखा गया है । इसे लय-तालात्मक अनुकरण कहा जा सकता है, किन्तु विषय और शब्दों के ध्यान में कवि ने स्वतन्त्र प्रतिभा का प्रयोग किया है । ये श्लोक रसात्मक होते हुए भी काव्य-सौन्दर्य से हीन नहीं हैं । इनमें भावात्मकता भी झलकती है—

‘प्राकृद् परममुन्दरो धारदपि रेमे मत्र विहारो ।
 पातु राज-रघुराजमुदारं वज्र-जनिता-रति-कारो ॥
 नन्दमूनु - वर - वेणुनील-रव-भोहित-धार-वर्तसाः ।
 पातु राज-रघुराजमुदारं विलसद्-रत्नवर्तसाः ॥
 आयतनमना यं रघुराजं मय्यः पपुरनुरागम् ।
 पातु राज-रघुराजमुदारं हरि-पद-मङ्गज-रागम् ॥’^२

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि जयदेव की मधुर-कीमल-दान्त-पदावली के समस्त रघुराजसिंह की पद-योजना का मूल्य बहुत कम रह जाता है । आह्लाद की सृष्टि में, रसिक हृदयों की नृत्य-विमोर करने में सधाम जयदेव अपने क्षेत्र में अप्रतिम ही रहे हैं । तथापि जयदेव की इस परम्परा की उल्लेखनीय शैली के उत्तर भाग तक ला कर लय-बद्ध गीतात्मक काव्य की सृष्टि करने वाले रघुराजसिंह का महत्व इतिहास की दृष्टि से अवश्य है, जब कि उनके साथ सृष्टि-शक्ति का भी योग हुआ ही है । उनका यह महत्त्व शिव-सागङ्गव-स्तोत्र भक्तों सहृदय-काव्यों की परम्परा की अग्रसर करते हुए नर्मदा-एक की सर्जना में भी है । यहाँ वे अधिक मौलिक हैं और शब्दालङ्कारों के सुन्दर प्रयोग करते हैं—

‘वल्लभा लक्ष्म-लक्षिते सकच्छ-कच्छान्विते
 मुग्ध-पद्मि-सच्छटे हरदा-रक्षण-धामे ।
 मुदय-दश-मय-वाञ्छितेन-पदा-पतः
 विक्रम-क्षण-क्षणं समाप्तिं देवि समदे ॥ ५ ॥
 महात्मनां सदात्मनां मु-धर्म-कर्मवर्तिनां
 तपस्विना यशस्विनां मनस्विनां मनः प्रिये ।

१. सर्ग १।३ : ‘ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन-कीमल-मलय-समीरे ।....’

२. राज-दर्शन से ।

मनोहरे छरिदरे सुष्ठुदरे भियां हरे

शरापरे जषोद्गरे नमामि देवि नमदे ॥ ६ ॥^१

बलदेव उपाध्याय ने लिखा है 'संस्कृत का भवत कवि कभी भगवान् की दिव्य विभूतियों से चकित हो उठता है, तो कभी भगवान् के भी विशाल हृदय, असोम अनुकम्पा और दीन जनों पर अकारण स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्म विस्मृत हो जाता है।—संस्कृत का मुक्तक-साहित्य हृदय के भावों का वर्णन करने में अपनी तुलना नहीं रखता। वह उस लघु चित्र के समान होता है, जिसके छोटे से दायरे में चित्र के पूरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग सीधे आते हैं तथा जो देखते ही अद्भुत चमत्कार पैदा करता है।'^२

सामान्यतया मुक्तकों के रूप में प्राप्त समस्त स्तोत्र-साहित्य को गीति-काव्य मान लिया जाता है, किन्तु यह ठीक नहीं है। 'गीतिकाव्य कवि के भावलोक अथवा अन्तःप्रदेश में उद्बलित होते हुए मनोवेधों के तीव्रतम होने के उपरान्त, उसकी पनोभूत अनुभूति के फलस्वरूप बाहर निकली हुई अभिव्यञ्जना है।'^३

संस्कृत के श्लोकों में लयबद्धता और सङ्गीत का सामान्य तत्त्व समस्त पद्यसाहित्य में अभिव्याप्त रहता हो है। अतः गीत मूलतः गीति का आधार नहीं बन सकता। गीति वही है, जिसका कछेर आरम्भनिष्ठापरक उत्तरङ्ग भावधारा से ओत-प्रोत हो। जो बाल्मीकि के सद्युत कण के चक्रे से व्यथित हो जाय; जो मीरा की भाँति भगवान् के समक्ष आत्मसमर्पण कर चुका हो, जो सूरदास के समान कृष्ण के प्रणय में लुटी हुई, विवश गोपियों की बेदना का साक्षात्कार कर सके, जो भर्तृहरि की भाँति संसार के अहङ्कार और विद्वत्सवात की चोट खा कर उसे सर्वथा असार मान चुका हो, वह गीति-काव्य की रचना कर सकता है। भक्ति के क्षेत्र में आर्त, जिज्ञासु, अर्थापी और शानी में से आर्त के उद्गार ही हृदयद्रावक होंगे। जो विभिन्न धोनियों में संसरण के त्रास से कम्पित होगा अथवा जीवन के किसी मर्मन्तिक कष्ट से आहत होगा, वही अशरणशरण की अन्तःकरण की सच्चाई के साथ

१. तुलना के लिये देखिये शिवताण्डव स्तोत्र-

'जटा-कटाह-सम्भ्रम भ्रमन्तिलिम्प-निर्झरी ।'

२. संस्कृत-आलोचना : वाराणसी : १९५७ : पृष्ठ ६५ ।

३. शकुन्तला द्वये (दा०) : काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय : वाराणसी : १९५८ : पृष्ठ २९९ ।

पुकारेगा । यही उद्गार, यही स्वर काव्यबद्ध होकर गीति बनते हैं । ये गीतात्मक स्वर हमें शम्भुशतक और जगदीशशतक में मिलते हैं ।

शम्भुशतक का कवि रोगार्त होकर भरण-भय से कम्पित है और वह मृत्युञ्जय शिव को प्राण-रक्षा के लिए पुकारता है—

‘जानान्यहं नाथ न योगक्षयमिर्वाविधानं मननं तपश्च ।

विधाय मूर्ध्नाञ्जलिमद्भिर्घ्न-सन्निधौ मा पाहि मां पाहि वदन्ममामि ॥३५॥

मृत्योर्नुत्तान्मोक्षयसे स्वदासांस्तस्माद्भि मृत्युञ्जय-नामधेयः ।

न मोक्ष्यसे मां यदि दुःखसङ्घात् सार्यं कथं स्यात्तव दिव्य नाम ॥३७॥’

जगदीशशतक का कवि जीवन के पापों की स्मृति से पीड़ित है; वह मुमुक्षु है, किन्तु अपनी अछहादता का अनुभव करता है और समझता है कि भगवान् की कृपा ही उसका उद्धार कर सकती है—

‘यथाश्वरं वै गतिरस्ति पक्षिणां यथा परानां पुण्यवी गतिरथ ।

अस्नाद्गतां पापनिविष्टचेतसां गतिस्त्वमेवासि तथा न चान्यः ॥ ६६ ॥

प्रारब्धदोषाद्दमूदमूत्तच्छोषामि किञ्चिन्नहि तस्य दुःखम् ।

शोचामि यत्त्वच्छरणगतं मां प्रधावते पाप-पराभवोऽयम् ॥ ७१ ॥

अथ माम्यहं कलितरां स्मराणि नान्योऽस्ति लोके प्रभु-दोननाथः ।

श्रुते भवन्तं जगदेकमायमुपायहीनः शरणागतोऽहम् ॥ ७६ ॥

शोचामि नाऽहं नरक-प्रमाणं शोचामि नाऽहं पतितोऽभवं यत् ।

शोचाम्यहं त्वच्छरणगतस्य नेयं दया नाथ तवानुरूपा ॥ ८० ॥

‘भक्तिरसामृत-सिन्धु’ एवं ‘उज्ज्वल-नीलमणि’ आदि ग्रन्थों में हनगोस्वामी तथा अन्य गौड़ीय वैष्णवों ने भक्ति-रस को सर्वश्रेष्ठ आदि रस माना है ।^१ स्वयंभूत श्लोकों में वह भक्ति रस पूर्णतः प्रबहमान है । यही श्रीकृष्ण-विषयक रति स्थायी भाव है । श्रीकृष्ण (जगदीश-रूप में ब्रह्म) आलम्बन है । जगदीश-पुरी की प्रसङ्ग-प्राप्त तीर्थ-यात्रा उद्दीप्त है । श्रीकृष्ण की लीला का कीर्तन, अपने अपराधों की स्वीकृति और उद्धार के लिए निवेदन ही अनुभाव है तथा अगति की चिन्ता, विउकं यादि सञ्चारी भाव है ।

उपयुक्त स्तुति-काव्यों में अनेक स्थल केवल दर्शनात्मक हैं, जिन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता । वे दर्शन-परक सूचनाएँ हैं । जहाँ स्तुतियों का रूप कथात्मक हो जाता है, वहाँ अन्य रस भी प्रवेश करते हैं । जैसे निम्नलिखित श्लोक में शृङ्गार-रस है—

‘मग्निरोदय देव्यो यदुदीरं सुस्मर-सिन्धुरोचः ।

पान्तु राज रघुराजमुदारं विश्लयनीय्यो घोराः ॥’^१

चन्द्रालङ्कारों के क्षेत्र में अनुप्रास, यमक तथा श्लेष के धनेक सुन्दर प्रयोग रघुराजसिंह ने किये हैं—

‘सकल-कारण-कारण-कारणः पतित-तारण-तारण-तारणः ।

निक्षिप्त-भावन-भावन-भावनः पतितपावन माधव पाहि माम् ॥

क्षिप्त-जीवन-जीवन-जीवनो जन-विलोपन-लोपन-लोपनः ।

विषद-कामद-कामद-कामदः पतित-पावन माधव पाहि माम् ॥

सकल-गोकुल गोकुल गोकुलः सकल-गोकुल-गोकुल-गोकुलः ।

सकल-गोकुल-गोकुल-गोकुलः पतित-पावन माधव पाहि माम् ॥’^२

श्रीकृष्ण की घोषा का वर्णन करते समय रघुराजसिंह की रचनाओं में पद-लालित्य आकर्षक हो उठा है—

‘स्मितमुखं सरसोदह-लोचनं श्विर-नासिकया परिराजितम् ।

अतिविद्यार-सुखाल-विद्योभिर्ल समवलोकितुमुत्सहते मनः ॥

उरसि हार-विहार-मनोहरं तुलसिका-वनमालिकयाऽभिवृतम् ।

कलित-कौस्तुभ-कण्ठ-दरोरमं समवलोकितुमुत्सहते मनः ॥’^३

(६) स्फुट रचनाएँ :

ऐसे चार कवियों का पता चलता है, जो बघेल राजाओं के सम्पर्क में आए और जिन्होंने संस्कृत पद्यों में इन राजाओं की प्रशंस्तियाँ लिखीं । ये कवि हैं—१ : रामचन्द्र भट्ट २ : जामुकर ३ : गोविन्द भट्ट या अकबरी कालिदास तथा ४ : पद्मनाभ मिश्र । इनमें से प्रथम तीन की चर्चा पीछे हो चुकी है ।^४ चौथे पद्मनाभ मिश्र पर जगछे अध्याय में प्रकाश डाला जायगा ।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, उपर्युक्त प्रथम तीन कवियों के कुछ मुक्तक, जो उनके किसी ग्रन्थ रूप में प्राप्त नहीं हैं, सुभाषित-सङ्ग्रहों में संकलित हैं । गोविन्द भट्ट के इन मुक्तकों के काव्य-सौन्दर्य की चर्चा की जा चुकी है । रामचन्द्र भट्ट (या रामचन्द्र कवि) के केवल २ श्लोक प्राप्त हैं, जिसमें रामचन्द्र (बघेल) की प्रशंस्ति है ।^५ इन श्लोकों के आधार पर इतना

१. रघुराज-मङ्गल चन्द्रावली : पूर्ववाणीविलास : रासवर्णन ।

२. जगदीशचतकम् : श्लोक ४५-४६, ४९ ।

३. जगदीशचतकम् : श्लोक ५२-५३ ।

४. अध्याय २ (ग) ।

५. पद्यरचना १०१९ एवं सूक्ति० ११२ ।

ही कहा जा सकता है कि प्रशस्ति में बीर रस है। रामचन्द्र मट्ट की रचना प्रसाद गुण से युक्त है। वह आलङ्कारिक शब्दावली का प्रयोग करता था।

डा० चौधरी के शब्दों में भानुकर उच्च कोटि का कवि था। वह महान् आलङ्कारिक था, अतः उसकी रचनाएँ आलङ्कारों से समृद्ध हैं। उसने अनेक दिपयो ५२ लेखनी चलाई हैं। सुमापित-सङ्ग्रहों में प्राप्त उसकी मनोहर रचनाएँ त्वरित प्रभाव करती हैं।^१

बीरमानु (बघेल) के प्रति उद्दिष्ट भानुकर के तीन मुद्रतक प्राप्त हैं। इनमें प्राप्त पदावली रामचन्द्र मट्ट की अपेक्षा अधिक संशुद्ध एवं प्राञ्जल है। प्रशस्ति होने से वह स्वभावतः ओज से पूर्ण है।

बीरमानु का प्रताप लङ्का में भी छा गया है। पुनः लङ्का में आग लग गई है, यह सोचकर नारियाँ व्याकुल हो उठी हैं और पतियों से भयवश लिपट गई हैं। उन नारियों की बाणी में कम्प है, वे हाथ फटकार रही हैं, मोटी के हार टूट रहे हैं, आँसू बह रहे हैं, बेगी छूट गई है—

‘लङ्का-धामनि बीरमानुनृपतेः प्रेक्ष्य प्रशपोदयं

प्रत्यागारमघोर-नीरजदृशो भूयो हुताश-भ्रमात् ।

धुन्धद्-वाणि विवृत-वाणि विगलन्-मुक्तामणि प्रस्त्रलद्-

वाष्प-श्रेणि विलोल-वेणि दयितं कण्डल्पके विभ्रति ॥’^२

बीरमानु ने रण-यात्रा की है। भेरी बज रही है, घोड़ों और हाथियों का कोलाहल दिशाओं में गूँज उठा है, ब्रह्माण्ड फटने लगा है। प्रताप-रुपी अग्नि की चिनगारियाँ लेकर ब्रह्मा ने चन्द्रमा, तारागण और आकाशगङ्गा का निर्माण कर दिया है—

‘भेरी-भाद्भृतिमिस्तुरङ्ग-निनदेः कुम्भीन्द्र-कोलाहलैः

प्रस्थाने तव बीरमान दलितं ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरम् ।

आघात उवलति प्रताप-दहनैरङ्गैः पुनर्बंधसा

तारानामन-तारका-पुरस्सरिद्-व्याजादिवायोजितम् ॥’^३

कदीमण बीरमानु की प्रशस्ति में बतलाते हैं कि दिल्लीपति, गज मरेश

१. मुस्लिम पैन्नेज० भाग १ : प्राच्यवाणी : कलकत्ता : १९५४ : पृष्ठ २० : विशेष चर्चा के लिये देखिये, पृष्ठ २-३२ :

२. पद्यवेणी० श्लोक ६८ : सूक्ति० श्लोक १०२ : पद्य० १३।२३ : रसिक० १३।२३ ।

३. पद्यवेणी० श्लोक ११४ : सूक्ति०, श्लोक १५० : पद्य० १८।१६ : रसिक० १९।१०६ ।

(उत्कल), गौड़राज तथा गुर्जरेश्वर—ये सभी आपको मथन करते हैं । यह सुनकर वीर-धो के कपोलों पर पुलक प्रकट होता है—

‘दिल्लीशो द्वारदेसो नमति गजपतिस्तत्परस्तादुपास्ते

गौडेन्द्रो नम्रमूर्धा तदनु नरपतिगुर्जरोर्वीश्वरोऽपि ।

भूत्वं वन्दि-वृन्दादवनत-वदनो गौरवं तत्र कुर्वन्

बोर श्रीवीरभानो रचयसि पुलकं वीरलदभी-कपोले ॥’^१

③

१. सारसङ्ग्रह (शम्भूदास पण्डित) : रा० ए० सी० : पाण्डुलिपि :
३१ पृ० । साथ ही देखिये-चौधुरी : ‘मुस्लिम पैट्रनेज०’ : पृष्ठ ८ ।

चम्पू

(क) वीरभद्रदेव-चम्पू :

१- कवि-परिचय

वीरभद्र-चम्पू या वीरभद्रदेव-चम्पू अथवा वीरभद्रदेव-चरित का लल्लेख संस्कृत-साहित्य की सूचियों में उपलब्ध है ।^१ यह ग्रन्थ कलकत्ता से प्रकाशित किया जा चुका है ।^२ प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में पुष्पिकाओं में ग्रन्थकार का नाम पद्मनाभ मिश्र मिलता है—

‘स्वस्ति-धौमद्-बघेलकुलावतंस-महागजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-श्री-मशोदा-नन्दन-युवराज-श्रीवीरभद्रदेव-चरिते-मिश्र-श्रीबलभद्रात्मज-विजयश्री-गर्भ-सम्पद-सकल शास्त्रारविन्द प्रद्योतन-भट्टाचार्य-श्रीपद्मनाभ-विरचिते प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ।’

स्पष्ट है कि इस चम्पू-ग्रन्थ वीरभद्रदेव-चरित का प्रणेता पद्मनाभ मिश्र और चरितनायक युवराज वीरभद्रदेव या, जो रामचन्द्र बघेल का पुत्र या ।

पद्मनाभ मिश्र के ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर सर्वप्रथम महामहोपाध्याय (वर्तमान पद्मिभूषण) पं० गोपीनाथ कविराज का ध्यान आकर्षित हुआ । पं० गङ्गानाथ झा और गोपीनाथ कविराज के सम्पादन के साथ १९२० ई० में पद्मनाभ मिश्र का ग्रन्थ ‘किरणावली भास्कर’ प्रकाश में आया । इस ग्रन्थ में गोपीनाथ जी ने ग्रन्थकार का संक्षिप्त किन्तु शोधपूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है, जो मूलतः पद्मनाभ की ही कृतियों के अन्तःसाक्ष्य पर आधारित है^३ । १९२४ ई० में गोपीनाथ कविराज और दुषिंदराज शास्त्री के सम्पादकत्व में भूमिकाओं के सहित वैशेषिक-दर्शन के प्रज्ञास्तपाद-भाष्य पर सूक्ति और श्लोकवती टीकाओं के साथ-साथ पद्मनाभ मिश्र की ‘शेखु’ व्याख्या भी क्रमशः

१. हि० अला० सं० लिट्० पुष्ठ १०११ तथा १०७४ में उद्धृत वीरभद्र-देव चम्पू : पीटर्सन० माग १।१०१ : १८८२-८३ (बाघेल रुलर्स०) ।

२. सम्पादक डा० जे० बी० चौधुरी: प्राच्यवानो संस्कृत सिरोज : कलकत्ता क्र० १२:१९५२

३. सरस्वती भवन टेक्स्ट: क्र० १ : गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी : बनारस । १७ अ० ख०

प्रकाशित की गई।^१ १९२९ ई० में नारायण दासत्री लिस्ते की भूमिका के साथ चन्द्रालोक की पचनाम-कृत शरदागम अथवा चन्द्रालोक-प्रकाश टीका प्रकाशित की गई।^२

किरणावली-भास्कर के अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका प्राप्त होती है—

‘इति श्री-जगद्गुरु-मिश्र-श्रीबलभद्रात्मज-विजयश्री-गर्भसम्भव-विश्वनाथानुज-संकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य-मिश्र-श्रीपचनाम-कृतः किरणावली-भास्करः सम्पूर्णः।’

इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि किरणावली-भास्कर और बोरभद्रदेव-सम्पू दोनों का प्रणेता पचनाम एक ही व्यक्ति है। वह अपने पिता बलभद्र मिश्र को ‘जगद्गुरु’ कहता है, माता का नाम विजय-श्री बतलाता है और गौरव के साथ अपने को विश्वनाथ का अनुज कहता है।

केशव मिश्र द्वारा प्रणीत तर्कभाषा पर ‘तर्कभाषा-प्रकाश’ नाम की टीका लिखने वाले गोवर्द्धन मिश्र ने इस कृति के आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक दिये हैं—

‘विजयश्रीतनूजन्मा गोवर्द्धन इति श्रुतः।

तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिर्मिताम् ॥

श्री विश्वनाथानुज-पचनामानुजो गरीयान् बलभद्रजन्मा।

तनोति तर्कान्पिगत्य सर्वान् श्रोतव्यनाभाद्विदुषो विनोदम् ॥’^३

इस उल्लेख को उपर्युक्त उल्लेख के साथ तुलनात्मक रूप से देखने पर स्पष्ट होगा कि पचनाम के छोटे भाई का ही नाम गोवर्द्धन मिश्र था। गोवर्द्धन को पचनाम ने ही न्यायशास्त्र की शिक्षा दी थी। इसी गोवर्द्धन मिश्र ने अन्नम्भट्ट के तर्कसङ्ग्रह पर न्यायशोधिनी टीका भी लिखी है।^४ गोपीनाथ कविराज के अनुसार गोवर्द्धन मिश्र ने भी अपने पिता बलभद्र को ‘जगद्गुरु’ लिखा है।^५

१. श्रीरामदास संस्कृत सिरोज : भाग १ : ग्रंथ क्रमाङ्क ३१६ : अन्य भाग पीछे १९२८ ई० तक प्रकाशित हुए।

२. काशी संस्कृत सिरोज : क्रमाङ्क ७५।

३. गोस्वामिन्-सुरेन्द्रलाल : तर्कभाषा (केशवमिश्र कृत) : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस : १९०१ : सटीक तर्कभाषाया विज्ञापनम् : पृ० १।

४. सम्भवतः इसी न्यायशोधिनी टीका के लिए डा० कीथ ने लिखा है कि १५८५ ई० के पूर्व अन्नम्भट्ट के तर्कसङ्ग्रह पर टीका लिखी जा चुकी थी (ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ पृ० ४८६)।

५. कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ४।

पद्मनाभ के पिता बलभद्र वैशेषिक और वैशाख के विशेष मर्मज्ञ थे । उन्होंने १२ वीं शती में लिखित शिवादित्य के ग्रन्थ सप्त-मदार्थी, वरदराज के ग्रन्थ तार्किकरक्षा और १४ वीं शती में लिखित केशव-मिश्र-कृत तर्कभाषा पर टीकाएँ लिखीं । वर्द्धमान के किरणावली-प्रकाश ग्रन्थ पर बलभद्रमिश्र ने 'युक्ति-कल्पद्रुम' नामक अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण टीका लिखी ।^१

पद्मनाभ मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'किरणावली-भास्कर' में आरम्भ में निम्न-लिखित श्लोक लिखे हैं—

‘उपदिष्टा गुरुवरणैरस्पृष्टा वर्द्धमानेन ।
किरणावल्यामर्थास्तन्यन्ते पद्मनाभेन ॥ १ ॥
विलसद्-वर्द्धमानार्जप तिरोहित-दिवाकरा ।
सकलार्थ-प्रकाशाय न क्षमा किरणावली ॥ २ ॥
बलभद्र-मुखाभोज-वचनादुदयाचलात् ।
उदितो भास्करस्तस्मादादरेण निषेव्यताम् ॥ ३ ॥’

अन्त में यह श्लोक है—

‘मस्तर्क-दुस्तर-तराणैव-कर्णधारो
वेदान्त-वर्म-निरताध्वम-सार्पवाहः ।
श्री-पद्मनाभ-रचितेन दिवाकरेण
तुष्टोऽमुनास्तु स श्रुती बलभद्रमिश्रः ॥’

इन उद्धरणों से प्रतीत होगा कि बलभद्रमिश्र की प्रतिभा गहन-गाम्भीर्य की और वे तत्कालीन ‘जगद्गुरु’ ही थे । उनके सुयोग्य पुत्रों ने उन्हें ही अपना सर्वथा गुरु बनाया और उनकी तुष्टि के लिए स्वयं ग्रन्थ-रचनाएँ कीं । पद्मनाभ ने अन्य स्थलों पर भी पिता को गुरु लिखा है ।^२ हम यह भी देख चुके हैं कि बलभद्रमिश्र ने तर्कभाषा पर भी टीका लिखी थी । अतः गोवर्द्धन का उपर्युक्त ‘तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिमिताम्’ उल्लेख अपने पिता बलभद्र मिश्र को ही गुरु चोखित करता है ।

सुरेन्द्रलाल गोस्वामी ने लिखा है कि ‘रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर द्वारा सङ्कलित १८८२-८३ ई० की रिपोर्ट पृष्ठ २१३ पर ‘गुरुनिमितां तर्कानुभाषां विविच्य तनुते’ इस उल्लेख के आधार पर गोवर्द्धन मिश्र केशव मिश्र का पित्र्य है,

१. कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ४-५ ।

२. राधान्तमुक्ताहार में पद्मनाभ ने अन्तिम कारिका में पिता के गुरु को ‘गुरु का गुरु’ लिखा है—‘प्रगल्भोऽस्तु गुरोर्गुरुः ।’ देखिये कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ६-टि० ।

यह सिद्ध होता है। यह गोवर्द्धन मिथ्र विजय-श्री और बलभद्र मिथ्र का पुत्र और विश्वनाथ तथा पद्मनाभ का अनुज है। इससे केशव का पद्मनाभ आदि का समकालीन तथा श्रीरहस्यो शती के अन्त में होना अनुमित होता है।^१

सम्भवतः इसी आधार पर आचार्य विश्वेश्वर ने भी भ्रमवश लिखा है कि गोवर्द्धन के गुरु केशव मिथ्र से और विश्वनाथ एवं पद्मनाभ केशव मिथ्र के अग्रज से तथा बलभद्र मिथ्र केशव मिथ्र के पिता से।^२ पद्मनाभ मिथ्र के वीरभद्रदेश चम्पू की रचना-तिथि असन्दिग्ध रूप से १५७७ ई० ज्ञात है। अतः बलभद्र मिथ्र की अधिक से अधिक १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध तक ले जाया जा सकता है। केशव मिथ्र की तर्कभाषा पर टीका लिखने वाला बलभद्र मिथ्र केशव मिथ्र का पिता नहीं हो सकता, बंधज हो तो हो। डा० कीथ ने केशव मिथ्र का काल १३ वीं-१४ वीं शती माना है।^३

गोवर्द्धन और पद्मनाभ के अग्रज और बलभद्र मिथ्र के ज्येष्ठ पुत्र विश्वनाथ अवश्य ही विद्वान् रहे होंगे, क्योंकि उनके दोनों अनुजों ने उनका उत्तल गौरव के साथ किया है। खेद है कि उनकी कृतियाँ अभी तक अदृश्य ही हैं।

पद्मनाभ पर पिता के गुरु प्रगल्भ भट्टाचार्य का भी प्रभाव था। उसने उनके मंतों का अपने ग्रंथों में उद्धरण दिया है। प्रशस्तपाद-भाष्य पर लिखित अपनी 'सैतु' टीका में जहाँ इस प्रकरण पर लिखा है कि 'तमस् द्रव्य है या गुण है अथवा केवल आलोकामात्र है', उसने प्रगल्भ भट्टाचार्य का मत उद्धृत किया है—

'अस्मत्-पितृचरणाराध्या : श्री प्रगल्भ-भट्टाचार्यास्तु

आलोकामात्रस्य तमस्त्वे.....'।^४

किरणावली-भास्कर में भी द्रव्य-विरूपण के अन्त में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—'प्रौढ़-प्रकाशक तेजो-रूपाभावस्तम इति प्रगल्भ भट्टाचार्याः।'^५

पद्मनाभ मिथ्र ने प्रगल्भभाष्य की प्रसन्नता के लिये ही ८१ कारिकाओं से युक्त वैशेषिक-ग्रन्थ राट्टान्तमुक्ताहार का प्रथमन किया। इसमें प्रगल्भ के

१. तर्कभाषा : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस : १९०२ : 'सटीक तर्क-भाषाया विज्ञापनम् : पृष्ठ १ तथा पृष्ठ ३ : 'केशवमिथ्रस्य चतुर्दशशताब्दि-शेषभाग पूर्वत्वं पद्मनाभादि-समानकालिकत्वं च शक्यमवगन्तुम् !'

२. (हिन्दी) तर्कभाषा : चौखम्बा : बनारस : २०१० वि० : भूमिका : पृ० ५६-५८ ।

३. 'ए हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिट्' : आक्सफोर्ड : १९२८ । पृष्ठ ४८६ ।

४. कि० भा० : घंशरेजी भूमिका : पृष्ठ ६ ।

५. वही, मूल, पृष्ठ ४० ।

सिद्धान्तों का प्रवर्तन करते हुए पद्मनाभ ने उनकी प्रसन्नता के लिए अपनी मौलिक प्रतिभा का भी प्रयोग किया। अन्तिम कारिका से यह सूचना मिलती है—

‘यद्यदत्र विनिक्षिप्तं नभ्यं सिद्धान्त-वर्तिना ।

पद्मनाभेन तैः प्रीतः प्रगल्भोऽस्तु गुरोर्गुरुः ॥’^१

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि पद्मनाभ अवश्य ही पूर्व भारत का था। यह स्पष्टतः ज्ञात नहीं होता कि वह मैथिल था अथवा बङ्गोय। उसने अपने को ‘मिश्र’ और ‘मट्टाचार्य’ लिखा है और परम्परा उसे मैथिल मानती है।^२ किन्तु विन्ध्येश्वरी प्रसाद त्रिवेदी ने न्यायकन्दलीकार घोषराचार्य की मट्टाचार्य होने के कारण बङ्गदेशीय माना है।^३

उपयुक्त बीरभद्रदेव-चम्पू और किरणाबली-भास्कर की पुष्पिकाओं के अनुसार पद्मनाभ ने अपने को ‘सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन’ और ‘मट्टा-चार्य’ लिखा है। ये दोनों पद्मनाभ की उपाधियाँ प्रतीत होती हैं। चन्द्रालोक की शरदागम टीका के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्री-महाराजाधिराज-श्री-रामचन्द्रदेवात्मज-युवराज-बीरभद्रदेवादिष्ट-मिश्र-श्रीबलभद्रात्मज-सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-मट्टाचार्य-विरचिते चन्द्रालोक-प्रकाशे शरदागमे दसमो मयूखः समाप्तः ।’

सम्भवतः इसी पुष्पिका के आचार पर जाफे ने अपनी ग्रन्थ-सूची में

१. कि० मा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ६, टि० ।

‘प्रगल्भ भी मिश्र थे। वे लाडी वंश के नरपति मिश्र के पुत्र थे। उनका अन्य नाम शुभङ्कुर था और वे प्रज्ञावशु थे। देखिये-खण्डन-खण्डलायः श्रीसम्बा : अथ क्र० ४४५ : बनारस : १९३६ : प्रगल्भ मिश्र कृत खण्डन-दर्पण टीका के आरम्भिक श्लोक २-४ :

‘लाडीवंशे ...श्रीमन्नरपतिमहामिश्रवर्यो बभूव ।

तस्मात्समजः...श्रीमच्छुभङ्कुर इति प्रथमः कवीनाम् ॥

तेनालुण्य-विचार-मन्यमयितेद्घृत्य विद्यार्णवात्

प्रज्ञानेनतया निरुढविलसत्-मत्सखण्डनार्णामृतम् ।

श्रीमच्छङ्कुर-वर्द्धमान-चरितोपायान् विलायापि च

श्रीहर्षस्य कृतेर्मया कृतिमुदे श्रोदरपणो रञ्जते ॥’

२. कि० मा० अं० भूमिका : पृष्ठ ३ ।

३. वैरोपिक-दर्शनम् : जयकृष्णदास गुप्त : बनारस : १९१९ : विज्ञा-
पनम् : पृ० १६ पादटिप्पणी : ‘...मट्टाचार्यत्वान्च बङ्गदेशीयः ।’

पद्मनाभ मिश्र का अन्य नाम 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' माना ।^१ कविराज जी ने १९२० ई० में हो आफे० की इस मूल की ओर सङ्केत कर बतलाया कि पद्मनाभ ने अपनी बहुमुखी विद्वत्ता के अभिज्ञानस्वरूप सम्बद्ध राजसभा से 'सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन (या प्रद्योत) भट्टाचार्य (या भट्ट)' की गौरवमयी उपाधि प्राप्त की । यह उपाधि किरणावली-मास्कर, कणादरहस्यम्, वर्द्धमानेन्दु, शरदागम आदि पद्मनाभ की अनेक कृतियों में प्राप्त है । 'प्रद्योतन' स्पष्टतः 'सकल-शास्त्रारविन्द' शब्द के साथ ग्रहण करने ॥ उपाधि का सूचक है, व्यक्तिनाम नहीं । शरदागम में मूल नाम न होने से यह मूल हुई प्रतीत होती है ।^२

किन्तु मूल चलती रही । हरदत्त शर्मा ने लिखा कि "(कन्दर्प-बूझामणि', १५७७ ई० के प्रणेता) श्रीरामदेव ने शरदागम के रचयिता किसी 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' को आश्रय दिया । क्या श्रीर (या श्रीरामदेव) चम्पू के कर्ता एक अथवा कवि 'प्रद्योतन-पद्मनाभ मिश्र' और 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' एक ही व्यक्ति हैं ? दोनों ही बलमङ्ग के पुत्र हैं । आफे० के विवरणों से विदित होता है कि गोवर्द्धन मिश्र और विद्वनाथ पद्मनाभ के भाई थे ।... मैं यह विश्वास करना चाहता हूँ कि प्रद्योतन पद्मनाभ और प्रद्योतन भट्टाचार्य एक ही व्यक्ति हैं ।^३

अधिक आश्चर्य की बात यह है कि पद्मनाभ की सेतु टीका की भूमिका में गोपीनाथ कविराज के साथ सह-सम्पादक रूप में पं० दुर्गिराज शास्त्री ने पद्मनाभ का अन्य नाम 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' माना ।^४ इसी प्रकार १९१८ ई० में प्रकाशित चण्डालोक की राकागम टीका की भूमिका में अनन्तराम शास्त्री बेताल ने शरदागम की प्रद्योतन-भट्टाचार्य-कृत लिखा ।^५ इसी के साथ की भूमिका में बटुकनाथ शर्मा ने भी शरदागम के रचयिता को प्रद्योतन-भट्ट

१. कि० भा० : अंग० भूमिका पृष्ठ ५-टि० : आफे० जिल्द १ : पृष्ठ ५९४ ।

२. वही, पृष्ठ ५ तथा शरदागम टीका : आरम्भ में—

क्रियते तस्य निदेशाच्चन्द्रालोक-प्रकाशोऽयम् ।

शरदागम इति विदितो भट्टाचार्येण यत्नेन ॥'

३. बाघेल रुलर्स० ।

४. चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला-६१ : बनारस : १९३० : पृष्ठ १ :

प्रद्योतन-भट्टाचार्यापराभिधान-श्रीपद्मनाभमिश्र-निमित्तः सेतुः.....' ।

तथा पृ० ५ ।

५. चौखम्बा : ग्रन्थ संख्या ८३ : पृष्ठ २ : प्राचीनतमका प्रद्योतनभट्टाचार्येण निमिता शरदागमनाम्नी.... ।

लिखा ।^१ चन्द्रालोक की धीर्गमासी टीका की भूमिका में नन्दकिशोर शर्मा ने भी शरदागम व्याख्या को 'प्रद्योतनमट्टाचार्य' द्वारा रचित बतलाया है, यद्यपि यह पद्मनाभ मिश्र का ही दूसरा नाम लिखा है ।^२ हीरानन्द शास्त्री ने भी पद्मनाभ मिश्र का दूसरा नाम प्रद्योत (या-तन) मट्ट (या मट्टाचार्य) लिखा है ।^३ नारायण दासजी खिस्ते ने ऐसा ही लिखा है ।^४

वैशेषिक-दर्शन पर द्रष्टव्यपाद-भाष्य की अपनी 'सेतु' टीका के आरम्भ में पद्मनाभ मिश्र ने निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

‘बल-वशोक्त-दुर्दम-मपति-

निज-भुजाजित-लोक-समुन्नतिः ।

अमतिकारि-जनस्य परा गति-

जयति वीरवरः पृथिवीपतिः ॥ ३ ॥’^५

सेतुकार ने 'सेतु' के तीन भाग किये हैं । अन्तिम तृतीय भाग के अन्त में ये श्लोक है—

भाष्याम्भोनिधि सेती-वीरवरीये वशी-हेती ।

वरमे सलणभाषो रचितः धीपद्मनाभेन ॥ १ ॥

अमुनाऽनुषोक्तता वदमन्य-वदाम्याद् विशिष्टेन ।

प्रत्युपकार-विभाष्यं रचितो ग्रन्थस्ततोऽस्माभिः ॥ २ ॥

१. वही, दूसरी भूमिका-पृ० ११ :

अयं चन्द्रालोकस्य टीकाकृतो ग्रन्थः प्रद्योतन-मट्टेन विरचितः । बलमद्रमिश्र-तनयः प्रद्योतनमट्टो— ।’

२. चौखम्बा : सं० १९९३ क्रि० : पृष्ठ ३ : चन्द्रालोकस्य सर्वतः प्राचीना-शरदागमस्या व्याख्या प्रद्योतनमट्टाचार्येण विरचिता ।’ तथा पृष्ठ ६-७ ।

३. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ ३ : पद्मनाभ मिश्र, जिसका दूसरा नाम प्रद्योत (या प्रद्योतन) मट्ट या मट्टाचार्य था, उसको (वीरमद्र की) समा का एक कवि था और उसने कई ग्रन्थ रचे ।

४. चन्द्रालोकः शरदागमटीका : १९२९ : ग्रन्थ का शीर्षक : धीमद्पद्म-नाभमिश्रापरामिषान प्रद्योतनमट्टाचार्य-विरचितया— ।’ तथा अंग्रेजी और संस्कृत भूमिका में अनेकन ।

५. चौखम्बा संस्कृत सीरीज ग्रन्थ क्र० ३१६ : बनारस : १९२४ । पृष्ठ २ ।

यथानिष्ठानोत्तं मुनिमसमिदं शातचरणै-

स्तथा भ्रातुर्नात्र प्रभवति विशेषं गुरुरनि ।

अनुच्छिद्यं यच्चेदिह हि पर-विद्वद्वर-धिया

सदास्वाद्यास्वाद्यं भवत कृतिनस्तर्ककृतिनः ॥ ३ ॥

इति श्रीमदखिल-भूषक-चक्रवर्कवल सुस्वाण-प्रताप-तपन-वर्द्धमान-शोभाविशय-यशोराजिजीव-महाराजाधिराज-श्रीवीरवरीये मिश्र-श्रीजगद्गुरु-बलमद्रात्मज-विज-यश्री-गर्भसम्भव-विश्वनाथानुज-सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य-मिश्र-श्री-पद्मनाभकृती-वैद्यैकिकसेतो तृतीयः परोवाहः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

सेतु में प्राप्त इस उक्ति के आधार पर गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि पद्मनाभ ने अपने आश्रयदाता के औदार्य गुण का कृतज्ञता के साथ स्मरण किया है। वीरभद्र (बघेल) की कृपा के प्रत्युपकार के रूप में उसने टीका लिखी और इसे वीरवरीय नाम दिया। उसने 'अन्यबदान्याद् विशिष्टेन' वीरभद्र के सम्बर्ध में लिखा है। 'वीरवर' नाम नहीं, एक सम्मानित उपाधि है।—इस सन्दर्भ में यह ध्यान देने योग्य बात है कि कन्दर्पचूडामणि में वीरभद्र के विशेषण के रूप में वीर शब्द प्रयुक्त हुआ है—भूषक-चक्रवर्त्तौ वीरः श्रीवीरमहोऽसौ ।^१

नारायण शास्त्री खिस्ते^२ तथा नन्दकिशोर शर्मा^३ ने भी लिखा है कि 'सेतु' टीका में पद्मनाभ ने वीरभद्र की विशेष स्तुति की है।

सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी ने लिखा है कि मुँदीनगर में वीरसिंह (१३४१-१४१९) राजा था। छन्दः पूरि के लिए वीरसिंह को पद्मनाभ ने वीरवर लिखा होगा।^४ श्री गोस्वामी के इस तर्क को नहीं माना जा सकता, क्योंकि पद्मनाभ उक्त वीरसिंह से कम से कम ढाई सौ वर्ष पीछे हुआ।

१. वही, ग्रन्थ क्रमांक ३७५। १९२८ ई०। पृष्ठ ४२३।

२. कि० मा० अंगरेजी भूमिका : पृष्ठ ३-४ (टि० सहित) : तथा कन्दर्प-चूडामणि (रामचन्द्र शास्त्री) : संस्कृत-पुस्तकालय : लाहौर । १९२६ : अ० ५।३।१।

३. चन्द्रालोक : शरदागम टीका : बनारस : १९२९ : संस्कृत-प्रस्तावना : पृष्ठ ५ : 'प्रशस्तपाद-भाष्य-टीकायां 'सेतु' नामिकायामनेन वीरभद्रदेवः सविशेषं स्तुतः ।'

४. चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका १ : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका : पृष्ठ ३-७।

५. तर्कभाषा : बनारस : १९०१ : सटीक-तर्कभाषाया विज्ञापनम् : पृष्ठ ३-४।

जैसा उपर्युक्त श्लोकों और पुष्पिकाओं से प्रतीत होगा, यहाँ पर पद्मनाभ द्वारा सल्लिखित व्यक्ति न तो बीर है और न बीरभद्र । यह व्यक्ति बीरवर है, जो बीरवल का संस्कृत रूप है । उपर्युक्त पुष्पिका में प्राप्त शब्द सुरत्राण है, जो मुलतान का संस्कृत रूप बनाया गया था ।^१ उक्त पुष्पिका के आरम्भ में अक्षिल मूचक्र-शक्र शब्द अगले पद अर्कवल सुरत्राण का विशेषण है, जो अकबर मुलतान के स्थान पर है । अतः यह बीरवर बीरवल के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता । मुस्लिम लेखों में भी हमें यत्र-तत्र बीरवल का नाम बीरवर प्राप्त है ।^२ इस प्रकार यह बात असन्दिग्ध है कि 'सेतु' टीका बीरवल की 'बदान्यता' के प्रत्युपकार में ही लिखी गई । बीरवल ने ही पद्मनाभ को आश्रय देकर 'अनुष' किया ।

प्रशस्तपाद भाष्य पर लिखित 'सेतु' टीका में व्यञ्जना का पदार्थान्तरण स्पष्टित करते हुए पद्मनाभ ने अपने अलङ्कार-ग्रन्थों के नाम दिये हैं, जिनमें शरदागम भी है—

‘व्यञ्जनायां साधन-दूषण-प्रकार-विस्तारश्च मत्कृतालङ्कार-भास्कर-काव्य-प्रकाशप्रकाश सत्सङ्ख्यनेकावलो-विवरण-शरदागम-मनोरमादौ सचमत्कारं द्रष्टव्य इति ।’

श्री शिस्ते ने इस शरदागम टीका का रचनाकाल १५८३ ई० बतलाते हुए लिखा है कि ‘अनेक विद्वानों ने इस तिथि का उल्लेख किया है’, किन्तु श्री शिस्ते ने अपनी जानकारी के स्रोत का उल्लेख नहीं किया ।^३ सम्भवतः कुछ पाण्डुलिपियों में यह रचनाकाल होगा । आफ्रे ने अपनी सूची में शरदागम का रचनाकाल १५८३ ई० लिखा है ।^४ अतः इस तिथि पर विश्वास किया

१. राम० प्र० पृ० ३ : ‘सुरित्राण-साहासिम-’

तथा बीर० संग १०।१३ : ‘सुरत्राण-मुहम्मदादिः ।’

२. आईन० पृष्ठ ४०६ तथा अल-बदाओनी : शी : भाग २ : पृष्ठ ३५७-५८ : इन लेखों में बीरवल का नाम ‘बिरहमदास’ (बहादास) भी मिलता है । (वही भाग १ : पृष्ठ १४ टि० : बीरवर गदाई बिरहमदास) ।

३. प्रशस्तपाद-भाष्य : सूक्ति-सेतु-भ्योमवती टीका : शीखवा : ग्रन्थ क्र० ३१६ : १९२४ : सेतु-टीका-पृ० ८२ :

४. चन्द्रालोक : शरदागम : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ७ तथा संस्कृत भूमिका पृष्ठ ३ ।

५. आफ्रे० भाग ३ : पृष्ठ ३९ ।

जा सकता है। बटुकनाथ शर्मा ने इस रचना-तिथि को १६२६ वि० (१५९९ ई०) लिखा है, किन्तु कोई आधार नहीं बतलाया। यह तिथि विश्वसनीय नहीं है।^१

‘सेतु’ टीका में शरदागम का उल्लेख होने से ‘सेतु’ का रचनाकाल १५८३ ई० के पीछे आता है। बोरवल की मृत्यु काबुल के युद्ध में ९९५ हिजरी १५८७ ई० में हुई।^२ अतः सेतु का रचनाकाल १५८३ और १५८७ ई० के बीच है। सम्भवतः सेतु ही पद्मनाभ की अन्तिम रचना है।

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि यह विद्वान् (पद्मनाभ) विधिवश पूर्वीय क्षेत्रों से चल कर बुन्देलखण्ड के पार्वत्य प्रदेशों में पहुँचा और वघेल राजाओं की राजसभा के समासद रूप में बस गया।^३ श्री शिस्ते का कथन है कि वघेलखण्ड के अलंकार रीवा के महाराज बोरभद्रदेव ने उसे आश्रय दिया, जिनकी सभा का वह प्रधान पण्डित हुआ।^४ बटुकनाथ शर्मा के अनुसार पद्मनाभ बुन्देलखण्डीय महाराज बोरभद्रदेव का सभा पण्डित था।^५

इस सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि वघेलों द्वारा शासित प्रदेश बुन्देलखण्ड के उत्तर-पूर्व, यमुना-गङ्गा से नर्मदा तक वघेलखण्ड नाम की पुष्पक्षता रखता था। साब हो पद्मनाभ का आश्रयदाता वघेलखण्ड का युवराज और तत्कालीन महाराज रामचन्द्र का पुत्र था, स्वयं महाराज नहीं, जैसा कि शरदागम और बोरभद्रचम्पू में पीछे निर्दिष्ट पुणिकाओं से स्पष्ट है। इस समय वघेलों की राजधानी रीवा नहीं, गहोरा थो और वे बान्धवगढ़ में निवास कर रहे थे, जैसा कि स्वयं पद्मनाभ ने बोरभद्रचम्पू में लिखा है।^६

१. चन्द्रालोक : राकागम टीका : १९३८ : संस्कृत भूमिका : पृष्ठ ११ : बटुकनाथ शर्मा ने यहीं पर कन्दर्प चूड़ामणि की रचना-तिथि १६२० वि० (१५९३ ई०) बतलाई है, जब कि उसी ग्रन्थ में तिथि १६३३ वि० (१५७७ ई०) दी हुई है (अ० ७-२-४९)।
२. ईलियट-माग ५ : बहायुनी : मुन्तखब-उत्तवारोख : पृष्ठ ५२९-३०।
३. कि० भा० अंग० भूमिका : पृष्ठ ३।
४. चन्द्रालोक : शरदागम : अंग० भूमिका पृष्ठ ७ तथा संस्कृत-भूमिका पृष्ठ ५।
५. वही , राकागम टीका : १९३८ : संस्कृत-भूमिका : पृष्ठ ११ : ‘शरदागमः’।
६. उच्छ्वास १।१३ : ‘अस्ति...नगरी गहोरा। ...साऽस्य...राजधानी।’ तथा ‘...तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः। ...साम्प्रतं समधिष्ठिति।’

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि अपनी बहुश्रुतता की प्रतिपत्ति के रूप में पद्मनाभ ने आश्रय देने वाली राज्य-सभा से 'सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य' की उपाधि प्राप्त की होगी। यह उपाधि किरणावली-भास्कर, कणाद-रहस्यम्, बर्द्धमानेन्दु और शरदागम आदि (वीरभद्रचम्पू और वैशेषिक सेतु) में प्राप्त है।^१

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि पद्मनाभ ने अकबर-कालिदास गोविन्दमट्ट की भाँति अकबर का स्तुति-गान नहीं किया। पद्मनाभ यथार्थ रूप में शान्त जीवन का पक्षपाती, विद्या का उपासक और साहित्य का साधक प्रतीत होता है, पद का आराधक नहीं। इसीलिए वह युवराज वीरभद्र जैसे विद्या-प्रेमी और कवि-गोष्ठियों के आयोजक^२ तथा वीरबल जैसे कवि की ओर आकृष्ट हुआ, इन्हीं की सहायता से ऋणमुक्त होकर उसने कृतज्ञता-पूर्वक इनके यशोगान किये।

ऊपर जिन ६ ग्रन्थों में 'सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य' की उपाधि प्राप्त है, उनमें से दो वीरभद्रचम्पू और शरदागम वीरभद्रदेव के प्रीत्यर्थ एवं तीसरा वैशेषिक-सेतु वीरबल की प्रसन्नता के निमित्त लिखा गया है, किन्तु शेष तीन में से कणाद-रहस्य और उसकी मूल कारिकाएँ (रादान्त-मुक्ताहार) पद्मनाभ के पिता बलभद्र के गुरु प्रगल्भाचार्य की सन्तुष्ट करने के लिए एवं किरणावली-भास्कर तथा बर्द्धमानेन्दु स्वयं पिता के प्रसादार्थ लिखे गये। इनके अतिरिक्त अन्य अनुपलब्ध ग्रन्थ हैं, जिनमें भी उक्त उपाधि का उल्लेख हो सकता है और जो पूर्ववर्ती भी हो सकते हैं। अतः अधिक सम्भव यही प्रतीत होता है कि उक्त उपाधि पद्मनाभ ने स्वतः ग्रहण की और वह उसकी स्वाभिमानोन्मिषित है, किसी दरबार या राज-सभा द्वारा प्रदत्त नहीं।

वीरबल और वीरभद्र में परस्पर दीर्घकालीन सम्बन्ध था।^३ अतः परवर्ती

१. कि० भा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ५।

२. शरदागम का मङ्गलाधरण : वीरभद्र के सन्दर्भ में पद्मनाभ की उक्ति : श्लोक ६ : '.....कवि गोष्ठो-दैवतारामः।'

३. अक० भाग २ : पृष्ठ २८१-८३ : वीरबल की मध्यस्थता से अकबर ने आसफ़ खाँ को १५६२-६३ ई० में फर्मान जारी किया कि रामचन्द्र बघेल (बान्धवगढ़) पर से घेरा हटा लिया जाय। आईन० पृष्ठ ४०६-७ : (वीरभद्र ने १५८३-८४ ई० में अकबर को इस पर राजी कर लिया कि रामचन्द्र को बुलाने के लिए वीरबल और जईन कोठा भेजे जायें।) तथा बल-बदाओनी : अनु० लो : भाग २ :

जीवन में पद्मनाभ इन दोनों का समीपी रहा होगा। किन्तु बीरभद्रधम्मू में बघेलखण्ड के अनेक स्थलों, धनियों, रामचन्द्र और उनके परिवार एवं राज्य-क्षेत्र आदि का जिस प्रकार उल्लेख है, उससे प्रतीत होता है कि पद्मनाभ सम्भवतः बीरभद्र के साथ अवश्य ही बघेल समा (बान्धवगढ़) में कुछ वर्षों तक रहा होगा और बीरभद्र द्वारा रत्नपुर आदि क्षेत्रों पर चढ़ाई के समय भी उनके साथ रहा होगा। बीरभद्र की सेना के सत्रोव वर्णन में 'मया दृष्टाः' शब्द से यह सूचित होता है।^१

पद्मनाभ के ग्रंथ :

सकल शास्त्रों के मर्मज्ञ पद्मनाभ के उपलब्ध एवं उल्लिखित ग्रन्थ ग्याय, वैशेषिक, वेदान्त, साहित्यशास्त्र और काव्य (धम्मू) के क्षेत्रों को व्याप्त करते हैं। इनकी संख्या १५ है, जिनमें से एक सन्दिग्ध है।^२

ग्याय-ग्रंथ १ चिन्तामणि-प्रोसा—१२०० ई० के निकट गङ्गेश ने तत्त्व-चिन्तामणि नामक महत्वपूर्ण ग्याय ग्रंथ की रचना की,^३ जिस पर पद्मनाभ ने टीका लिखी है।

वैशेषिक-ग्रन्थ २. ग्याय-कन्दली-टोका (सन्दिग्ध)—वैशेषिक सूत्रों पर लगभग ५वीं शती में प्रशस्तपाद न भौलिक भाष्य रचा, जिसका नाम 'पदार्थ-धर्म-सङ्ग्रह' रखा गया। श्रीधराचार्य ने १९१ ई० (शकाब्द ९११) में इस

पृष्ठ ३४५ : (बीरवर, जो भाठ के राजा रामचन्द्र की नौकरी में पहले रह चुका था, उसे बुलाने को भेजा गया।)

१. देखिये आगे बीरभद्रधम्मू का विवरण। सेना के वर्णन के लिए देखिये सं० बा० दे० पृष्ठ २१-१००। इस युद्ध का समय और पद्मनाभ का बघेलखण्ड में आगमन १५७७ ई० से कुछ वर्षों पूर्व होगा :

२. देखिये आकै० : जिल्द १-३१२ ए : हरदत्तशर्मा ने इसे अपने छेज 'बाघेल स्लर्त्स' में उद्धृत किया है। साथ ही देखिये—कि० भा० अंग० भूमिका : पृष्ठ ५-१० : दुष्टिराज शास्त्री की भूमिका : प्रशस्तपाद भाष्य सूक्ति-सेतु-व्योमवती : चौखम्बा-१९३० : पृ० ६ : नारायण शास्त्री खिस्ते : शरदाग्राम : १९२९ : संस्कृत प्रस्तावना। पृष्ठ ५ : नन्दकिशोर शर्मा : पौर्णमासी : चौखम्बा : ग्रंथ संख्या ५७ : १९४५ ई० भूमिका : पृ० ७।

३. की० : 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्० : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ ४८४।

माध्य पर 'न्याय-कन्दली' नाम की टीका लिखी।^१ गोपीनाथ कविराज के अनुसार 'कहा जाता है कि पद्मनाभ ने इस न्यायकन्दली पर टीका लिखी है, किन्तु कोई पाण्डुलिपि उपलब्ध न होने से यह सन्दिग्ध है। किरणावली की भूमिका (पृष्ठ ४) में विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने इस ग्रंथ का उल्लेख किया है।^२

श्री द्विवेदी का विज्ञापन देखने पर यह उल्लेख नहीं मिला।^३ दुण्डिराज शास्त्री ने लिखा है कि पद्मनाभ की 'सेतु' टीका पर इस न्याय-कन्दली का प्रभाव है।^४

३. बर्द्धमानेन्दु—प्रयस्तपाद-भाष्य पर उदयन द्वारा लिखी हुई 'किरणावली' नामक टीका को बहुत मान्यता प्राप्त हुई। किरणावली के द्रव्य-प्रकरण पर गङ्गेश के पुत्र बर्द्धमान ने किरणावली-प्रकाश नाम की टीका लिखी।^५ बर्द्धमान की इस टीका पर पद्मनाभ के पिता बलमद्र मिश्र ने 'युक्ति' या 'युक्ति-कल्पद्रुम' अथवा 'युक्ति-कामधेनु' नाम से महत्वपूर्ण टीका लिखी। पद्मनाभ ने पिता की इस युक्ति नामक कृति का सार-भाग ग्रहण कर 'बर्द्धमानेन्दु' नामक ग्रन्थ लिखा।^६

४. तरु-प्रकाशिका टीका—इस ग्रन्थ का विवरण प्राप्त नहीं है। आठे० के आधार पर केवल हरदत्त शर्मा ने इसकी सूचना प्रस्तुत की है।^७ अन्यत्र इस ग्रन्थ की चर्चा नहीं है।

१. किरणावली : वि० प्र० द्विवेदी : बनारस : १९१९ : विज्ञापनम् : पृ० १५-१७ : 'अधिक-दशोत्तर-नवशत-शकान्दे ।'

२. कि० भा० अंग० भूमिका : पृ० ७ ।

३. किरणावली : विज्ञापनम् ।

४. प्रयस्तपादभाष्य : 'युक्ति-सेतु-व्योमवती' : श्रीलम्बा-बनारस : १९२० : पृ० ५ ।

५. कि० भा० : भूमिका : पृ० २ : बर्द्धमान का मङ्गलाचरण : 'यस्तर्कतन्त्र-शतपत्र-सहस्ररश्मिर्गङ्गेश्वरः सुकवि-कैरव-काननेन्दुः । तस्यात्मजोऽतिगह्वरा किरणावलीं तां प्राकाशयत् कृतिमुदे बुध-बर्द्धमानः ॥'

६. कि० भा० : अंग० भूमिका : : पृ० ६-७ :

बर्द्धमानेन्दु के आरम्भ में यह श्लोक है—

'बलमद्र-कृतान्मोघेच्छृत्वातिप्रयत्नतः ।

बर्द्धमानेन्दुरधुना पद्मनाभेन तन्वते ॥'

७. बाघेल स्मृतं० । आठे० बिल्द १-३२२ ए । हरदत्तशर्मा ने बर्द्धमानेन्दु की बर्द्धमान के न्यायनिबन्ध प्रकाश की टीका बतलाया है ।

५. किरणावली-भास्कर—पद्मनाभ ने उपर्युक्त 'किरणावली-प्रकाश' पर वर्द्धमानेन्दु टीका लिखते समय उसे अपर्याप्त पाया। उसने स्वयं पूरक रूप में किरणावली पर अपनी टीका 'किरणावली-भास्कर' नाम से लिखी। इस ग्रंथ का वास्तव में स्वतन्त्र मूल्य है। पद्मनाभ के मन में वर्द्धमान के प्रति प्रतिद्वन्द्विता का उदय होने से साहित्य-भगत् को लाभ हुआ। किरणावली-भास्कर को दो पाण्डुलिपियाँ कविराज जी को गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी बनारस में उपलब्ध हुई थी।^१

६. सेतु या वेनोपिक सेतु—पद्मनाभ ने प्रद्युम्नपाद भाष्य पर बीरबल की उदारता के प्रत्युपकार के निमित्त १५८३ ई० से १५८७ ई० के बीच 'सेतु' टीका लिखी। यह टीका द्रव्य-प्रकरणान्त है। इस ग्रन्थ का आधार पिता के तर्क पे और लक्ष्य या भाषा को सरल करना। चौतर्था-संस्कृत-ग्रन्थमाला बनारस से ग्रन्थ क्रमांक ३१६, ३४२, ३५४, ३७४ और ३७५ के क्रम से १६२४ ई० से १६२८ ई० तक यह ग्रन्थ पाँच भागों में प्रकाशित हो चुका है। क्रमांक ३७५ में सेतु टीका समाप्त हो जाती है।^२

७. रादान्त-मुक्ताहार और उसकी स्वकृत टीका कणाद-रहस्य—रादान्त-मुक्ताहार^३ पद्मनाभ का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें ८१ कारिकाएँ हैं। अपने पिता बलमङ्ग मिश्र के गुरु प्रगल्भ मिश्र भट्टाचार्य की प्रसंगता के लिए पद्मनाभ

१. सूचिका। साध हो देखिये-'किरणावली'। बनारस : १९१९। वि० प्र० द्विवेदी का विज्ञापन : पृष्ठ ६ : टिप्पणी—'ग्रन्थोऽयं बलोक-विज्ञ-हजारमकः।'

२. भाग १ (ग्रन्थ क्र० ३१६) : आरम्भ के श्लोकः—

'स्मृतिश्चमुपनीय श्रीमत्स्ताव-वचना-

दुचितमुपचितार्थं वाक्यमर्यादरेण ।

अयति विरचितोऽग्रे पद्मनाभेन यत्ना-

दुदयन-कृति-नार-प्राप्तये सेतुरुन्विः ॥ १ ॥

उदयन-कृत्-चन्द्रिकया बृद्धो भाष्याम्बुधिपरितः ।

बालानामपि सुगमस्तत्र मया रच्यते सेतुः ॥ २ ॥

३. हरदत्त शर्मा ने अपने लेख (वाचेल रूलर्स०) में आगे की सूची के आधार पर इन कृतियों के नाम 'रदान्त-मुक्ताहार' और 'कणाद-रहस्य' दिये हैं, जो अशुद्ध हैं (देखिये-आगे० जिन्द १-३२२ ए।)

ने यह ग्रन्थ लिखा और पीछे स्वयं इन कारिकाओं को 'कणाद-रहस्य' नाम से टीका लिखी ।^१

वेदान्त-ग्रन्थ—

८. खण्डन-खण्ड-खाद्य-टीका—१२ वीं शती के उत्तरार्द्ध में नैयघीय-चरित के प्रणेता श्रीहर्ष ने खण्डन-खण्ड-खाद्य नाम का वेदान्त-ग्रन्थ लिखा, जिस पर यह टीका है ।^२

धर्मशास्त्र—

९. प्रायश्चित्त-प्रकाश^३

काव्यशास्त्र—

१०. बलङ्कार-मास्कर^४

१. पीटर्सन ने रामल एशियाटिक सोसाइटी से संबद्ध १८८४-८६ के जर्नल (पृ० २६१) में कणाद-रहस्य टीका के आरम्भ में निम्न-लिखित श्लोक बतलाया है—

‘आरचय्य प्रयत्नाद्यैरिहैकाशंति-कारिकाः ।

आचार्य-मयनामेन व्याख्या सम्प्रति सन्त्यते ॥’

अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्रीमन्-मिश्र-श्रीजगद्गुरु-बलभद्रात्मज-विश्वनाथानुज-विजय-श्रीगर्भसम्भवा-सकलशास्त्रारविन्द-द्रष्टाचार्य-मिश्र-श्रीमत्पद्म-नामकृती स्वहृत-रादान्त-मुक्ताहार-व्याख्याने कणाद्-रहस्यं समाप्तम् ।’

देखिये—तर्कभाषा : सुरेन्द्रलाल गोस्वामिन् : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस । १९०१ : विज्ञापनम् पृ० २ ।

२. कि० भा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ७ ।

३. चन्द्रालोक-श्रीर्णभासीटीका : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका पृष्ठ ७ । अन्यत्र इस ग्रन्थ की खर्चा नहीं है ।

४. प्रशस्तपादभाष्य-सूक्ति-सेतु व्योमवती : ग्रन्थ क्र० ३१६ । चौखम्बा : १९२४ : पृष्ठ ८२ : सेतु टीका में पद्मनाभ की उक्ति-‘मत्कृता-सङ्कारमास्कर-काव्यप्रकाशप्रकाश-तत्त्वखण्डनैकावली-विवरण-शरदागम-मनोरमादी । साय ही देखिये, इस उक्ति पर दुर्गिराज शास्त्री का मत (वही, नं० ३६६ : चौखम्बा : १९३०) : भूमिका पृ० ६ : शास्त्री जी ने ‘शरदागम-मनोरमा’ को एक ही ग्रन्थ मान कर इन्हें साहित्य-ग्रन्थ-चतुष्टय लिखा है । किन्तु शरदागम ग्रन्थ

११. एकावली-विवरण ।

१२. मनोरमा ।

१३. शरदागम या चन्द्रालोक-प्रकाश—यह टीका १९२९ ई० में सम्पादक और भूमिका-लेखक नारायणशास्त्री खिस्ते के अनुसार प्रथम बार प्रकाशित हुई । श्री खिस्ते के अतिरिक्त अनन्तराम शास्त्री बेताल^१ और मन्दकिशोर शर्मा^२ ने भी इसे प्राचीनतम टीका माना है । अप्पय दीक्षित ने अपने कुवलयामन्द ग्रन्थ की समाप्ति पर निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

‘चन्द्रालोको विजयतां शरदागम-सम्भवः ।

दृष्टः कुवलयामन्दो यत्प्रसादाद्भूदयम् ॥ १७२ ॥’^३

इस आधार पर शरदागम टीका का महत्त्व और भी बढ़ जाता है । श्री खिस्ते और आर्फे० ने १५८३ ई० रचनाकाल दिया है ।^४

शरदागम के मङ्गलाचरण में निम्नलिखित श्लोक आश्रयदाता के परिचय के रूप में प्राप्त है—

‘अस्य स्थितितो नगरी भवतोऽयोध्या भवत्यखिला ।

इति रघुवंशादधिको जयति बघेलाऽभिषो वंशः ॥ १ ॥

देवपतेरिव पशितर्यस्य जये भूभूतां प्रपिता ।

योवीरमद्रदेवस्तत्र धराऽऽलम्बनी जातः ॥ ४ ॥

दशरथतो रघुपतिरिव तस्मादिह बीरभानु-भूपालः ।

आवृद्ध-धर्म-सेतुजंगति समुद्रे समुद्भूतः ॥ ५ ॥

उत्तमयो नयनिर्मल-कीर्तिः स्वनिम्नगा-मूलम् ।

जयति तदीयस्तनयः कवि-गोष्ठो-दैवतारामः ॥ ६ ॥

क्रियते तस्य निदेशाच्चन्द्रालोक-प्रकाशोऽयम् ।

शरदागम इति विदितो भट्टाचार्येण यत्नेन ॥ ७ ॥

के साथ वास्तव में मनोरमा शब्द कही प्रयुक्त न होने से हमने मनोरमा को पृथक् साहित्य-ग्रन्थ माना है ।

१. चन्द्रालोक : राकागम टीका : चौखम्बा : बनारस : १९३८ : पृष्ठ २ (भूमिका) ।

२. चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका : पृ० ३, ६ ।

३. पणशीकर—ल० ब० : निर्णयसागर : बम्बई : चतुर्थ आवृत्ति : १९१७ : पृष्ठ १८८ : अन्तिम श्लोक ।

४. आर्फे० : भाग ३ : पृष्ठ ३९ ।

प्रथम मयूख के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-धुवराज-श्रीवीरभद्रदेवादिष्ट-
मिध-श्रीवल्लभद्रात्मज सकलशास्त्रारविन्दप्रद्योतन-भट्टाचार्यविरचिते चन्द्रालोक-
प्रकाशे शारदागमे प्रथमो मयूखः ॥ १ ॥’

द्वितीय और दशम मयूखों में भी समान पुष्पिकाएँ हैं। शेष मयूखों में पुष्पिकाएँ नहीं हैं।

उपर्युक्त श्लोकों के साथ पुष्पिकाओं को देखने से यह स्पष्ट होगा कि किसी लिपिक को मूल से ही श्लोक क्रमाङ्क ४ में ‘वीरसिंह’ के स्थान पर ‘वीरभद्र’ शब्द रख दिया गया है। अन्यथा जो ग्रन्थकार पुष्पिका में वीरभद्र को रामचन्द्र का पुत्र बतला रहा है और उसी वीरभद्र के आदेश से यह टीका-ग्रन्थ लिख रहा है, वह उसी के पूर्वज और उसके पितामह वीरमानु के पिता के स्थान पर उसी वीरभद्र का नाम कैसे लिखेगा ?

पद्मानाभ ने इस टीका के प्रत्येक मयूख के अन्त में ऐसे श्लोक दिये हैं, जिनमें वीरभद्र के आदेश पर इस रचना का सङ्केत है। साथ ही द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ के आरम्भ में इस आध्ययदाता के प्रति शुभाशंसा प्रकट की गई है। उदाहरण-स्वरूप द्वितीय अध्याय के आरम्भ और अन्त में ये श्लोक हैं—

‘श्री वीरभद्रदेवे दिशतु जयं सङ्गर-प्रकरे ।

मीनावतार-शाली कालीयोत्सादनाच्चतुरः ॥’

‘श्रीवीरभद्रदेवादेशाद्भुदित-प्रमत्नेन ।

प्रथमाग्रिमो मयूखश्चन्द्रालोके कृतः शार्यः ॥’

मङ्गलाचरण में भैरव और श्रीराम की बन्दना है तथा दशावतार-रूप में अन्य मयूखों में क्रमशः मीन, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, हलधर, बुध और कल्की की बन्दना की गई है।

१४. काव्यप्रकाश-प्रकाश—निर्णयसिन्धु (१९११ ई०) के कर्ता कमलाकर भट्ट ने काव्य-प्रकाश पर अपनी टीका में काव्यप्रकाश के पूर्ववर्ती टीकाकारों के नाम दिये हैं, जिनमें पद्मानाभ-कृत-टीका भी है ।^१

१५. वीरभद्रचम्पू ।^२

१. काव्यप्रकाशः वा० रा० शलकोकर । निर्णयसागर : बम्बई :

१९१७ : प्रस्तावना : पृ० ३०-३१ ।

२. देखिये आगे पृष्ठ । कृष्णमाचारियर (हि० श्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३०४) ने पद्मानाभ भट्ट-कृत ‘गोपालचरित’, (आफे० भाग ३।३५) की भी सूचना दी है। यदि यह पद्मानाभमिध की रचना हो तो कृतियों की कुल संख्या १६ होगी ।

१८ ध०

२. घोरमहदेवचम्पू का विवरण

सरस्वती-कोप भाण्डार रोवा में सं० १९९१ (१९३४ई०) में लिखित इस चम्पू को एक प्रतिलिपि है, जिसमें लिपिक ने निम्नलिखित वाक्य जोड़े हैं—

‘वि० सं० १९९१ थावण शुक्ला १३ नुपवासरे श्रीमेदगतान्तर्गतोदयपुर-मगरे यावदायं नुस-कमल-दिवाकर-श्रीमन्-महाराजाधिराज-महाराणा-श्रीभूपाल-सिंह-श्रीविजयराज्ये श्रीसरस्वती-भाण्डार-कार्यालये अधिवाहिका-स्वाराज-करिणी-दानस्याप्यशतायां पत्नीवाल-जातीय नन्दकिशोर-धर्मणा लिखितमिदं पुस्तकम् ।’

अर्थात् महाराणा-उदयपुर के पुस्तकालय में प्राप्त पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि सं० १९९१ में रोवा साई गई। हीरानन्द दास्त्री ने इस बात का उल्लेख कर लिखा है की रोवा महाराज ने उदयपुर में प्राप्त मूल ग्रन्थ को प्रतिलिपि सरस्वती-कोप-भाण्डार में रखवाई।

दास्त्री जी ने एक अन्य (लाहौर की) पाण्डुलिपि की भी खर्चा की है^१, जिसका विवरण डा० पीटर्सन ने संस्कृत-पाण्डुलिपियों के खन्दर्भ में प्रस्तुत किया था। इसका नाम ‘वीरचम्पू’ बतलाया गया है। पुष्पिकाएँ रोवा की प्रति के ही समान हैं, यद्यपि लिपिक-कृत-माठभेद हैं,^२ जिनमें ‘श्री वीरमहदेव-चरिते’ शब्द प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में प्राप्त प्रत्येक पुष्पिका में है। अन्त में ये शब्द हैं—

‘समाप्तो वीरचंपूनामा ग्रन्थः ॥’

संवत् १९४८ समये जापाङ्ग-गुड- तृतीयायां सोमे लाहूरपुरे शगन्नायमट्टेन-
लिखितं पुस्तकमिदम् ॥’

अर्थात् यह लिपि १९९१ ई० की लाहौर की है।^३ यह संयोग की बात है कि इसी वर्ष वीरमानुदय काव्य की पाण्डुलिपि काशी में लिखी गई, जो प्रकाश

१. वीर० क्रि० ए० । पृष्ठ ३-४ : सम्भवतः दास्त्री जी की भूमिका के लिए ‘चम्पू’ के उल्लेखों की आवश्यकता पड़ी।

२. जैसे मङ्गलाचरण (श्लोक १) : भैरव-वन्दना : प्रथम पंक्ति-लाहौर की प्रति-‘नियत-रुधिर-पानारक्त...’। उदयपुर की प्रति-‘नियत-रुधिर-पानारक्त...’

तीसरी पंक्ति-लाहौर की प्रति—‘स्यापिनिष्कीर्तिमल्लो...’

उदयपुर की प्रति-‘स्यापिनिष्कीर्तिमल्लो—’

यहाँ ‘स्यापिनीः कीर्तिमल्लो—’ उचित प्रतीत होता है। घरदागम के प्रथम श्लोक में श्री भैरव की ही वन्दना है ‘पृथ्वी पृथ्वी न पदभ्यां—’।

३. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ ३-४ :

में आई ।^१ चम्पू की पाण्डुलिपि आयाङ्ग और वीरमानन्दय की पाण्डुलिपि अगहन (मार्गशीर्ष) मास में सम्पूर्ण हुई । दोनों के लिपिकाल में केवल ५ मास का अन्तर है । सम्भव है, यह प्रतिलिपि भी वीरमन्न की प्रेरणा से की गई हो ।

वीरमन्नचम्पू के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है । ग्रन्थकार की ही सूचना के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, संवत् १६३४ (१५७७ ई०) को ग्रन्थ की सम्पत्ति हुई—

‘युग रामर्तु-यसाङ्गे वर्षे चैत्रे सिते प्रथमे ।

श्रीवीरमन्नचम्पूः पूर्वाञ्जिमुष्णमेवे विदुषाम् ॥’

वीरमन्न ने अपना ग्रन्थ ‘कन्दर्पचूडामणि’ इस तिथि के ठीक एक मास पूर्व सम्पूर्ण किया था ।^२ प्रतीत होता है कि वीरमन्न और पद्मनाभ का साहित्याभ्यास साप साप चलता था । १९५२ ई० में कलकत्ता से वीरमन्नचम्पू का आशिक प्रकाशन कर दिया गया है ।^३

३. चम्पू का कथावस्तु

वीरमन्नचम्पू में ७ उच्छ्वास हैं । कथावस्तु निम्नलिखित रूप में है—

प्रथम उच्छ्वास—उदयपुर की प्रति में ‘अथ श्री वीरमन्नचम्पूः लिख्यते’ से आरम्भ होता है । मङ्गलाचरण में भैरव और श्रीराम की वन्दना है ।^४

रामचन्द्र (बघेल) के पुत्र वीरमन्न की रणवाहिनी के प्रस्थान से आकाश में धूल छा गई है । लड्डा में मन्दोदरी विनोदण से भयपूर्वक कहती है कि

१. अन्तिम पुष्पिका : ‘संवत् १६४८ समये अगहन-शुक्लपक्ष-द्वितीयायां श्रीमवासरं लिखितमिदम् विश्वेश्वरसन्निधे ॥’

२. कन्दर्पचूडामणि, ७।२।४९ :

‘हरलोचन-हरलोचन-रत-शशिनिर्विधुते समये ।

कालानु-शुक्ल-प्रतिपदि पूर्णो ग्रन्थ. स्मर-स्मेरः ॥’

(फा० शु० १, पृ० १६३३) ।

३. प्राच्यवाणी : भाग ९ : श्री पी. के. गोडे, पूना से प्राप्त प्रतिलिपि पर आधारित ।

४. वीरमन्नदेव-रचित कन्दर्पचूडामणि का आरम्भ भी भैरव-वन्दना से होता है—

‘अस्माज्जि दक्षकोशाद् भक्त्यनुरक्तेषु सानुरागेव ।

कल्याणाय जमत्या दृष्टिः श्रीभैरवस्यास्तु ॥१-१-१॥

दशकुमार-पूर्वकथासार में भी देखिए [पीछे अध्याय ४-२ (घ)]—

‘ताण्डवाहम्बरे—’ ।

विन्ध्याचल किसी कारण अगस्त्य की आज्ञा की उपेक्षा कर आकाश में उठ रहा है। उसने पक्षियों एवं सूर्य और वायु की गति रुद्ध कर दी है; अथवा वर्षा-काल द्वारा प्रसारित पृथ्वी के किसी चक्रवर्ती नरेश की प्रतापान्ति की भोषण घुमराशि उठी है, जो दिशाओं के अन्तराल को निगलती जा रही है।

विभीषण मन्दोदरी को बतलाता है कि यह धूलि है, जो वीरभद्र के असंख्य सौम्य (सिन्धुदेशीय) घोड़ों के दौड़ने से उठी है। मन्दोदरी समझती है कि रामचन्द्र की सेना पुनः संका पर चढ़ जाएगी। विभीषण बतलाता है कि यह अन्य रामचन्द्र है। यह भानु का नहीं, वीरभानु का वंशधर है। यह बघेल-वंश का है। इसकी राजधानी गहोरा है। इसके राज्य में बाण्यव दुर्ग है, जहाँ यह इन दिनों दानुओं के अस्त होने की प्रतीक्षा में रहता है।

विभीषण वीरभद्र की इस रण-यात्रा का उद्देश्य बतलाते हुए कहता है कि यह आक्रमण रेवा-छट के उन राजाओं पर है, जिन्होंने दण्डस्वरूप देय हाथी अभी तक नहीं दिये हैं। वीरभद्र की माता यशोदा ने ब्राह्मणों को हाथी देने का संकल्प किया है, किन्तु हाथी कम पड़ रहे हैं।

इसके पश्चात् विभीषण की सभा में बृहस्पति जाते हैं और बतलाते हैं कि इन्द्र भी इस रणयात्रा से आसक्तित थे। उन्हें नारद ने बतलाया है कि वीरभद्र की माता ने सूर्य-ग्रहण के समय गज-दान का संकल्प किया था। आरिबन्ध-पूर्णिमा की चन्द्रग्रहण होने वाला है। अतः वीरभद्र दण्ड द्वारा हाथी लाने का उद्योग कर रहे हैं। नारद से यह सुन कर इन्द्र की चिन्ता समाप्त हो गई है। इसी प्रसङ्ग में इन्द्रपुरी का भी वर्णन है।

द्वितीय उच्छ्वास में रणवाहिनी बढ़ती है और सन्धु-देशों में आसक्त छा जाता है। यहाँ फवि ने काश्मीर, काबिल (काबुल), प्रतिष्ठान, अज्ज आदि लगभग २५ देशों (या राज्यों) की सूची-सी प्रस्तुत की है, जहाँ सेना के प्रयाण से खलमली मच गई है।

तृतीय उच्छ्वास में रणवाहिनी का ही वर्णन आगे चलता है। यही पर कामताधिनाथ (चित्रकूट के राजा) का दूत सन्धि-पत्र लेकर वीरभद्र के निकट पहुँचता है। इस प्रसङ्ग में शिविर आदि का वर्णन है। पत्र लाने वाला व्यक्ति कामाक्षा प्रसाद कवि है, क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि वीरभद्र कवियों का आदर करता है।

चतुर्थ उच्छ्वास में विभीषण अपने दूत से बातें करता है। दूत को 'रघुपति-प्रसाद-प्रापक' कहा गया है। विभीषण ने इस दूत को रामनवमी के दिन राम के जन्मोत्सव में सम्मिलित होकर विभीषण द्वारा प्रेषित उपहार

देने की मेजा था। दूत को श्रीराम का प्रसाद (प्रसन्नता का सूचक उपहार) भी बिभीषण तक लाना था। जन्मोत्सव में सम्मिलित होकर इन्द्र ने श्रीराम के कण्ठ में मन्दारमाला अर्पित की थी। श्रीराम ने बिभीषण को प्रसाद-रुप में यही मन्दार-माला भेजी है, जिसे दूत लाया है। इस उच्छ्वास में बीरमद्र के पिता रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति भी है।

पाँचवें और छठे उच्छ्वास में भी बिभीषण और दूत की यह बातें चलती रहती हैं। पाँचवें उच्छ्वास में दूत ने अनेक देवों और मृनिमों की गगना की है, जो उत्सव में सम्मिलित हुए थे। केवल अगस्त्य और बिभीषण सम्मिलित नहीं हो सके, क्योंकि (बान्धवगढ़ में रामचन्द्र के अघिष्ठित होने से) विन्ध्य पर्वत दुर्लभ्य हो गया था। यहाँ प्रसङ्गवत् प्रमाण-तीर्थ, अलक-नगरी (अरैल) और श्यामवट का वर्णन भी है।

छठे उच्छ्वास में 'रघुपति-प्रसाद-प्रापक' दूत ने बतलाया है कि उसने मार्ग में किस प्रकार बीरमद्र की सेना देखी। इस सेना का वर्णन ३। श्लोकों में है और उत्कालीन क्षत्रियों की बीसों जातियों-उपजातियों तथा बीरमद्र के मित्र रूप अन्य सत्ताओं के उल्लेख है।

सातवें उच्छ्वास में बीरमद्र की सेना का आगमन सुनकर रत्नपुर में पलायन होता है। अर्थात् मूलतः इस आक्रमण का सम्बन्ध रत्नपुर (रतन-पुर, जिह्वा बिलासपुर) से है। शत्रुओं के आत्तावीन हो जाने से बीरमद्र सागर-बेला तक के नरेशों से अनेक कर लेकर बान्धवगढ़ लौट आते हैं। यह समाचार बिभीषण को सर्वथा निश्चित कर देता है। यहीं कथा समाप्त होती है।

४. ऐतिहासिक चल्लेख

(अ) युद्ध का मूल कारण

बीरमद्रदेव चम्पू में उल्लिखित मूल घटना का बीज लगभग २० वर्ष पूर्व लिखित ऐतिहासिक महाकाव्य बीरमानुदय में सुरक्षित है, जिससे प्रतीत होता है कि बघेल राजाओं का रत्नपुर के शासकों से परम्परागत द्वेष चल रहा था। बीरसिंहदेव ने रत्नपुर के शासक को परास्त कर उससे कर ग्रहण किया था।^१ सम्भवतः यह पराजित राजा दादुराय था, जिसकी कन्या राममती बीरमानु

१. बीर २।६५ :

‘यदा नृगे रत्नपुरस्य दर्शन्ति शासनं मूर्धनि वीरसिंहम् ।
आदत्तवांस्ति स तदा विजित्य करं च तस्माद् बहुधा मयात्तत् ॥’

को ध्याही गई । यह विवाह दण्ड रूप ही प्रतीत होता है, क्योंकि वीरमानु को राममती के बहने से ही दादुराय को (पुनः) दण्ड देने का निश्चय करना पड़ा ।^१ रत्नपुर को जीतकर भी दधेलों ने वहाँ के शासक को पदच्युत इसलिए नहीं किया होगा कि वह सम्बन्धी बन गया था । अतः इस चम्पू के अनुसार पुनः रत्नपुर के शासक ने, जो दादुराय का पुत्र या पौत्र हो सकता है, दधेलों के विरुद्ध सिर उठाया होगा, जिसके कारण रामचन्द्र के आदेश से मुवराब वीरमद ने उसका दमन किया और पुनः कर लेकर छोड़ दिया । यह रणयात्रा रेवा (नर्मदा) पर्यन्त थी ।^२ अतः नर्मदा के वे दृतीय प्रदेश, जिनका उल्लेख चम्पू में हुआ है^३, इस आक्रमण से सम्बन्ध हो सकते हैं ।

(आ) तत्कालीन प्रदेश^४

वीरमद की रणवाहिनी से जो प्रदेश आठछित बतलाए गए हैं, वे केवल कवि की भौगोलिक जानकारी सूचित करते हैं । ये तत्कालीन प्रदेश हैं, जो निम्नलिखित हैं—

काश्मीर, काबिल (काबुल), राड़ा (लखनावटी-बंगाल में गङ्गा के पश्चिम क्षेत्र)^५, चम्पारणीय (चम्पारन-बिहार), तैरमुक्त (तिरहुत), बागटि (कर्नाटक), द्रविड़ (आन्ध्र), बङ्ग, बङ्ग (गंगा से पूर्व का क्षेत्र), प्रतिष्ठान (भूँसी-प्रयाग), मुद्गल (मुगलों द्वारा शासित प्रदेश), कामता (चिबकूट), भिल्ल और किरात (गोडवाना) ।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन बघेलखण्ड के परिसर में स्थित निम्नलिखित क्षेत्रों (या राज्यों) के नाम हैं, जिनका ऐतिहासिक मूल्य है, किन्तु आवश्यक नहीं है कि वीरमद का इन सभी पर आक्रमण हुआ हो—

तथा सर्ग २।६६ :

‘जिता गढ़ा रत्नपुरेण साकं, जितो बहारः सहजोरदेशः ।’

१. वही, ७।६८-७५ : ‘दादुराय-भूपे ...। ... रत्नपुरे ... ।’
यहाँ रत्नपुर की समृद्धि का भी वर्णन है—‘स्रष्टुं रत्नपुरं नाम ।’
२. उच्छ्वास-१ : ‘सागरावधि रेवायां यात्राविधिः ।’
३. उच्छ्वास २ : आठछित देश-गढ़ा (जिला जबलपुर), काची-विजोरा, सिधरीली (सोधी जिला), रत्नपुर, भिल्ल, किरात (गोडवाना) आदि ।
४. वीरमदचम्पू : उच्छ्वास २ ।
५. तबकात नासिरी : पृष्ठ ६८० : ।

गढ़ा, ^१ सिवरीली, ^२ अमौरी, ^३ रोहितास दुर्ग, ^४ पद्मनती, ^५ विजयगिरि, ^६ काशी-विजौरा, दड़कोर, भरवार^७ ।

(ई) क्षत्रिय-जातियों—

वीरमद की सेना में सम्मिलित क्षत्रिय जातियों का खोजस्वित्तापूर्ण वर्णन प्राप्त है । इनमें से प्रायः सभी के वंशज आज भी बघेलखण्ड में बसते हैं ।

(१) बघेल—(राजवंश) ।

(२) लोमर—इस समय म्वालिमर लोमर सत्ता का केन्द्र था ।

(३) चौहान (न)—रोडा जिले की मऊगंज टहसील और सीधी जिले में सोन नदी के तट पर चौहान हैं । यह क्षेत्र चौहानखण्ड भी कहा जाता है ।

(४) मादव—यदुवंशी—रोडा के वर्तमान महाराज मार्वणसिंह जू देव का विवाह कच्छ के यदुवंशियों के यहाँ हुआ है ।

(५) पंवार—पमार-परमार का अवग्रह । सतना जिले के बरौया परगने के रोडा गाँव में पमार क्षत्रिय हैं । यहाँ वीरमददेव की छतरी है ।

(६) रैकवार—रोडा जिले में है ।

(७) दिक्षित—गोरैया (जिला सतना) के राजा दिक्षित वंश के हैं । इनके यहाँ बदेन नरेश विद्वनायसिंह (१८०९-३४) का विवाह हुआ था ।

(८) बड़गुजर—कहा जाता है कि गवाक छतारी, बुलन्दशहर (उ० प्र०) बड़गुजर राजपूत जाति से परिवर्तित हैं ।

(९) महरवार—काशी-कन्नौज के गहड़वालों की शाखा ।

१. जिला जबलपुर । १५६४ ई० में आसक्त खाँ द्वारा यह क्षेत्र रानी दुर्गावती से छीनकर मुरू-शासित प्रदेश बना दिया गया था ।

२. वर्तमान म० प्र० के सीधी जिले की एक टहसील-सिवरीली । यहाँ गौड़ों की सत्ता रही होगी । आज भी यहाँ गौड़ बहूत हैं ।

३. जिला मिर्जापुर । यहाँ बन्देल-अमौरा थे । बघेलों के साथ इनके विवाह सम्बन्ध थे ।

४. जिला मिर्जापुर का ऐतिहासिक किला ।

५. ददिना—म्वालिमर की सीमा पर पँवाया नामक स्थान ।

६. सम्मन्वितः जबलपुर जिले का विजयराघोनाड़ ।

७. जिला जबलपुर और छत्तीसगढ़ की पुरानी रियासतें । ये स्थान उस समय बघेलखण्ड के प्रभाव क्षेत्र में रहे होंगे ।

८. वीरमद-खण्ड : उद्धृता ६।१५-४३ : उदाहरण के लिए देखिये—
सं० आ० दे० पृष्ठ २६-१०० ।

(१०) चन्देल—अजयगढ़, जिला पन्ना में चन्देल सत्ता थी ।

(११) मुरकि—सोलंकी जाति की एक शाखा । १८ वीं शती में मुरकि जाति के दानिय रीवा में दीवान थे ।

(१२) सोमवंशी—प्रतापगढ़ (अबध) के सोमवंशियों की कन्या रीवा के राजा अनिरुद्धसिंह (१६९५ ई०) की स्थाही थी ।

(१३) नागवंशी—छोटा नागपुर में नागवंशी दानियों के घर अम्रोतसिंह (१७५५-१८०९) बघेल का विवाह हुआ था । चोकानेर के नागवंशियों के यहाँ बीरभद्र का विवाह हुआ था ।

(१४) हैहय—भाबसिंह बघेल (१६७१-९४) का विवाह रतनपुर (जिला बिलासपुर) की हैहयवंशीय रानी मदनारती के साथ हुआ था । भोंसलों ने इन्हें समाप्त कर दिया ।

(१५) पुलस्ति-वंशीय—गढ़ा-मंडला के गोंड ठाकुर अपने को पोलस्त्य वंश के (रावण-वंशी) लिखते हैं ।

(१६) रतसेला—मुरगुजा के दानिय ।

(१७) कछवाह—मूलापान ग्वालियर के कच्छपघाट । जयपुर के राजा मानसिंह कछवाह थे । मैहर (जिला सतना) के राजा कछवाह वंश के हैं ।

(१८) परिहार—नागोद उबेहरा (जिला सतना) के राजा परिहार हैं । इनके यहाँ विश्वनाथसिंह का विवाह हुआ था । बीरमानुदय काश्य के अनुसार बीरसिंहदेव ने नरो (जिला सतना) से परिहारों को हटाया था । बर्ती-छिबीरा (जिला सतना) में परिहार हैं ।

(१९) तिसीदिया-उदयपुर । रघुराजसिंह का विवाह उदयपुर के महाराणा के यहाँ हुआ था । उनकी बहन भी उदयपुर में स्थाही गई थी ।

(२०) मुद्गल—इस्लाम धर्मावलम्बी जो बघेल सेना में थे ।

(२१) प्रतिष्ठान-वासी—सम्भवतः कलचुरि (भूँसी प्रयाग) ।

(२२) भरद्वाज—सोलंकीयों का गोत्र है । ये उन्हीं की शाखा के होंगे ।

इनके अतिरिक्त (२३) सूर्यवंशी, (२४) खोचर, (२५) किकान, (२६) सकरवार, (२७) कुशिकवंशी (कोशिक) और (२८) खालकीवंशीय दानियों के भी उल्लेख है ।^१

उपर्युक्त वर्णनों से पट्टनाम का व्यापक जन-सम्पर्क और सूचना द्योतित होती है । उस काल में राजपूतों की युद्ध-प्रिय जातियों पर भी यहाँ अच्छा प्रकाश पड़ता है । बघेल सत्ता की प्रचण्डता भी लक्षित होती है ।

(३) राज्य-सीमा

रामचन्द्र बघेल द्वारा शासित प्रदेश के सीमा-क्षेत्रों पर भी पष्पनाम ने अच्छा प्रकाश डाला है। चम्पू से विदित होता है कि इस समय (१५७७ ई० तक) भी रामचन्द्र की राजधानी गहोरा ही थी।^१ इस सूचना से दो प्रश्न हल होते हैं। पहला यह कि यद्यपि कालिंजर रामचन्द्र के हाथ से भुगलों के अधिकार में जा चुका था^२, गहोरा नगर राजधानी के रूप में बघेलों के अधिकार में सुरक्षित था, जब कि गहोरा (जिला बाँदा) कालिंजर दुर्ग के समीप है। दूसरा यह कि बाणभगवद् यद्यपि एक सुदृढ़ दुर्ग, सैनिक केन्द्र और आवश्यकता पड़ने पर निवास स्थान का काम देता था, वह राजधानी नहीं था। अग्यत्र रूपणि ने हसी रामचन्द्र की राजधानी का नाम रामनगर बतलाया है, गहोरा नहीं।^३ अतः प्रतीत होता है कि १५७७ ई० के पश्चात् किन्तु रामचन्द्र की मृत्यु (१५९२ ई०) से पूर्व ही राजधानी गहोरा से बदलकर रामनगर में कर दी गई। चम्पू में रामचन्द्र के राज्य में प्रयाग और अरैल (अलर्क) नगरी बतलाये गए हैं।^४ वीरभानूदय काव्य में प्रयाग^५ और अरैल^६ तथा बघेलवंशवर्णनम् में भी प्रयाग^७ को रामचन्द्र की राज्य-सीमा में बतलाया गया है। प्रयाग पर यह बघेली सत्ता १५८४ ई० के पूर्व समाप्त हो गई, जब अकबर ने वहाँ अपना दुर्ग बनवाया।^८

१. वीरभद्रदेवचम्पू : उ० १।१३ :

‘अस्ति प्रशस्तिभिरलङ्कृत-दिविभागा

राजानुरक्त-मनुजा नगरी गहोरा ।’

....साऽस्य पाण्डवापित-साण्डव-दावानल-प्रबल-प्रतापस्य राजधानी ।’

२. अक : भाग २ : पृष्ठ ४९८-४९९ :

‘कालिंजर पर अधिकार होने का समाचार ११ अगस्त, १५६६ ई० को पहुँचा ।’

३. बघेल० : पृष्ठ १४ : श्लोक १०-५१ ।

‘पार्श्वे तस्य सिद्धिप-नगरी....। विभाति रामनगरं...॥’

४. वीरभद्रदेवचम्पू : उ० १ तथा ५ । अलर्क का वर्णन सजीव है (देखिये प्राच्यवाणी : भाग ९ : १९५२ में चम्पू की भूमिका) ।

५. प्रकाशित-रीवा : १९३८ : सर्ग ९।३३ : ‘प्रयागे ते वासः...।’

६. वही , सर्ग १२।१९ : ‘निपेवितीऽलर्कपुरे सुतातः....।’ तथा अग्यत्र ।

७. बघेल० : श्लोक ५५ : ‘तस्य श्रीराम-नृपतेर्विपये शीर्यसेवितः । प्रयागोऽस्ति....।’

८. ई० शा० : अकबर : निजामुद्दीन अहमद : १९५२ : पृष्ठ १२१ :

इसी प्रसङ्ग में चम्पू का यह उल्लेख महत्वपूर्ण है कि गहोरा राजधानी होने पर भी रामचन्द्र इन दिनों 'किसी कारण' बान्धवगढ़ में ही रहा करते थे, क्योंकि नोतिज राजा चन्द्र के अस्त होने की प्रतीक्षा करते हुए दुर्ग का आग्रह लिया करते हैं, जैसे कृष्ण मानो जरासन्ध के भय से ही मथुरा राजधानी छोड़कर द्वारका में रहते थे, यद्यपि वे पहले चाणूर, कुवलयापीड और कंस आदि को मार चुके थे।^१ यह उपमा सर्वथा रामचन्द्र के पूर्व जीवन की ओर सङ्केत करती है, जो इन्द्राहीम मूर जैसे चन्द्रों की जीतने के पश्चात् १५६३ ई० में अरुवर के सेनापति आसक्तों से लड़ कर हार चुके थे। एक अन्य उल्लेख भी चम्पू में है, जिससे रामचन्द्र का राज्य यमुना तट तक होने का सङ्केत मिलता है।^२ वीरभद्रदेव को यहाँ भी यमोदा देवी का पुत्र बतलाया गया है,^३ जिससे वीरभानूदय काम्य में प्राप्त इस सूचना की पुष्टि होती है।^४

(३) वंशागत सूचना

वीरसिंहदेव से निर्गत वंश और वीरभद्र के समकालीन परिवार की महत्त्व

‘२९ वें वर्ष (१५८४ ई० में) शाहंशाह ने गंगा-यमुना के सङ्गम पर एक किला बनाने और शहर बनाने का हुक्म दिया, जिसे ‘इलाहाबाद’ नाम दिया गया।

१. उच्छ्वात १ : “तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः । कस्मान्निनि-
मितात् साम्प्रतं समधिष्ठति । पम्बा हि नीतिविदां प्रभूणां यत्
प्रतिपदास्तमय-समय-प्रतीक्षया दुर्गमेवाधयन्ते । तथा हि,
‘चाणूरं चूर्णयित्वा दलित-कुवलयापीड-मूढां निहत्य
द्राक् कंसं पातयित्वा यदुभिरिह परैः कारिचदग्यान् द्विपश्च ।
सम्प्रतौ मागधेशादिव विपुलबलात् सङ्गरोद्दाम-कीर्ति-
स्त्वक्त्वा स्वां राजधानीं सुतनु-सुमधुरां द्वारकायाप इत्यः ॥’

२. देखिये पीछे अ० ४ (३-य) ।

३. वीरभद्रचम्पू, उच्छ्वात १ :

‘श्रीवीरभद्रदेवस्याम्बया यमोदया कतिचित् करटिनः समुत्सुष्टाः ।’

४. वीर० सर्ग १२।२ :

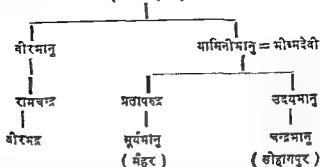
‘श्रीरामचन्द्रस्य तदात्मजस्य वभूव भार्या सुभगा यमोदा ।’

तथा १२।१६ : ‘तस्यामभूतस्य सुतः स्थितस्य....।’

और १२।१२ : ‘चक्रैमिषां तस्य ययाविधानं श्रीवीरभद्रेति....।’

पूर्ण ऐतिहासिक सूचना भी वीरभद्रदेव चम्पू में प्राप्त होती है। इसके आधार पर बंशवृक्ष निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

(वीरसिंहदेव)



इनमें से प्रतापचन्द्र, उदयमानु, सूर्यमानु तथा चन्द्रमानु वीरभद्र के साथ युद्ध में उपस्थित थे। तुलाराम मन्त्री भी युद्ध में था। यामिनीमानु के लिए 'आसीत्' शब्द का प्रयोग होने से ज्ञात होता है कि १५७७ ई० के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी। वीरभद्र और उदयमानु में मैत्री थी।^१ चम्पू में वीरभद्र के मामा रत्नसेन और उसके भाई हेम का भी उल्लेख है।^२

चम्पू में प्राप्त वीरभद्र के इस कर्तृत्व से यह बात भी अपने आप सिद्ध हो जाती है कि वीरभद्र मुगल दरबार की हाजिरी में निरन्तर नहीं रहे। वे १५६९ ई० में सलीम के जन्मकाल से ही उसकी सेवा में बटलाए गए हैं।^३ अतः १५६९

१. पद्य वच्छास :

'आसीत् विलास्य धीमतो वीरभद्रदेवस्य पितुर्महाराजाधिराध-
श्रीरामचन्द्रदेवस्य पितुर्वीरमानुदेवस्य सौदरो यामिनीमानुदेवः।...
तस्माद् मीष्मदेव्यां च महाराजकुमारावेत्तो धीमनक्रियाया इव
वर्मायि प्रतापचन्द्रोदयमानुदेवावाविर्भूतो। ... मैत्री च श्रीवीरभद्रोदय-
मानुदेवयोर्नर-नारायणयोरिव दृष्टा क्रिया-फल-पर्यवसादिनी। कुमारी
च प्रतापचन्द्रोदयमानु-तनुदुम्बी सूर्यमानु-चन्द्रमानु वीरो तत्र कटक
दृष्टो।'

२. वही, श्लोक १९ : 'भ्रात्राऽसौ हेमनाम्ना सह.....आयातो..... रत्नसेनः।'

इनके अतिरिक्त वीरभद्र की धाय का पुत्र कर्पूर सेवा में बटलाया गया है।

३. देखिये पीछे—अध्याय ४ (२)।

और १५७७ ई० के बीच वे कभी बघेलखण्ड आये होंगे, पथनाम उनके साथ होगा और उसने बीरभद्र की भारी विजय देख कर काम्य की प्रेरणा प्राप्त की। सिंगरोली-रतनपुर-विजय की यह घटना १५७५ ई० के निकट मानी जा सकती है।

५. प्रमुख चरित्र

बीरभद्रदेव क्षत्र-ग्रन्थ स्वामाविक रूप से बीरभद्र की वीरता की प्रशस्ति के निमित्त केवल एक युद्ध की घटना का आधार लेकर लिखा गया है, अतः इसमें बहुमुखी चरित्र-चित्रण की अपेक्षा नहीं की जा सकती, फिर भी, रामचन्द्र और बीरभद्र के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक एवं प्रशस्त्यात्मक चित्र खींचे गए हैं, जिनकी खर्चा हो सकता है।

(१) रामचन्द्र—पोछे कहा जा चुका है कि रामचन्द्र के अधीन एक विद्याल सेना थी, जो इस समय बीरभद्र के अधिकार में दी गई थी। कवि बतलाता है कि इस सेना में बहुत से हाथी-पोढ़े भी हैं।^१ रामचन्द्र का बघेलवंश कभी परशुराम से पराभूत होकर अधोनस्थ हो गया था। इसी वंश में शक्तिशाली काण्ठिमान् और वैभवसम्पन्न राजा रामचन्द्र हुआ।^२ उसकी राजधानी अलंघ्य है। वह गुप्तचर भी रखता है।^३ उसने दानुओं का विनाश कर डाला है और दान में वह कल्पवृक्ष के समान है।^४ वह प्रजाप्रिय है।^५ वह नीतिज्ञ है और बान्धव दुर्ग का आश्रय लिये है।^६ बीरभद्र ने अग्नय स्वयं भी रामचन्द्र के इन गुणों का वर्णन किया है।^७

१. बीरभद्रदेवक्षत्रः : उच्छ्वात ६।१५-४५ :

तथा उ० १।६ : 'घाटी धावदत्तइत्य-सैन्धव-सुर-घातैः ।'

२. उ० १।९ : 'वंशः प्राप्त-परामर्शो नगवतः सत्रद्रुहो नार्गवा-

दातायां विनुषोपमो विजयते राजा बघेलामिधः ।

शक्त्या स्कन्द इव श्रियो स्मर इव श्याम्या विवस्वानिद
स्फीत्या धारु इवात्र राजति सदा श्रीरामचन्द्रो नृपः ॥'

३. उ० १।८ : अयोध्या नगरो यस्य प्रतिपन्ना निशा-चरैः ।'

४. उ० १ : प्रारम्भ—'अथ कदाचन प्रत्यधि-पायिव-सार्ध-कदर्शन-सार्धक-
मनोरपस्य निरस्तगणनाधिप्रात-कृतार्थीकरणात्पोकृत-कल्पतस्यघसो
रामचन्द्रदेवस्य ।'

५. उ० १।१३ : 'अस्ति राजानुरक्त-भनुजा नगरो महोरा ।'

६. उ० १ : 'तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः ।

पन्था हि नीतिविदां प्रमूणां' ।'

७. कन्दर्पचूडामणि : अ० १।१।११ :

(२) वीरभद्रदेव—रामचन्द्र के सम्बन्ध में प्राप्त उपर्युक्त मशोर्षणन को वीरभद्रदेव से भी सम्बद्ध किया जा सकता है । वीरभद्रदेव का जो प्रमुख गुण यहाँ विनित हुआ है, वह है उद्यम सेनापतित्व एवं जयशीलत्व । इस युद्ध में वह एक विद्याल सेना का सञ्चालन करता है; वह शत्रुओं को नष्ट करने के लिये कृतसङ्कल्प है और स्वयं अच्छा धनुर्धर है ।^१ वह अनेकों राजाओं को कर देने के लिये विवश कर देता है और पिता रामचन्द्र के निर्देश से अनुशासित है ।^२ वीरभद्र मातृभक्त है और वह माता की इच्छा-पूर्ति के निमित्त ही युद्ध के लिये सज्जत होता है ।^३ वह काम्य-रसिक था । उसके इसी गुण के कारण कामता (चित्रकूट) देव का स्वामी एक कवि को उसके समीप दूत के रूप में भेजता है ।^४

‘कामाक्ष्यमिरामो भीमादपि बाहुशालिनां मायः ।

कर्णाक्षि च यदाग्यो जयति तुतो रामचन्द्रोऽस्य ॥’

तुलना के लिये देखिये-वीर० उर्ग १०.

१. वीरभद्रदेवचम्पू : प्रथम उच्छ्वास : श्लोक १८ :

भूमो-चक्रभूतोऽयं दुग्धलहरो-भुम्भा गुणधेनयो

मूर्ध्ना हाटक-कूट-रोचित-मल-स्वच्छा वनुः-काययः ।

गङ्गा-सङ्गत-शेव-शैल-शिखराकारा यशोराशयो

भास्वद्-भाभुरकाञ्चनाचल-रघुः प्रोक्ताः प्रतापप्रभाः ॥’

यहीं पर दीर्घ गद्यारमक प्रशस्ति भी द्रष्टव्य है ।

तथा पष्ठ उच्छ्वास : श्लोक २०. ‘वीरभद्रमरि-निग्रहोद्यतम् ।

श्लोक ३२ : ‘हमां सेनामस्व प्रबल-वर-भूमृद्-बलमिदः ।’

श्लोक ३५ : ‘ओ वीरभद्रभूतोऽमूनरय व्याघ्रहे पार्थात् ।’

२. वही, सप्तम उच्छ्वास : अन्तिम श्लोक :

‘पायोधि वेलावधि-भूमिपाल-समपितानेक-कर-प्रकारान् ।

आदाय भूमिपति-रामचन्द्र-निर्देशतः स्वे भवने यकास्ति ॥’

३. वही, प्रथम उच्छ्वास :

‘ओवीरभद्रदेवस्याम्बया यशोदया कतिचित् करटिनः

समुत्पुष्टाः । तानदण्डप्राप्तान् दातुमयमुद्योगः...’ ।

स हि निज-जनन्या... सङ्कल्पितान् दन्तावलान्...

दण्डकृतान् कर्तुं साम्प्रतं सोद्योगः ।’

४. वही, तृतीय उच्छ्वासः कामाक्षाप्रसाद कवि । तुलना के लिये देखिये—दारदागम का आरम्भ श्लोक ६ ।

प्रतीत होता है कि वीरभद्र को अवश्य ही इस युद्ध में मारो यश मिला था, क्योंकि इसी काल में लिखित अपने ग्रन्थ में उसने स्वयं ही अपने शौर्य का प्रमाद वर्णित किया है।^१ साथ ही धरदागम में भी पद्यनाम ने वीरभद्र को युद्धप्रियता का उल्लेख किया है।^२

(६) वीरभद्रदेवचम्पू में प्राप्त साहित्य

वीरभद्रदेवचम्पू में जो गद्य प्राप्त है, उते हम दो रूपों में देख सकते हैं, पहला विवरणात्मक और दूसरा काव्यात्मक। विवरणात्मक गद्य के पुनः दो भेद हो सकते हैं—पहला 'अथ कदाचन', आदि शब्दों से प्रारम्भ होने वाला, किसी पद्य की भूमिका या पूरक के रूप में तथा दूसरा कथाविस्तार के लिये वर्णन के रूप में। कथा-विस्तार के लिये जिस गद्य का प्रयोग है, वह प्राञ्जल पदावली से युक्त होकर भी सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण, अल्प-समास-युक्त, प्रायः अतलङ्कित एवं लघु शब्दों वाला है; उदाहरणार्थ—

‘विमोषणः—तन्वि । नास्त्य वयमुद्वेगः । अपि तु
केनविन्मिमित्तैः सागरावधि रेवायां यात्राविधिः ।’

‘तेषु मध्ये केचित् गजा बाह्येभ्यो न दत्ताः ।
तानदण्डशप्तान् दातुमयमुद्योगः ।’

‘मन्दोदरी—किमस्यानि वीर-भानोरम्बयः ?

विमोषणः—तन्वि । वीरभानोर्नतुभानोः ।

मन्दोदरी—कान्त ! किं भास्वतश्चन्द्रमसश्च परम्परतः सन्त्यग्येऽपि
राजानः ?’

यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि संवाद प्रस्तुत कर कवि ने चम्पू में अभिनेयता का समावेश किया है और इसमें दृश्यकाव्यत्व प्रस्तुत कर दिया है। यहाँ तक कि कवि ने अभिनयात्मक निर्देश भी दिये हैं, जैसे—उत्थितम्, प्रकाशम्, बृहस्पतिः प्रविशति, भासः उपविशति आदि।

१. कन्दर्पचूडामणि : अ० १।१।१३-१४ :

‘राजोचित-गुणसोमा भोमावरजादिहाधिको धनुषि ।
तनयो विनय-समुद्रो जयति तरां वीरभद्रोऽस्य ॥
विद्यायां सुरमुखैरेव सौन्दर्ये पञ्चबाणतोऽप्यधिकः ।
दाने कल्पतरोरयमुपमेयस्तेन केनेह ॥’

२. चन्द्रालोक की धरदागम टीका : बनारस : १९२९ : द्वितीय मण्डल की टीका का आरम्भ—‘ओवीरभद्रदेवे दिद्यतु जयं सङ्गर-प्रकरे ।’

पदों की भुक्तिका-रूप में जो मद्य प्रयुक्त है, वे या तो अति संश्लेष हैं अथवा काष्ठात्मक और दोष-समाप्त-युक्त हैं। पहले शैली में कहीं कहीं केवल 'अयं च' 'अस्ति च' 'अपरं च' 'किं च' आदि पद प्रयुक्त होकर पदों की संख्या बढ़ाते चले जाते हैं। इसी निमित्त कहीं-कहीं 'अयं' या 'अस्ति' आदि सम्बोधन भी उपयोग में आए गए हैं और संश्लेषात्मकता समाप्ति की गई है—

‘अस्ति वा केनापि भूयस्वज-वक्रवर्तिना प्रतापहृत्प्रे-पितृस्य कुशानोः

प्रातः प्रभवःअपारिता

नीला काकोलभावाः... धूम्रवर्तिः ॥ ५ ॥

विभीषणः—अिये ! नैयमपि तु,

होमाहूकर ... — — — धूलयः ॥ ६ ॥

मन्दोः—(सहासं) अिय ! अिय ! स्वर्तं प्रेम्भानुपहारानो धेरेव

पावद् ... — — — सन्वात्यति ॥ ७ ॥

तथा—‘विभीषणः—अिये !

‘वंश ... — — — नृपः ॥ ९ ॥

अस्ति च—

स्वकान्ति ... — — — वृषभ ॥ १० ॥

किं च—सहस्रवर्त ... भूतनाथः ॥ ११ ॥

अपरं च—रामेयु त्रिभु ... ययः ॥ १२ ॥ (च० १)

दूसरी विश्वनात्मक शैली में कथा-विस्तार का लक्ष्य होते हुए भी शीघ्र-अल्पशब्द-प्रवाह का प्रयोग है—

‘मन्दोदरी-हृत्प्राणाननाधिक-व्याल-वृत्त-भार्गव-सापिशाराति-

राजन्वावरोध-वधूपवीयता-व्यसोऽस्म्य का राजधानी ?

‘विभीषणः—... — — — साऽस्य दास्यमपि-

साऽस्य-दासील-प्रदल-प्रदलस्य राजधानी ।’

तथा—‘अयं कदाचन अत्यधि-पाथि-सार्ध-कथयन्-

सार्धक-मनोरथस्य निरस्त-वचनापिशत-कुतर्षी-

करणालो-कुट-कल्पउत्पन्नो विरोधि बन्धु-मान-

मोक्षानन्द-सन्धो-कुमुद-व्यमहः भोजो रामचन्द्रेश्वर

तनुमन्मनः शोशीरमदेवस्य यात्रायं

कटकोत्पिपा वृद्धोरानोभ्य मन्दोदरी विभीषणस्य लङ्काधितेष्टे

निविष्टाग्निं साउदुमाह—

‘अिय ! किमिदमाकस्मिकं दिग्बक्रवालमाक्रम्य

भूलोकानुत्थितं व्योमान्तरात्ममापुगोति नूनम् ?’ (च० १)

इस प्रकार इस चम्पू में चारों प्रकार के गद्यों—मुक्तक (समास-रहित) युक्त-गन्धि (पद्यों से संस्पृष्ट), चूर्णक (अल्पसमास-युक्त) तथा उत्कलिका-प्राय (दीर्घ-समासयुक्त) की उपलब्धि होती है । चम्पू में दूसरा रूप काव्यात्मक गद्य का है, जिसमें उत्कलिका-प्राय शैली ही है । यहाँ कवि का लक्ष्य काव्य-प्रदर्शन है, कथा-विस्तार नहीं । यह शैली अलङ्कृत, दीर्घसमास-युक्त, प्राञ्जल पदावली से पूर्ण और स्पष्टतः कादम्बरी की अनुकृति है । उदाहरणार्थ—

‘अस्ति किल सुमेरुरिव सुवर्णप्रियो हिमाचल इव
परतेजोभिरसन्तापितो मन्दर इवाहितानेक-वाहिनीनायः
लोभयन् पूर्वाञ्चल इव भास्वद्भूः पश्चिमाद्रि-
रिवापित-परतेजोऽस्तमयः कैलास इव सन्निहित-
चन्द्रचूडो मलय इव भोगिकुलालम्बनं विन्ध्य
इवानेकवारणः कल्पतरुरिव सन्तुष्टाश्रितो नारायण इव
वनमाला-वेष्टितः तस्य विषये दुर्गरत्नं वाग्यवः ।’ (उ० १)

स्पष्टतः इस शैली में रमणीकता एवं हृद्यता है । उपमा और श्लेष के योग से प्रौढ़ का आकर्षक प्रदर्शन किया गया है । इस चम्पू में अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन हैं ।

इसी प्रकार श्लेष का प्रयोग देखिये—

‘अयोध्या नगरी नित्यं प्रतिपन्ना निशाचरैः ।

तथापि रामचन्द्रोऽयं दत्ताननभिदः पर ॥’ (उ० १।८)

निम्नलिखित श्लोकों में उत्प्रेक्षा और आनुवित का सङ्कर प्रष्टव्य है—

‘विन्ध्याद्रिरथाविव सन्निरुद्ध-

स्वात्मानमभ्यर्थयन्मा महर्षेः ।

सम्प्रत्यवज्ञाय कुतोऽपि हेतो-

भूमः समुत्तिष्ठति सम्प्रमेण ॥

आक्रम्याशावकाशान्निखिल-संगमती रंहसा सन्निरुद्ध्य

ज्योतिः प्रच्छाद्य भागोरसि-विपुल-जगत्कोट-विश्रान्त-मानोः ।

शायोरान्छिद्य यात्राः सकल-तनुभृतां चक्षुराकृष्य दूराद्

भूयोऽप्यावृत्य भूमौतरुमखिलमसावम्बरं संवृणोति ॥’^१

१. तुलना के लिये देखिये : कादम्बरी-पूर्वभाग : विन्ध्याटवी-वर्णन—

‘अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेला-वनसन्ना ... विन्ध्याटवी नाम ।’

२. उ० १।३-४ ।

उपमा और श्लेष का सुन्दर संयोग गहोरा राजधानी के वर्णन में देखिये ।
यहाँ कवि की भाषा ललित हो उठी है—

कादम्बिनीव दलितखिल-लोकतापा

कात्यायनीव रिपुवर्ग-भयानभिज्ञा ।

या पूर्व-मर्वत-शिखेव करावदान-

मित्रोदय-प्रणयिनी सततं विभाति ॥^१

सन्तुष्ट सदृशों एवं विवरणों से तथा वीरमद्भवेचम्पू के प्रत्यक्ष दर्शन से प्रतीत होता कि जिस पद्यनाम की प्रतिमा दर्शन के क्षेत्र में शुष्क-सोख तकों के प्रभावी प्रयोग में अन्यर्थ रही है, उसी कवि की कल्पना एवं शब्द-शक्ति ने काव्य के क्षेत्र में भी रससिद्धि प्रदर्शित की है । मध्य युग के कवियों की प्रथम पंक्ति से पद्यनाम की नीचे नहीं लाया जा सकता ।

वीरमद्भवेचम्पू मूलतः वीर रस-प्रधान रचना है । यह वीर रस प्रमुख रूप से पद्यों में निष्पन्न हुआ है । इन पद्यों में ओज गुण, पर्याय वृत्ति और गौरी रीति वीर रस के अनुकूल ही प्रयुक्त हुई है । ऐसे स्थलों पर शब्द-सङ्कारों के सुन्दर प्रयोग हुए हैं, किन्तु उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अर्थालङ्कार भी उपलब्ध हैं । वीरमद्भवे के सैन्य-नागर में सम्मिलित होने वाले ओजस्वी क्षत्रियों के कुछ चित्र देखिये—

‘अटत्-कटक-घोटकीदम्भ-सुराग्र-टङ्क-भटत्-

प्रभूत-धरणी-रज्जो-निचय-रुद्ध-मास्वत्कराः ।

समापनुररिवज-द्विरदयूय-कुम्भस्वली-

कपाट-पटु-पाटन-ग्रहित-सायकाः शीचराः ॥

दंष्ट्रा-दद्याघरोष्ठा मृकुटि-कूटिलता-नीम-लालाट-पट्टाः

कोदण्डाकृष्टि-सक्तोदम्भ-करटि-करोहृष्ट-दोर्दण्ड-वण्डाः ।

आदाता वात-वेगामट-गति-विजितान् योगि-चिन्त-प्रचारा-

नरनागाहृष्ट वश्य-प्रतिमट-कटका घोटयानाः किकानाः ॥

अप्यधि-अयण-ग्रीह-प्रताप-परिशीलिताः ।

प्रभुं पुननया प्राप्ताः परिहाराः प्रहारिणः ॥^२

वीरमद्भवे की रणवाहिनी द्वारा चढ़ाई हुई घूलि से अस्त मन्दोदरी विमोपण की उपहार भेजने का परामर्श दे रही है, अन्यथा घूलि से ही समुद्र में सेतु बन

१. उ० १।१५ ।

२. वीरमद्भवेचम्पू : पष्ठ उच्छ्वास : श्लोक २१, २५, ४२ ।

१६ ब०

जायगा और बीरभद्र के द्वारा शत्रुओं के मस्तक रणदेवता को अर्पित कर दिये जायेंगे—

‘बावद्-घोटक-कोटि-टाप दलितैर्मूचक्र-धूलोभरे-
संदध्ना सेतुमितापरं जन्निघावावृत्य लङ्कापुरीम् ।
स्फुजंत्कामुक्-निस्सरस्तरुतैरिहत्वा सिरो विद्रिपां
सङ्ग्रामाङ्गन-देवताः प्रति बलोनामागु सङ्घास्यति ॥’^१

कीर्ति वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने कोमल-कान्त-पदावली का प्रयोग कर व्यत्युक्ति प्रदर्शित की है—

‘सहज-धवलमच्छं भाग्य-वालेन्दु-शोभा-
दपि च विमल-कान्ति स्वर्णुनी-वारि-पूरैः ।
निज-वपुरमृतामं निर्गजितं यस्य कोर्या
धवलमति निठान्तं भस्मना भूतनाथः ॥’^२

७. चम्पू-साहित्य की परम्परा

डा० ब्रजेश्वर वर्मा का कथन है कि ‘कव्य को इस विधा (चम्पू) का उल्लेख साहित्य-शास्त्र के प्राचीन आचार्यों, भामह, दण्डी, वामन आदि ने नहीं किया ।..... चम्पू नाम के प्रकृत काव्य की रचना दसवीं शती के पहले नहीं हुई ।..... यह काव्य-रूप अधिक लोकप्रिय नहीं हो सका और न काव्य-शास्त्र में इसकी अधिक मान्यता हुई ।’^३

आगे चल कर श्री वर्मा स्वयं लिखते हैं कि “दण्डी (सातवीं शती) से.....मिश्र (गद्य-पद्य समन्वित काव्य) के नाटकादि और धम्म-विषय चम्पू का उल्लेख किया है ”^४ इस प्रकार श्री वर्मा स्वयं अपने कथन के विपरीत चले जाते हैं । हम इतना ही कहना चाहते हैं कि दण्डी द्वारा चम्पू-प्रभेद का उल्लेख ही यह प्रमाणित कर देता है कि अन्य लघुकाव्यों की भाँति चम्पू की रचनाएँ भी प्राचीन हैं, यद्यपि उस काल का बहुत कुछ साहित्य नष्ट हो जाने से उपलब्ध नहीं है । साहित्य शास्त्रों में नाटक और महाकाव्य जैसे महा-प्रबन्धों की ही विशेष चर्चा हुई है तथा उनके लक्ष्यों पर अत्यन्त सूक्ष्मता

१. वही : प्रथम उ० : श्लोक ७ ।

२. वही, प्र० उ० : श्लोक ११ ।

३. हिन्दी साहित्य-कोश (भाग १) : संवत् २०१५ : पृ० २८५ : ‘चम्पू’ ।

४. वही : पृ० ८४९ : “साहित्य-रत्न” तथा काव्यादर्शः १।३१ ‘गद्य-पद्यमयी काविञ्चम्पूरित्यभिधीयते ।’

से दिचार हुआ है। लघुकाव्यों पर उत्तरी सूक्ष्मता से विचार न होना स्वामि-
विक और अपेक्षित हो है। मनो लघु-प्रबन्धों को ओर कवियों और शास्त्रकारों
ने कम ध्यान दिया है। वही बात चम्पू के साथ है।

यह होते हुए भी आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक के टीकाकार अभिनव गुप्त
ने^१ तथा पोले हेमचन्द्र^२ और विद्वनाथ ने^३ चम्पू-प्रवेद के उल्लेख किये हैं।

अस्य लघु-प्रबन्धों की भाँति चम्पू में भी छन्द की व्याख्या के अनुसार
अनुबर्ग में से एक वर्ग की निधि की जाती है तथा वह एक रस का ही परि-
पोष करता है।^४ यह रस प्रायः शृङ्गार या वीर होता है।

इस प्रकार निम्न चम्पू-ग्रन्थों की परम्परा के सम्बन्ध में कुछ जानकारी
है। त्रिविक्रम-कृत नलचम्पू की रचना दशवीं शती के आरम्भ में हुई। भोजराज
ने ११ वीं शती में चम्पू-रामायण की रचना की। हेमचन्द्र ने १२ वीं शती के
अन्ते ग्रन्थ काव्यानुशासन में रामचरित-चम्पू को उदाहरण के रूप में उल्लिखित
किया है। इसके अतिरिक्त सोमदेव सूरि का बसन्तिलक, कर्णपुर का आनन्द-
वृन्दावन, जोष गोस्वामी का गोपालचम्पू, अनन्त का चम्पू-नारद तथा उत्तर
चम्पू-रामायण, मङ्गलमा, नौठकण्ठ, देगराज-चरित और वीरभद्रदेव-चरित
आदि चम्पूकाव्यों के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त अनेक चम्पू-ग्रन्थों की
रचनाएँ हुई हैं।

लौकिक पद्धति के प्रशस्ति-परक चम्पूकाव्यों में प्रायः किसी युद्ध को लक्ष्य
बना कर वीर-रस-प्रधान रचना की जाती है। बीच बीच में शृङ्गार, हास्य,
रौद्र, भयानक, अद्भुत आदि रसों के स्पर्श करने वाले कथोत्पन्न मुक्तकों का
गुम्फन किया जाता है। पौराणिक कथाओं पर आधारित अनुत्पाद्य कोटि के
चम्पू प्रायः शृङ्गार-प्रधान पाये जाते हैं और कथा के किसी विशिष्ट अङ्ग की
वृत्ति को लक्षित कर काव्यात्मक उद्भावनाओं से युक्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

प्रायः समस्त चम्पू-काव्यों की शैली पाण्डित्य-प्रदर्शन की शैली होती है।
इनमें दोष-समाप्त-युक्त, श्लेष-प्रवण, अनेकार्थक और जटिल पदावली के प्रयोग
पाए जाते हैं। कथा का प्रवाह मन्द पड़ जाता है और कवि चमत्कार-प्रदर्शन

१. उद्योत ३ कारिका ७ : लोचन-टीका : 'आदि-ग्रह्याचम्पूः ।'^१

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बंबई : १९०१ : पृ० ३४०
'मद्यमप्यसौ साङ्गा सोच्छ्वासा चम्पूः । यथा-वासवदत्ता ।'

३. साहित्यदर्पण : निर्णयमानर : बंबई : १९३१ : परि० ६।२३६ :
'मद्यमप्यसौ काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते ।'

४. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बंबई : १९२८ अध्याय १६।६ ।

में उलझ जाता है। यही बात बीरभद्रदेव-चम्पू में प्राप्त है। यह लौकिक पदति का प्रशस्ति-परक ग्रन्थ है।

चम्पू काव्यों के लिखने की जो प्रवृत्ति सामान्यतः परिलक्षित होती है, उसी का परिणाम बीरभद्रदेव-चम्पू का प्रणयन है। इसकी पदावली और पाण्डित्यपूर्ण चमत्कृति तुलनात्मक दृष्टि से घट कर नहीं है। अपनी १५ (या १६) कृतियों में से केवल इसी में पद्यानाम ने काव्यकला का प्रयोग किया है। पद्यानाम की भाषा सशक्त और प्रारुजल है, उसकी कल्पनाएँ और सूक्ष्म आकर्षक हैं, उसकी पद्ययोजना और अलङ्कृति प्रभावोत्पादक है। अतः यह काव्य चम्पू-काव्यों के बीच महत्त्वपूर्ण है, साथ ही बघेलखण्ड के काव्यों में यह प्रथम धरोहर में गिना जायगा।

(ख) विश्वनाथसिंह की कृतियाँ :

सङ्गीत-रघुनन्दनम् और रामचन्द्रादिकम्

१. पाण्डुलिपियों से सम्बद्ध जानकारी।

सङ्गीत-रघुनन्दनम्—

सरस्वती-कोष-भाष्यार, रीवा में इस ग्रन्थ की ६ प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) पत्रा ६१—सम्पूर्ण (बस्ता १५४ स्टाक १३११) :

टीका के अन्त में—पीप सुदी शुक्ल तिथि पीर्वासाया बुधवासरे समाप्तम् है।

(२) पत्रा ६१—सम्पूर्ण (बस्ता १५४।१३।२)।

(३) पत्रा ५९—सम्पूर्ण (बस्ता १५४।१३।३)।

(४) पत्रा ४८—प्रारम्भ के दो पत्रा लुप्त (बस्ता १४४।१३।४)। टीका के अन्त में 'माघ सुदि ७ संवत् १८९२ के साल' लिखा है।

(५) प्रारम्भ के २१ पत्रा, सङ्कट प्रति (बस्ता १५४।१४)।

(६) अन्तिम १४ पत्रा, सङ्कट प्रति (बस्ता ६।७३)।

प्रथम सर्ग के अंत में मूल में 'महाराजकुमार बाबू साहेब' शब्द हैं। इन सभी प्रतियों में मूल की पुष्पिकाओं में 'महाराजकुमार' और कहीं-कहीं 'बाबू साहेब' शब्द होने से यह निश्चित है कि ग्रन्थ का प्रणयन राजकुमार विश्वनाथसिंह ने किया। प्रारम्भ में प्राप्त यह श्लोक भी इस बात को प्रमाणित करता है—

'विन्ये रिपु-गज-सिंहो जयसिंहो राजसिंहोऽस्ति ।

; वनुते तस्य वनूजो ग्रन्थं सङ्गीत-रघुनन्दनाख्यम् ॥'

इस प्रकार ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १८९१ (१८३४ ई०) से पूर्व होना चाहिये ।

सनम पाण्डुलिपियाँ टीका-सहित हैं । प्रथम प्रति में टीका के अन्त की पुष्टिका इस प्रकार है—

‘इति त्रिद्वि-श्रीमन्महाराज-विराज-श्रीमहाराज-बहादुर-सीतारामचन्द्रकृपा-
पात्राधिकारि-श्रीविश्वनाथतिहृदेक-कृतायां व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिका-नाम्नि टीकायां
पोडगः सर्गः ।

राम-प्रेम-चन्द्रकार-प्रमोदय महारत्नानां ।

विन्ध्येश-विश्वनाथेन कृता व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिका ॥’

यह पुष्टिका स्पष्ट करती है कि ग्रन्थ की टीका स्वयं विश्वनाथमह ने महाराज होने (१८६१ वि०-१८३४ ई०) के पश्चात् लिखी और उसका नाम व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका’ रखा ।

भाष्यार की उपर्युक्त शीर्षी प्रति में लिपिकाल ‘माघ सुदि ७ सं० १८९२’ प्राप्त है । प्रथम प्रति में संवत् नहीं है, केवल पौष-पूर्णिमा का निर्देश है, किन्तु माघ में ‘समाप्तम्’ शब्द है । यह टीका की समाप्ति की तिथि (पौष १८९२ वि० १८३५ ई०) प्रतीत होती है । अतः यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि १८३५ ई० में टीका लिखी गई ।

आने ने अपनी सूची में सङ्गीतरघुनन्दन की एक प्रति की जानकारी दी है और लिखा है कि “विश्वनाथ किन्हीं सीतारामचन्द्र बहादुर के अधिकारी थे ।” (यह श्रान्ति शः सीतारामचन्द्र-कृपापात्राधिकारी’ शब्दों के नक्तिपूर्ण उल्लेख में अनित है ।)

हृदप्रसाद भास्वी ने बंगाल की रायल एथिनाटिक सोसायटी में सङ्गीत-रघुनन्दन की एक प्रति का होना सूचित किया है, जिसका लिपिकाल १९३७ वि० (१८८० ई०) है । आपने इसे त्रिमासम-कृत माना,^१ जिसका आधार सङ्गीत-रघुनन्दन का गुप्त त्रिमासाव की वन्दना में लिखित यह श्लोक है—

‘अमरि सच्चिदानन्द-धन-वरद-वर-सर्वगुण-

नालि-शृङ्गार-रम-माल-मूर्तिः ।

सर्व-जन-वत्सलः प्रविगलित-मत्सरः

प्रेम-माधोधि-मूढार्थ-पूतिः ॥

१. आदेश मात्र १ पृ० ५८५ ।

२. ए डेन के० : जिल्द ७ : क्र० ५२५६ ।

उर्वरत-सर्वमल-सर्ववन्दितवरण-

सर्वधरणागतोद्धृत-विहारो ।

गुरुप-धुवरः श्री प्रियादास इह

विश्वनाथान्तर-गीतकारो ॥'

अन्तिम पंक्ति के आधार पर हरदत्तशर्मा ने भी पहले लिखा कि विश्वनाथ सिंह के आथय में किन्हीं प्रियादास ने यह ग्रन्थ लिखा, यद्यपि पुष्पिका देखने से यह विश्वनाथसिंह की ही रचना प्रतीत होती है ।^१ कृष्णमाचारिणर की भी हरदत्त शर्मा के इस लेख के आधार पर भ्रान्ति हुई ।^२ पीछे अन्य लेख में हरदत्तशर्मा ने सङ्गीतरघुनन्दन की प्रथम और चौथस सर्गों की पुष्पिकाओं के उल्लेख किये (जिनकी चर्चा हरप्रसाद शास्त्री ने की थी) और चर्चा प्रस्तुत कर लिखा कि 'विश्वनाथसिंह निम्न स्तर के कवि नहीं प्रतीत होते, अतः (उपर्युक्त श्लोक के आधार पर) यह आवश्यक और तर्कसम्मत नहीं होगा कि सङ्गीतरघुनन्दन का कर्ता विश्वनाथसिंह को न मान कर प्रियादास को माना जाय ।'^३ श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती और श्री पी० के० गोडे ने रामचन्द्राह्निक के साथ साथ इस ग्रन्थ की चर्चा कर दोनों के प्रणेता विश्वनाथसिंह को ही माना है । श्री गोडे ने यह भी लिखा है कि 'लोहर' (इलाहाबाद) में १५ मई, १९४० ई० को प्रकाशित समाचार के अनुसार श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने ६ मई, १९४० ई० की एक सभा में 'रामल एगिपेटिक सोसायटी, बंगाल से प्राप्त उन्नीसवीं शती की पाण्डुलिपियों में से ४ ग्रन्थ प्रदर्शित किये थे, जो सभी महा-राज विश्वनाथसिंह के संस्कृत ग्रन्थ थे —

१. रामचन्द्राह्निकम् (२ प्रतियाँ),

२. राममन्त्रार्थ निर्णयः (बंगला लिपि—सं० १९०७),

३. राधावल्लभीय-मल-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-माध्य (लिपि० सं० १९००) तथा ।

४. सङ्गीतरघुनन्दनम् (१९३७ वि०) ।^४

श्री रामचन्द्र नैम्बिहार ने "सङ्गीतरघुनन्दनम् सव्याख्यम्" नाम से

१. 'वाघेल क्लर्क ०' ।

२. हि० कला० सं० लिट्-पु० ८५० परि० १००० ।

३. 'दि वैष्णव फिलासफर प्रियादास ऐण्ड हिज ववर्स' : ६० हि० : ' माग १९ : १९४० : पु० ३१८-१९ ।

४. 'संस्कृत ववर्स' : पु० ४४५-५६ तथा पी० के गोडे : 'संस्कृत ऐण्ड हिन्दी ववर्स' ।

बड़ोदा में एक प्रति होने का उल्लेख किया है। यह विश्वनाथसिंह द्वारा रचित है और व्याख्या का नाम 'व्यङ्मयार्थ-चन्द्रिका' है^१। कृष्णमाचारियर ने सङ्गीत-रधुनन्दन की ३ पाण्डुलिपियों की सूचना दी है।^२ इस प्रकार इस ग्रन्थ की लोकप्रियता सूचित होती है।

रामचन्द्राह्निकम्—

सरस्वती-कोष-याण्डार रोवा में इस ग्रन्थ की एक सम्पूर्ण पाण्डुलिपि सुरक्षित है। इसमें ५१ पन्ना हैं।^३ रामवन (जिला सतना) में भी ५० पन्ना की एक सम्पूर्ण प्रति है।^४

आफे ने रामचन्द्राह्निक की दो प्रतियों की जानकारी दी है।^५ हरप्रसाद शास्त्री ने संस्कृत-ग्रन्थों की सूची में इस ग्रन्थ की २ प्रतियों के उल्लेख किये हैं।^६ कृष्णमाचारियर ने इस ग्रन्थ का अनेकशः उल्लेख किया है।^७ विन्ताहरण चक्रवर्ती^८ और पी. के. गोडे^९ ने इस काव्य की वर्ष्वा की है। अतः यह भी लोकप्रिय रचना मानी जा सकती है। समस्त प्रतियाँ टीका-सहित हैं।

१. ऐन अल्फावेटिकल लिस्ट आफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि ओरिएण्टल इंस्टीट्यूट आफ बड़ोदा: भाग २ : १९५० : पृ० १०५०; ग्रन्थ क्र० ८२५।१३०८१।
२. हि० बला० सं० लिट्० पृ० ८५१—१. कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्यु-स्क्रिप्ट्स इन अडियार लाइब्रेरी : भाग २।४५ : ६२. कैटे० अवच० भाग ५।१८। पृ० ३४४ : कैटे० अलवर०-९८०।
देखिये परिच्छेद २९८, ८८०, १००१।
३. बस्ता १३५।५१।१।
४. तुलसी-संग्रहालय, ग्रन्थ क्र० २८०९।
५. मित्रा० भाग १।७३। इस प्रति की प्राप्ति बनारस के बाबू हरिप्रसाद के यहाँ से हुई थी। इसका नाम रामचन्द्रचम्पू है। अन्तिम पुष्पिका-रामचन्द्राह्निक-टीकायामष्टमो यामः।' अर्थात् इसमें अध्यायों के नाम याम हैं, जिनकी संख्या ८ है। इस पुष्पिका में लिपिक की मूल से 'विश्वनाथसिंह-बूवे' के स्थान पर 'विश्वनाथसिंह भूदेव' लिखा है। तथा कैटे० अलवर० क्र० ९६२ : 'रामचन्द्राह्निकम्'।
६. ए० टेल्० के० : क्र० ५२५५ और ५२५६।
७. हि० बला० सं० लिट्० परि० ५४१, ९६२, १०००, १०६४।
८. 'संस्कृत वर्ष्वा'।
९. 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वर्ष्वा'।

ग्रन्थ का मूल और उसकी टीका दोनों ही 'महाराज-विश्वनाथसिंह-कृत' हैं। प्रथम याम के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

मूल—'इति सिद्धिथो महाराजाधिराजा-धोरामचन्द्रापात्रा-
धिकारि-थो विश्वनाथसिंहजुदेव-विरचिते धोरामचन्द्राह्निके प्रथमो
यामः ।'

टीका—'इति थो.....विश्वनाथसिंहजुदेव-विरचितायां.....
रामचन्द्राह्निक-टीकायां..... ।'

अर्थात् टीका का कोई नाम नहीं रखा गया है ।'

टीका की प्रति में अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति धोरामहाराजा.....रामचन्द्राह्निके टीकायां अष्टमोऽध्यायः ।'

प्रकार प्रतीत होता है कि किसी लिपिक ने 'याम' में अन्त किया है और किसी ने 'अध्याय' में। आह्निक में वास्तव में धोराम की दिनचर्या यामों (ग्रहणों) में विभाजित की गई है। अतः 'याम' शब्द ही उपयुक्त है।

ग्रन्थ का रचनाकाल कहीं सूचित नहीं है। प्रतीत होता है कि सङ्गीत-रघुनन्दन की टीका (१८३५ ई०) पूरी करने के पश्चात् धोराम में शृङ्गारी रूप के चित्रण की अधिक लालसा से महाराज ने इस रामचन्द्राह्निक ग्रन्थ का निर्माण किया और स्वयं टीका लिखी। अतः इन दोनों की सृष्टि १८३५ से १८५४ ई० के बीच की गई।

टीका के आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक है—

'शिष्याणां रघुनन्दने परतर-स्नेहस्य संसिद्धये

सिद्धिथो-जयसिंहदेव-जनय-थो विश्वनाथास्पतः ।

बन्धेः संसृति-मीढभिर्गुरुपदेशैः यो मरीयानसो,

प्रम्यवशीक्रियतेऽधुना प्रकटितः धोरामचन्द्राह्निकः ॥'^१

इस श्लोक में भी विश्वनाथ के मुख से गुरुचरण (प्रियादास) ही रामचन्द्राह्निक को स्पष्ट कर रहे हैं, 'जैसे कि सङ्गीत-रघुनन्दन में पीछे निर्दिष्ट श्लोक में विश्वनाथ के अन्तःकरण में प्रविष्ट गुरु प्रियादास ने गीत लिखे हैं। यह कवि का विनम्र शिष्टाचार है कि वह अपने कृतित्व का श्रेय गुरुचरणों को देना चाहता है। प्रियादास ने भी अपनी कृतियों का श्रेय अपने गुरु को दिया है।'^२

१. रामवन की प्रति : पृष्ठ १३ ।

२. वही , पृ० ७.

३. सुसिद्धान्तोत्तम, मन्त्रिप्रभा आदि सभी ग्रन्थों में ।

२. कथातत्त्व : (अ) सङ्गीतरघुनन्दनम्

सङ्गीत-रघुनन्दन को गीतगोविन्द की सीली की पूर्णतः अनुकृति कहा जा सकता है। यह भी १६ सर्गों में विभाजित है। कथा का तत्त्व अवश्य ही रामकथा पर आधारित, अतः मौलिक है। इसमें श्रीराम को रास-रसिक^१ और सीता को रासेश्वरी^२ रूप में चित्रित किया गया है। कथानक का स्थल अयोध्या का राजमन्च-और सरयूतट, विषय रासक्रीड़ा और काल श्रीराम का राज्य-काल है। इसमें श्रीराम का निजान्त व्यक्तिगत आनन्दमय जीवन चित्रित है, जिसमें पात्र केवल राम और सीता हैं तथा सखियाँ सहायिकाओं के रूप में हैं। कथानक पर श्रीमद्भागवत के रासवर्णन की भी छाया है। सर्ग छोटे छोटे हैं।

प्रथम सर्ग में वन्दना और मङ्गलाचरण है, जिसमें दशावतार और अन्य अवतारों की भी वन्दनाएँ गीतगोविन्द की भाँति हैं।

द्वितीय सर्ग में ३ गीतों में गृह-रास-वर्णन है। इसमें सीता का स्वाधीन-पतिका भाव चित्रित है। कोई सखी रास-नृत्य का वर्णन करती है।^३

तृतीय सर्ग में गद्य के प्रयोग से वसन्त ऋतु को चित्रित कर वसन्त रास के अन्तर्गत नृत्य प्रस्तुत किया गया है। श्रीराम भी नृत्य करते हैं।^४

चतुर्थ सर्ग में सीता अन्तर्धान होकर राम के विरह में गीत गाती है। राम की प्रेरणा से कामा और वसन्तिका सखियाँ रत्नाद्रि-कुञ्ज में सीता को ढूँढ़ कर राम का गुप्तगान सुनाती हैं।

पञ्चम सर्ग में कामा के उषस गीत से प्रभावित जानकी को व्यथा को देखकर सखियों की परस्पर वार्ता का वर्णन है।

षष्ठ सर्ग में कमला सखी चारुशोला से सीता की विरह-व्यथा को स्पष्ट करती हुई उसे राम को बुलाने की भेजती है। राम सीता के पास आ जाते हैं।

१. सर्ग १।७ : टीका-‘श्रीराम-रास-रसिक-विनोदाय विधीयते।’

२. वही, १।२ : ‘सर्वेषामपि कामदो रघुपतिस्तस्यापि या कामदा,
सा सीता नयतां मदोय भणिति रासेश्वरी चारुताम् ॥’

३. सर्ग २।३ : गायति काचन नृत्यति काचन रमयति काचन रामम्।
कापि च नटयति कापि च रटयति कापि च घटयति कामम् ॥
रमणीमण्डलमिह कुण्डलितं नृत्यति गति-सङ्गीतम्।
गायति सरति सीतया साकं श्रीरामो रस-गीतम् ॥’

४. सर्ग ३ : ‘ठाव ताव-सत्यद्-तत्यद्-यद्-निनदापूरित-दावम्।
वीणा-नाद सुसङ्गत-सिञ्जितमर्षक-व्यञ्जित-भावम् ॥’

सप्तम सर्ग में राम सीता को मनाते हैं । उनके दो गीत यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं । सीता आँसों खोसती है । सीता और राम का समागम होता है ।^१

अष्टम सर्ग में सीता-राम का मिलन देखकर सखियों गीत गाती हैं । राम सीता का गूँझार करते हैं ।

नवम सर्ग में एक मवन में आकर सीता और राम परस्पर भूला झुलाते हैं ।^२ सखी गीत गाती है ।

दशम सर्ग में सीता और सखियों को लेकर राम सरयू तट पर बिहार करने जाते हैं । यहाँ सखी राम की सर्वाङ्ग शोभा का वर्णन करती हैं ।

एकादश सर्ग में मन्थी पति के माथ झोड़ा करती हुई सीता का वर्णन करती है । यहीं पर रासझोड़ा होती है । राम गीत गाते हैं तथा सीता और राम नृत्य करते हैं । यह वाक्य का सर्वोत्कृष्ट अंश है ।^३ यहाँ भागवत की छाया है ।

द्वादश सर्ग में भागवत की रास-कथा का अनुसरण आगे बढ़ता है । सखियों के गर्व को दूर करने के लिये राम अन्तर्हित हो जाते हैं । सखियों का विरह-वर्णन प्रभावी है ।^४

त्रयोदश सर्ग में राम प्रकट होते हैं । सखियों की संयोग-वेष्टाओं का कवि वर्णन करता है । राम सीता से सरयू का वर्णन करते हैं ।

चतुर्दश सर्ग में जलझोड़ा का वर्णन है । सरयूतट पर बिहार होता है । सीता और राम सिंहासन पर बैठ कर परस्पर रसानुभव करते हैं ।

पञ्चदश सर्ग में सबके साथ राम राजभवन लौट आते हैं । प्राज्ञान में

१. 'निमिराज-मुखा विविधयन्त्री रमणं रास-परायणं हृदये ।

समवाप्य मुमालिका-मुग्धस्य सहज-स्नेह-प्रभाकुलाऽऽलितिङ्ग ॥'

२. 'परस्परान्दोलन-हर्ष-विह्वली परस्पर-प्रेम-रसानुसारिणी ।

परस्परालोकन-क्रोतुकान्विदाबुधौ समालोक्य जगद कायन ॥'

३. 'प्रकाश्य परमानन्दं परमानन्द-विग्रहः ।

रामो रमयते रामां रास-सङ्गीत-नर्तनैः ॥'

४. 'नृत्यन्ती रासमध्ये निजगुण-गुरुता-गर्वं सम्भार-भाजः

प्रेमासं प्रीयमाणं स्ववत्समुपगतं निर्भरं मन्यमानाः ।

रामा रामोऽवलोक्यामिमतिमुपवितां हर्तुकामस्तदानीं

तासामन्तर्हितोऽमूत्रियतम विरह-व्याकुलास्ता विचेरुः ॥'

तथा 'पृच्छन्ति स्म सता-तस्मै'----- ।'

रासलीला होती है। यहाँ काव्य समाप्त हो जाता है। अन्त में तीन पृष्ठों में समस्त सखियों की सूची दी गई है।

योदश सर्गों में साम्प्रदायिक उपासना प्रदर्शित की गई है। मोराजन^१ एवं भावपूर्ण पद्य और मद्यगीत के साथ कवि ग्रन्थ का उपसंहार करता है।

सर्वत्र विस्तृत टीका प्रस्तुत कर भाव स्पष्ट किये गए हैं।

इस काव्य में प्रयुक्त गद्य गीतात्मक और अत्यल्प है। अतः यह छन्द-काव्य ही माना गया है। सीता की दृष्टि से यह मधुर मोति-काव्य है। गीतों और नृत्यों से पूर्ण होने से यह नाट्य मोति माना जा सकता है।

रामचन्द्राह्निकम्—इस ग्रन्थ में भी श्रीराम और सीता ही प्रमुख पात्र हैं तथापि इसमें श्रीराम का सामाजिक जीवन चित्रित है। इसमें श्रीराम का राजकुमार अवस्था में विवाहोत्तर जीवन अङ्कित हुआ है। वैभव और विलास के बीच, राज्य-भार से मुक्त श्रीराम एक दिव्य, आनन्दमय, निरिचिन्त चरण-जीवन बिता रहे हैं।

श्रीराम की दिनचर्या आठ यामों में विभाजित कर उनके आह्निक^१ का सविस्तर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सूर्यनाद आदि के द्वारा याम बीतने की सूचना दी जाती है।

प्रथम याम में अलस-भाव में स्थित श्रीराम को प्रभात-काल में बन्धो-जन जगाते हैं। सखाओं से मिल कर श्रीराम स्नान करते हैं। उनका मृङ्गार होठा है। सीता आकर श्रीराम का पूजन करती है। त्रिहासन पर सीता और श्रीराम अधिष्ठित होते हैं। सखियाँ आरती चतार कर शीत-नृत्य प्रस्तुत करती हैं।

द्वितीय याम अधिक विवरणात्मक है। श्रीराम बाहर सभाभवन में जाते हैं और ऊमिला आदि के साथ सीता सखियों की सेवा करने जाते हैं। सभा-भवन में भरत आदि श्रीराम का थोड़थोपचार पूजन करते हैं। श्रीराम कौतुक देखते हैं, गजारोहण और अश्वारोहण करते हैं तथा लक्ष्मीनिधि आदि के साथ नगर मार्गों से निकलते हैं। राजा-वर्षण होता है। श्रीराम दशरथ के भवन में जाते हैं। पिता का वात्सल्य-दाम कर वे मातृदर्शन करते हैं। वहाँ भोजन कर शीत-नृत्य देखते हैं। पुनः वे पिता के साथ भोजन करते हैं। यहाँ तक सखा साथ में रहते हैं। फिर श्रीराम हाथी पर चढ़ कर अपने भवन जाते हैं और निद्रा लेते हैं। द्वितीय याम की सल्लारिका होती है। श्रीराम को जगा-कर, बतलाया जाता है कि व्याघ्र ने महिष को वन में मारा है।

तृतीय याम में श्रीराम भूगया के लिये जाते हैं। यहाँ भूगया की सैयारी, राजपथ से निकलने, पौरों की चर्चा, वन-प्रवेश, व्याघ्रायरोध, व्याघ्र, और अन्य जन्तुओं के वध तथा तालाब में मत्स्यवध आदि का विस्तृत वर्णन है।

चौथ्या की सेवा कर सीता लौटती है और श्रीराम की भूगयार्थ गए हुए पाकर बधीर हो जाती हैं। वे सखी को श्रीराम की बुलाने की भेजती हैं। श्रीराम भूगया से उत्साहित होकर जल में तैर रहे हैं। वे दूती को वात नहीं सुनते। सखा के समझाने से श्रीराम लौटना स्वीकार करते हैं। दूती लौटकर सीता को बतलाती है। सीता लौटते हुए श्रीराम को सीधे शिखर से देखती हैं। श्रीराम और सीता मिलते हैं और बातचीत करते हैं। इस समय सहजा सखी प्रणयकोप से श्रीराम पर व्यङ्ग्य कर मानवती होकर चली जाती है।

चतुर्थ याम में श्रीराम प्रमदवन में विहारार्थ जाते हैं। सखियाँ वसन्त का आगमन सूचित कर होली खेलने का प्रस्ताव रखती हैं, किन्तु सहजा की अनुपस्थिति में श्रीराम नहीं खेलेंगे, इस पर वे ताने कसती हैं। श्रीराम सहजा का पता लगाते हैं।

पञ्चम याम में श्रीराम होली खेलने की सैयारी का आदेश देकर सहजा के भवन को जाते हैं। उसे मना लाते हैं। खेल की सामग्री जुटती है और सखियाँ खेल आरम्भ कर देती हैं।

षष्ठ याम में होला-खेल का सविस्तर वर्णन है। बीच-बीच में नायिका-भेद, माम करना, ममाना आदि है। अर्द्धरात्रि की शल्लरिका सुनकर होला-खेल बन्द होजा है। श्रीराम सिंहासन पर विराजते हैं। वाम भाग में सीता और दक्षिण भाग में सहजा सखी रहती हैं।^१

वास्तव में क्या यही समाप्त होती है। इसके पश्चात् सिंहासन पर सुशोभित श्रीराम का सखियों द्वारा पोद्घोषवार पूजन और आरती होती है। श्रीराम शयनागार में प्रवेश कर पर्यङ्क पर जाते हैं। पहरण चतुर्विध वाद्य-ध्वनि करते हैं। श्रीराम रमणी (सीता) से मृदु गीत सुनते हैं और वह उन्हें

१. रीवा की प्रति में मूल में भूल से यहाँ 'इति....सप्तमो यामः' लिखा है। उक्त प्रसङ्ग का अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है—

रास-मण्डले कलयन्तामी रामो होला खेलाम् ।

अर्द्धनिशा-शल्लरिकां श्रुत्वा आत्वा शयितुं वेलाम् ॥

यामेतरे सहजया सहितस्तथा सीतया वामे ।

रेजे विश्वनाथ-नाथो भणि-सिंहासनेऽभिरामे ॥'

कोई कामकथा कहती है। टीका के अनुसार यहाँ विहार व्यञ्जित है। यहाँ सप्तम याम की समाप्ति सूचित है।^१

अगले पृष्ठों में अनुक्रमणिका में कवि ने पञ्च प्रस्तुत कर आह्निक-विधि का पद्यात्मक सार प्रस्तुत किया है। यहाँ आह्निक के विवरण प्रस्तुत किये गए हैं; जैसे—श्रीराम कभी-कभी भवन में स्नान न कर सरयू में नहाने जाते हैं। वे कभी दशरथ के साथ, कभी माता के यहाँ और कभी अपने भवन में ही मोहन करते हैं। वे कभी मृगया को जाते हैं तो कभी करयू-तट, उपवन या भवन में ही सखाजों के साथ खेलते हैं, कभी शस्त्राभ्यास, काव्यरचना, सङ्गीत-श्रवण आदि में सखाजों के साथ समय बिताते हैं। वे कभी दर्शनार्थ आए हुए मुनि-जनों से मिलते हैं, कभी रणाङ्गण में शत्रुवध करते हैं। साम्बाल के पश्चात् सखियों और जानकी के साथ नित्य विहार करते हैं, सब सोने जाते हैं। उस समय चतुर सखियाँ क्या कहती हैं अथवा कुछ समय तक गीत बलते हैं। इस वर्णन के अन्त में श्रीराम की स्तुति है तथा अन्त में टीका में 'इति... अष्टमो यामः' लिखा है।

३. शैली और काव्य-सौन्दर्य (अ)सङ्गीत-रघुनन्दन का गद्यकाव्य :

सङ्गीत-रघुनन्दन में अपेक्षाकृत गद्यों का प्रयोग कम हुआ है। उनमें से कुछ गद्य निर्देशात्मक रूप में प्राप्त हैं, जो इस ग्रन्थ को गीति-नाट्य का रूप देते हैं। मूलतः यह ग्रन्थ पद्यात्मक है और ग्रंथकार का लक्ष्य गीति प्रस्तुत करना है। इस लक्ष्य के साथ कथा का आधार होने से पीछे हमने इसे गीत-गोविन्द की भाँति स्रष्टृकाव्य माना है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ गीत-गोविन्द में सर्वथा पद्यों का ही प्रयोग है, निर्देश भी पद्यात्मक है, वहीं सङ्गीत-रघुनन्दन में गद्य-बद्ध निर्देश है। इसके अतिरिक्त काव्य-सृष्टि के लक्ष्य के साथ भी गद्यों के प्रयोग हैं। इनमें मौलिकता के दर्शन होते हैं। हम कह सकते हैं कि कवि ने कादम्बरी से प्रेरणा ली होगी किन्तु यह बात समस्त परवर्ती गद्य-काव्यों के लिये कही जा सकती है। अतः सङ्गीत-रघुनन्दन में प्राप्त काव्यात्मक गद्यों को हम मौलिक ही मानेंगे। इनमें दोष समाप्त किन्तु ललित

१. मूल—रमणो बहुरमणीय-रागतो सुखयन्मुदु स्वरं मापन्तो ।

विश्वनाथ-नाथं रघुनाथं कामपि कामवथां कथयन्तो ॥'

टीका—'अथ कामकथा-कथन-रूप-वस्तुनि

तत्रापि विहाररूपं वस्तु व्यज्यते । इति सप्तमो यामः ॥' यह शब्द-शक्त्युत्पत्ति संलक्ष्यक्रम-व्यङ्ग्य-ध्वनि का उदाहरण है ।

एवं कोमल-कान्त-पदावली के साथ उत्कलिका-श्राव्य सीली ॥ गद्यों के दर्शन होते हैं। यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

‘मालती-लवङ्ग-वस्त्रयः कुसुमिताः विचलय-सम्भारनताः कूजम्पुमत्त-
कोकिला मुञ्जत् पडद्भिन्निकराः शीतल-मन्द-सुगन्ध-समीरणोत्सासिताः पाद-
पालिङ्गनोत्सुका नितान्तकान्ताभिसरणोद्यता वनिता इव लता यत्र विलसन्ति
तस्मिन् वनन्तागमे वनोपवन-वाटिकासु विहरति चलवित्त-वधू-वज्र-वलित-विलास-
समुत्सासित-मानसे-मान-सोकापनोदन-चतुरे मनोनन्दन इव अननन्दिनी-सहिते
धीरपुनन्दन आलपति युगल-प्रेम-परिपूर्णे विद्वनाणां वसन्तरागमिमम् ।’
(सर्ग १)

इसी प्रकार काव्य के अन्त में एक सुन्दर गद्य-रूपक शब्द है, जिसमें कवि
गीत और भाव से विभोर हो उठा है। यहाँ कवि की सज्जीत-मर्मज्ञता का
परिचय भी मिलता है—

‘विद्वनाय-मामस-नारी-निःसृत-छन्द-कोकनदम्पद्वय-मकरन्दमिश्रित-रागरस-
सम्भूत-शालिशवालवसित-तान-तरङ्गोष्णलित-मूर्च्छनामीनसकुलित-सप्तस्वरावर्त-
कलित-ध्रुतिमरालकुलाकुलित-लघुगुरु-प्लुतादिभेद-पुलिनोज्ज्वालित—ज्ञानकर्मकूल-
दलनोत्सलित-विषयवाच-गीतकुमुदिनीलहरित-लयसन्तवस्ति-सङ्गवर्णसाधर-
मिलितसोतारामवलित-सरिरूप त्वामहं गायामि ।’ (सर्ग १६)

(आ रामचन्द्राह्निक का गद्य-काव्य :

सज्जीत-रघुनन्दन की उपर्युक्त मौलिकता रामचन्द्राह्निक में बहुत कम
रह गई है। इसमें कथा-विस्तार की पुष्टि से भी गद्यों का प्रयोग हुआ है और
जैसा ‘रामचन्द्र-चम्पू’ शब्द से ग्रन्थ का लक्ष्य स्पष्ट है, कवि गद्य-प्रयोग के
लिये भी उतना ही उत्सुक है, जितना पद्य-प्रयोग के लिये। इस स्थिति में
विद्वनायसिंह ने राम की दिनचर्या बतलाते समय कादम्बरी के सम्बद्ध भंशों
के अनुकरण किये हैं। अनेक स्थल ऐसे हैं, जिन पर कादम्बरी की छाया है
किन्तु उससे भी अधिक स्थल ऐसे हैं जिनमें कादम्बरी की भाँति शब्द-प्रयोग
भी है। कथा के अंगारों पर भी वही छाया है। शूद्रक और तारापीठ का
राजवैभव एवं चन्द्रापीठ का गौरव थोड़े बहुत हेरफेर के साथ दशरथ के
वैभव और राम के गौरव के रूप में परिणत कर दिया गया है। कादम्बरी
के शब्दशः अनुकरणों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

‘कृत-दन्तधावनश्च....सलीलं सलिलकुण्डमवततार ।

अवतीर्णश्च...समयमुपमादितशरीरः कुण्डललिला—

समुत्थाय मूर्तिमान् शृङ्गार इव मूर्तिमन्तमनुरागमिव

पद्मरामपीठमलञ्चकार (राम० प्रथमं धाम)^१

‘कृत-अधुरव्यायामः.....स्नानभूमिमगच्छत् ।

....वारिमध्यप्रविष्टः....रराज राजा ।

द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममल स्फटिक-धवलं वरुण

इव राजहंसमारुरोह ।’ (काद० पूर्व० शूद्रकवर्णनम्)^२

‘सतः...सस्यः समागत्य काश्चिन्मरकत-कलश-हस्तास्तत्प्रभा-सन्तान-
श्यामायमान-शरीरा अनेक-प्रह्लाण्ड-समागताः कलिन्द-कन्यका इव कमलिनो-
दल-पुटैः काश्चिन्माणिष्य-कलश-हस्तास्तत्प्रभा-सन्तान-शोणायमान-शरीराः सर-
स्वत्य इव सर-दलित-कोकनद-कोरकैः काश्चिद् हीरक-कलशहस्ताः कलशोत्क्षेपन-
धम स्वेदार्द्र-शरीरा विविधरूपधरा गङ्गा इव प्रभात-नुग्धरीकैः श्रीमन्महाराज-
कुमारं रघुनन्दनं स्नानयामासुः ।’ (राम० प्रथम०)^३

‘ततस्ताः काश्चिन्मरकत-कलश-प्रभा-श्यामायमाना मलिन्य इव मूर्तिमत्यः
पत्रपुटैः काश्चिद्भ्रजतकलश-हस्ता रजन्त्य इव पूर्णवस्त्र-भण्डल-विनिर्गतेन ज्योत्स्ना-
प्रवाहेण काश्चित् कलशोत्क्षेप-धम-स्वेदार्द्रशरीरा जलदेवता इव स्फटिकैः कलशै-
स्तीर्थजलेन...राजानममिपिपिबुः ।’ (का० पू० शूद्रक०)^४

‘तत्र च राजानोऽहमहमिकया प्रणामलालसाः सरमसापनीतातपनातपाः
शून्यशिरसि एकैकशश्च स्व-नाम-ग्रहण-पूर्वकं प्रविचलित-मुकुट-पद्मराग-किरणोद्-
गमच्छलेनान्तःकरणादधिकामनुरागनिबोद्गमयद्भिर्दूरावनतैः शिरोभिः
श्रीरघुनन्दनं प्रणेमुः ।’ (राम० द्वितीय०)^५

‘अहमहमिकया च प्रणामलालसाः सरमसापनीतातपन-शून्यशिरसः...राज-
पुत्रास्तं पर्यवारयन्त । एकैकशश्च प्रतिनामग्राह्मावेद्यमाना बलाहकेन विचलित-
मुकुट-पद्मराग-किरणोद्गमच्छलेनानुरागनिबोद्गमद्भिः.....दूरावनतैः शिरोभिः
प्रणेमुः ।’ (का० पू० चन्द्रापीड०)^६

‘...कृतप्रणाममेहोहीत्यभिदधानो दूरदेव प्रसारित-भुजयुगलः सिंहासनादीप-
दुल्लासित-मूर्तिरामन्द-जलापूर्यमाण-लोचनः समुद्भूत-पुलकतया सीवन्निर्विकी-
कुर्वन्निव पिवन्निव पिता विनयावनतात्मब्रमालिलङ्घ ।’ (राम० द्वितीय०)^७

१. स० को० भा० रोवा की प्रति ।

२. पण्डित-मुस्तकालय : काशी : १९५९ : पृ० ३०-३१ ।

३. रोवा की प्रति ।

४. पृ० ३१-३२ ।

५. रामवन की प्रति : पृ० १६ ।

६. पृ० १७२ ।

७. रामवन० : पृ० १८ ।

‘.....इतप्रणाममेहोहीत्यभिर्दधानो दुरादेव प्रसारित-भुजयुधः धयनतला-
दीपदुग्धसहित-मूर्तिरानन्द-जल पर्यमाणलोचनः समुद्गत-पुलकतयासीध्वलि-
वैकीर्तुर्वन्निव पिबन्निव तं पिता विनयावनतमालिलिङ्गः ।’ (का० पू० चन्द्रापीड०)

ऊपर प्रदर्शित प्रकार की छाया रामचन्द्राह्निक के गद्य-भाग में प्रायः सर्वत्र विद्यमान है। नवीनता इसकी है कि उपजीव्य ग्रन्थ कादम्बरी के राम-
जीक गद्यशैली का प्रयोग राम के अष्टयाम-वर्णन के रूप में कर दिया गया है।
कथा के आधार के अनुकूल कवि ने स्वकृत गद्य-साहित्य का योग भी बीच-
बीच में किया है, यद्यपि शैली की छाया वहाँ भी प्राप्त है।^१ इस रूप में
निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं :—

‘ततो यामविराम-बोधिका बृहत्-मल्लरिकां मृदा निज-निज-परिचर्या-
पसाधन-सामग्रो-सनाथ-पाणिना परिचारिका-वर्गेण सखी-समूहेन शानुगम्यमानया
आनययोपशोभित-वामभाग आभ्यन्तरोय-प्रथमकक्षाम्भुतरं प्राप्य सखी-हस्त-
गृहीत चञ्चल-चामर व्यजनैर्मरत-लक्ष्मण-रात्रुज्जः प्रिय-मग्न-सुखैश्च प्रणम्यमानो
रघुनन्दनस्सादरं तान् सादर्य जानकीं विमृग्य बहिरपससार ।’

‘तत इतस्ततः प्रधावतां जनानां सङ्घपरिविलोकन-कुपित-तुरङ्ग-हेपनापघर्ष-
रमपरण-जेमीनां सञ्चरनायमान-किङ्किणीनां घणघषायमान-घण्टानां सरभस-
महामात्र-परावतिट-गजेन्द्र-बृंहितानां स्वर्णमय-भ्याघ्रमुख-दण्डहस्तानां जयजीवा-
बलोदयेत्यभिदधानानां प्रसीदाराणां सरभसं प्रणमतां स्वनायमानाभरणानां च
निनाद ऐकीभूय ब्रह्माण्ड-माण्डोदरमभिपूरयन्तःपृष्ठतो ध्वनिराविरासीत् ।’

(३) मङ्गीत-रघुनन्दन का पद्य-काव्य—

प्रस्तुत काव्य के अन्तिम सोलहवें सर्ग का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

‘एषा माधुर्य-धारा धरणिउल-गता विश्वनाद-प्रधारा ।’

भास्वरसन्तान-धारा परिदृष्ट-विशद-व्यान-सन्धान-धारा ।

पापीषोऽम्भधारा भव-बलधि-समुत्सारणे मोहधारा

भृङ्गारैश्च-प्रधारा जयति पर-गुण-साहस-स्वान्तकारा ॥’

इसकी स्वकृत टीका में विश्वनाथसिंह ने लिखा है कि—‘इदोऽन्येषु
ग्रन्थेषु माधुर्यरसः नास्ति ।’ अर्थात् सं० १८९२ से पूर्व विश्वनाथसिंह ने जो
ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें उन्हीं के मत से माधुर्यरस इस मात्रा में नहीं आ पाया है।
उनकी यह सक्ति उनके परवर्ती ग्रन्थों के लिये भी सत्य हुई है। अर्थात्
रामचन्द्राह्निक आदि ग्रन्थों में भी यद्यपि प्रचुर मात्रा में माधुर्य की सृष्टि की

१. रामवन की प्रति : पृ० १३ तथा पृ० १५ । तुलना के लिये देखिये—
कादम्बरी—पूर्वभाग में शत्रुक और चन्द्रापीड के प्रसङ्ग ।

गई है, तथापि शृङ्गार-रस और माधुर्य-भक्ति से पूर्ण भावाङ्कुर के क्षेत्र में सङ्गीत-रघुनन्दन विश्वनाथसिंह के ग्रन्थों में अद्वितीय रह गया है। गीत-गोविन्द की शैली में रचित रघुराजसिंह के स्तुति-काव्यों में यद्यपि माधुर्य-भाव और शृङ्गार-रस के आकर्षक उन्मेष उपलब्ध हैं, सङ्गीत-रघुनन्दन का स्तर उससे अधिक उच्च, तीव्र, गम्भीर एवं प्रभावी है। पद्यों में प्रयुक्त भाषा बलङ्कृत और समास-युक्त होते हुए भी सरल, बोधगम्य, प्रवाहपूर्ण एवं ललित है। इसे हम शृङ्गार-रस के अनुकूल वैदर्भी रीति, कोमला वृत्ति एवं प्रसाद गुण से पूर्ण पाते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, सम्पूर्ण काव्य में गीतगोविन्द की शैली और यत्र-तत्र पदावली की भी अनुकृति है। यह होते हुए भी अपनी कथा के अनुकूल कवि ने मौलिकता और नवीनता लाने का पर्याप्त प्रयास किया है और बहुत अंशों में वह सफल हुआ है। काव्य में प्राप्त भीतों के वृत्त और उनकी रचना शैली भी गीतगोविन्द का सर्वथा अनुसरण करती है। कवि का स्वतन्त्र भावातिरेक लगभग समस्त काव्य में प्राप्त होवे से यह ग्रन्थ सम्पूर्णतः सफल गीति-काव्य है।

प्रारम्भ में २४ अवतारों की वन्दना के पश्चात् दशवतार-वन्दना निम्न-लिखित रूप में तुलनात्मक दृष्टि से द्रष्टव्य है—

‘नृप-बोधद-वेद-सिति-मालनकारी,
प्रलय-पयोधि-सलिल-सञ्चारी,
श्रीरघुवर मोन-सुरूप, जय जगदीशपते ।
जलधि-मयन-बहु-खिन्न-सुरासुर-नाश,
जल-सल-यात-मन्य-नग-धाता,
श्रीरघुवर कमठ-सुरूप, जय जगदीशपते ॥’^१

‘प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदम्,
विहित-वह्नि-वरित्रमखेदम्,
केशवधृत-मोन-शरीर, जय जगदीश हरे ।
सितिरति-विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे,
धरणि-धरण-किण चक्र-गरिष्ठे,
केशव-धृत-कच्छप-रूप, जय जगदीश हरे ॥’^२

१. सङ्गीत-सर्ग १ : सरस्वती-कोप-मण्डार रोवा की प्रति-१५४।१३।२ : पृ० ६ ।

२. गीतगोविन्द : निर्णयसागर : बम्बई : १९२९ : पृ० १०-११ : सर्ग १।१।२ ।

‘मीनासादयते सनूर्दलयते दीर्यान् सतो रक्षते,
धर्मापावरते स्मृती रक्षयतेऽयमं निराकुर्वते ।
भक्तान् भावयते यतो जनयते क्षाणाम् धनुर्विधते
सायेत-प्रमदावने विहरते रामाय तुभ्यं नमः ॥’^१
‘वेदानुद्धरते जगन्निबहते भूगोलमुद्विधते,
दीर्यान् दारयते बलि छलयते क्षात्र-क्षयं कुर्वते ।
पीलस्यं जयते हलं कलयते कादम्बमातन्वते,

भ्लेष्ठान् मूर्च्छयते दद्याकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥’^२
‘ललितालीनण-मण्डित रस-पण्डित हे ।
क्षयल-चन्दुल-मणिमाल जय जय राम हरे ॥
दितिनुर-मण्डल-मण्डन सल-सण्डन हे ।
समुदण्ड-कोदण्ड जय जय राम हरे ॥
हत-दूषण-सर-दूषण भवभूषण हे ।
दशमुख-गज भूगराज जय जय राम हरे ॥
विश्वनाथ , जनरक्षण शुभलक्षण हे ।
सम-त्रिमयागम-गीत जय जय राम हरे ॥’^३

इसी प्रकार विश्वनाथसिंह ने अनेक पद प्रस्तुत कर गीतात्मक लयबद्धता के साथ उत्साहसमय गीति प्रदर्शित करने का प्रयास किया है । यद्यपि गीतगोविन्द के पदों के साथ तुलना करने से विश्वनाथसिंह के पदों में बहु लालित्य, सुयोजित पद-योजना और श्रुति-आधुन्य नहीं आ सका है, यह एक ही दृष्टि में कहा जा सकता है, तथापि जयदेव की अजेय मानने के पश्चात् विश्वनाथसिंह का १९वीं शती के पूर्वार्द्ध का यह प्रयास निराशाजनक नहीं है । उदाहरण के लिये कुछ मधुरतर पद नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

‘सुखदसमीरे सरयू-सीरे बिलसित-ललित-तिलपनम् ।
काञ्चन-शालं मणिमयजालं मन्वे भदनमुदयनम् ॥
चन्दन-चचित-कुसुम-समचित-महो-परम-रमणीयम् ।
चन्द्र-सुषुम्बित-चन्द्रकान्त-चय-चलित-सलिल-कमनोयम् ॥’^४

१. सङ्गीत० सर्ग १ पृ० १२ ।
२. गीत० सर्ग १।१।१२ ।
३. सङ्गीत० सर्ग १ पृ० १२ । तुलना के लिये देखिये गीतगोविन्द : सर्ग १।२ : ‘श्रित-कमला-कुच-मण्डल-धृतकुण्डल ए... ।’
४. सङ्गीत० : सर्ग २। १ : पाण्डुलिपि १५४ । १३ । २ : पृ० १४ : देखिये गीत० सर्ग ५ । ११ : ‘धीरसमीरे समुनासीरे... ।’

‘विहरति रघुपतिरिह श्वेतुराजे ।

दिशन्त्यकुसुम-समाकुल-तरुकुल-कोकिल-कोर - समाजे ॥

विलसित मञ्जुन वञ्जुल-गुञ्ज-निबुञ्ज-महोज्ज्वल-भासे ।

विकसित-सारस-सङ्कुल-स्रगकुल - सरसी - सरसोल्लासे ॥

तरुल-तरङ्ग-तरुण-लज्जितातति-लीला - सुषद - समोरे ।

तद-परिरम्भण-वलित-लतावल्लि-वन - विकलीकृत - घोरे ॥

पवन - बिसारि - पराग - पटल-पट - घटितानेक-विताने ।

मनसिञ्ज - मत्त - युवति - जन-सङ्गत-युवजन-मोदनिधाने ॥’^१

सङ्गीत-रघुनन्दन के ग्यारहवें सर्ग में सम्मोष-भृंगार का सम्पूर्ण चित्रण करते हुए कवि ने जानकी और रघुनन्दन का संयुक्त गान और नृत्य प्रदर्शित किया है । रास-नृत्य का यह सजीव वर्णन अनुशासों की छटा से युक्त एवं गीत-वाद्य के अनुकूल लयबद्ध है । नृत्य के साथ सहज विलासमयी चेष्टाएँ भी मुखरित हो उठी हैं —

‘मिलितैतरेतर-स्वरगानं - घृतेउरेतर-कण्ठम् ।

नृत्यति नेतयते न विमुञ्चति जनकदुहितुवरकण्ठम् ॥

नीरात्रयति मुकुट-रुचि-रात्रिमिरासामानन-चन्द्रम् ।

कर-चञ्चनेन चालयति चेतः पश्यतेन कं मन्दम् ॥

भ्रमद्-नृकुटि-दर-चल-लोचनेन कुरुते गातनिश्चितम् ।

कान्ता-कान्त-कटाक्षाकलने कलयति कामपि युवितम् ॥

काचिद् वाच-मिलम्भनि-नूपुर-मान-दान-कलगानैः ।

अतिप्रसन्नं कुरुते रमणं कोट-कला-रस-पानैः ॥

काचि मेघ-रमणीय-रागतो वर्षात्वं दर्शयते ।

नायक-नयन-नवीन-घनेन च सुखनोरं वर्षयते ॥

दाराः केदारा-कल-गानैः कुर्वन्त्यम्बरममलम् ।

विश्वनाथ इति वदति विकसितं नवनामक-हृत्कमलम् ॥’^२

उपयुक्त पद्यों में विशेषतः अनुप्रास-प्रवण कोमल पदावली तथा अन्य अलङ्कार भी हैं । अनुशासों का और एक सुरम्य सदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

१. सङ्गीत० : सर्ग ३ । वसन्तरास० : देखिये गीत० सर्ग १।३
‘विहरति हरिरिह० ।’

२. पाण्डु० १५।१।३।२: पृ० ४६-४७ ।

‘कीर-केकि-कोविल-कोलाहल-श्रुतकुल-ललित-विलासे ।
 कुरवक - बकुल - केतकी - कंरव-कुन्द-कदम्ब-विकारी ।
 विलसति विपुल-पुलक-विधुवदना-वल्गु-विनोद-विचित्रे ।
 चकित-चकीर-चक्षुरिह चन्द्रं चुम्बति चाहचरिते ॥’^१

प्रत्याम्भ करते हुए सीता की स्तुति में रूपक का प्रयोग अनोरम है—

‘राम-प्रेम-ययोधि-यद्वन-विधुः शृङ्गार-मारास्पर्श,
 संसारानंघ्र - दास - तारण - तरिमाया-तमो-दीपिका ।
 विदुद्-भ्याः मुलदम्बु-वर्षणकरी कादम्बिनो काव्यसौ,
 मधुप्लवङ्ग-निवासिनी विजयतां यो जानकी सर्वदा ॥’

कवि ने इस प्रसंग में भी यश-तन हिन्दी की शैली के छन्दों के प्रयोग किये हैं । एक दोहा देखिये—

‘शिव हरि-चरित-सरोवर-मन्दार-कमल-रस-भृङ्ग ।
 तारणं तव चरणं भजे, ध्यानाधित-गिरि-भृङ्ग ॥’^२

मृत्यु-बोधक तालों और स्वर-संज्ञकों से युक्त पदावली श्री पद्यबद्ध की गई है । यह चरित्र की उद्गीतशता का परिचय देती है । उदाहरणार्थ—

‘रा-स-नि-नि-घ-घ-ग-म-घ-घ-मि-सा-सा ।
 ग-ग-रि-स-स-नि-ध-म-नी-घ-य-मा-गा ॥’^३

व्यङ्ग्यार्थ-वन्दिका नाम से महाराज ने स्वयं सङ्गोष्-रघुनन्दन की टीका लिखी है । इस टीका में भावों के स्पष्टीकरण के साथ साथ भाषिका-भेद, रस, अलङ्कार एवं ध्वनि आदि काव्याङ्ग भी प्रदर्शित किये गये हैं । टीका की शैली उच्च स्तर की है ।^४ एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

मूल—‘रमणं रास-रतं पश्यन्ती ।
 पति-प्रेम दर्शयितुं सीता गाने सखी-गणं नमयन्ती ।’
 तथा—‘मम तनु-विजित-मूढ-मग्गध इह
 मृगयति निशित-शरीरस्नेहम् ।
 ‘अति - भक्तिमन्दो दिवस-दीप-ध्व
 हिम-किरणोऽङ्गि दहति मम देहम् ।’

टीका—रमणमिति । रमणं श्रीरघुनन्दनं रासरत्नं, रासासक्तं पश्यन्ती परपुः
 प्रेम स्वस्मिन् दर्शयितुं गाने सखीगणं नमयन्ती नम्रं विदधती सती ।

१. सीता की द्वितीय प्रति: सर्ग २।३ : गृह-रास : पृ० १६ ।

२. वही, सर्ग १।६ : वन्दना : पृ० ५ ।

३. वही सर्ग ३।१ : वसन्त-रास : पृ० १७ ।

४. सीता की प्रति (१३४।१३।३) : सर्ग ३।३ : पृ० १८-१९ ।

ममेति । मम तन्वा शरीरेण विजितः स चाक्षी मूढो मुखो मग्मपः कामो मम देहं निशितैस्तोदणैः धारयन् स्नेहः प्रीतिर्यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यादेवं मुन्यति पौड्यति । हे प्रिये ! यः पूर्वं त्वया सहितस्य मम शरीर-शोभाधिक्येन परास्तः स एव काम इदानीं त्वद्वियोगेन मम शरीर-शोभा-हान्या जिगीषतीति भावः । अत्र मूढ-पदेन दुःखिते प्रहारी वीराणामनुचित इति व्यज्यते । तेन च तस्य निर्बलत्वम् ।

अति मतिमन्दो हिमकिरणश्चन्द्रोऽपि दिवस-दीप इव सूर्य इव मम देहं, इह कामस्तु स्व-कान्ति-ह्लासकत्वेनापराधिनं मां पीडयतु नाम, अयं तु निज-स्वभावं त्यक्त्वा निरपराधं पीडयतीत्यतोऽतिमतिमन्द इति भावः ।

टीका के आरम्भ में पुणक् मङ्गलाचरण है और उसमें प्राप्त स्तुतिर्मां भी भावार्थक एवं काव्यमय है—

‘वन्दे तत्तदकमलं यस्य मरन्दः पुनाति जगदक्षिलम् ।

उलं परामलेशश्चेतनतां शीघ्रमानयति ॥

राजेन्द्र-नन्दन विलोचन-चञ्चरीक-

संसेष्यमान-वदनाम्बुहं सखीभिः ।

स्वीय-प्रभा-जित-रमा-हचिभिः परीतां

राजेश्वरी हृदि भजे निमिराजपुत्रीम् ॥’

(ई) रामचन्द्राह्निक का पद्य-काव्य :

रामचन्द्राह्निक के पद्य-गीतों में विश्वनाथसिंह अधिक है तथा इस ग्रन्थ की कथा की आत्मा मूलतः गीतगीतविन्द से भिन्न है । इस आधार पर यद्यपि वृत्तों के प्रयोग और लयबद्धता में प्रचुर संख्या में गीतगीतविन्द की शैली पर छन्दों

१. टीका (पृ० ८) में यह उल्लेख भी है कि विश्वनाथसिंह को शिव ने स्वप्न में पङ्कजरमन्त्र का उपदेश किया और पीछे प्रियादास ने वही मन्त्र दिया—‘स्वप्ने च (शिवः) एव मन्त्रं महामपि दत्तवान् पश्चान्मया श्रीहरिगुरु प्रियादासमुत्पाञ्चुतः ।’

इसका उल्लेख संवत् १८९७ (१८५१ ई०) में लिखित अपने ग्रन्थ राधावल्लभीयमतप्रवर्तक ब्रह्मसूत्र-भाष्य में भी मङ्गलाचरण (श्लोक ६) में विश्वनाथसिंह ने किया है—

‘योऽबोधयन्मां निरिजदन्देहः स्वप्ने पृच्छं निजि राममन्त्रम् ।’

ऐसा ही उल्लेख रामचन्द्राह्निक की टीका में भी है—

‘मम आदिगुरुवै स्वप्ने दत्तप्रथमोपदेशाय...’

(प्रथमपाम, श्लोक ५ की टीका) ।

की रचना की गई है, वे अमरसतस्य की दृष्टि से गीतगोविन्द से दृढ है।
पदों के साथ साथ निर्देशात्मक गद्य भी गीतों के बीच-बीच में समाविष्ट है।
नायक-नायिका-भेद की खोज भी कवि का ध्यान पर्याप्त रूप से गया है।
उदाहरणार्थ पद्य याम से होली-वर्णन का कुछ अंश देखिये—

‘ततः श्रीजानकी तद्वृत्तमवगत्य सखीमण्डलमण्डिता तत्राजगाम । तत्र
जानकीदर्शन-वदितोत्साहाः सख्यो जानकी च तत्प्रहारं तृणीकृत्य रघुनन्दनं
सहजासखीं चारणचूर्णेन समावृण्वन्ति स्म ।

‘गद्गद-निनदो निगदति विधुरिति वीर्य कुरङ्ग-स्पर्शनम् ।
निरवकाशतामृच्छति सम्प्र-सरणचूर्ण-परिपूर्णं गगनम् ॥
श्रुत्वा रोहिष्यस्य तद्विषयबोद्धरमावृत्तमपि परस्य सुहृत्तम् ।
विश्वनाथ-होलिका-चमत्कृति-चचित्तचक्षुरासीगम-लसितम् ॥

ततो रङ्गलंघन-मग्न-प्रसिष्यमाण-रङ्ग-सलिल-धाराभिः प्रघातैश्चणचूर्ण-
पटलाग्निकारे सहजा-जानकी-सखीधारे इन्द्र-गुह्यं प्रावर्तत—

सहजा सा तु येन जानोते ते चिह्नेन रहस्यम् ।
कामीकर-मन्त्रैरित-चन्दन-चर्चनया कुरुते तददृश्यम् ॥
करकम्पेन च कक्षधारया सततं सिञ्चति बाला-वारम् ।
विश्वनाथ यद् भवति सुखं ते शीतेच्छति तद् वारंवारम् ॥

...सहजा मध्यात्यमारोप्य परिवृत्ति...

यत्वं कमले रचयसि वचनम् ।
तेन विज्ञाने मनोप्रमिलयितं प्रियेण होला-खेलारचनम् ॥
मृगमद-चन्दन-पूर्ण-चूर्णमाकाशं कृत्वा तमः करिष्ये ।
विश्वनाथ-सहितां कृत्वा त्वां स्वाम्ने मुदं भरिष्ये ॥^१

रामचन्द्राह्निक में पदों का रूप अधिक व्यापक है। इसमें महाकाव्य-शैली
का काव्य भी प्राप्त होता है। निम्नलिखित श्लोक की रचना प्रौढ़ है—

‘विचित्र-चित्रावलिभिविराजिते
गूढ़े प्रसुप्तं सुरवेद्यमालसम् ।
अहर्मुखे बोधकरा रघुदहं
विबोधयामासुहृदार-भाविताः ॥’^२

ग्रन्थ के अन्त में पाण्डित्य-पूर्ण शैली का आश्रय लेकर कवि ने एकादश
श्लोक में मञ्जुल शस्तुत किया है—

१. इस होली-वर्णन के अधिक विस्तार के लिये देखिये सं० का० दे० पृ०

२१८-१९।

२. रामवन की प्रति : मूल-श्लोक १ पृ० ४ (प्रथम याम) ।

‘रेरेररररारर-रारारोरिरररेररम् ।

राररेरररेरोरर-राराराररररररः ॥’

श्रीच श्रीच में कवि ने हिन्दी काव्य-शैली के छन्दों के प्रयोग किये हैं ।
दीररस के प्रयोग के लिये प्रसिद्ध ‘अमृतध्वनि’ का एक उदाहरण यहाँ देखिये—

‘कर-करवाल - विराजितोपदसरय - रण-दश-
स्वर्णपुङ्ख - भूपित - छितपल- क्षुभित-विपल-
पल - क्षुभित - विपल-सितिभूदलक्ष्य-सितितल-
नन्दन-दिन-धमनन्दन - दितिजममन्द-द्युतिबल-
विद्याभयन-समृद्ध्यभ्यवसिति-सिद्ध्यद्-धृतिधर-
मृद्ध्यद्-धुतमुत्र-पुण्यद्वारणि मदान्धोदधुत-कर ॥’

७ भगण और २ गुरु से युक्त एक सर्वथा उद्धृत किया जाता है—

‘दक्षिणपाणि-कृपाणधरं कविका-गुणमग्नकरेणदधानम् ,
गोल-कपोल-विलोल-ससन्मणि-कुण्डल-कुन्तल-कान्ति-निधानम् ।
चञ्चल-मौक्तिक-मञ्जरिकायुत-मञ्जु-किरीट-मयूख-वितानम् ,
राजकुमारमभुं नुलसारमवेक्ष्य न को रह्येतनु-भानम् ॥’

हिन्दी शैली के अन्य छन्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

बरबे—‘इयं कथा पितृ-गेह-स्मृतिं ददाति ।

कौशल्ये ! मम नयने जलमायाति ॥’

दोहा—‘विरह-दशामवलोक्य मे सजले इमे सुकेशि ।

तव नयने विदितं मया नियतमसञ्जन-केशि ॥’

शोषार्ह—‘तदा चित्र-भवने वर-वेपा ।

मल्लोचनातिविस्तनुरेपा ॥

सोऽग्री सेयं न हि सप्रेमा ।

गच्छ वद प्रियमहमप्रेमा ॥’

रामचन्द्राङ्गिक की टीका में गद्य-सूत्रों की विवृति मात्र है किन्तु
पद्यों की व्याख्याएँ अत्यन्त विरल हैं, मूल में श्लोक, उपजति, नाराच,
चोटक, भुजङ्गप्रयात, चम्पकमाला, चहुधारी, प्रियंवदा, सप्तधरा, पुष्पो, शाहूँल-
विक्रीडित, रघोदत्ता, प्रमितालारा, छप्पय, अमृतध्वनि आदि छन्द हैं । अल-
द्वारों में उपमा, इत्थे, रूपक, दिमावना, उत्प्रेक्षा, अर्थापत्ति, व्यत्युपक्ति,

१. वही, द्वितीय याम ।

२. वही, द्वितीय याम : पृ० १५ ।

३. रामवन की प्रति : तृतीय याम : पृ० २२-२३ ।

समाशोक्ति, अपहृति, विरोध, दोषक, स्वभावोक्ति, सहोक्ति, अनुशाठ आदि हैं। इन सबका प्रदर्शन टीका में संक्षिप्त लक्षणसहित किया गया है।

टीकाकार ने अन्य भक्त कवियों की भांति ही ७ गीण रस, मद्भूत, रोद्र, वीर, भयानक, हास्य, बीभत्स और करुण माने हैं तथा शृङ्गार और शान्त का भक्ति-रस में अन्तर्भाव कर भक्ति के ५ मुख्य रस बतलाए हैं— शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। टीका में काव्य-शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है। जिनमें मम्मट का काव्यप्रकाश मुख्य है। वाणी-वन्दना करते हुए मम्मट की छाया में ही काव्य के प्रयोजनों का सङ्केत है—

‘प्रमदा-तुल्यतथोपदेशन-युजे विज्ञाय सत्कीर्तये
 क्षुब्धमिन्नस्य च विच्छिदे व्यवहृति-ज्ञानस्य सम्पत्तये ।
 भटिति धोतु-मुखाय यद्भवति तत् काव्यं जडोऽपि प्रभू
 रक्षितुं यत्कृपया सरोजवदना बन्दे गिरं तामहम् ॥’^१

उदाहरणार्थ एक श्लोक की टीका प्रस्तुत की जाती है। इसमें दास्य-शक्ति का प्रदर्शन है—

मूल—‘अपीह तिष्ठन्नधुना भविष्यद-
 वेत्य त्वामित्युपवर्तती पुनः सा ।
 कस्मैचिदेपा मुकुटं प्रदर्या-
 वदन् च संजीवय भग्नमेनम् ॥’

टीका—‘लणाद्धमपि विरहमसहमानां जानकीं मन्थमाना सखी पुनराह, अपी-
 हेति । अधुना वसन्त-समयेऽपि इह कुसुमिह-वने तिष्ठन् भविष्यत् भावि जानकी-
 वसनावस्थारूपं वेत्य जानासि । अत्र वसन्तकालस्य वैशिष्ट्यं व्यङ्ग्यम् ।
 अत्राधुनापदेन वसन्तकालस्य अतिशय-कामोद्दीपक-कुसुम-सम्पत्तिमत्त्व-रूप-वैलक्ष-
 ण्यात् कुसुम-सम्पत्तिमन्त्रलोच्य मां विना जानकी न जीविष्यतीति विज्ञानतस्तवेतत्
 कथनं नोचितमिति व्यङ्ग्यते । प्रकाशे यथा-गुरुः ॥’

१. रामवन की प्रति : पृ० २ टीका-श्लोक ४ : तुलना ■ लिये देखिये,

काव्य प्रकाश : १।२ :

‘काव्यं यशसेर्जकृते व्यवहारविदे सिवेतरस्तथे ।

सद्यः परनिवृतये वान्तासम्मिततथोपदेशयुजे ॥’

२. वही, तृतीय यामः पृ० २४ ।

३. काव्यप्रकाश (मम्मट-कृत) : ज्ञानमण्डल वाराणसी : १९६० :
 पृ० ८८ : उल्लास ३।२१ : काल के वैशिष्ट्य में व्यङ्ग्यकथा—

एषा दूती कस्मैचित् सख्ये भग्नं मुकुरं प्रदर्श्य एनं भग्नं संयोजयेत्यवदत् ।
एवं भवतः प्रीत्यो नृदितायां न कश्चित् सङ्घटयितुं सक्नोतीति तच्चेष्टया व्यज्यते ।
प्रकारो यथा—‘द्वारोपान्त—निरन्तरे ।’^१

४. दोनों काव्यों में प्राप्त राम का स्वरूप :

सङ्गीत-रघुनन्दन और रामचन्द्राङ्गिक दोनों काव्यों में विश्वनाथसिंह ने राम का जो स्वरूप रखा है, उसे हम दो दृष्टियों से परख सकते हैं—(१) कलात्मक रूप और (२) उपास्य रूप ।

(क) कलात्मक रूप—कला की दृष्टि से, जैसा कहा जा चुका है, दोनों काव्यों में गीति की प्रधानता है, राम और सीता दोनों ही मुख्य पात्र हैं और दोनों में राम के वैयक्तिक पक्ष की साधना है । राम का शृङ्गारी मानव रूप ही दोनों में प्रधान है ।

राम एक धीरललित नायक हैं ।^२ सङ्गीत-रघुनन्दन में उनकी अभिविक्त सम्राट् की अवस्था का चित्र है और रामचन्द्राङ्गिक में विवाहोत्तर राजकुमार-जीवन का । दोनों ही अवस्थाओं में वे उत्कृष्टतम वैभव के उपभोक्ता हैं । सर्वथा निश्चिन्त, कलाप्रिय और सुखी रूप में वे रह रहे हैं । उनका अनुपम लावण्य और मधुर रसमय व्यवहार अतिमात्र आकर्षक है । इस स्थिति में वे निरय आनन्द, रास-सङ्गीत और बिहार में घग्न हैं ।

इस पृष्ठभूमि के साथ दोनों काव्यों में शृङ्गार रस^३ की साधना की गई

‘गुरुमणपरवस पित्र किं भगामि तुह मंदभाङ्गी अहकम् ।

अत्र प्रवासं व्रजसि व्रजं सगं जेव्व सुगतिं करणिज्जम् ॥’

संस्कृत—‘गुरुजन-परवस प्रिय किं

भगामि तव मन्दभागिनी अहम् ।

अत्र प्रवासं व्रजसि व्रजं

स्वयमेव धोष्यसि करणीयम् ॥’

अत्राय मधुसमये यदि व्रजसि तदाहं तावत् न भगामि तव तु न जानामि गतिमिति व्यज्यते ।’

१. काव्यप्रकाश (भट्टमट्ट कृत) : ज्ञानमण्डल वाराणसी : १९६० :

पृ० ८८ : उल्लास ३।२२ : ‘द्वारोपान्त०’ । तथा वृत्ति : चेष्टा के वैशिष्ट्य में व्यञ्जकता ।

२. दशरूपकः २।४ : ‘निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।’

३. वही, ४।४७-५८ :

‘राम देस कला-काल-वैष-भोगादि-भेदनः ।

है। इसके संयोग पदा के लिये सङ्गीत-रघुनन्दन में बनेकण्ठः रास-नृत्य और रामचन्द्राह्निक में होला-खेलन की व्यवस्था की गई है। दोनों ही काव्यों में मान^१ और प्रवास^२ से जनित विप्रयोग-शृङ्गार भी है, किन्तु त्वरित मिलन की व्यवस्था की जाती है, अतः संयोग-शृङ्गार को साधना ही कवि का मुख्य लक्ष्य है। ध्योग या पूर्वानुराग की स्थिति पहले ही सम्पूर्ण हो चुकी है क्योंकि विशाहोत्तर जीवन का चित्रण है।

(ख) उपास्य रूप—उपर्युक्त दोनों काव्यों में विश्वनाथसिंह द्वारा स्वीकृत उपास्य रूप है और बही प्रमुख रूप है। वास्तव में कवि का मूल लक्ष्य काव्य-सर्जना नहीं, किन्तु काव्य के माध्यम से अपने उपास्य श्रीराम को प्रसन्न करना है। कवि मुक्तः भक्त है और वह अपने समस्त शृङ्गार-रसात्मक युगल मूर्ति (सीता-राम) का ध्यान रखता है। वह दोनों काव्यों के आरम्भ में पहले भक्त पर कृपा करने वाली सीता की बन्दना करता है।

कीर्ति, भू और श्री सीता के ही अभ्य नाम हैं, ह्लादिनी आदि शक्ति भी उनके चरणों की सेवा करती हैं, वे मामा की स्वामिनी हैं, वे रासमण्डल की शासिका हैं—

‘कीर्त्याः कीर्तिरथो भुवोऽपि च तथा भूः श्रीः धियमचोत्तमा
ह्लादिन्यादि सुखवित्त-सेवित-पदा मायादिक-स्वामिनी ।
सर्वेषामपि कामदो रघुपतिस्तस्यापि या कामदा,
सा सीता नमता मदोद-मणिति रासेश्वरो वाहताम् ॥’^३

प्रमोदात्मा रतिः सैव मूनोरन्योन्य-रक्तयोः ॥

प्रहृष्यमाणः शृङ्गारी मधुराङ्ग-विचेहितः ॥’

१. बही, ४।५९ : ‘स्त्रीणामीर्ष्याकृतो मानः ।’ ईर्ष्यामान के प्रयोग ही अधिक हैं, कहीं कहीं प्रणयमान भी हैं।

२. बही, ४।६४ :

‘कार्यतः सम्प्रमाच्छापात् प्रवासो विन्न-देवता ।’

रामचन्द्राह्निक में मृगया के कारण तृतीय याम में, कार्यतः प्रवास होता है।

३. सङ्गीत-रघुनन्दन : सर्ग १।२ : मङ्गलाचरण । तुलना के लिये देसिपे-विश्वनाथसिंह का राधा-वल्लभोद-मत-प्रकाशक ग्रहसूत्र-भाष्य (स० को० भा०) : मङ्गलाचरण का आरम्भ—

नित्यानुराग-सिन्धूत्य-रस-चन्द्र-स्फुरत्तमाम् ।

श्रीमूर्त्तीलादिभिः स्तुत्यां स्तौमि श्रीराम-वल्लभाम् ॥’

गीतगोविन्द में जैसे श्रीकृष्ण को दश और चौबीस अवतार ग्रहण करते हुए बतलाया गया है और श्रीकृष्ण को ही पूर्ण-ब्रह्मत्व प्रदान कर उनके नित्य बिहार का ध्यान किया गया है,^१ उसी प्रकार सङ्गीत-रघुनन्दन में सभी अवतार श्रीराम के बतलाए गए हैं और उन्हें नित्य बिहारी, रसिक-शिरोमणि माना गया है।^२

युगल-उपासना की यह प्रवृत्ति कृष्ण-भक्ति के रूप में विकसित हुई। युगल-उपासना पर अष्टयाम और आह्निक नाम से अनेक ग्रन्थ लिखे गए। इनमें हिन्दो ब्रजभाषा में नामादास का रामाष्टयाम अत्यन्त प्रभावोद्भा। इनके अनुसार अवध अखण्ड बिहार-भूमि है, जहाँ नित्य युगल रूप श्रीराम समस्त अवतारों से घेरित होते हुए लीला-मग्न रहते हैं। वे समस्त गुणों के विश्राम-स्थल, द्वादश रसों एवं अनेक प्रकार की लीलाओं से युक्त हैं। माधुर्य से पूर्ण उनके बिहार में संयोग-वियोग, युगल-सन्धि, माधुर्य-रति तथा नित्य सुख-भोग हैं।^३

श्री राम की इस युगल-उपासना में सखी-भाव का भी सङ्गम हो गया। कुछ सखियाँ राम की और कुछ सीता की हैं। ये युगल-सन्धि में सहायक होती हैं। वास्तव में समस्त सखियाँ सीता की ही प्रतिकृतियाँ हैं। इस कल्पना में विश्वनाथसिंह ने राधावल्लभ-मत का समावेश करते हुए यह माना है कि भक्त की अन्तिम मुक्ति है पछ शरीर—सखीरूप की प्राप्ति। तदनन्तर वह रासमण्डल में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार भक्त ही सखीरूप में परिकल्पित है।^४

विश्वनाथसिंह शृङ्गारी रामभक्ति के प्रमुख स्तम्भ माने गए हैं। उन्होंने रसिकभाव की साधना प्रियादास से सीखी थी, इन पर अयोध्या के महाराम रामचरणदास का अधिक प्रभाव था।^५

यह मानना अनुपयुक्त होगा कि श्रीराम-ज्ञानकी के युगल रूप की उपासना अपवा श्रीराम के पूर्ण ब्रह्मत्व की कल्पना निरन्तर परवर्ती रूप है। वास्तव में यह परम्परात्मक और क्रमिक विकास है। विश्वनाथसिंह ने अपने दर्शन-ग्रन्थों में सैकड़ों ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत कर श्रीराम का परत्व प्रतिपादित किया है।^६

१. सर्ग १। २. सर्ग १।

३. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद : (डा० कविलदेव पाण्डेय) चौखम्बा। वाराणसी : १९६९ : पृ० ५१३।

४. हिन्दो साहित्य-कोश : (भाग १) : सं० २०१५ : पृ० ६४०-४१।

५. वही भाग २ : सं० २०२० : पृ० ५४५।

६. देखिये सर्वसिद्धान्त तथा राधावल्लभोपनिषद्, आदि—

‘अन्ये चांश-कलाः पुंसः रामस्तु भगवान् स्वयम्।’

नाटक

आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम्

(क) परिचयात्मक विवरण :

१. पाण्डुलिपियाँ

बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्यों में केवल एक ही नाटक उपलब्ध है, जो उन्नीसवीं शती के मध्य में विश्वनाथसिंह द्वारा लिखा गया। इसका नाम आनन्द-रघुनन्दन है। संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में तथा विद्वानों के निबन्धों में कहीं भी इसकी चर्चा नहीं मिलती। खोज-विवरणों में भी इस ग्रन्थ के उल्लेख प्राप्त नहीं हैं। अभी तक की जानकारी के आधार पर इस ग्रन्थ की उपलब्धि केवल सरस्वती-कोष-भाण्डार रीवा में है। यहाँ प्राप्त तीन प्रतियों का विवरण इस प्रकार है—

(१) प्रथम-प्रति—वस्ता १९१८ : सम्पूर्ण, कुल पन्ना १२९।

प्रथम अङ्क में ३४ पन्ना हैं। प्रतीत होता है कि प्रारम्भ के १९ पन्ना लुप्त हो गए थे। पीछे कभी लिख कर जोड़े गये हैं। इनकी लिपि आधुनिक है। खेद इस बात का है कि इस लिपि में ओर भी अधिक अशुद्धियाँ हैं। २० वें पन्ना से अन्त तक प्राचीन लिपि है। प्रथम अङ्क के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्रीमदानन्द-रघुनन्दन-नाम्नि’ नाटके प्रथमोऽङ्कः ।’

पाँचवें अङ्क तक इसी प्रकार की पुष्पिकाएँ हैं। छठे अङ्क में निम्नलिखित रूप है—

‘इति श्रीमन्निखिल-रामायण-नाटक-प्रधाने श्रीमदानन्द-रघुनन्दनाभिधाने दण्डवदन-निधनं नाम षष्ठोऽङ्कः ।’ अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

‘सम्पूर्णः समाप्तः (सप्तमः) काण्डः ॥’

सिद्धि श्रीमहाराजाविराज श्रीमहाराजा-श्रीराजावहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृतापानाधिकारि-विश्वनाथसिंह-जुरेव-वृत्तमानन्द-रघुनन्दननाम-नाटकं सम्पूर्णम् । शुभं भूयात् ॥’

१. देखिये परिशिष्ट २ : तृतीय प्रति में—‘नाम’ ।

२. तृतीय प्रति में—‘निमित्त’ ।

द्वितीय-तृतीय और चतुर्थ अङ्क के पत्रा सम्मिलित है। यहाँ से पृष्ठ-गणना पुनः १ से प्रारम्भ हो गई है और अन्त (पत्रा ९२) तक चलती है। इस खण्ड में ३६ पत्रा है। पञ्चम अङ्क में १०, षष्ठ में ३३ और सप्तम में १३ पत्रा है। कुल १२६ पत्रा है।

(२) द्वितीय प्रति : वस्ता ३९।८।१, खण्डित इसमें वैधल मुद्रकाण्ड के १७ पत्रा है, वह भी अर्ण है।

(३) तृतीय प्रति: वस्ता ३९।८।२: सम्पूर्ण इसमें प्रथम अङ्क में २५ और पूरे ग्रन्थ में १०४ पत्रा है। सम्पूर्ण पुष्पिकाएँ और सामग्री प्रथम प्रति से लगभग सर्वथा मेल खाती है। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

२. रचनाकाल —

उपर्युक्त प्रतियों में से किसी में भी लिपिकाल और रचनाकाल का निर्देश नहीं है। अतः ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त पुष्पिका के आधार पर, जिसमें विश्वनाथ सिंह नि साध महाराज शब्द है, इतना ही कहा जा सकता है कि संवत् १८९१ से १९११ वि० (१७१५-४४ ई०) के बीच कभी इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ।

हिन्दी ब्रजभाषा में भी आनन्द-रघुनन्दन नाम से विश्वनाथसिंह का एक नाटक प्राप्त है^१। विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन रोवा ने इसे १९६० ई० में प्रकाशित कर दिया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों और हिन्दी रूपकों के समीक्षा-ग्रन्थों में प्रायः सर्वत्र इसका उल्लेख प्रथम हिन्दी नाटक के रूप में हुआ है। श्री गोडे के अनुसार श्यामसुन्दर दास ने सन् १९०७ ई० में प्रयाग में हिन्दी पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत करते हुए हिन्दी नाटक, आनन्द-रघुनन्दन की २ प्रतियाँ बतलाई थी, जिनमें से एक १८३५ और दूसरी (क्र० २८) १८३० ई० की थी। यह दूसरी प्रति दिलराज लाला द्वारा सं० १८८७ (१८३० ई०) में लिखी गई थी। अर्थात् रचना इससे भी पूर्व की होगी। दोनों ही पाण्डुलिपियों में 'श्रीमहाराजकुमार बाबूसाहेब' शब्द है।^२

१. दे० अध्याय २ (ग)।

२. 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वयर्स'।

यहाँ हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की निम्नलिखित प्रतियों के उल्लेख हैं :—

(१) एच० ई० पोलमैन्स : सेन्सस आफ इंडिक मैन्सक्रिप्ट्स इन यू० एस०. ए० ऐंड कनाडा : १९३८। हिन्दी : पृ० ३०२ : क्र० ५८२०।

अतः हिन्दी का नाटक राजकुमार की अवस्था में लिखा जाने से निश्चित रूप से उसी नाम के संस्कृत नाटक से पहले लिखा गया, क्योंकि संस्कृत नाटक उपर्युक्त पुष्पिका के आधार पर 'महाराज विश्वनाथसिंह' (राज्यारम्भ संबत् १८९१-१९३४ ई०) द्वारा लिखा गया।

यह पूर्वापेक्षा निश्चित होने पर भी प्रस्तावना में प्राप्त अतःसाध्य विचारणीय है। हिन्दी नाटक की प्रस्तावना में निम्नलिखित शब्द है—

‘सूत्रधार—(नाग्यन्ते) अरे भारिष।

मोक्षों राजकुमार की नाट्य करिषे की आज्ञा मई।’

इसी के समकक्ष संस्कृत की प्रस्तावना में भी निम्नलिखित समानार्थक शब्द है—

‘(नाग्यन्ते) सूत्रधार :—अलमति विस्तरेण। भारिष। महाराजकुमारस्य नाट्यकरणात्ता ममासीत्...।’

यहाँ ‘महाराजकुमार’ उल्लेख का एक ही अभिप्राय हो सकता है कि ‘महाराजकुमार विश्वनाथसिंह’ स्वयं स्वरचित नाटक को अपने समक्ष प्रदर्शन की कल्पना प्रस्तुत कर रहे हैं। हिन्दी नाटक के लिये तो यह कल्पना ठीक ही है किन्तु संस्कृत नाटक की अन्तिम पुष्पिका में ‘महाराज’ शब्द होने से संस्कृत का ‘महाराजकुमारस्य’ उल्लेख कठिनाई उत्पन्न करता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि १८३० ई० से पूर्व ही हिन्दी नाटक पूरा होने पर विश्वनाथसिंह ने उसी की संस्कृत रूप देने का विचार किया और उसमें हिन्दी के समानार्थक शब्द रखे। अतः राजकुमार अवस्था में ही (१९३४ ई० से पूर्व) संस्कृत नाटक लिखना भी आरम्भ हो गया, किन्तु सम्पूति होते होते विश्वनाथसिंह महाराज हो चुके थे, अतः पुष्पिका में महाराज शब्द

(२) कंठे० उदयपुर : क्र० ११६।

(३) कंठे० बीकाचेर : १८९१ वि० का लेखा।

(४) प्यामसुन्दरदास : हिन्दी पाण्डु० का वार्षिक विवरण :
प्रमाण : १९०७ : क्र० ३८ : ८५ X २२२५ दलोक तथा
त्रैमासिक विवरण : १९१२ पृ० ९२-९३।

१. देखिये-सं० भा० दे० पृ०-१४ : यह सम्पूर्ण प्रस्तावना साध में प्रकाशित है।

२. हिन्दी नाटक के समान अर्थ की शब्दावली संस्कृत के सम्पूर्ण नाटक में है, जैसा कि आगे विचार किया जायगा।

रखा गया। यदि यह तर्क ठीक है, तो संस्कृत के आनन्द-रघुनन्दन नाटक की सम्पत्ति १८३५-३६ ई० के आसपास मानी जा सकती है।

३. वस्तु-तत्त्व

आनन्द-रघुनन्दन नाटक में रामकथा वर्णित है। इसमें ७ अङ्क हैं।

नाटक का आरम्भ नान्दी के ४ श्लोकों के साथ होता है। नान्दी में राम के ब्रह्मरूप का स्मरण और प्रथम अङ्क (बालकाण्ड) की कथा की ओर संकेत भी है।^१

नान्दी के पश्चात् परम्परानुसार प्रस्तावना में सूत्रधार और पारिपाश्वर्क राजकुमार की आज्ञानुसार नाटक की अभिनीत करने के सम्बन्ध में परस्पर विचार-विमर्श करते हैं। सूत्रधार कहता है कि उसे आकाशवाणी सुनाई पड़ रही है, अनुपम नाटक प्राप्त होगा। इस प्रस्तावना की समाप्ति पर भाव प्रवेश कर सूत्रधार को त्रिकालज्ञ आदिकवि की पत्रिका देता है। पत्रिका में आदिकवि वात्सीकि सूत्रधार को शिष्य कहते हैं और बतलाते हैं कि 'रावण के उत्पातों से आक्रान्त पृथ्वी ने ब्रह्मा की आज्ञा से जगत् के स्वामी से निवेदन किया है, अतः प्रभु पृथ्वी पर अवतीर्ण होने वाले हैं। उनके चरित को पहचाने मैंने (वात्सीकि ने) काव्य बद्ध किया था। विन्ध्य (बान्धव-प्रदेय) के राजा जयसिंह के पुत्र विद्वनाथ (सिंह) आनन्द-रघुनन्दन नाटक रचने वाले हैं, जो ब्रह्मा के वरदान से मुझे स्फुरित हो रहा है।^२ तुम मेरे पास आकर उसे समझ लो। उसे नाट्यरूप में प्रस्तुत कर तुम प्रभु को प्रसन्न करना। वह पत्रिका सूत्रधार की समस्या को सुलझा देती है।

दृश्य बदलता है। गुरु (वात्सीकि) के शिष्य सूत्रधार (श्रुतधर) आनन्द रघुनन्दन नाटक पढ़ाने के लिये निवेदन करता है, जिसे उसी दिन

१. प्रथम अङ्क : श्लोक २ :

कल्याणं कलयन्तु शङ्कर-धनुर्मौर्वी-समाकर्षणात्

काठिन्य-प्रतिमासि-पाणि-लसिताः इमाञ्जालि-श्लेषयः ।

शोणाम्भोरुह-मध्व-सम्पुट-मिलतर्षितिका-सम्प्रेमाः

मासूदमुज्ज-विमा विमान्ति महिजा-जानेः कटाक्ष-च्छटाः ॥'

२. वही, श्लोक १२-१४ :

'विन्ध्येन्द्र-जयसिंहस्य राजसिंहस्य यः सुतः ॥

विद्वनाथाद्युतो नाम्ना नाटकं स करिष्यति ।

स्वच्छन्दाजन्द-सन्दोहमानन्द-रघुनन्दनम् ॥

ममेदानीं सकास्तीदं स्फुरितं ब्रह्मणो वरात् ।'

अभिनीत करना है। गुरु पढ़ाना स्वीकार करते हैं। शिष्य को तत्क्षण नाटक प्राप्त हो जाता है।

नेपथ्य से मञ्जुल और कोलाहल सुनाई पड़ता है। राजा दिग्यान् (दशरथ) ने भगवान् को पुनरुप में पाया है। उत्साहमग्न जन होला-खेल आदि आनन्दों में निमग्न हैं। आदि कवि यह सुन कर कहते हैं कि परावरेन्द्रे के ईश्वर का अमृतपूर्व अवतार हुआ है। मुनि-मण्डली अपराजिता (अयोध्या) को जा रही है, हम भी चलें।

विश्वामित्र के नाम से प्राप्त उपर्युक्त दो दृश्यों को भी वास्तव में प्रस्तावना के अंश ही कहना चाहिये, क्योंकि सूत्रधार यहाँ तक उपस्थित है। इसके पश्चात् आङ्कारम्भ होता है।

प्रथम अङ्क

सचिव मञ्च पर आकर राजा दिग्यान् (दशरथ) के स्वागत की तैयारी करता है। राजा पुत्रों का जन्म-संस्कार और नामकरण सम्पन्न कर सभा में आ रहे हैं। राजा आते हैं और सचिव के पूछने पर पुत्रों के नाम लिखकर बतलाते हैं, वे हितकारी (राम) जगद्गूर (भरत), वरावर (लक्ष्मण) और अरिहर (शत्रुघ्न) हैं।

बन्दीजन मद्योगान् करते हैं। विदूषक, नटी और नर्तक प्रवेश करते हैं। नर्तक शब्दजाल करता है। नटी नृत्य करती है। विदूषक हास्य का वातावरण रखता है।

दूसरे दृश्य में राजा अन्तःपुर में जाकर कुशला (कौशल्या), काशमीरी, (कैकयी) और सुहिता (सुमित्रा) तीनों रानियों के पुत्रों के कल्याणार्थ व्रणों और आह्वानों के पूजन करने का आदेश देते हैं। रानियाँ पुत्रवधुओं के मुख देखने की लालसा राजा से प्रकट करती हैं।

तीसरे दृश्य में राजा के द्वारा सभी राजकुमार सभा में बुलाए जाते हैं, जिन्हें वर्षाकर लाता है। पुत्रों को देखकर राजा कहते हैं कि पुत्र विवाह के योग्य हुए। इस प्रकार बाल्यकाल की समाप्ति की घोषणा हो जाती है। गुरु जगद्योनित्र (वशिष्ठ) का सभा में सम्मान होता है। इसके पश्चात् सामान्य कथा के अनुसार मुनि भुवनहितः (विश्वामित्र) आकर दशरथ से मिलते हैं और यज्ञ-रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को ले जाते हैं।

चौथे दृश्य में पथिक प्राकृत भाषा में राम-लक्ष्मण के आगमन को खर्चा करते हैं। विश्वामित्र राम की बला और अतिबला विद्या प्रदान करते हैं। घातिनी (ताडका) राक्षसी का वध होता है। उसका पुत्र घातिनेय (मारोच) अपने भाई बाह्बुज (सुबाहु) के साथ काशमीर से आकर यज्ञ नष्ट करता है।

मारोच उड़ जाता है और सुबाहु मारा जाता है। सिद्धाश्रम में रक्षणाश होता है। मूर्च्छित विश्वामित्र को जगाकर विजय की सूचना दी जाती है।

पाँचवें दृश्य में पुत्रों का समाचार न मिलने से चिन्तित दशरथ को विश्वामित्र का शिष्य उपर्युक्त समाचार देता है।

छठे दृश्य में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण से सीता-स्वयंवर की चर्चा करते हैं और मिथिला के लिये प्रस्थान करते हैं।

सातवें दृश्य में जनक को विश्वामित्र के आने का समाचार मिलता है जिसमें अहहोद्धार का भी उल्लेख है। जनक विश्वामित्र का सम्मान कर राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करते हैं। इसी समय दिक्षिणा (रावण) और धरासुर (वाणासुर) आते हैं। वे लंबा संवाद कर चले जाते हैं। राम पिनाक तोड़ते हैं। सीता जयमाला पहनाती हैं। जनक दशरथ को पत्रिका भेजते हैं।

आठवें दृश्य में दशरथ पत्रिका पाते हैं और जगद्योनिज (वशिष्ठ) की स्वीकृति लेकर बारात लेकर मिथिला को प्रस्थान करते हैं।

नौवें दृश्य में दशरथ का पत्रोत्तर जनक को मिलता है। बारात आती है। विवाह होता है। वशिष्ठ शास्त्रोच्चार कर दक्षिणा में सौरकेतु (जनक) की कन्या जमिला को धराधर (लक्ष्मण) के लिये माँग लेते हैं। विश्वामित्र जनक के अनुज दर्भकेतु (कुशवृज) की दो कन्याएँ जगद्भर (भरत) और अरिदर (शत्रुघ्न) के लिये माँगते हैं। कुछ दिन बीतने पर मन्त्री जनक को बतलाता है कि रैणुकेय (परशुराम) आने वाले हैं, अतः बारात बिदा कर दी जाय। विदा हो जाती है।

दसवें दृश्य में दशरथ को अयोध्या पहुँचने से पूर्व गौतम का बङ्गदेशीय छात्र रैणुकेय के आगमन की सूचना देता है। उत्पात होते हैं और रैणुकेय आ जाते हैं। यहाँ चारों राजकुमार, वशिष्ठ और विश्वामित्र संवाद में भाग लेते हैं। अन्त में रैणुकेय राम को परम-गुह्य का अवतार मान कर स्तुति कर चले जाते हैं। मूर्च्छित दशरथ को जगाया जाता है।

ग्यारहवें दृश्य में बारात अयोध्या पहुँचती है। माताएँ परछन कर पुत्र-वधुओं का मुखदर्शन करती हैं।

द्वितीय अङ्क

इन अङ्क में राम के निर्वासन की कथा का नवीन व्यापार प्रदर्शित है। प्रथम दृश्य में गुरु (वशिष्ठ) से ब्रह्मकुण्डजा (सरयू) बतलाती है कि वह पिता-मह (ब्रह्मा) का दर्शन करने गई थी। वही इन्द्र आदि ने बतलाया है कि

रावण का बध करने के लिये राम पत्नी के साथ वन-विहार करना चाहते हैं । वृद्धा ने व्यवस्था करने की स्वीकृति दी है ।

वशिष्ठ सरयू को समझाते हैं कि राम की व्यक्ति अचिन्त्य है । अमराजिता में उनका विहार निरर्थक है । वे दोनों कार्य (वन यात्रा भी) कर सकते हैं । वशिष्ठ को देववाणी से आदेश मिलता है कि वे जगद्भर और अरिदर को काश्मीर भिजवा दें और वाणी स्वयं कुटिला (मन्थरा) के कण्ठ में प्रवेश कर राम की वनयात्रा की व्यवस्था करेगी । वशिष्ठ आज्ञा मान कर योजना में सम्मिलित होते हैं ।

दूसरे दृश्य में आदि कवि (वाल्मीकि) का शिष्य क्षीरवती (पयस्विनी) और कालिन्धी (यमुना) का वार्त्तालाप गुरु से बतलाता है । इस सूचना के अनुसार काश्मीरी ने दशरथ दशरथ से दो वर पाए हैं; एक से अपने पुत्र के लिये राज्य लिया और दूसरे से दम्पत्यु-सहित हितकारी (राम) को वन दिया । मन्त्री गङ्गातट तक राम को रथ द्वारा पहुँचा कर लौट गया और राजा ने प्राण त्याग दिये । वाल्मीकि दशरथ के शोक में डूब जाते हैं । शिष्य पुनः बतलाता है कि राम भास्कर क्षेत्र में याज्ञवल्क्य का दर्शन कर यमुना-पार आ गए हैं ।

तैत्तिरीय के गीत से राम के आने की सूचना मिलती है । राम अपराजिता का समाचार पूछते हैं । वाल्मीकि ध्यान से जानकर बतलाते हैं कि जगद्भर (भरत) माई (शत्रुघ्न) के साथ नगर में आ गए हैं । शेष समाचार वे ही आकर बतलाएंगे । वाल्मीकि राम को चित्रकूट तक पहुँचाने जाते हैं ।

तीसरे दृश्य में चित्रित काश्मीरी (कैकेयी) कुटिला (मन्थरा) से बतलाती है कि जगद्भर (भरत) आने वाले हैं । भरत प्रवेश करते हैं और कैकेयी से पूरा मृताश्व मुनकर मूर्च्छित हो जाते हैं तथा बेतना जाने पर उसे कोसते हैं । अरिदर (शत्रुघ्न) मन्थरा को पीटते हैं । कैकेयी के रोकने पर उसे भी शिक्षा देने की बात कहते हैं । भरत कौशल्या को समझाते हैं कि यह सब उनकी सहमति से नहीं हुआ । सुमित्रा भरत को पिता को पारलौकिक क्रिया करने के लिए कहती है ।

चौथे दृश्य में गुरु भरत को राज्य संभालने के लिये कहते हैं किन्तु उनका परिताप देख कर राम को लौटाने के लिये वन चलने की स्वीकृति दे देते हैं ।

पाँचवें दृश्य में जयन्त काक के नेत्र में आकर सीता को चौंच मारने का दण्ड पाता है ।

छठे दृश्य में भरत को ससैन्य आते देखकर लक्ष्मण क्रोध प्रकट करते हैं । राम उन्हें शान्त करते हैं । भरत आते हैं । शोक का वातावरण छा जाता है । भरत राम को लौटाने के आग्रह में अश्रुज भी करते हैं । राम उन्हें समझा

कर पादुका देकर लौटाते हैं। राम भी वह स्थान छोड़कर बनीर्ष्या (बन-सूया) और सोमजनक (अत्रि) के आश्रम को जाते हैं।

छठे दृश्य में अनसूया सीता को वस्त्रामुषण देती है। अत्रि राम को दण्ड-कारण्य का मार्ग बतलाते हुए कहते हैं कि विशिखमङ्ग (शरमङ्ग) मुनि के आश्रम होते हुए जाना।

तृतीय अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में मैत्रावरुणि (अगस्त्य) का शिष्य उन्हें बतलाता है कि वह दश वर्षों तक राम के साथ अनेक मुनियों के आश्रमों में भ्रमण करता रहा। मार्ग में राम ने अवासुर के पुत्र (विराध) का वध किया और शरमङ्ग मुनि ने उनके समस्त प्राणोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् राम जाते हैं। अगस्त्य उनके निवासार्थ गोदावरी के तट पर पञ्चवटी का स्थान उपमुक्त बतलाते हैं और इन्द्र द्वारा प्रदत्त धनुष, कवच और दो अक्षय तूणोर देते हैं, साथ ही अरुण के पुत्र (जटायु) को दर्शन देने को कहते हैं।

दूसरे दृश्य में आश्वि (जटायु) राम को सीता की रक्षा करने का वचन देता है। पञ्चवटी में रमणीय कुटी निर्मित होती है। अयोध्या से हीरमणि शुक आकर राम को कुशलता का समाचार देता है और कहता है कि भरत मंदोदराम में जटाजूट धारण कर रहते हैं तथा वहीं से गुह की आज्ञानुसार राज्यकार्य करते हैं। इसी दृश्य में लक्ष्मण द्वारा दीर्घमखी (शूर्पणखा) के नाक-कान काटे जाते हैं।

तीसरे दृश्य में शूर्पणखा-वृत्तान्त से क्रुद्ध होकर राक्षस (खर राक्षस) सेना लेकर राम पर चढ़ाई कर देता है।

चौथे दृश्य में राक्षस के साथ राम के युद्ध का सविस्तर वर्णन है। इस युद्ध को लक्ष्मण और सीता एक कन्दरा से देख रहे हैं। चौदह सहस्र चौदह राक्षस मारे जाते हैं। अन्त में अगस्त्य राम की स्तुति करते हैं।

पाँचवें दृश्य में शूर्पणखा रावण की सभा में राक्षस-वध का समाचार और भरता अपमान बतलाती है। रावण मन में विचार करता है कि परम पुरुष का अवतार हुआ, मैं विरोध-मार्ग से मुक्ति लूँगा। दीर्घजठर (महोदर) के कपटानुसार सोता-हरण का निश्चय होता है।

छठे दृश्य में रावण मारीच की रत्नमय विचित्र मृग का रूप धारण करने के लिये तैयार कर देता है।

सातवें दृश्य में लक्ष्मण की अनुपस्थिति में राम सीता की अग्नि को सौंप देते हैं। छामा रूप में सीता उनके साथ पर्यटाला में रहती हैं। सीता मृग

लाने का आग्रह करती है, लक्ष्मण लौट आते हैं। राम मृग के पीछे चले जाते हैं। नेपथ्य से 'हा वरस घराघर' शब्द सुनकर सीता लक्ष्मण को राम की सहायता करने के लिये जाने को कहती है। लक्ष्मण कहते हैं कि यह छल है, राम के शब्द नहीं। सीता लक्ष्मण को कुल-कलश और राम की मृत्यु का अभिलाषी कहती है। लक्ष्मण असहाय चवन सुनकर रेखा खींच कर चले जाते हैं। रावण भुनि-वेष्ट में आकर रेखा से बाहर मिटा देने आई हुई सीता का अपहरण करता है। रक्षा के प्रयत्न में जटायु बाह्य होता है।

आठवें दृश्य में सीता को बूझते हुए राम और लक्ष्मण जटायु के समीप आते हैं। जटायु बतलाता है कि विद मूहूर्त में रावण ने गौरी की है, अपने प्राणों के साथ-साथ उसे सीता को लौटाना होगा।^१ जटायु की मृत्यु होती है, राम विलाप करते हुए आगे बढ़ते हैं।

नौवें दृश्य में उपस्थितों किराती (खबरी) राम का आतिथ्य कर उन्हें सुग्रीव का पता बतलाती है और राम के समक्ष प्राणोत्सर्ग करती है। राम आगे बढ़ते हैं।

चतुर्थ अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में जेतामल्ल (हनुमान्) राम और सुकृष्ण (सुग्रीव) की मित्रता कराते हैं। सीता के द्वाग आकाश से गिराये हुये आभूषण सुग्रीव द्वारा राम को दिये जाते हैं। परस्पर वात्सल्य होती है और बालि (बालि) को मारने के लिए राम सुग्रीव के साथ प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दृश्य में बालि के पास रावण का पत्र आता है जिसमें निर्देश है कि राम-लक्ष्मण को पकड़ कर मेरे समीप भेज दो।^२ तार मामक भंत्री से चर्चा करता हुआ बालि सुग्रीव के साथ राम-लक्ष्मण को आते हुए देखता है। लक्ष्मण उसके और समीप आते हैं। परस्पर संवाद और परिचय होता है। बालि राम से युद्ध चाहता है। उनके ऊपर पर्वत का प्रहार करता है और एक ही क्षण से मारा जाता है।

लक्ष्मण सुग्रीव को राज्य देकर भुजभूषण (वज्रद) को युवराज बनाते हैं। राम श्रेष्ठमृक पर वर्षाकाल बिताते हैं। शरद् प्रकट होने पर लक्ष्मण सुग्रीव को समझाने जाते हैं।

१. पृ. ४६: '...विन्दमूहूर्तं महिजामहार्पित् ।

यस्तत्र मुष्णाति स खलु प्राणसहितं वस्तु ददाति ।'

२. पृ. ५३: 'तो विधुरस्य समुदण्डी दोर्दण्डोद्वय-मण्डितौ ।

कुमारौ सुकुमारज्जौ प्रेषणीयौ मयान्तिकम् ॥'

तीसरे दृश्य में उन्मत्त सुग्रीव को हनुमान् समझाते हैं और सैन्य बुलाते हैं । लक्ष्मण क्रोध प्रकट करते हैं । डरता हुआ सुग्रीव राम के समीप आता है ।

चौथे दृश्य में बानरों को खोज के लिये भेजा जाता है । राम हनुमान् को अभिज्ञान-रूप अंगूठी देते हैं । बानर लौट आते हैं, केवल अङ्गद आदि नहीं आते । द्रविड देश की स्व-प्रकाशिनी (स्वयंप्रभा) तपस्विनी राम को प्रणाम कर चली जाती है । सुग्रीव कहते हैं कि उसे अङ्गद आदि बानर मिले होंगे, सभी आई है । गृध्र (सम्पाती) आकर राम से कहता है कि बानर मिटे थे, मैंने उन्हें बतलाया है कि सीता लङ्का में है । हनुमान् समुद्र पार गये हैं ।

पञ्चम अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में रावण मन्त्री से कहता है कि उसने स्वप्न देखा है कि सीता का समाचार लेने आया हुआ एक बानर सीता के समीप शिथिला वृक्ष में छिपा है । फिर मैं सीता को भय देकर आया हूँ । राक्षसी (लङ्का) आकर बतलाती है कि राम का दूत बानर पुरी में प्रविष्ट हुआ है । बाटिकापाल आकर कहता है कि एक बानर बाटिका उखाड़ कर रक्षकों को मार रहा है । रावण मन्त्री को आदेश देता है कि बानर पकड़ा जाय ।

दूसरे दृश्य में धोर युद्ध होता है । हनुमान् इन्द्रियकुमार (अक्षकुमार) को मार डालते हैं; बाटिका और सेना को विध्वस्त करते हैं; धनञ्जलि (मेघनाद) उन्हें ब्रह्मास्त्र से बाँध डालता है ।

तीसरे दृश्य में हनुमान् रावण के समक्ष लाये जाते हैं । भयानक (विभीषण) की सम्मति से उनकी पूँछ में आग लगाई जाती है । लङ्का जलती है ।

चौथे दृश्य में हनुमान् सीता को अंगूठी देते हैं और सीता राम के लिए अभिज्ञानार्थ चूड़ामणि देती है । हनुमान् चले जाते हैं ।

पाँचवें दृश्य में अङ्गद आदि से मिलकर हनुमान् लङ्का का समाचार बतलाते हैं । अङ्गद कहते हैं कि हम सीता को साथ ले, चले । भूक्षराज (धाम्बवान्) के समझाने से सब लोग किष्किन्धा को प्रस्थान करते हैं ।

छठे दृश्य में हनुमान् आदि राम के समीप पहुँच कर सीता का वृत्तान्त बतलाते हैं और चूड़ामणि देते हैं । उसी समय राम बानर सेना के साथ प्रयाण करते हैं । समुद्र तट पर पहुँच कर राम शरण में आये हुए विभीषण का अभि-प्रेक कर देते हैं । सागर पर सेतु बँधता है । राम सेना को सागर पार करने का आदेश देते हैं ।

पष्ठ षष्ठ

इस दीर्घाङ्गर धनु के प्रथम दृश्य में रावण कीर (शुक) राजस को भेज-कर दानर-सेना का समाचार प्राप्त करता है। वह स्वयं चन्द्रशाला से सेना को देखता है, फिर नृत्य देखने लगता है।

दूसरे दृश्य में राम सुबेल पर्वत पर स्कन्पावार स्थापित कराते हैं। चन्द्रमा के कलंक पर विविध कल्पनायें होती हैं। रावण की नृत्यशाला को लक्षित कर राम बाण छोड़ते हैं। प्रमाद होता है और राम सेना को ब्यूहबद्ध चलने का आदेश देते हैं।

तीसरे दृश्य में रावण चिन्तित है कि रात्रि में नृत्यशाला में छत्र, चामर और आभूषण अकस्मात् कैसे गिर गये। सुप्रीव रावण के समीप जाकर उससे मल्लयुद्ध करते हैं। विभीषण के परामर्श से अङ्गद रावण के समीप दूत के रूप में भेजे जाते हैं।

चौथे दृश्य में अङ्गद और रावण का संवाद होता है। अङ्गद के चरण रोपने का प्रसङ्ग भी वर्णित है। रावण दानरों को मारने का आदेश देता है।

पाँचवें दृश्य में राम और रावण के पक्षों से लड़ने वाले थोढ़ाजों का समर विस्तारपूर्वक वर्णित है। रावण के शक्ति-प्रहार से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमान् सञ्जीवनी लेने जाते हैं, तब राम के आदेश से वे लौटते समय अयोध्या भी जाते हैं। भरत उन्हें राजस समस्त कर बाण मार देते हैं, तब हनुमान् द्वारा साप साई हुई सञ्जीवनी से ही वशिष्ठ हनुमान को सचेत करते हैं और उन्हें उस औषधि की पहचान करा देते हैं।

कुम्भकर्ण का कटा हुआ सिर हिमालय पर गिर कर उसे तोड़ डालता है। कवम्भपतन से भरतखण्ड के प्राणियों का सम्भावित नाश बचाने के लिए हनुमान् उसे पवन-प्रवाह में फेंक देते हैं।^१

सञ्जीवनी का प्रयोग अनेक बार किया जाता है। रावण मृत राजाओं के शरीर समुद्र में डाल देता है।^२ अतः वे पुनः सजीव नहीं होते। मेघनाद को लक्ष्मण मारते हैं। इन्द्र के रथ पर चढ़ कर राम रावण से युद्ध करते हैं।

१. अंक ६ दृश्य ५ : 'स्वामीच्छामवगम्य भास्वतुतः चित्रं चकारोच्चकै-
रेतादुसतनुं श्वाहूपवने प्रोच्छात्य तां प्राप्तिवत् ।
एते भारतखण्डजा ननु यथा जीवा न नाशं गता
विश्वस्मिन् बलमीदृशं क्वचिदहो नादृशि नाकर्ण्यम् ॥'

२. 'मृतानां मत्तुषानानां शरीराणि सरित्पथे ।

मिस्रेपथि वलक्ष्याद् वशशीर्षः क्षणे क्षणे ॥'

युद्ध का वर्णन प्रायः नेपथ्य से किया जाता है। सूत राम को बतलाता है कि रावण के हृदय में अमृतकुण्ड है। रावण का वध होने पर पुष्पवृष्टि होती है। मन्दोदरी आकर विलाप करती है।

लक्ष्मण विभीषण का तिलक करते हैं। विभीषण से आज्ञा लेकर हनुमान् सीता को लाते हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है, छाया समाप्त होकर वास्तविक सीता प्रकट होती है। सम्पूर्ण सेना पुष्पक विमान पर राम के साथ अयोध्या को प्रस्थान करती है। राम भरद्वाज के यहाँ ठहर जाते हैं। हनुमान् भरत को समाचार देने जाते हैं।

सप्तम अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में भरत गुरु वशिष्ठ की बुलाकर कहते हैं कि कल अवधि बीत जायगी। राम का कोई समाचार नहीं मिला। अवधि बीतने पर मैं जोषित नहीं रह सकूँगा। अतः आपको राज्य सौंपता हूँ। गुरु कहते हैं कि शुभ घट्टन हो रहे हैं। हनुमान् आकर भरत को राम के आगमन का समाचार देते हैं और कहते हैं कि कल सूर्योदय वेला में राम आएँगे। भरत स्वागत की तैयारी का आदेश देते हैं। हनुमान् से बात करते करते प्रमाद हो जाता है। पुष्पक विमान दिखलाई पड़ जाता है। राम का स्वागत होता है। आकाश से मिलन का वर्णन है। गुरु मन्त्री को कहते हैं कि आज ही अभियेक का शुभ मुहूर्त है। राजतिलक की तैयारी और मङ्गल-गीत होते हैं।

दूसरे दृश्य में महाराज श्रीराम की शोभायात्रा का सङ्केत है। राम सिंहासन पर बैठते हैं। देवगण भेंट देकर स्तुति करते हैं। वानरों और राक्षसों को उपहार मिलते हैं। हनुमान् को सीता अपना मुक्ताहार देती है। हनुमान् दातों से दबा कर मोतियों को फाड़ कर फेंक देते हैं। सुग्रीव के प्रश्न पर वे कहते हैं कि इनमें राम नाम अङ्कित नहीं है। सुग्रीव पूछते हैं कि तुम्हारा शरीर कहाँ नामाङ्कित है। हनुमान् छाती फाड़ कर दिखाते हैं।

राजसभा में अगस्त्य प्रवेश करते हैं। वे रावण-पक्ष के मेघनाद और राम-पक्ष के हनुमान् की वीरता की विशेष प्रशंसा करते हैं। वे हनुमान् के पौधव की भी चर्चा करते हैं। सुग्रीव आदि अतिथि विदा किये जाते हैं। अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वों के गीत प्रारम्भ होते हैं। हनुमान् लौट आते हैं और बतलाते हैं कि उन्हें राम के समीप रहने की आज्ञा सुग्रीव ने दे दी है। राम उन्हें भी नृत्य देखने के लिए कहते हैं। नृत्य करने वाली पुष्प-पुष्प-अप्सरारों नायिका-नेद के अनुकूल मुद्रा-प्रदर्शन करती हैं, जिसका गन्धर्व अपने

गीतों में वर्णन करते जाते हैं। अन्त में गोरगढ (गोरे), अरबदेशीय (अरब) और तुर्कदेशीय (तुर्क) नर्तक आते हैं और मरुदेशीया (भारवाह की) वेश्या आती है। इन सबको पुरस्कृत किया जाता है। राम भरत को राज्य-व्यवस्था, लक्ष्मण को कोश और शत्रुघ्नको सेना सौंपते हैं।^१

तीसरे दृश्य में स्वधुनी (गङ्गा) प्रह्लादकृष्णदा (सरयू) से प्रश्न करती है कि वह उदास क्यों है। सरयू कहती है कि ११ सठस वर्ष राज्य कर राम अयोध्या के कीट-पतङ्गों सहित अन्तर्हित हो गए हैं। गङ्गा कहती है कि क्यों छिपाती है, राम तेरे निकट अपराजिता में नित्य रहते हैं।

इसके पश्चात् सूत्रधार राम (रघुनन्दन) की स्तुति करता है और उनसे भक्ति के अतिरिक्त आनन्द-रघुनन्दन नाटक की कीर्ति और स्थायित्व की याचना करता है।^२ राम 'तथास्तु' कह कर महलों में चले जाते हैं। केवल इसी अन्तिम भाग में राम का नाम रघुनन्दन है, अन्यथा सर्वत्र हितकारी है।

४. वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव :—

आनन्द-रघुनन्दन का प्रणेता वाल्मीकि का सर्वथा लक्षणी है। यह कहा जा सकता है कि जैसे उत्तररामचरित, अभिषेक, प्रतिमा, प्रसन्न-राघव, महावीर-चरित आदि नाटकों के लिये वाल्मीकि रामायण उपजीव्य ग्रन्थ रहा है, वैसे ही यह आनन्द-रघुनन्दन का भी आधार बना है। इसी प्रकार उपर्युक्त नाटकों के प्रणेताओं ने जिस प्रकार कहीं कहीं स्वतन्त्रता ग्रहण की है, वैसे ही विश्वनाथ-सिंह ने भी अनेक स्थलों पर मौलिकता प्रकट की है। सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि विश्वनाथसिंह के समस्त हिन्दी का महान् लोकप्रिय ग्रन्थ रामचरितमानस विद्यमान था, जिसके प्रभाव से वे दूर नहीं रह सके। विश्वनाथसिंह रामभक्त थे और वे रामभक्त तुलसीदास की कथा-योजना से अधिक प्यक् नहीं हो सके। फिर भी ऐसे स्थल अनेक हैं जहाँ वाल्मीकि और तुलसी के काव्यों में कथारमक भेद होने पर विश्वनाथसिंह ने वाल्मीकि का अनुसरण किया है।

१. अङ्क ७।८९ : 'राज्यं रक्ष जपद्मर त्वमभयो राजन्वती भूरियं येनोष्येत धराधर त्वमच्छान् कोशांश्च मञ्छासनात् ।
सेनां सत्त्रय सादरामरिदर स्वास्थां त्वमन्वयधत् स्वच्छाराम-विहारमारचयितुं गच्छामि कसान्तरम् ॥'

२. 'प्रेमाप्नोतु सर्वोत्तमं भरपतिः श्रीविश्वनाथः कृती ।'

उप- 'यावत् कीर्तिस्त्वदीया चरति कुशलये तावदास्तां रसस्य प्राकट्यं नाटकं श्रीधर तव चरितं नन्ददानन्दमूमनः ।'

। यह उल्लेख भरतवाङ्मय के स्थान में माना जा सकता है।

रामचरितमानस में परशुराम धनुर्भञ्ज के पश्चात् तुरन्त विमिला में हो पहुँच जाते हैं किन्तु रामायण में वे दशरथ के अयोध्या जाते समय मार्ग में मिलते हैं।^१ आनन्दरघुनन्दन में भी मार्ग में मिलते हैं। रामचरितमानस में मारीच का स्वर सुनने पर सीता और लक्ष्मण के बीच कटूवक्तियों का प्रयोग नहीं है, किन्तु रामायण में है^२ तथा आनन्दरघुनन्दन में भी है।^३ सीता-हरण के समय जटायु द्वारा बतलाया हुआ विन्दमूर्हत भी रामायण में ही है।^४ सुवेल पर्वत पर चढ़ने पर सुग्रीव के उल्लस कर गोपुर शृङ्ग पहुँचने और रावण के साथ मल्लयुद्ध करने का प्रसङ्ग रामचरितमानस में नहीं है। यह प्रस्तुत नाटक में^५ रामायण से लिया गया है।^६ अभियेक के पश्चात् रामायण की कथा के अनुसार राम लक्ष्मण को यौवराज्य देना चाहते हैं और उनके अस्वीकार करने पर भरत को देते हैं।^७ रामचरितमानस में यह प्रसङ्ग नहीं है किन्तु आनन्दरघुनन्दन में राम भरत को राज्यव्यवस्था सौंपते हैं। इसी प्रकार रामायण

१. बालकाण्ड : सर्ग ७४-७६ ।

२. आरण्यकाण्ड : स० ४५।६-७, २४, ३२, :

‘इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ।

लोमात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् ॥

सुदुष्टस्त्वं दने नित्यं राममेकोन्यगच्छसि ।

मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥’

तथा—‘यिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मापेवं विद्यच्छसे ।’

३. अंक ३ दशक ७७-७८ ‘न प्रयास्पुत्तरं दत्ते श्रुत्वार्याह्वानमञ्जसा ।

इममेवाभिलाषं किमकार्षीः कुलपांसम ॥’

तथा—‘हा हन्त हन्त हन्त एव किलास्मि चण्डि

वज्रोपमा श्वणयोरतिघोर-बाणौ ॥’

४. आरण्यकाण्ड : स० ६७।१२-१३ :

‘येन याति मूर्हतं न सीतामादाय रावणः ।

विप्रणष्टं घनं सिप्रं तत्त्वामो प्रतिपद्यते ॥

विन्दो नाम मूर्हतोऽसौ.... ।’

५. अंक ६ दृश्य ३ ।

६. युद्धकाण्ड : सर्ग ४०-४१ ।

७. वही : सर्ग १३०।१३ :

‘सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सीमित्रिहपेति योगम् ।

नियुज्यमानो भूवि यौवराज्ये ततोऽप्यपिच्छद् भरतं महात्मा ॥’

और आनन्द-रघुनाथन में जयन्त का प्रसङ्ग चित्रकूट में भरतामन से पुर्य है ।^१
रामचरितमानस में भी है ।

रामायण की कथा से हटकर प्रस्तुत नाटककार ने कई स्थलों में राम-चरितमानस का अनुसरण किया है, जैसे सन्ध्या द्वारा मन्थरा (और कंकेयी को भी) दण्ड देना, रावण और बाणासुर, राम और परशुराम, अङ्गद और रावण के संवाद प्रस्तुत करना, पञ्चवटी में वास्तविक सीता का अग्नि में अन्तर्हित होना और छाया-सीता का प्रकट होना तथा रावण-शत्रु के अनन्तर पुनः छाया का अग्नि में लोप होना और मूल सीता का प्रकट होना तथा राम का अमिषेक उत्तरकाण्ड (सप्तम अङ्क) में रहना, जो रामायण में युद्धकाण्ड में ही होजाता है ।^२ सञ्जीवनी लाते समय हनुमान् का अयोध्या जाना भी इसी कड़ी में गिना जा सकता है ।

प्रस्तुत नाटककार ने कुछ प्रसङ्ग मौलिक रूप में उपस्थित किये हैं । पातिनेय (मारीच) काश्मीर से आकर विश्वामित्र के आश्रम पर आक्रमण करता है और उसके साथी पारसीक भाषा में वार्तालाप करते हैं ।^३ दशरथ को परशुराम के आगमन की सूचना गौतम मुनि का बङ्गीय छात्र देता है ।^४ पञ्चवटी में राम के समीप हीरमणि चुक जाता है और अयोध्या का समाचार देकर भरत का विरक्त जीवन बतलाता है ।^५ विश्वनाथसिंह ने अनेक परवर्ती नाटककारों की भाँति यह आरोप समाप्त कर दिया है कि राम ने छिप कर बालि को शान मारा । इस नाटक में सुग्रीव और बालि का युद्ध होता ही नहीं । इसके स्थान पर राम-लक्ष्मण स्वयं बालि के समीप पहुँचते हैं । बालि राम को जीतकर कीर्तिलाम लेना चाहता है, अतः स्वयं युद्ध का आमन्त्रण देता है^६ और मारा जाता है । बालि के समीप रावण का पत्र आना

१. अयोध्याकाण्ड : सर्ग ९५ के पञ्चात् —प्रक्षिप्त ।

२. युद्धकाण्ड : सर्ग १२९-१३० ।

३. अङ्क १ : 'पातिनेयः काश्मीरादतिवीरं चारुभुजं सहाममानया-मास ।
(आकाशे पारसीक—भाषया कोलाहलः ।), साथ ही देखिये —
हिन्दी आ० रघु० : पृ० १६ : फारसी में घोषणा ।

४. हिन्दी आ० रघु० पृ० ३० : बंगला भाषा में सन्देश ।

५. अङ्क ३ : पृ० १७ ।

६. अङ्क ४ : पृ० ३३ : श्लोक ७-१७ :

'वासवि :—जगज्जयितल्लामं त्वां जयेयं स्फूर्जदोजसम् ।

... यदा तदा त्रिजगति त्वामहं बलिनां बली ॥ १६ ॥

भी नयी बात है। हनुमान् द्वारा कुम्भकर्ण के कवच का पवन-प्रवाह में फेंका जाना भी विश्वनाथसिंह की अपनी सृष्टि है।^१ उपर्युक्त परिवर्तन कवि ने अमिनेयता आदि कई दृष्टियों से किये होंगे तथापि यह काव्य मूलतः वाल्मीकि-रामायण पर ही आधारित है।

(ख) काव्यात्मक विश्लेषण

१—नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से ग्रन्थ का परीक्षण :

आनन्द-रघुनन्दन के प्रणेता ने इस ग्रन्थ को नाटक कहा है। हमें यहाँ इस बात का परीक्षण करना होगा कि छास्त्रीय दृष्टि से यह ग्रन्थ नाटक के रूप में कहाँ तक खरा उतरता है।

दण्डो ने काव्य के पद्य, गद्य और मिश्र भेद बतला कर मिश्र के अन्तर्गत नाटक बतलाया है। यहाँ मिश्र का अर्थ गद्य और पद्य से मिश्रित तथा प्राकृत आदि अनेक भाषाओं से मिश्रित भी है।^२ आमह ने नाटकादि काव्यों को अमिनेयार्थ प्रबन्ध कहा है।^३ हेमचन्द्र ने काव्य का विभाजन प्रेक्ष्य (अमिनेय) और श्रव्य दो रूपों में किया है तथा प्रेक्ष्य के भी पाठ्य (नाटकादि) और गेय (रासकादि) भेद किये हैं।^४ विश्वनाथ ने प्रेक्ष्य शब्द के स्थान पर दृश्य शब्द का प्रयोग किया है।^५ यही दृश्य शब्द पीछे प्रचलित हो गया।

इसी दृश्यकाव्य को भरत मुनि ने नाट्य कहा है। मनुष्य के सुखदुःख से समन्वित स्वभाव का अभिनय ही नाट्य है। देवताओं, राजाओं अपना महा-पुरुषों के पूर्वकाल में किये हुए चरित्र का अनुकरण ही नाटक है।^६ घनञ्जय

हितकारी—सायुधः स्याः स्थितोऽहं ते वनुःशरधरः पुरः ।

वासविः—कपीनामायुधं दन्ता नखाः द्रुमशिलादयः ॥ १७ ॥

(इति लोलेन लाङ्गूलेन शैलमुत्पाद्य प्रहर्तुमिच्छति ।)'

१. अङ्क ६ : घटकर्ण का युद्ध ।

२. काव्यादर्शः १।११, ३१. ३७ ।

३. काव्यालङ्कारः १।१८ ।

४. काव्यानुशासनः अ० ८ ।

५. साहित्य-दर्पणः ६।१ ।

६. नाट्यशास्त्र : अध्याय १।१२१, १२५

'योऽयं स्वभावो लोकास्य सुख-दुःख-समन्वितः ।

सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥

देवतानां मनुष्याणां राज्ञां लोकमहात्मनाम् ।

पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तदुच्यते ॥'

ने लिखा है कि अवस्था का अनुकरण हो नाट्य है, अर्थात् घोरोदात्त आदि गुणां से युक्त प्रख्यात नायकों के जीवन की अवस्थाओं का जब कोई नट रङ्गमञ्च पर अनुकरण करता है, तब उसको इस अभिनय-क्रिया को नाट्य कहा जाता है। यह दृश्य होता है, अतः रूप कहा जाता है। राम आदि नायकों का नट पर सर्वथा आरोप हो जाने से नाट्य को रूपक कहते हैं। यह रसाश्रित होता है। इसके दस भेद हैं, जिनमें प्रथम नाटक है।^१

आचार्यों का मत है कि नाटक की आधिकारिक कथावस्तु प्रख्यात (इति-हास-प्रसिद्ध) ही होनी चाहिए। कल्पित वस्तु को नाटक का आधार नहीं बनाया जा सकता। प्रख्यात वंश का राजपति या दिग्गज अथवा दिग्गजिन्ना कोटि का घोरोदात्त व्यक्ति नायक रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। दिग्गज होते हुए भी नराभिमानी पुरुष दिग्गजिन्ना कहा जायगा, जैसे उत्तर-राम-चरित में श्रीराम। शृङ्गार या वीर में से कोई एक अङ्गीरस होगा, किन्तु अन्य रसों का भी अङ्गरूप में समावेश होगा। निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस की भी सृष्टि होगी। कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अङ्क होने चाहिए।^२ आनन्द-रघुनन्दन की मूल (आधिकारिक) कथा रामायण की प्रख्यात कथा है। घोरोदात्त एवं दिग्गजिन्ना कोटि के श्रीराम उसके नायक है। इसमें वीर अङ्गीरस है तथा अन्य रसों के प्रयोग भी हुए हैं। इसमें सात अङ्क हैं। अतः यह नाटक कोटि का रूपक है। यह प्रकरण नहीं है, क्योंकि प्रकरण की कथावस्तु उत्पाद्य (कवि-कल्पित) और लौकिक होती है तथा नायक घोर-प्रशान्त कोटि का व्यक्ति-मन्त्रो, ब्राह्मण या वणिक् होता है।^३ नाटक में प्रत्येक अङ्क में विदूषक रहता है, शृङ्गाररस अङ्गी होता है और विन्ध्य और मनुष्यपात्रों का समागम होता है^४। आनन्द-रघुनन्दन

१. दशरूपक १।७-८ : 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।

रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाग्रयम्॥

नाटकं ।'

२. दशरूपक ३।२३-२४ तथा साहित्यदर्पण ६।७-१० एवं वृत्ति।

३. दशरूपक ३।३९-४० :

'अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंघयम्।

अमात्य-विप्र-वणिजामेकं कुर्याच्च नायकम्॥

घोरप्रशान्तं..... ।'

४. साहित्यदर्पण : ६।२७३ : 'सप्ताष्ट-नव-पञ्चाङ्कदिग्गज-मानुष-संघयम्

नोटकं नाम सत्प्राहुः प्रत्यङ्कं सविदूषकम्॥'

वृत्ति—'प्रत्यङ्कं सविदूषकत्वादन शृङ्गारोऽङ्गी ।'

के प्रमुख पात्र राम और सीता दिव्यादिव्य कीटि के हैं, वीर अङ्गी रस है और विदूषक का व्यापार सीमित है, अतः यह त्रोटक भी नहीं है । शेष रूपकों में से भाग, प्रहसन, व्यायोग, वीथी और अङ्क एकाङ्की होते हैं, समवकार ३ अङ्कों का और द्विमा एवं ईहामृग ४-४ अङ्कों के होते हैं ।^१ सात अङ्कों के आनन्द-रघुनन्दन को इनमें भी नहीं गिना जा सकता ।

भरतमुनि तथा अन्य सभी आचार्यों ने नाटककार से महती अपेक्षाएँ की हैं । नाटक में पाँचों सन्धियों का सुश्लिष्ट प्रयोग होना चाहिये । उसमें चारों वृत्तियाँ, चौसठ अङ्ग, छत्तीस लक्षण एवं अलंकार होने चाहिये । इनके साथ सूक्ष्म तत्त्व यह है कि नाटक एक अत्यन्त रसमयी रचना होनी चाहिये तथा उसमें महान् चरित्र का उत्थान होना चाहिये ।^२

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक की रचना करना सामान्य समता की वस्तु नहीं है । इसमें बुद्धि-तत्त्व और हृत्तत्त्व दोनों की महती आवश्यकता है । एक ओर कवि को कथा के विकास-क्रम का रूप सुपोजित रखना पड़ता है, जैसे पाँचों सन्धियों एवं सन्ध्यङ्गों को सुश्लिष्ट करना पड़ता है; दूसरी ओर उसे भावाभिव्यक्ति के माध्यम से संवादों को प्रभावोत्पन्न बना कर वातावरण के सहारे रसोन्मेष करना होता है । कथा के प्रमुख तत्त्वों को नाटककार श्रव्य काव्यों के क्रम से कथाकाव्यों या महाकाव्यों की भाँति नहीं प्रस्तुत कर सकता । उसे अपनी सीमाएँ और रङ्गमञ्च की सुविधाएँ देखते हुए केवल वही घटनाएँ सामने लानी होती हैं, जो सरस और प्रभावी बन सकें, शेष कथा की वह विष्कम्भक आदि के द्वारा सूचना-मात्र दे देता है । आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सार्विक अभिनय के द्वारा नट उचित संवादों के बल पर मञ्च और परदों की पृष्ठभूमि में वह वस्तु प्रस्तुत करता है जो सामाजिक (दर्शक) के अन्तःकरण में स्वरित रसावर्जन कर सके । इन सब तत्त्वों का निर्देश नाटककार के हाथ में रहता है । मिन्य रुचियों के व्यक्तियों की भी तृप्ति नाटक में हो जाती है, अतः नाटक को काव्यों के मध्य सर्वाधिक रमणीय माना गया है । आचार्यों ने काव्य के इस भेद की ओर इसीलिये सबसे अधिक ध्यान देकर सूक्ष्म विवेचन किये हैं ।

यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि नाटक की सफलता नट और नाटककार

१. बहो : ६।२२७-२६८ ।

२. नाट्यशास्त्र :

‘पञ्चसन्धि-वतुर्कृति-वतुःपट्यङ्ग-संगुतम् ।

पट-त्रिस्तलक्षणपितमलङ्कारोपसोमितम् ॥’

दोनों पर निर्भर है। यदि नट कुशल अभिनेता नहीं है तो वह अभिज्ञान-साकुन्तल जैसे नाटक के प्रति भी सामाजिक के मन में अच्छे भाव उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः नाटककार केवल पाठ्य काव्य की निमित्त कर सकता है, अभिनय के निर्देश प्रस्तुत कर सकता है, रसोत्पादक संवाद और फलप्राप्ति की ओर अप्रसर होने वाली घटनाओं के दृश्य लिख सकता है; ओर यहाँ उसके कर्तव्य की इतिथी हो जाती है। नाटककार नाटक के यथार्थ रूप की खोज कर उसकी दृश्यता को नटों के अधीनस्थ कर देता है।

आनन्द-रघुनन्दन की कथावस्तु धार्मिक-रामायण पर आधारित होने में उसमें सन्धियाँ अपने आप सुरिलष्ट रूप में विद्यमान हैं। प्रस्तुत नाटक के आरंभ में विश्वकम्म के प्रथम दृश्य में सूत्रधार को भेजी हुई पत्रिका में आदि कवि ने सूचित किया है कि दिङ्मूर्छा (रावण) से जस्त पुष्पी की प्रार्थना से परम प्रभु अवतार लेंगे।^१ दूसरे दृश्य में आदि कवि मङ्गल कोलाहल सुनकर कहते हैं कि अयोध्या में प्रभु का अवतार हो गया।^२ ये सूचनार्थ ही सम्पूर्ण नाटक का आधार है। यही स्वल्प, अदृष्ट हेतु के रूप में बीज की उत्पत्ति है। मुनि-जन उत्सुक होकर अयोध्या जाते हैं,^३ अतः यह आरम्भावस्था है। नाटककार प्रथम अङ्क में सीमा ही कुमारों को सहन रूप में उपस्थित कर देता है।^४ पातिनी (साइका) और उसके पुत्र आदि राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिये

महारतं महाभोगमुदात्त-रचनान्वितम् ।

महापुरुष-वत्कारं साध्याचारं जनप्रियम् ॥

सुरिलष्ट-सन्धियोगं च सुप्रयोगं सुसाधयम् ।

मृदु-शब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ॥^१

साय ही देखिये दशरूपक : १-७ : 'दशर्षेण रसाधयम् ॥'

तथा ध्वन्यालोक : ३।७—वृत्ति : 'अभिनेयार्थे तु सर्वथा रसयन्त्रे-
भित्तिवेशः कार्यः ।'

साय ही देखिये हिन्दी साहित्य कोश : भाग १ पृ० ३७१-३२ ।

१. विश्वकम्म : वलोक ९-१० :

'दिङ्मूर्छोपद्रवाक्रान्ता ।

ततोऽवतारं परमः प्रभुर्भूम्यां प्रहोष्यति ॥'

२. वही, '...परावरेश्वरेश्वरावतारः समुदारः समभूदभूतपूर्वः ।'

३. वही, '.....मुनिमण्डली.....अपराजितां.....अभिष्यतीति वयमपि
गच्छामः ।'

४. अङ्क १ : '...पुत्राः परिणय-योग्याः सञ्जाताः ।'

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को माँग ले जाते हैं ।^१ यज्ञ के समय कुमार अपने को राक्षस कुलान्तक घोषित करते हैं ।^२ रावण धनुष को नहीं उठा पाता, जबकि राम उसे तोड़ देते हैं । परशुराम राम को ईश्वरावतार कह कर स्तुति करते हैं ।^३ ये घटनाएँ बीज को स्पष्ट करती हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण प्रथम अङ्क में मुखसन्धि का स्पष्टीकरण और विकास होता है ।

द्वितीय अङ्क में ब्रह्मकुण्डजा (सरयू) वशिष्ठ को देवताओं की वार्ता सूचित करती है जिसके अनुसार राम रावण के वधार्थ सीता-सहित बन जाना चाहते हैं ।^४ इससे कथा का विविधता सून पुनः जुड़ता है । यह विन्दु प्रकृति है । तृतीय अङ्क में सूर्यपक्षा के नाक-कान कटने, खरादि राक्षसों के संहार और सीताहरण का सत्वर-व्यापार-रूप यत्नावस्था सूचित होती है । यह प्रतिमुख सन्धि है, जिसमें बीज का उद्भेद लक्षित भी है और अलक्षित भी । रावण-वध की भूमिका तो पूर्णतः बन चुकी है किन्तु उसका व्यावहारिक रूप अनिश्चित है ।

चतुर्थ अङ्क में राम-सुग्रीव की मंत्री होती है ।^५ यहाँ से सानुबन्ध पताका गर्भप्रकृति मूल कथा के साथ अन्त तक चलती है । रावण-वध की सम्पूर्ति के लिये सुग्रीव और उनके साथी वानरों का रहना अनिवार्य हो जाता है । सीता के आभूषण मिल जाने से रावण का दक्षिण दिशा में जाना स्पष्ट हो जाता है ।^६ यह प्राप्तिप्राप्ति अवस्था है क्योंकि सुग्रीव की सहायता मिलना निश्चित है । सुग्रीव का प्रमाद और आगे का कठिन कार्य अनिश्चितता भी उत्पन्न करते हैं । यहीं गर्भ-सन्धि चलती है, जिसमें दृष्ट-नष्ट बीज का अन्वेषण होता है, इसका विस्तार हनुमान् के यात्रारम्भ तक मानना चाहिए ।

इसके आगे स्वयंप्रभा और सम्पाती का राम से मिलकर हनुमान् की लङ्का-

१. वही, श्लोक ५५-५६ :

‘यातिका राक्षसो बाधां ससुता कुक्षे क्रतौ ।

धीरो कुमारो दीयेतां हितकारि-धराधरो ॥’

२. वही, ‘रे रे क्षुद्राः इव आयच्छत तावदावां राक्षस-कुलान्तको धनुष्मन्तावायतो भवावः ।’

३. वही, श्लोक—९७ : ‘जय पुरुष परेश --- ।’

४. अङ्क २ दृश्य १ : ‘दिक्शिरोदरणाय विधि-विहित-हितकारी नाम परमपुमानवतीर्णः पुनरिदानीमङ्गनासङ्ग --- ।’

५. दृश्य १ ।

६. वही : ‘रजनोचरो बलादपहरतीति पुनरेकस्मिन्नंशुकाञ्चले बद्यान्या-भरणानि पातितानि ।’

मात्रा सूचित करना^१ प्रकटी प्रकृतिर्था है, क्योंकि कथासूत्र को आगे बढ़ाकर उनका लक्ष्य समाप्त हो जाता है। इसी कड़ी में हनुमान् द्वारा सीता को खोज कर लङ्कादहन द्वारा राक्षस-बल को बाह्य लेना और रावण को चिन्तित करना जोड़ा जा सकता है। पञ्चम अङ्क में ही सेना सामर पर सेतु बाँध कर उसे पार करती है तथा विभीषण जैसा सहायक मिल जाता है। यह नियताप्ति अवस्था एवं अवसर सन्धि है।

षष्ठ अङ्क में उपसंहृति या निर्वहण सन्धि है। रावण-वध का कार्य, प्रकृति और फलावस्था कहा जा सकता है। उपस्थियों और देवताओं का नाश मिट गया है।^२ पृथ्वी रावण के अत्याचार से मुक्त हो गई है। यह राम की धर्मसिद्धि है। सीता की प्राप्ति को कामपूति मान सकते हैं। आगे चलकर अयोध्या में राम का राज्याभिषेक अर्थ-सम्पूति है। इस प्रकार त्रिवर्ग-सिद्धि होने से सम्पूर्ण फलसम्पत्ति को उपलब्ध हो जाती है। अवतार धारण करने का प्रयोजन सम्पूर्ण हो जाता है। शास्त्र के मतानुसार इस निर्वहण सन्धि में बद्धभुत रस का भी प्रयोग हुआ है।^३

प्रस्तुत नाटक में विष्कम्भक का एक ही प्रयोग किया गया है, जैसे कि कथावस्तु के आरम्भ में लिखा जा चुका है। यह प्रथम अङ्क के भी पूर्व है और वस्तुतः प्रस्तावना का ही अर्थ है। यदि इसे विष्कम्भक ही मानें तो वह भी शास्त्र के अनुकूल है, क्योंकि उसका लक्ष्य नीरस वस्तु-विस्तार का परित्याग करना है।^४

विदूषक की उपस्थिति केवल नाटकारम्भ में दशरथ की राजसभा में है।

१. वही : दृश्य ४ : 'गूधः—महाराज ! युष्मत् कृपापात्राणि वानरा मिलिताः ... श्रेष्ठामलः ' पारं प्रागाद् गदह्मनिय' ॥ ६३ ॥'

२. अङ्क १ पृ० ७७ : सुकण्ड : 'दिङ्मूर्ध-भरण-स्वामिन्मभूत्सर्वाऽभयङ्करम् । हन्तुं स्वयैव शोच्योऽयं वरावर-विजित्वरः ॥'

३. पृ० ७२ : 'द्वयोरपि तूष्णीरादीदृशानां बाणानामुपादानं मञ्जुसिञ्जिनी-संमोजनमाकर्षण-प्रहरणे अपि न कोपि निरीक्षितुं शक्नोति ।

कीदण्ड-निःसरदक्षिणित-काण्ड-भाला-शल्याग्र-गृह्णन् बलिता नितरां विशाला । लग्ना द्वयोरपि धनुर्धरयोः शरीरेषोदण्ड-दण्ड पटलोव विभाति भूरि ॥'

४. दशरूपक : १।२८-२९ :

'आदी विष्कम्भकं कुर्यादङ्कं वा कार्ययुचिततः ।

अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् ॥

यदा सन्दर्शयेच्छेषं कुर्याद् विष्कम्भकं तदा ।'

यह विदूषक रामलीला के भाँड़ों की भाँति अवलोल शब्दों के प्रयोग कर कुत्सित हास्य उत्पन्न करता है। यह संस्कृत में वार्तालाप करता है।^१ वह अन्य नाटकों के विदूषकों की भाँति नायक का सखा नहीं है।

नाटककार ने अन्त में एक ओर सरयू के मुख से राम का महाप्रयाण सूचित कराया है दूसरी ओर गङ्गा के मुख से दार्शनिक मत प्रकट कराया है कि राम अयोध्या में नित्य वास करते हैं। यह गुप्त प्रसङ्ग सरयू छिपाए हुए वो ओर गङ्गा से सुनकर मुस्कुरा देती है। यही नाटक समाप्त होता है। इस प्रकार दर्शन के प्रभाव से दुःखान्त वस्तु को सुखान्त करने की चेष्टा की गई है। कवि चाहता तो वह राम के राज्याभिषेक के समय नृत्यवर्णन के अन्त में नाटक की समाप्ति कर भरतवाक्य प्रस्तुत कर सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। सप्तधार अन्त में प्रकट होकर वरदान माँगता है जो भरतवाक्य की अपेक्षा फलस्तुति अधिक प्रतीत होती है।

युद्ध और वध के प्रसङ्ग रङ्गमञ्च पर नहीं आने चाहिए,^२ किन्तु इस नाटक में युद्ध का अवयधिक विस्तार होने से ये दोष सम्भवतः अपरिहार्य होकर प्रस्तुत हो गए हैं।^३

इस नाटक में अनेक स्थलों पर नारी-पात्र एवं दास-वर्ग भी संस्कृत का प्रयोग करते हैं।^४ इन व्यक्तिक्रमों के पश्चात् भी यह काव्य नाटक के न्यूनतम मूल्यों से हीन नहीं है।

२. संवादों की प्रभावात्मकता और अभिनेयता—

नाटककार ने आनन्द-वधुनन्दन में निम्नलिखित पात्रों की योजना की है—
पुरुष पात्र—१. दिग्यामराज (राजा दशरथ), २. हितकारी (राम),

१. दृश्य १ : 'नारी गङ्गा भवतीति ।...अहमपि गङ्गास्नानं करोमि ।'

२. दशरूपक : ३।३४-३५.

'दूराध्वानं वधं युद्धं...प्रत्यक्षाणि न निदिशेत् ।'

३. अङ्क ४ दृश्य २ : 'हितकारी धरं निस्सारयति । वासविः प्राणः प्रयाणं नाटयति ।'

४. अङ्क १ दृश्य २ : 'देव्यः—

राजेन्द्र लालसास्माकं कदामोपां वधूजनान् ।

निनिरोक्ष्यामहे सान्द्रानन्दैर्नयन-नोरजैः ॥'

उपा अङ्क १ दृश्य १ : 'नटी--हे नाथ ! हे नाथ ! प्राप्तास्मि ।'

और अङ्क १ दृश्य ३ : 'वर्षवरः—'महाराजि ! चतुरः कुमारान् रत्नालङ्कार-वडनादिभिरलङ्कृतानाकारयति महाराजः ।'

३. जगद्मर (भरत), ४. धराधर (लक्ष्मण), ५. अग्निदर (यज्ञधन),
 ६. जगन्मोहन (वशिष्ठ), ७. मुग्धनर (विद्वामित्र), ८. चातिनेय (मारीच),
 ९. घनमोद (यशानन्द), १०. सीरकेतु (जनक), ११. धरामुर (बाण-
 मुर), १२. दिक्शिरा (रात्रि), १३. रंगुकेय (परशुराम), १४. आदि-
 कवि (वाल्मीकि), १५. वायव्य (वाक-जयन्त), १६. सोमजनक (धृति),
 १७. मैत्रावरुण (यमज्य), १८. आरुणि (जटायु), १९. रामम (सर-
 राज), २०. त्रिमुग्ध (त्रिशिरा), २१. दीर्घजट (महोदर), २२.
 मुग्ध (मुषोष), २३. ऋताराज (आम्बवान्), २४. त्रेतामल्ल (हनुमान्),
 २५. घामवि (बानी), २६. भुजन्म (अद्भुत), २७. मृग (मग्नापी),
 २८. इन्द्रियकुमार (अक्षकुमार), २९. घनध्वनि (मेघनाद), ३०. भवानक
 (विमोघन), ३१. दण्डिधन (दण्डिमुख), ३२. द्याम (नील) ३३. वैद्यकवि
 (सुपेन), ३४. घटवर्ण (कुम्भकर्ण), ३५. मानवान्तक (मराम्भक), ३६.
 सुरान्तक, ३७. अक्षुधर, ३८. अतिपार्श्व, ३९. दीर्घदेह (अतिपाय), ४०.
 वृषभ, ४१. घट, ४२. घातनयन (मकराज) ।

इनके अतिरिक्त मूत्रधार, पारिपार्श्वक, सचिव, सभासद, बन्दीजन, नट,
 विद्वयक, वर्षवर, द्वारपाल, पथिक, अमात्य, चार, प्रतीहार, दिव्य (अनेक),
 छात्र, शुक, गोन, तार मन्त्री, रावण का मन्त्री, कीर, वृक्षवाटिकापाल, सूत,
 गोरगड, अर्धदेशीय और सुदृक्देशीय मत्स्यक, गन्धर्व भी हैं ।

स्त्री पात्र—१. कुण्डला (कीर्तिष्वा), २. कास्मीरी (वैश्यी), ३. सुहिता
 (सुमित्रा), ४. चातिनी (ताड़का), ५. देवी (जनक-पत्नी मुनयना), ६. ब्रह्म-
 कुण्डला (सरयू), ७. महिजा (सीता), ८. कुटिला (मन्थरा), ९. धनीधर्मा
 (अनमूया), १०. दीर्घनशी (शूर्पणखा), ११. किराती (लक्ष्मी), १२. सुपेन-
 लम्बा (तारा), १३. स्व-प्रकाशिनी (स्वर्णप्रभा), १४. राक्षसी (लङ्का), १५.
 स्वर्चुनी (गङ्गा) ।

इनके अतिरिक्त नदी (दो), मत्स्य (अनेक), राक्षसी, मरुदेशीय बारवधूती
 तथा उर्वशी आदि ३५ अप्सराएँ हैं ।

पात्रों की इस मोड़ को देखने हुए स्पष्ट है कि नाटककार ने अभिनेयता
 और रङ्गमञ्च को सुविधा की दृष्टि से पात्र-योजना नहीं की । वह रामायण
 की राम-कथा से इतना अधिक प्रभावित है कि वह कथा के महत्त्वहीन व्यंशों
 को भी रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सका । नाटक के
 आरम्भ में पूर्व केवल एक बार विष्णुस्मरक का प्रयोग किया गया है । चूलिका
 (नेपथ्य)^१ का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है । युद्धों का विवरण प्रायः सर्वत्र नेपथ्य

से दिया गया है किन्तु उसका बहुत सा अंश संवादों के रूप में भी है। उदाहरण के लिये निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का इतना अधिक प्रयोग है कि रङ्गमञ्च पर लट्ठा के शिस्मयकारी युद्ध का संवादों के माध्यम से विस्तृत विवरण दिया गया है। रसात्मकता पीछे रह जाती है और कथात्मकता सामने आ जाती है। मुष्ट करने वाले कितने ही राजस रङ्गमञ्च पर प्रवेश करते हैं।

नाटककार दृश्यों के विभाजन में भी सफलता से दूर रह गया है। उसका लक्ष्य दृश्य उपस्थित कर रच-सृष्टि करना नहीं, अपितु राम-कथा की कहियों को जोड़ना है। इस दृश्य से अनेक छोटे-छोटे दृश्य उपस्थित किये गए हैं, जो विष्कम्भक आदि की भाँति मोरस-वस्तु-विस्तर को सूचित कर तुरन्त समाप्त हो जाते हैं। कितने ही दृश्य ८-१० पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं।^१ दूसरी ओर कुछ दृश्य इतने लम्बे हैं कि वे सामाजिक को घना कर उसकी रधि समाप्त कर सकते हैं।^२

इस नाटक में रङ्गमञ्च से सम्बद्ध निर्देश केवल पात्रों के बाह्य अभिनय और संवादों से सम्बन्ध रखते हैं। उनमें मञ्च की सज्जा में आवश्यक परिवर्तनों के सङ्केत नहीं हैं। जिस स्थान में कौन-सी घटना हो रही है और उसके अनुसार मञ्च पर कैसे परिवर्तन अपेक्षित हैं, यह बात पूर्णतः सामाजिक की बोधगम्यता पर अथवा अभिनय के भावोद्दिग्दर्शकों पर छोड़ दी गई है।

इसी प्रकार कुछ स्थलों पर काल-मर्यादा का सम्पूर्णतः अतिक्रमण हुआ है। लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम विलाप कर रहे हैं। दैत्य के सुभाने पर हनुमान् दूर से औषधि लाने के लिये राम से आज्ञा माँगते हैं। राम आज्ञा देकर उन्हें अयोध्या का समाचार लाने के लिये भी कहते हैं। हनुमान् उधर निकलते हैं और इधर राम कहते हैं कि बहुत दिलम्ब हुआ। उनके इतना कहते ही औषधि लिये हुए हनुमान् पुनः प्रवेश करते हैं^३ (जैसे वे दरवाजे से ही लौट आए हों)। इस कथित विलम्ब की अन्भूति सामाजिक के लिए अवश्य है, जब कि आगे चल कर राम विलम्ब का कारण माँ पूछते हैं और हनुमान् बतलाते हैं कि वे अयोध्या

१. अङ्क १ दृश्य २५, ६ तथा अन्यत्र।

२. अङ्क ६ दृश्य ५।

३. अङ्क ६ : 'हितकारी-याहि, वृत्तान्तमप्यपराजिताया गृहोत्वेहायाहि।
नेतामल्लः-तथा (इति निष्क्रान्तः) ।
हितकारी-महान् विलम्बो बभूव। नायातस्नेतामल्लः।
किन्तु कारणं स्यात्। (ततः प्रविशति नेतामल्लः ।)'

में भरत के वाणों से आहत होकर मूर्छित हो गए थे और वशिष्ठ के उपचार करने से स्वस्थ होकर आए ।

संवादों में पद्यों का अतिमात्र प्रयोग है । उन संक्षिप्त गद्यात्मक वाक्यों का अभाव है जो भ्रम का स्पर्श करे । यही नहीं माघोद्रेक के समय पद्यों का प्रयोग अस्वाभाविक भी है । इन त्रुटियों को देखते हुए एक ही कारण समझ में आता है कि नाटककार का प्रमुख लक्ष्य है, ईश्वर के अवतार राम की कथा प्रस्तुत करना । उसने नाटक को मूलतः पाठ्य का रूप दिया है, प्रेक्ष्य का नहीं ।

उपयुक्त त्रुटियों के होते हुए भी अमिनेयता की दृष्टि से इस कृति को नितान्त अक्षय्य मानना उचित न होगा । नाटककार ने कथा को संक्षिप्त करने का प्रयत्न प्रयत्न किया है । प्रारम्भ का विषय हमें सूचित करता है कि पुष्पों की प्रार्थना पर रावणादि राक्षसों के विनाशार्थ अयोध्या में परेश का जन्म हुआ है । इस प्रकार राम-जन्म की विस्तृत भूमिका विषय में सिमट जाती है । राम के वनगमन का सम्पूर्ण प्रसङ्ग आदिशिव की दिव्य के साथ हुई कुछ ही वाक्यों की शर्मा में सीमित कर दिया गया है । और और रीति रस की उद्भावना को लिये कवि जहाँ चित्रकूट में भरत के प्रवेश पर लक्ष्मण के ओजस्वी उद्गारों का विस्तार देता है, वहाँ वह राम और भरत के इस मिलन से उत्पन्न प्रश्नों को संक्षिप्त संवादों में ही निबंटा देता है । इसी प्रकार सीता को शोक को भी संक्षिप्त किया गया है ।

नाटक को जनहृदय के अनुकूल बनाने के लिये नाटककार ने रामलीला की शैली को अपनाते हुए कुछ विशिष्ट संवाद प्रस्तुत किये हैं । इनमें प्रमुख पद्यों की अंश रूप में भी पात्र बोलते हैं ।

प्रथम संवाद रावण-वाणामुर की वार्ता के रूप में है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

‘दिक्षिराः—भुजावरं वहन्महो नु विस्मृतः परावरान् ।

शरामुरः—सहस्रबाहु-विक्रमं त्वमेव चेत्सि विष्टे ॥

दिक्— धनुस्तुलायां सन्तोष्य लक्ष्यं त्वं निजं बलम् ।

श्रोतयिष्येहमेवेदं परावृत्य यदैष्यसि ॥

शंरा०— इदं धनुर्गुरोरास्ते, धत्ते वन्दन-योग्यतान् ।

श्रोतयिष्यसि चेन्नापि करिष्ये कृत्यमस्ति यत् ॥

दिक्— धनुर्भङ्गत्वा तवापि मदमङ्गं करोमि ।

(इति परिकरं बद्ध्वा धावति) ।

इस संवाद में सम्पूर्ण कथा के प्रतिनायक एवं सत्तार को अन्यायपूर्वक

कम्पित करने वाले रावण को ज्ञानासुर के मुख से फटकार मिलना और घनुष तोड़ने में रावण का असफल होकर हास्यास्पद दनना लोकशक्ति के अनुकूल है और अभिनेयता की दृष्टि से उसका महत्त्व है ।

दूसरा संवाद परशुराम और राम का है, जिसमें लोकदृष्टि में क्रमशः पूज्यत्व प्राप्त करने वाले नायक राम को कट्ट वचन कहने वाले परशुराम का अग्र में मानभङ्ग होता है । उदाहरण के लिये एक अंश देखिये—

‘रैणुकेयः—जानासि किं न मां त्वम् ।

हितकारी—भार्गव भगवन्तवैपि किल्बिषम् ॥

रैणु०—वेत्ति हृदन्धो न हि माम् ।

हित०—प्रभवन्तं को न जानाति ॥ १९० ॥

रैणु०—मङ्गत्वा पिनाक्रममयो बहु मायमाणः

सिप्रं दिवं जियमिपुः खसु दृश्यसे त्वम् ।

हित०—बालेन खेलनवत्ता कलितं विमग्नं

सद्योजनार्हमिदमत्र भवेत् कथं नु ॥ १९१ ॥

... ..

शान्तममर्दं मुनिरिति पुनरपि गुरुनिन्दनं रटयति ।

अरिदर देहि धर्मं पश्यामि करोति किं मुनिः कुपितः ॥ १९० ॥’

तीसरा महत्त्वपूर्ण संवाद है राम और बाली का । यदि बाली ने स्वयं राम से कहा हो कि तुम्हारे जैसे जगद्विजयो की जीत कर मैं बलवानों में बलवान् होना चाहता हूँ, साथ ही बाली ने स्वयं पहले प्रहार किया हो तो राम के शौर्य-प्रदर्शन का मूल्य निश्चित रूप से बढ़ जाता है और सादर्योपपन्न में वृद्धि होती है । बालि-वध के प्रसङ्ग में यह वस्तु मौलिक तथा अनेक नाटकों से समन्वित है ।

‘वासविः—को युवां भ्रातरो भव्यौ ।

पराधरः—आवां सत्रिय-नन्दनौ ॥

वा० —आयते दर्शनेनेतत् सविरोपमुदाहर ॥ १३ ॥

धरा० —दिग्यानराजसूनुहितकारी जगति भीत-सत्कोतिः ।

वा० —(हितकारिणं निरीक्ष्य)

अतिमुन्दर-मृदुलाङ्गो

रासम-संहार-लज्ज-विषयोऽसि ॥ १४ ॥

हितकारी—कस्त्वानुगोऽस्ति बलवान्
येन गृहीतं परं त्रिगुर्वरम् ।

वा० —प्रबलस्त्वमेव एव-

स्त्रिजगति जितवान् सहस्रनुज-जयिनम् ॥ १५ ॥

जगज्जितिल्लामं त्वां जयं स्तूजंदाजसम् ।

यदा तदा त्रिजगति स्यामहं बलिनो बली ॥ १६ ॥

हि०— सामुधः स्याः सिपुतोऽह ते यनु-शरधरः पुरः ।

वा० —कवोनामायुधं दन्ता नखा इन्द्राशिलादयः ॥ १७ ॥

{ इति कोल-लाङ्गुलेन धौलमुत्पाद्य निशिवति } ।

बीमा विविष्ट संवाद अङ्गद-रावण के बीच है। सीताहरण का कलकू
जड़ित करने वाले राक्षसाली रावण को निर्भयशान्नुर्वक कठोरतम अनयम्
बहुनेवाला अङ्गद अवश्य हो लोकरात्रि के अनुकूल पाव होगा—

‘मुजभूषणः—स्वो-धोरः कित कुगस्ते ?

दिक्शिराः—नास्ति नेत्रद्वयं किमु ?

मुजभूषणः—विलोभ कि स्वमेवास ?

दिक्शिराः—कटु वक्तुं किमावतः ?

उत्सुक्ता कोटि के संवाद अनिनेरता की दृष्टि से अवश्य ही प्रभावो एवं
बाह्यादजनक माने जायेंगे ।

नाटककार ने आनन्द-रघुनन्दन ने कुछ रोचक पत्र-व्यवहार प्रस्तुत किये हैं।
पहली पत्रिका आदिबाबि की है, जो सिम्प धुतधर (सूत्रधार) के समीप
जाती है। यह नाटक की भूमिका है और पद्यात्मक है। दूसरा पत्र जनक
द्वारा दशरथ के नाम है, जिसमें दशरथ की आमन्त्रण है, तीसरा दशरथ द्वारा
जनक के आमन्त्रण की स्वीकृति के रूप में है। चित्ती रात्रादियों में महाराजाओं
के मध्य चलने वाले पत्र-व्यवहार की पद्यात्मक शैली की छाया इन पत्रों में
प्राप्त होने से ये जन-रात्रि के अनुकूल हैं। इसी वृत्ति में अधिक नाटकीय उत्त्व
प्रकट करने वाला पत्र रावण का है, जो बालों की समा में दार नामक मंत्री
द्वारा पदा जाता है। यह सर्वाधिक रोचक है—

‘स्वस्ति श्री महाराजाधिराज-श्री बहिराज-श्रीनान्-मित्रदय-श्रीवासवि-
महावीर-रणधीर-महाशयेषु छद्मातः श्री राससेन्द्र-महीमहेन्द्र-श्रीविराजमान-
मानोपदे-विश्वविजयि-श्री-श्री-दिविशरतः समाधिषः समुत्तमन्तु । आवदोर-
कुचलमिह जगति नालीकजम्भा नालोलिखदेव । विलेपतावदिदानीम् । कावनि
रानकुमारो...

ती विघृत्य समुद्दण्डो दोर्दण्डोद्धृत्य-मण्डितौ ।

कुमारो सुकुमाराङ्गौ प्रेपणोयो ममान्तिकम् ॥ ७ ॥

इति शं स्तात् ।'

इस पत्र में रावण द्वारा बाली को आशिष लिखना और यह कहना कि 'हम दोनों का अकुशल ब्रह्मा ने लिखा ही नहीं' (अतः कुशल-प्रश्न की आवश्यकता ही नहीं) एवं राम और लक्ष्मण को पकड़ कर लङ्का को भेज देने का निर्देश देना—ये उचित ही एक ओर रावण के अभिमानी स्वरूप का अङ्कन करती है, दूसरी ओर उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक के लिये आकर्षक और अनुरञ्जक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने प्राचीन परम्परा के साथ नवीन परम्पराओं का योग किया है और बहुजन-समाज को रसियों का समावेश कर नाटक को एक नयी दिशा दी है। नाटककार पाश्चात्य रङ्गमञ्च और नाट्यकला से परिचित या प्रभावित नहीं है। अतः आधुनिक दृष्टिकोण से इस नाटक का परीक्षण करना अग्याय होगा। पौराणिक नाट्यकला के सभी अङ्गों से अवश्य ही नाटककार परिचित है, साथ ही वह उसमें नवीनता का समावेश करता है, जिसमें राजपूत-संस्कृति की झलक है।

३. शैली—

आनन्द-रघुनन्दन नाटक में प्रयुक्त रचना-शैली मध्यम श्रेणी की कही जा सकती है। उसमें प्राप्त भाषा और पदावली अवश्य ही अनेक स्थलों पर विवरणात्मक, मोरस और सिधिल है। कथात्मकता का आश्रय लेने से नाटककार ने बहुत सी सूक्ष्म वस्तु को दृश्यों के रूप में ग्रहण किया है, अतः घटनाओं के विवरण रस-हीन है। यह होने पर भी नाटक का आये से अधिक भाग काव्यात्मक है। इस अंश में सरसता, सालङ्कारता एवं भावप्रवणता के दर्शन होते हैं। ऐसे स्थलों पर भाषा सघन, प्राञ्जल एवं प्रौढ़ है। रसों और भावों के अनुरूप दीर्घ-समास-युक्त, अल्प-समास-युक्त एवं समास-हीन पदावली के यथास्थान प्रयोग हुए हैं।

नाटक में वीर रस प्रधान रूप में लिया गया है। इसके अनुकूल अोज गुण, आरभटो वृत्ति और गौरी रीति के प्रदर्शन में कवि सफल हुआ है। अोज का परिपोष करने के लिये नाटककार ने रौद्र रस को अत्यन्त सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अद्भुत और भयानक रस की अभिव्यक्ति भी पूर्ण सफलता के साथ हुई है। शृङ्गार रस की विशेष निष्पत्ति के लिये कवि ने राम की राजसभा में अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वगोत्र प्रस्तुत किये हैं। हास्य, बीभत्स और करुण का स्पर्श-भाज हुआ है। शान्त रस नाटक में निषिद्ध

होने से नहीं लाया गया । भक्ति और वात्सल्य का भी स्पर्श किया गया है । आवश्यकतानुसार सभी गुणों, वृत्तियों और रीतियों के प्रयोग किये गए हैं । पत्रिकाओं और प्रवृत्ति-वर्णनों में समासाद्य उत्कलिकाप्राय शैली के गद्य प्रयुक्त हुए हैं । संवादों में छोटे-छोटे मर्मस्पर्शी गद्यवाक्य भी सुलभ हैं ।

लक्ष्मण देखते हैं कि कुम्भकर्ण वानरों का संहार कर रहा है । उनके हृदय में बीर रस का सञ्चार होता है और वे निम्नलिखित उद्गार के रूप में अपना उत्साह प्रकट करते हैं—

‘सुर-सुशान् कपीन् हंसि किमर्थं युद्ध-दुर्मदः ।

मम सम्मुखमागच्छ रण-रङ्ग-रत्नं पिब ॥’^१

परशुराम के आ जाने से बाराह के व्योम्बा की ओर बढ़ने में गतिरोध हो गया है; दशरथ भूषिष्ठ पड़े हैं; राम के विनम्र वचन भी परशुराम पर कोई प्रभाव नहीं डालते; परशुराम कटु वचन कहते-कहते बहिष्क और विरवा-मित्र की भी निन्दा करते हैं; तब राम के हृदय में बीर रस जागृत हो जाता और वे धनुष्म से धनुष मांगते हैं—

‘तान्तममहं मुनिरिति

पुनरपि गुरुनिन्दनं श्रयति ।

अरिदर देहि धनुर्मे

पश्यामि करोति किं मुनिः क्रुपितः ॥’^२

बाली ने जगद्विजयी राम को धनुष चारण किये हुए सामने पाया और उसके मन में राम को पश्चात्तित करने की इच्छा से उत्साह प्रकट हो गया—

‘जगज्जयितलार्म त्वां जयेयं स्फूर्बदोजसम् ।

यदा तदा त्रिजगति स्यामहं बलिना बली ॥’^३

उपर्युक्त उदाहरण युद्धवीर के प्रदर्शित किये गए हैं । अनेक आचार्यों ने दानवीर, धर्मवीर और दयावीर को भी गिना है ।^४ मीचे इनके भी उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

विभीषण राम की शरण में आया हुआ है । कहीं यह राक्षसी की कपट

१. अङ्क ६, पृ० ७४ ।

२. अङ्क १।१९० ।

३. अङ्क ४।१६ ।

४. साहित्यदर्पण : रामचरण तर्कवागीश टीका : निर्णयसागर : दम्बई : १९३९ : परि० ३।२३४ : ‘स च दान-धर्म-मुद्धेर्दयया च समन्वित-श्चतुर्धा स्यात् ।’

नोति हो, इन आशंका से सुग्रीव आदि विभीषण को दण्डित करना चाहते हैं । शरणागत की रक्षा को धर्म मानने वाले राम का धर्मवीर और युद्धवीर का रूप इन अवसर पर एक माय उद्दिष्ट होता है और वे कहते हैं—

‘भो भोः सूक्त्यः शरणानत-पालकोहं
नैव स्वजेषमिह मित्रतया प्रपन्नम् ।

कुन्ताम्यहं खलु कुल नखरस्य कोट्या,

किं कर्तुमोक्षत इमे मय कोपपीषाः ॥’^१

चित्रकूट में वशिष्ठ राम से कहते हैं कि भरत की इच्छा पूरी करो (जयोंव्या को छोट चलो) । तब राम अपनी धर्मवीरता से, पिता की आज्ञा को अन्तिम बात कह कर विनम्र दृष्टि द्वारा उन्हें विवश कर देते हैं—

‘माता-पितरनुज्ञादावैबानुद् वन-सेवने ।

अद्विषार्यं भक्तान् ब्रूयात्तत्कुप्यां भयवन्नहम् ॥’^२

समुद्र पार करने से पूर्व ही विभीषण को लङ्का का राज्य देने का सङ्कल्प राम की दानवीरता का परिचय देता है—

‘सूक्त्यानय पापीषेः पावः प्लवग-पायिव ।

रक्षःपुरो-महाराज्य-महाराजं करोम्यमुम् ॥’^३

सीता के प्रति अनुराध करने वाले काक (जयन्त) ने राम के बाण के मय से जब उन्हीं को रक्षा के लिये आर्त्तभाव से पुकारा, तब राम को उस पर दया आ गई और उन्हींने उसे क्षमा कर दिया । यह राम की दयावीरता का उदाहरण है—

‘ममामोघः सरः काक नमोवाकेन किमवेत् ।

दत्त्वा दुर्म पाप-पाकं यादृि नाकं ययामुखम् ॥’^४

रावण को युद्ध के लिए आते हुए देख कर सुग्रीव की निम्नलिखित उक्ति में रावण का स्वरूपवर्णन रौद्र रस का सुन्दर उदाहरण है—

‘धृन्वन् कोदण्ड-भौर्वी करकमलयुतं क्षानयन् बाणमेकं,

वर्षान्दिमोग-नेत्रः स्फुरदिगुधियुगः शक्रनीलाद्रिशोभः ।

अघार्यं वर्म-मध्ये समर-भर-महावीरतोत्तुल्ल वध्मा,

नः पर्याप्नोति पश्यन् रजनचर-मतिर्नन्द मन्दं हसंश्च ॥’^५

परशुराम की निम्नलिखित उक्ति में भी रौद्र रस है । साथ ही इसमें ओज गुण, बारम्बार वृत्ति, गौड़ो गीति एवं रूपक अलङ्कार द्रष्टव्य हैं—

‘कोदण्ड-ध्रुमिषु निमज्जये शितोन्द्रं

परशूर्मो मुभटतरुन् प्रवाहयामि ।

प्रस्फूर्जतः समुद-कोप-बाहवाग्नि-

ज्वालासु क्षितिप-मुतान् जुहोमि युष्मान् ॥’^१

राम और रावण का विस्मयकारी द्वन्द्व-युद्ध अद्भुत रस की सृष्टि कर रहा है—

‘नालदण्डे धनुर्भोग्यां मार्गजारोपणं द्वयो,

शरासारा उभयसौ नारुं नोरुघ्नयन्त्यहो ॥’^२

कुम्भकर्ण को देखकर आश्चर्य में पड़े हुए बानरो में उसके अद्भुत रूप की खर्चा होती है—

‘शास्त्राभूगंगनगैः परिवीर्य-मूर्ति-

रभङ्गपाषाणैश्च विकराल-वक्त्रः ।

ग्रहाण्ड-खण्ड-पारमण्डित-रोमकूपः

स्तूना महागव घन समरे विभाति ॥’^३

छाटका के निम्नलिखित स्वरूप-वर्णन में आरभटी वृत्ति के साथ भयानक रस की निष्पत्ति हुई है—

‘एषा दोर्घ-शिरोरहैर्पनजटामुद्घाटयन्ती स्फुटं

नेत्राङ्गार-ीचला-लता-समुदयरच्छादयन्ता विशम् ।

दण्ड-प्रान्तर-सन्धि-सङ्गत-नृणा रक्त वह्न्या यमो-

न्मीलत्कृत्तिपटा गलान्न-विहता दृष्टा ध्रुवं चदिनी ॥’^४

लङ्का के युद्ध के निम्नलिखित वर्णन में अनुप्रासों के योग के साथ बीभत्स का निदर्शन है—

‘उन्नादानां कदम्बैर्मुवन-भय कृता भूरि मञ्जोदकान्तं

निर्मज्जरमुन्मदानां तरलगतिजुषां मण्डलं योगिनोनाम् ।

नाभूत् वशापीदमाशोषनमिति कुरुते कालिकाट्टाट्टहासं

क्रन्दं क्रन्दं शृगाली कवलर्यति पलं द्रागशालोन-माया ॥’^५

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को दतलाते हैं कि जनक अपनी अयोनिजा (पृथ्वी-कर्पण से उत्पन्न) कन्या सीता का स्वयंवर रथ रहे हैं। इस पर लक्ष्मण का निम्नलिखित प्रश्न विष्ट हास्य उत्पन्न करता है—

‘ओ गुरो ! सा सावद्योनिजा राजकन्या पापाणी किवा दाहिजा कि पुनः प्राचीन-धातुजा वा ।’^१

माधुर्य गुण का प्रयोग करण और शृङ्गार रस के दोनों वश (सम्भोग और विप्रलम्भ) के साथ किया जाता है । नाटक में इसके उदाहरण सुलभ हैं ।

रावण की शक्ति के प्रहार में मूर्च्छित लक्ष्मण के जीवन की अवस्था सन्दिग्ध हो जाने से राम के निम्नलिखित उद्गारों में करण रस के साथ भारती घृति, वैदर्भी रीति एवं माधुर्य गुण द्रष्टव्य हैं—

‘प्राणस्य ते मेऽत्र मृतं दत्तान्तरे
जोषाम्यहं चित्रमिदं धनुर्धर ।
दृष्ट्वा यदा प्रदयति मां तव प्रसूः
कुनास्ति पुत्रस्तथ सङ्ग-सञ्जतः ॥
किमुत्तरं देयमयो मया तदा
विधे विधानं किमिदं तवाद्भुतम् ॥’^२

वैदर्भी घृति, पाञ्चाली रीति और माधुर्य गुण के साथ समासोक्ति और उपप्रेषा बलङ्कारों से युक्त निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त निशावर्णन में शृङ्गार के सम्भोग वश का पूर्ण परिपोष है—

‘रक्षतां विलोक्य दिशं रुचिरां प्रतीचीं
मित्रागमां नु पृष्ठ-कुङ्कुम-पद्म-रागाम् ।
ययामं जगद् विदधती च निशागतेष्व-
मुरकण्डिता किमु निज प्रिय-सङ्गमाय ॥
शृङ्गार-कान्ति-मलिनामरण-प्रसून-
सय्या-सितांसु-किरणाहित-मदति-श्रीः ।
कान्तः सुधाकर उपैष्य सुरस्मृतेऽत्र
पीयूषवर्षमृदमन् स करिष्यतीति ॥
यमुना विहर्य विषुना
रीरा निर्माति विरजनायेन ।
तारावति हस्त-परा
मुदिता मधुरं द्विजाः स्वनन्तोमे ॥’^३

अक्षरा-नुरय के वर्णन में कवि ने नायिका भेद प्रस्तुत किया है । इनमें से अमिसारिका का उदाहरण यहाँ दिया जाता है । इसमें अनुप्रासों के प्रयोग के साथ शृङ्गार रस प्रदर्शित है—

‘गङ्गा-तुङ्ग-सरङ्ग-गौर-वसना हारावली-धोमना
दृष्ट्वा दर्पण-विम्बमिन्दु-वदना सर्वाङ्ग-शृङ्गाणि ।

मन्दोक्त्य मुखेन्दुना हिमकरोद्योतं प्रमान्ती प्रियं
स्वीयां निन्दति गन्ध-सिन्धुर-यति प्राणेश-सङ्गातिरा ॥’^१

इसी प्रकार गुप्ता नायिका के निम्नलिखित उदाहरण में परिपूर्ण भाव-
व्यञ्जना है—

‘वर्षत्युन्नत-वारिदे जलमुपादानुं प्रभू-प्रेषितां
स्निग्धास्य-सखलितामयं तु सुजनः प्रोत्थापयामास माम् ।

मर्द्दं जातमिहागता स्वमपि यन्मोचेदिहस्थो जनः
किं किं नो वचयेदभूः प्रियसखि त्वं मे सहायाघना ॥’^२

ऋष्यमूक पर्वत पर वास करते समय राम के इस कथन में विरहावस्था
सुन्दर रूप में व्यञ्जित हुई है; इसमें सात्वती वृत्ति और वैदर्भी रीति है—

‘महिजाङ्गानि स्पृष्ट्वा,
स्पर्शं प्रकृष्यं प्रकृष्टाङ्गुलरति ।

विरहेण दत्तमानां
तनुमेतां क्षिप्रिय स्वरया ॥’^३

विश्वामित्र के साथ राम-लहमण की तपोवन की ओर जाते देख माता का
वात्सल्य पश्चात्ताप के रूप में फूट पड़ता है—

‘व्रजति मम कुमारवेद्य आदाय योगी
कथमहह त्रितोर्णी प्राणसारो नृपेण ।
मुदुनि कुसुम-तल्पे क्षिप्यतो यौ व्रजन्ती
वनभुवि नु भवेतां तौ कथं सौख्यवन्तो ॥’^४

सपत्नि की किराती के निम्नलिखित उदाहरणों में भक्ति-रस के अन्तर्गत
वास्य भाव प्रस्फुटित है—

१. अङ्क ७।७९ : देखिये दशरूपक २।२८ :

‘कामार्त्तामत्रेत्कामं सारयेद् वामिसारिका ।’
भानुदत्त के अनुसार यह व्योत्स्नाभिसारिका है ।

(देखिये रसमञ्जरी : चौखम्बा : बनारस : १९०४ : पृ० १७७) ।

२. अङ्क ७।५७ : बरोड़ा नायिका के ६ भेदों में से प्रथम गुप्ता है । यह
उदाहरण गुप्ता के प्रथम प्रभेद वृत्तमुरतगोपना का है—

रसमञ्जरी : पृ० ६९ : ‘गुप्ता त्रिधा । वृत्तमुरतगोपना-१’

३. अङ्क ४।४३ ।

४. अङ्क १।५८ ।

‘यं वीक्ष्य राक्षसा अपि
 मुह्यन्त्यद्वाविसङ्गरं रुचिरम् ।
 यं संस्मरतः स्फुरति
 धावन्-सन्ध्येव मानसं शम्भोः ॥
 विचरन् कदम्बतीह
 त्रिभुवन-भर्ता धराधरेण समम् ।
 मम शिरसि विश्वनाथः
 चिशिरं च करं करिष्यति कृपालुः ॥’^१

ऊपर कुछ अलङ्कारों का निर्देश किया जा चुका है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। कवि ने शब्दालङ्कारों के रमणोक्त प्रयोग किये हैं। अनु-प्रास की छटा निम्नलिखित श्लोक में दर्शनीय है—

‘वज्रवत्पञ्चवटो सरिद्-वरत्तटी-निष्ठा बिभारमुद्मटी
 भूता राग-रजः करो स्रग्दूशा दूषया सुताम्भोधरी ।
 सन्तापारमटी भटी सुमलतावेगी सुपर्णोत्पटी
 कत्थो याति घटोन यत्र रचिता कान्ता कुटी स्नन्टी ॥’^२

रावण-वध के पश्चात् राम के दर्शनार्थ उत्कण्ठिता सीता के वर्णन में उपमालङ्कार देखिये—

‘धातकीव तृपिताम्बुद-मयं
 पूर्णचन्द्रमिव धार चकोरो ।
 द्रष्टुमुत्सहत उत्कलिकार्ता
 स्वामिनं स्वमथ राजकुमारी ॥’^३

परगुराम की इस उक्ति में अनुप्रास के साथ रूपक की संसृष्टि द्रष्टव्य है—

‘कारयति कि ददामिद-
 मवनिप-गर्वाटवी-दध-ज्वाला ।
 चित्रा कुठार-धारा
 हित-रिपु-दाराभि-नोर-विस्तारा ॥’^४

राम के द्वारा ऋष्यमूक पर्वत के वर्णन में अपह्लासि का प्रयोग किया गया है—

'ननु कलमति षण्ठा-किङ्किणीनां निनादं
स्वगत-विरथ-पङ्क्तिरन्तर्धानिम्बकानाम् ।

शिरसि ललित-धानु-श्रेणि-शृङ्गारशालो
न हि गिरिरयमास्ते किन्तु मत्त-द्विपेन्द्रः ॥'^१

राम के हो मुख में सुवेल पर्वत पर चन्द्र-बन्धु-वर्णन के रूप में विरह की
ध्वनि से पूर्ण अस्तुति का एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

'न स्यामता घसिनि शुभ्रतरेभिराम-
श्यामा-विभोग-जनित-स्पर्-वाण-वर्षे ।

रःप्रोद्धतं हृदयमस्य तदन्तरिणं
सलक्ष्यते सज्जल-नोरद-नील-कान्ति ॥'^२

राम की देनकर परशुराम का कथन अनुप्राण एवं गन्धेह का उदाहरण है—

'अहो कामः स्याच्चेत् स्मरहरघनुनामि कथनात्
त्रिदूरं यातः स्यात्कर-कमल-वद्धाञ्जलि-गूढः ।

रसस्त्रास्त्रादारमा प्रभवति न कर्तुं करबलाद्-
गुणाकृष्टि कष्टादपि जनति शृङ्गार-चणितिः ॥

हरि' स्याच्चेत्पञ्च प्रमृति-रमणोपायदुष-वरः
चतुर्बाहुस्त्वोदूङ् नुरतिषु च राजेत् क इतरः ।

मनोहारो हारो रुचिर-रुचि-धारी प्रति-तनु-
रहं कोपं भाति प्रकट-दितकारि-व्यतिकरात् ॥'^३

रावण द्वारा अपनी शक्ति की प्रशंसा में प्रकट किये हुए उद्गार में अनुराध
के साथ अस्तुति धलङ्कार देखिये—

'मद् दोर्दण्ड-प्रचण्ड प्रहृति परिदलत्कालदण्डः सदण्डोऽ-
गाद्-सह्याण्डादस्रण्डाद्-भुवन-भय-विवातापि चण्डानु-हिम्नः ।

ग्रह्याण्डास्रण्ड-भाण्डे प्रसूतमतितरा प्रेक्ष्य चण्ड-प्रतापं
भातण्डः कादिसौकः सरति दशदिशो मौनमात्माय मन्दम् ॥'^४

कीमल-कान्त पदावली में शृङ्गारमूक के वर्णन के रूप में कवि का वर्णकालीन
प्रकृति-चित्रण द्रष्टव्य है—

'प्रसुमर-मद-धारो निर्वरेनिर्भरदिम्-
नन्द-किसलय लोलद्राजि-राजत्कुव-धोः ।

अनुवहति ततानां चामर-श्रेणि-शोभां

स्तवक-भर-नतानां चक्रवालैर्लतानाम् ॥^१

गद्यों के क्षेत्र में चूर्णक शैली के प्रभावकारी लघु वाक्य भी मिलते हैं—

‘मर्यादायामतीतायां न स्यात्स्यन्ति मत्प्रायाः ।’^२

‘इदानीं वनितानां विद्वासमिह जगति किमिति कोपि करिष्यतीति ।’^३

‘अस्मै फलं दत्त्वा स्वामपि प्रबोधयितुमिह ।’^४

जैसा पहले लिखा जा चुका है, कवि ने दीर्घ-समास-युक्त चमत्कारपूर्ण गद्यों के भी प्रयोग किये हैं । एक उदाहरण प्रस्तुत है—

‘पुस्तूत-हरितिर्भगवान् हरिदम्बः प्रकाशमासादयत्यय दक्षिणस्यां दिशि कृपनीकृतार्ति-विशारदानन्त-शारदान्तरद-शारदारविन्द-कुन्द-कान्ति-सन्ताननपरि-माण-दोषिति-प्रतान-वितान-वितादमान-दिगन्तरालमकाल-कुबलपिनी-दल्यमा-स्रग्दन्तहामण्डलमिदमुद्दाम-भार्तृण्ड-नण्डलोद्योत-मण्डली-कृण्डलीकृदणिमपूर्वं लोचन-गोचरी भवति । (पुनर्नेत्ये) अगन्नाय ! पुष्पकं नाम विमानमिदम् ।’^५

प्राकृत भाषा में भी गद्यों के प्रयोग प्राप्त हैं । एक अन्य पदिक स्त्री की मापा (मागधी) देखिये—

‘अइ सहि अइ भइणि अइ माए एकसो पहिसो समाआदो तन्मुहादामुणिधं
जारिसा बम्हाड-भण्डोदरे प कुणिश तारिसा जुडल कुमार आगमन्ति ।’^६

४. प्रमुख चरित्र—

वाल्मीकि ने रामायण में राम का जो उदार एवं महान् चरित्र स्थापित किया है, उससे प्रभावित हो कर भारत के सहस्रों कवियों ने विभिन्न भाषाओं में एवं संस्कृत में रामकथा को काव्य-बद्ध किया है । उन्हीं काव्यों में से एक विश्वनाथसिंह का ज्ञानन्द-रघुनन्दन नाटक है । अपनी सीमाओं में बँध कर नाटककार ने राम का चित्राङ्कन किया है, साथ ही उसने अन्य चरित्रों का चित्रण किया है ।

(१) हितकारी

इस नाटक में राम को हितकारी नाम दिया गया है । हितकारी धीरोदात्त

१. अङ्क १२६ । - २. अङ्क ७ पृ० १ । ३. अङ्क २ पृ० २७ ।

४. अङ्क २ पृष्ठ २९ । ५. अङ्क ७ दृश्य १ ।


६. अङ्क १ पृ० ९ : संस्कृत रूप—

‘अयि सखि ! अयि भगिनि ! अयि मातः ! एकः पदिकः समायातः ।

तन्मुसाग्र्युतम् । मादसो बम्हाड-भण्डोदरे न श्रुतो तादसो दुगल-

कुमारो आगच्छतः ।’

नायक के समस्त गुणों से पूर्ण है। वे विषय परेश ब्रह्म के अवतार हो कर भी अदिभ्य मनुष्य प्रकृति का अनुसरण करते हैं और लोकदर्शि के अनुकूल बन जाते हैं। उनके जन्म सेते ही एक ओर देवताओं और दूसरी ओर मुनि-मण्डलों को हर्ष होता है।

विश्वामित्र राजाओं से यज्ञ की रक्षा के लिए राम और उनके साथ लक्ष्मण को ले जाते हैं।^१ राम धातिनी तथा उसके पुत्रों धातिनेय और चारुभुज को परास्त कर एक मुरधा का वातावरण निर्मित करते हैं। राम का दिव्य स्वरूप भी साथ ही साथ प्रकट होता है। उनके स्पर्श से शिलामयी अहत्या पुनः नारी-रूप प्राप्त करती है।^२ उनका रुद्र देखकर जनक प्रसन्न हो जाते हैं^३ और जन-समाज राम को सीता के योग्य घोषित कर देता है।^४ जिस धनुष को रावण भी नहीं हिला सका था, उसे राम ने दाग भर में छोड़ कर असीम शक्ति का परिचय दिया।^५ धनुर्भङ्ग को सुन कर परशुराम प्रचण्ड वेग से आते हैं। वे राम को देख कर शक्ति रह जाते हैं।^६ उनके साथ राम अत्यन्त विमर्शता का व्यवहार करते हैं और उनके काटने के लिए हाथ आगे कर  हैं।^७ परशुराम वशिष्ठ और विश्वामित्र का अपमान करते हैं, तब राम की कोपाग्नि घषक उठती है और वे धनुष मारते हैं।^८ अन्त में परशुराम उन्हें ईश्वर मान कर प्रणाम करते हैं।

१. अङ्क १।५६ : 'ऋतु संरक्षणार्थं त्रिलोकी-वीर-सेनरी।

धीरो कुमारी दीपेता हितकारि-वराधरी ॥'

२. वही, १।८६ : 'शतमोदः—

पाषाणी पुत्तलीं चक्रे पिता छप्पा स मत्प्रसूम्।

शापोद्धारोऽपि तेनोक्तौवतीर्णः पुरुषः परः ॥'

३. १।९१ : 'धनुर्बाणधरी धीरो कीटि-कन्दर्प-सुन्दरो।'

४. १।९३ : 'महिजा-हितकारिणोर्द्ध्वोयं

विधिना काम-रति-द्वयामृतानि।

५. अङ्क १।१२१ : 'आश्चर्यमाश्चर्यमिदं निरीक्ष्यतां

गृहीतमुत्पापितमप्यदर्शि नो। धनुः ... ॥'

६. वही, १।१६० :

'मनोहारी हारी रुचिर-रुचि-धारी प्रतितनू-रुहं कोऽयम् ?'

७. वही, १।१६२ : 'हस्तां गृहाण नृगुनन्दन विश्ववन्द्य

किं स्वामिना परिजनस्य भवेद् विवादः।'

८. वही, १।१९०।

हितकारी (राम) वन में जाते हैं तब भुनिजन उन्हें देख कर अपना अहोभाग्य मानते हैं और उनका आतिथ्य करते हैं ।^१ राम का सात्विक क्रोध शत्रु के शरण आते ही दूर हो जाता है । जयन्त (वायस) ने सीता को चोंच मार कर राम को चुनौती दी, बाण छूटा, किन्तु विकल वायस ने जैसे ही शरण माँगी, उसे क्षमा मिल गई ।^२

भरत को सैन्य-सहित आते देखकर जब लक्ष्मण क्रोध करते हैं, तब शान्त, निःस्पृह एवं दूरदर्शी हितकारी (राम) उन्हें बतलाते हैं कि 'भरत का मेरे प्रति तुम्हारे समान ही प्रेम है, मुझे राजधानी ले जाने के लिए भ्रा रहे होंगे ।'^३ भरत के निवेदन और वशिष्ठ के सञ्ज्ञेत पर भी राम वन से लौटना नहीं चाहते, अपितु माता-पिता की आज्ञा पर दृढ़ रहते हैं^४ और पादुका देकर भरत को लौटा देते हैं ।

दूर्पणक्षा की सूचना पर जब रावण सेना-सहित राम पर चढ़ दीड़ता है तब वे अत्यन्त शूरता का परिचय देते हैं । वे अकेले चौदह सहस्र राजसों को मार गिराते हैं । ऐसी महासज्जता उनमें अनेक बार प्रकट हुई है ।

राम का दिव्य रूप यहाँ भी प्रकट होता है । वे सीता को अग्नि-प्रवेश करा कर छाया सीता की साथ रख लेते हैं । यहीं मानुषामिमानो रूप पुनः प्रत्यक्ष होता है और छाया सीता का हरण होने पर राम अत्यन्त विकल हो कर सम्पाद-ग्रस्त हो जाते हैं ।^५

राम मित्रता की सञ्ज्ञाई पर विश्वास करते हैं; वे सुग्रीव की विपत्ति से

१. अङ्क २ दृश्य २ :

'गुरुः (वाल्मीकिः)—अहोभाग्यमहोभाग्यं पाद्यार्घ्यादिकमानय' ।'

२. वही, दृश्य ५ ।

३. अङ्क २।४८ :

'भ्ययं' किमर्थमतिरोयमरं करोषि

यत्त्वादृष्टो भयि रति तु दयाति सोऽपि ।

मत्सङ्गमाय नमरो प्रति मां च नेतुं

स्यादागतः स्वजन-सैन्द-जनः समेतः ॥'

४. अंक २।५३ : 'माता-पितरनुज्ञादावेवामुद् वनसेवने ।'

५. उदाहरणार्थ अङ्क ३ दृश्य ८ : '(अशोकमवलोक्य)—
मन्मथ-सत्यक-नायक-मुखदायकमस्ति सत्त्वादुमुतं नाम ।

कथयाशोक कृशाङ्गीं तस्वर मह्यं सखे नरवराय ॥ ९३ ॥'

मुषत करने का आश्वासन देते हैं^१ और स्वयं बालि से युद्ध कर उसे मारते हैं । (इस नाटक के अनुसार सुघोष की बालि से नहीं लड़ना पड़ता ।) हनुमान लड्डा से लोटकर जय सीता का समाचार देते हैं, तब उसी क्षण राम सेना को चलने को आज्ञा देते हैं ।^२ इससे उनकी वार्य-तत्परता सूचित होती है ।

विभीषण आकाश में 'घरण' खोलता है, तब राम उस समय अपने सबसे समर्थ सहायक मित्र सुघोष की बात न मान कर विभीषण को घरण में ले लेते हैं^३ और उसे लड्डा का राज्य देकर अद्भुत धर्मवीरता का परिचय देते हैं ।

सुघोष पर्वत पर पहुँचने पर राम को पता चलता है कि रावण निर्विघ्नता भाव से नृत्य देख रहा है । राम बाण मार कर उसके चारों ओर आभूषण गिरा देते हैं^४ और रस-मग्न हो जाता है ।

अपने अनुजों के प्रति राम का प्रेम अत्यन्त गम्भीर है । रावण लक्ष्मण पर ब्रह्मशक्ति का प्रहार कर देता है । लक्ष्मण के प्राण संकट में हैं । राम लक्ष्मण को गले लगाकर विकल हो जाते हैं । वे कहते हैं कि 'तुम्हारी माँ को क्या चत्तर हूँगा । इस कठिन समय में भरत ही सहायता कर सकते थे ।'^५ इसी प्रकार युद्ध समाप्त होने पर राम विभीषण से कहते हैं कि 'वनवास की अवधि

१. अङ्क ४ दृश्य १ : 'हितकारी...मा कृपाः लोकम् । स्वन्तारी-हारिण-मेकेनैव घरेण हनिष्यामि ।'

२. अङ्क ५ दृश्य ६ : 'हित०—(विचार्य) विजयमूर्त्तिमिशामीमेवास्तीति ।'

३. अङ्क ५ श्लोक ५० : 'नैव त्यजेमभिह मित्रतया प्रपन्नम् ।'

४. अङ्क ६ (पृष्ठ ६४) : 'नाट्यशालावामभि-भणि-सिंहासनं निपण्यस्य मे चामर-चतुष्टयमनर्घ-रत्नप्रचुरमातपत्रं सर्वाङ्गोन्नान्याभरणानि चाकस्मा-देव निकृत्तान्यपतन् ।'

५. अङ्क ६ : (पृष्ठ ७१) :

'हितकारी—(धराधरमुत्थाप्यालिङ्ग्यवाधावरुद्ध-कण्ठ)

प्राणस्य ते मेऽत्र भृशं दत्तान्तरे जीवाम्यहं चित्रमिदं घनुर्धर ।

दृष्ट्वा यदा प्रहसति मां तव प्रभूः कुत्रास्ति पुत्रस्तव सङ्ग-सङ्गतः ॥

किमुत्तरं देयमद्यो मया तदा, विधे विधानं किमिदं तथादमुतम् ।

हा भ्रातरं वीर जगद्मरं विना कः स्यात्सहायः समयेऽत्र दारुणे ॥'

वीरने में दो ही दिन छेप हैं । मैं वयोध्या न पहुँचूँगा तो भरत प्राण त्याग देते ।^१

राम वयोध्यावासियों को तो प्राण-प्रिय है ही, सुग्रीव आदि साथियों को भी इतने प्रिय है कि राम अपने अभिप्रेत-समारोह के पश्चात् जब उनको बिदा करते हैं तब वे रो पड़ते हैं ।^२

इस प्रकार राम का चित्रण शील, शक्ति, सौन्दर्य के प्रतीक रूप में हो हुआ ही है, साथ ही करुणा, मैत्री, परोपकार, उत्सर्ग, धीरता, नीतिमत्ता, प्रेम आदि सभी मानवोचित गुणों से उन्हें परिपूर्ण बतलाया गया है । प्रस्तुत नाटक में धीर मज्जो रस होने से राम की धीरता को अनेकशः विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

२. धराधर—

लक्ष्मण को कवि ने धराधर नाम दिया है, क्योंकि वे क्षेप के अवतार हैं । काव्य के आरम्भ से अन्त तक लक्ष्मण की उपस्थिति नायक राम के साथ निरन्तर रहो जाती है ।

विश्वामित्र के व्रत की रक्षा में लक्ष्मण भी राजाओं को मारते हैं । जनक की औरस कन्या ऊर्मिला लक्ष्मण की ब्याही जाती है ।^३ परशुराम के प्रसङ्ग में लक्ष्मण पृथक् रूप से एक ही बार परशुराम को उत्तर देते हैं कि 'आपने जब पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से हीन किया था, तब हितकारी जैसा कोई क्षत्रिय नहीं था । आज आपको उनका पीछा जात हो जाएगा ।'^४

इस कथन से राम के पराक्रम के प्रति लक्ष्मण के मन में प्रारम्भ से ही दृढ़ आस्था सूचित होती है ।

चित्रकूट में भरत के सेना-सहित पहुँचते ही लक्ष्मण को सन्देह होता है

१. अङ्क ६ (पृ० ९१) : 'प्राप्या न तां, यदि तदा स जगद्भरः स्राक् ।

प्राणास्त्यजेद् व्यसनमेतदुदति धीरम् ॥'

२. अङ्क ७ दृश्य २ :

'(सुकृष्णो वाप्रावरुद्धकृष्णो भ्रातृन् चतुरः प्रणम्य ससैन्यो निष्क्रान्तः ।)'

३. अङ्क १ दृश्य ९ : 'जयद्योनिजः --- --- राजन् सीरकेतो ! ---

आरमीयां दुहितरमूर्मितां वितर धराधराय ।'

४. अङ्क १।१७० :

त्रिः सप्तवारं पृथिवीं चकार निःशत्रिणां हन्त यदा भवान् सः ।

न सत्त्वियोऽमूढितकारि-नुत्पत्यस्वमज्ञ विज्ञास्यसि पौरुषं तत् ॥'

कि भरत राम की भारने आए हैं। उन्हें यह विचार इतना उत्तेजित कर देता है कि वे शीघ्र ही भरत का वध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। उनकी समझ में राम के साथ पहले ही अन्याय हुआ है, जिसे समाप्त कर राम की राजा बनाने का अब समय आ गया है।^१

लक्ष्मण राम के साथ हुए युद्ध में अपने रहते राम की नहीं लड़ने देना चाहते। वे अपने उज्ज्वल चरित्र पर उँगली उठाने पर सीता की भी 'बण्डो' कहते हैं^२। राम के मुख से सुग्रीव के प्रमाद का सन्देह पाते ही लक्ष्मण उसी क्षण सुग्रीव की मार डालने के लिए उद्यत हो जाते हैं।^३

लङ्का में लक्ष्मण मेघनाद तथा अनेक राजाओं का संहार करते हैं और रावण-हृरमर्कण के साथ युद्ध में अप्रतिम दूरता का परिचय देते हैं। अन्त में अयोध्या में कोश के अधिकारी बनाए जाते हैं।^४ वास्तव में सम्पूर्ण कथा में लक्ष्मण के बिना राम की कल्पना ही नहीं हो सकती।

३. जगद्भर—

दशरथ के द्वितीय पुत्र भरत, जिनका नाम नाटक में जगद्भर रखा गया है, निदछल, निःस्पृह, त्यागशील एवं राम के प्रति निष्ठावान् पात्र के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। सरस्वती के आदेश से वशिष्ठ राम की वनवास दिलाने की योजना में सम्मिलित होकर भरत की काश्मीर (केकय देश) भिजवाते हैं।^५ दशरथ की मृत्यु के पश्चात् लौटने पर भरत की कैकेयी के राम-विरोधी कृत्य का ज्ञान होता है। वे माता की हीन दृष्टि से देखते हुए उसे कटु वचन

१. अङ्क २ : श्लोक ३४-४७ :

‘स्वामिन्वाशां प्रदेहि द्रुतमुदितमनास्ती तु धृत्वा कथामिः
सन्शर्म्यैतत्करेण प्रविष्ट-कुटिला-जिह्विकां कर्त्तयेयम् ।
स्व-क्रोधाग्निं ज्वलन्तं कुशतर-कुशला-शोकवह्निं च नियन्तु-
काश्मीरो-बाष्प-पूर-प्रसूनर-सरितामंस्तु विवर्षयेयम् ॥ ४७ ॥’

२. अङ्क ३ दृश्य ७ : ‘(सखेदं कर्णो पिपाय)—

हा हन्त हन्त हत एव किलास्मि चण्डि... ॥ ८८ ॥’

३. अङ्क ४।४१ : ‘विरमृत्य तं शरं पीत्वा मरेयमनिशं भुजम् ।

सुन्दरीभिर्विहरसे रहसीत्यमहो कथम् ॥’

४. अङ्क ७।८९ ।

५. अङ्क २ दृश्य १ : ‘यत्त्वमिदानीमवगोन्द्रय दिव्यान्स्य यत्त्वान्तिकं
जगद्वीरं जगद्भरं हरिदरं च राजकुमारं प्रेषय काश्मीरम् ।’

कहते हैं ।^१ वाल्मीकि और तुलसी के समान ही विश्वनाथसिंह ने भी भरत का चरित्राङ्कन किया है । आनन्द-रघुनन्दन में यह विशेषता है कि वनवास की अवधि के अन्तिम दिन भरत राम के वियोग में इतने विकल हो उठते हैं कि वे गुरु को बुलाकर कहते हैं कि अवधि बीतने पर मेरे प्राण नहीं रहेंगे इसलिए राज्य आपको सौंपता हूँ ।^२ राम के प्रति भरत के मन में इतना उच्च भाव है कि जब शत्रुघ्न मन्थरा को पोटते हैं, तब भरत कहते हैं कि मारी का वध होने पर मुझे राम से भय लगता है ।^३ राम भरत की योग्यता मानते हैं । अन्त में राज्य का सञ्चालन भरत को ही सौंपते हैं, जिससे भूमि राजम्बती कहलाए ।^४

५. अरिदर—

शत्रुघ्न को नाटक में अरिदर नाम दिया गया है । अन्य रामकथाओं को अपेक्षा इस नाटक में शत्रुघ्न के चरित्राङ्कन की अधिक चिन्ता की गई है । परशुराम के कटु वचन सुन कर शत्रुघ्न स्वयं उनका मान-मर्दन करने के लिए तैयार हो जाते हैं ।^५ वे मन्थरा को अनर्थों की जड़ मान कर उसके केश खींचते हैं और कैकेयी को भी मारने को उद्यत हो जाते हैं ।^६ चित्रकूट में जब

१. अङ्क २।११ : 'हितकार्यपकारिष्यादिच्छन्ता स्वाद्रसना तव ।
माता ममासि काश्मोरि कुर्या किं पतिष्यातिनि ॥'

२. अङ्क ७ दृश्य १ : '...मर्यादायामतीतायां न स्वास्त्यन्ति मत्प्राणाः ।...
इतोऽहं प्राज्यं राज्यमाचार्यायि...अत्रभवते प्रतिपादयामि ।'

३. अङ्क २।१२ : 'नारीवधे कृते वत्स भयं मे हितकारिणः ।'

४. अङ्क ७।८९ :

'राज्यं रक्ष जगद्भर त्वमभवो राजम्बती भूरियं, येनोच्येत...।'

५. अङ्क १।१७४ : 'हन्त प्रयातु सगुहर्नगरीं नरेन्द्रः

सार्यधमः स्वजन-सैन्यजनैः समेतः ।

आयामि तावदहमप्यघूर्नन् भङ्क्त्वा

दिग्भ्यो यथा मणिकमुद्रमुनेर्मदं द्राक् ॥'

६. अङ्क २ (पृ० २९) :

'आः प.पे ! त्वमेव सर्वनिर्घस्य कारणमसि ।

(इति केजान् गृह्णाति) ...।

अस्यै फलं दत्त्वा त्वापरि प्रबोधयितास्मि

(इति श्रुत्वा काश्मोरी समर्थं निष्क्रान्ता)

राम अयोध्या को लौटने के लिए स्वीकृति नहीं देते, तब दानुष्म स्वयं राम से निवेदन करते हैं कि उन्हें भी राम अपने साथ रखें और उनसे सेवा लें। वे कहते हैं कि 'हे आर्य ! हम आपके बच्चे हैं।' अन्त में दानुष्म जैसे वीर को अयोध्या का सेनापतित्व दिया जाता है।^२

५. त्रेतामल्ल—

राम और लक्ष्मण के पश्चात् सम्भवतः नायक पक्ष के सबसे महत्वपूर्ण पात्र हनुमान हैं, जिन्हें इस नाटक में त्रेतामल्ल कहा गया है। पताका के रूप में चलने वाली कथा में वे अवश्य ही सर्वातिशायी हैं। हनुमान सुग्रीव के मंत्री हैं और जब सुग्रीव राम के कार्य को भूल कर विलास-मग्न हो जाते हैं, तब हनुमान ही उन्हें प्रबोधन देते हैं।^३ राम और सुग्रीव की मंत्री कराकर दोनों के कार्य सिद्ध कराने का योग्य हनुमान को ही है।^४ सुग्रीव भी उन्हें 'प्रवीणतम' मानते हैं।^५ हनुमान ने सागर पार करते समय दुर्दम्य रीढ़ रूप धारण किया, जिसे राम से श्रद्धापूर्वक परम्पाठा बतलाया है।^६ सीता की खोज का दुष्कर कार्य उन्होंने अरपन्थ सफलता के साथ सम्पन्न कर सर्वप्रियता अर्जित की और राम उनके श्रेणी हो गये।^७ लङ्का के युद्ध में हनुमान का शौर्य-प्रदर्शन अद्भुत था। कुम्भकर्ण के जिस शरीर (कवच) के भूमि पर गिरने से भरतखण्ड के

१. अङ्क २ (पृ० ४१) :

'मौ तु सहैव गृहीत्वा प्रविशतु गहनं वनं भवानधुना ।
आवो तवार्थं वरतो सम्मपारण्य-सेवनं कुर्वः ॥'

२. अङ्क ७।८९ : 'सेनां सज्जय सादरामरिहर स्वात्मा त्वमन्वयं मनु ।'

३. अङ्क ४।३५।३६ :

'सपदि सकल-कार्यं येन सम्पादितं ते
प्रबलमिह कथं तं हन्त विस्मृत्य मत्तः ।

मनसि तव विनाशं कीर्तनायात्र बुद्ध्वा

वयमिह सचिवास्ते शोचयामः सदैव ॥'

४. अङ्क ४।२ : 'हे विश्वनाथ ! तव सोस्ति सखित्व-योग्यः ।'

५. अङ्क ४ : दृश्य १ :

'त्रेतामल्ल ! त्वं प्रवीणतमोसि, गत्वा परीक्ष्य प्रत्यागच्छ ।'

६. अङ्क ४।६१ :

—'रेणुकृत्य त्रिकूटं विधत्ति विततयन् दर्शये चित्रमन
क्रोच-भ्राष्ट्रे विमन्योद्धत-रवनिचरान् भस्मभावं नयामि ।'

७. अङ्क ५।३४ : त्वद्दानोचितमत्र वस्तु विधिना नाकारि लोकत्रये ।'

प्राणियों का नाश हो जाना था, उसे हनुमान ने व्याकाश के पवन-प्रवाह में फेंक दिया; ऐसा बद्धमूत उनका बल था ।^१ उन्होंने सञ्जीवनी लेकर लक्ष्मण की प्राण-रक्षा की ।^२ राम अयोध्या पहुँचने से पूर्व हनुमान को भेज कर भरत की मनोवृत्ति का पता लगाते हैं । हनुमान नीतिज्ञ हैं और वे भरत को राम के समान मान कर ही उनका सम्मान करते हैं ।^३ वानरों और राक्षसों की अयोध्या से विदाई हो जाने पर वे सुग्रीव के दूत के रूप में अयोध्या में ही रहे जाते हैं ।^४ नाटक में हनुमान राम की दास्य-भक्ति के प्रतीक हैं,^५ जैसे रामचरितमानस में है ।

६. वासवि—

इन्द्र का पुत्र, विष्णिण्या का दासक बाली, जिसे यहाँ वासवि नाम दिया गया है, इस नाटक में पूर्णतः प्रतिनायक रावण के पक्ष का पात्र प्रतीत होता है । बाली के निकट रावण पत्र भेज कर अपेक्षा करता है कि वह राम-लक्ष्मण को पकड़ कर लक्ष्मण भेज देगा ।^६ तार मन्त्री के इस प्रश्न पर कि अब आपकी रावण के साथ मैत्री क्यों है, बाली कहता है कि रावण को अस्त्र-शस्त्र में जीतने वाला व्यक्ति शैलोक्ष्य में नहीं है ।^७ इसी समय राम-लक्ष्मण बाली से समीप जाते हैं, तब बाली स्वयं राम से युद्ध कर उन्हें जीत लेने की इच्छा करता है ।^८ ऐसा प्रतीत होता है कि रावण के उपर्युक्त निर्देश की पूर्ति के लिए ही बाली राम के साथ युद्ध करता है, यद्यपि स्वयं मारा जाता है । कया के अंग को इस प्रकार मोड़ देकर बालि वध को जग-शिव के अधिक अनुकूल बना दिया गया है ।

१. अङ्क ६ : 'विद्वस्मिन् बलमोदसं ववचिदशो नार्दसि नाकृष्यंवि ॥'

२. अङ्क ६ : युद्ध-प्रकरण, दृश्य ३ ।

३. अङ्क ७।११ : 'स्वं विद्वन्नाथ हितकारि-समो ममासि
दासस्यवास्मि जगतीजन-गौत-कीर्त्तः ॥'

४. अङ्क ७।४८ : 'उपकृष्टं महाराज सुकृष्टस्तव मां सत्ता ।
दीत्येन वस्तुमुत्कृष्टा-कृष्टितः प्राहिषोत् सदा ॥'

५. अङ्क ४।२ : 'ज्ञातोऽसि नाथ हितकारि-पशमिधेय-
स्त्वं व्यस्मरः किमिति दासमिहान्तकस्यम् ॥'

६. देविये पीछे अध्याय ६ (स-२) ।

७. अङ्क ४।९ : 'त्रिलोक्यामस्त्र-शस्त्रेण विजेता तस्य नेदपते ।'

८. अङ्क ४।१६-१७ : देविये पीछे अध्याय ६ (क) ।

७. दिक्शिरस्—

रावण को नाटक में दिक्शिरस् नाम दिया गया है। यह प्रतिनायक है। काश्मीर (केकय) देश से आकर तिरहुत में विश्वामित्र ॥ आश्रम पर आक्रमण करनेवाला और पोछे पञ्चवटी में मृग-रूप से राम को कपट जाल में उलझा कर सीता-हरण का कारण बननेवाला घातिनेय (ताटका-पुत्र मारीच) रावण का पदवर्ती है। उसी प्रकार चौदह सहस्र राक्षसों की सेना का प्रमुख और जनस्थान को आतङ्कित रखने वाला राक्षस (खर) भी रावण का आज्ञाकारी है। रावण दैत्येन्द्र बाणासुर के रोकने पर उसको उपेक्षा करते हुए शङ्कर का धनुष तोड़ने के लिए उद्यत हो जाता है।^१ उसके अनाचारों से कम्पित पृथ्वी की प्रार्थना पर उसका वध करने के लिए परमेश्वर ने राम-रूप में अवतार लिया है।^२ वह अपने मन्त्रों से, जो नदी योजनाएँ बतलाता है, वे उसके प्रबल अहङ्कार और अद्भुत पराक्रम की सूचनाएँ देती हैं। वह समुद्र का सारा पानी निकालवा कर उसमें मन्दाकिनी का मधुर जल भरना चाहता है; कंठास की लकड़ों में ला कर इष्टदेव शङ्कर के प्रीत्यर्थ उन्हें रोपनाग को आभूषण-रूप में अर्पित कर देना चाहता है। वह कहता है कि कुम्भकर्ण समुद्र की चादर की तरह ओढ़ कर लो जाय।^३ हनुमान जब मेघनाद द्वारा बाँध कर रावण की सभा में पहुँचाए जाते हैं, तब वे रावण के द्वारपाल को आज्ञाएँ प्रसारित करते हुए सुनते हैं—‘अग्नि ! तुम शीघ्र रसोई बनाओ, पवन ! तुम सुगन्धियुक्त महते पुष्प मार्ग स्वच्छ करो, वरुण ! स्नान के लिए यज्ञा का जल लाओ, कुबेर ! तुम घोंड़ कर निधि लाओ, जो दान के काम आवे।’ हनुमान मन में कहते हैं कि ऐसी आज्ञा तो जगदीश्वर की भी नहीं सुनी।^४

जब सीता की खोज कर हनुमान किष्किन्धा लौटते हैं, तब वे राम के पूछने पर रावण का संक्षेप में उपयुक्त चित्रण करते हैं—‘पर्वत के शृङ्गों के सदृश रावण

१. अङ्क १ पृ० १५ तथा अङ्क १।१०२।

२. अङ्क १।९-१०, देखिये नाटक का वस्तु-सत्त्व।

३. अङ्क ३, पृष्ठ ४२।

४. अङ्क ५।१० :

‘पाकागारं कृशानो यत्र कलय परा-पाक-निष्पत्तिमारा-

दध्वानं शोषयित्वा परिवह पवन त्वं बहन्मुष्ण-गन्धम्।

यज्ञा-पापः पवित्रं त्वरितमुपहर स्नाग-सिद्ध्यं जलेश

त्वं धावं धावमद्वाऽऽनय वनद निधिं नित्य दान-प्रवृत्तये ॥

‘‘ईदृशी तावदाज्ञा जगदीश्वरस्यापि न श्रुता।’

के ऊँचे मस्तक आकाश को छूते हैं, उसके बाहुदण्ड सर्प के शरीर की समान सुदृढ़ हैं, उसकी छाती पर स्वर्ण के हाथी ऐरावत के दाँतों और इन्द्र के वज्र के प्रहारों के चिह्न सुशोभित हैं, उसके जैसे कुशल शिष्य को स्वर्ण देवगुरु शङ्कर ने सारे शास्त्रों और अस्त्रों की शिक्षा दी है ।^१

दाली जैसा पराक्रमी भी रावण के साथ मैत्री बनाए रखना चाहता है ।^२ जब रावण के साथ युद्ध करने के लिए लक्ष्मण प्रस्थित होते हैं, तब स्वर्ण राम उन्हें सावधान करते हुए रावण को त्रैलोक्य-विजयी कहते हैं ।^३ सेनाओं का कोलाहल रावण के लिए नूपुर-ध्वनि की भाँति मनोरञ्जक है ।^४ रावण की युद्ध-दौली और शक्ति की अनेकशः प्रशंसा होती है । अन्त में उसकी मृत्यु पर सुग्रीव राम से कहते हैं कि इसे आप ही मार सकते थे ।^५

रावण का एक अन्तर्निहित रूप है, जिसमें वह भोज-प्राप्ति के लिए राम से विरोध करता है । वह सीता को लक्ष्मी मानते हुए भी इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए लड़ता ले आता है ।^६ वह युद्ध में मरे हुए राक्षसों की समुद्र में फिँकवाता जाता है, जिससे वे भोज के अधिकारी हो जायें और सञ्जीवनी की सुगन्धि से पुनर्जीवित न हों ।^७

उपर्युक्त पुराण पात्रों के अतिरिक्त सुकण्ठ (सुग्रीव), भयानक (विभीषण),

१. अङ्क ५।४२ :

‘घोषण्यभ्रकूपाणि क्षितिधर-शिखर-श्रेणि-शोभाधराणि
भ्राजन्ते बाहुदण्डा भुजग-परिवृतादभ्र-भोगायमानाः ।
वक्र-स्वर्दन्ति-दन्ताशनि-निहित-किण-ग्रन्थि-नेपथ्य-वक्त्रा
यं दर्शं शास्त्रमस्त्रं सकलसुरगुरुः पाठयामास शम्भुः ॥’

२. अङ्क ४।७, ८ ।

३. अङ्क ६ (पृष्ठ ६९) : ‘त्रैलोक्य-विजयी धीरः कृतशत्रुः परमपुंगवः ।
सावधानतया युद्धं धर युद्ध-धुरन्धर ॥’

४. अङ्क ६ (पृष्ठ ६९) : ‘सेना-ध्वनिमुपाकर्णामन्दं नन्दति मम्मनः ।
यथा नदीन-नारीणां रती नूपुर-निःस्वमम् ॥’

५. अङ्क ६ (पृष्ठ ७६) : ‘हन्तुं त्वयैव योग्योऽयम् ।’

६. अङ्क ३।९६ : ‘धियां पतितपावन्यामायतायां पुरे भृशम् ।
भवेत् सपरिवारस्य मम भोजाधिकारिता ॥’

७. अङ्क ६ (पृ० ७६) : ‘मृतानां यातृधानानां शरीराणि सरित्पती ।
निक्षेपयति वेलक्ष्याद् दशशौर्यः क्षणे क्षणे ॥’

भुजभूषण (अङ्गद), घनध्वनि (मेघनाद), घटकर्ण (कुम्भकर्ण) आदि भी महत्त्वपूर्ण पात्र हैं, किन्तु उनके चित्रण परम्परात्मक है ।

स्त्री पात्र—(१) महिजा

नाटककार ने स्त्री पात्रों के चरित्राङ्कन की बहुत कम चिन्ता की है, तथापि कथा की नायिका सीता, जिसे नाटक में महिजा कहा गया है, उदात्त रीति में चित्रित हुई है । इस चित्रण में परम्परा के साथ-साथ कवि की अपनी प्रतिभा का भी योग हुआ है ।

विश्वामित्र के शब्दों में सीता लक्ष्मी के समान है ।^१ एक अयोनिजा राजकन्या है । उसकी असामान्यता इसी से स्पष्ट है कि शङ्कर का धनुष तोड़नेवाला ही उसके साथ विवाह कर सकता है । धनुर्मङ्ग के अवसर पर सीता को देख कर लक्ष्मण कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने समुद्र का मन्थन कर लक्ष्मी को प्राप्त करने में व्यर्थ परिश्रम किया, वास्तव में उन्हें पृथ्वी का मन्थन करना था (जिससे वे पृथ्वी को कन्या सीता की पा सकते) ।^२ राम के शब्दों में सीता कुमाङ्गी है, उसकी आभा स्वर्ण की आभा के समान है,^३ उसका रूप नेत्रों को शीतल करने वाला है ।^४

भक्त कवियों को सीता का अपहरण सह्य नहीं है । उनके अनुसार पञ्चवटो में मूल सीता अग्नि-प्रवेश कर जाती है, जिन्हें रावण-वध के पश्चात् अग्निदेव भ्यास की भाँति राम को लौटाते हैं । सीता को छाना का ही अपहरण होता है ।^५ यही बात आनन्द-रघुनन्दन में है । राम के कण्ठस्वर में मारोच का 'हा घराघर !' शब्द सुन कर छाना सीता विकल होकर लक्ष्मण को कटु-वचन कहती है ।^६ वाल्मीकि-रामायण में सीता का यहाँ भी एक ही स्वरूप है और वह विकल होकर लक्ष्मण को 'भरत से मिल कर राम के विरुद्ध गुप्त

१. अङ्क १ (पृ० १२) : 'मादृशी सिन्धुतुता तादृशी साऽस्ति राजदुहिता ।'

२. अङ्क १ (पृ० १८) : 'आलोचयेमामहं शङ्के निर्मथ्य सीरधि हरिः ।
थियं निष्कासयामास न ममन्य मही कथम् ॥'

३. अङ्क ३।९० : 'तरङ्गिणि कुशाङ्गी त्वं कुशाङ्गी महिजाऽपि मे ।
दृष्टा चेत्कथय त्वं तामष्टापद-समद्युतिम् ॥'

४. अङ्क ६ (पृ० ८९) : 'महिजां मामिहानीहि हिमानीमिव नेत्रयोः ।'

५. रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड :

'तो लगि करहु अग्नि नहँ बासा । जो लगि करउँ निछावर-नासा ॥'

६. अङ्क ३ : 'न प्रयास्युत्तरं दत्ते..... ।'

पद्म करने वाला' कहती है।^१ वाल्मीकि की सीता का कथन अधिक मनोवैज्ञानिक, स्वामाविक एवं स्त्री-जनोचित है, किन्तु भक्त कवि सीता को दिव्यता की रक्षा करना चाहते हैं।

प्रस्तुत नाटक में अपहृत सीता को वेदना का भी प्रभावी चित्रण है। रावण-वध का समाचार सुन कर सीता की उत्कण्ठा और भी तीव्र हो जाती है।^२ इसी प्रकार राम भी सीता को खो कर उन्मत्त हो जाते हैं।^३

काश्मीरी—

प्रस्तुत नाटक में कैकयी को काश्मीरी कहा गया है। आदि कवि (वाल्मीकि) का शिष्य उनसे क्षीरवती (पयस्विनी) और कलिन्दजा (यमुना) की परस्पर वार्ता बतलाता है। कलिन्दजा के मत के अनुसार कैकयी ने राम को निर्वासित कर ऐसा दुष्कृत्य किया है कि अब ससार में स्त्रियों पर कोई विश्वास नहीं करेगा।^४ आगे चल कर नाटक में कैकयी कुटिला (मन्थरा) से बर्चा कर रही है कि सब कार्य ठीक रहा। इसी समय भरत माते हैं और पूरा समाचार सुन कर वे भी कैकयी को अपशब्द कहते हैं।^५ दाम्पत्य तो कैकयी को भी मारने को उद्यत हो जाते हैं और कैकयी को भाग जाना पड़ता है।^६ इस प्रकार कैकयी को नाटक में विराट् पद्मग्रकारिणी ही रहने दिया गया है।

अन्य स्त्री पात्रों में कुसला (कीदृश्या) और दीर्घनखी (सूर्यपत्नी) महत्वपूर्ण हैं, किन्तु इनके कार्य परम्परात्मक हैं।

१. भारव्यकाश : सर्ग ४५।६, २४।

२. अङ्क ६ (पृ० ८९) :

‘भावकीव तुपिताम्बुद-पर्व’ पूर्णचन्द्रमिव चारु-चक्रो ।

इष्टमुत्सह्य उत्कलिकार्त्ता स्वामिनं स्वमय राजकुमारो ॥’

३. अङ्क ४।४३ : महिजाङ्गानि स्पृष्ट्वा स्पृष्टा पवन त्वं ममाङ्गानि ।’

४. अङ्क २ (पृ० २७) : ‘इदानीं वनितानां विश्वासमिह अगति किमिति कोऽपि करिष्यतीति ।’

५. अङ्क २।११ : ‘हितकार्यपकारिष्यासिछन्ना स्यादसना तव ।

माता ममासि काश्मीरि कुर्यां कि पतिघातिनि ॥’

६. अङ्क २ पृ० २९ : ‘---त्वामपि प्रबोवयिताऽस्मि ।

(इति श्रुत्वा च काश्मीरी सममं निष्क्रान्ता ।)’

(ग) तुलनात्मक रूप

१. हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की प्रस्तुत संस्कृत नाटक पर छाया

जैसा पोछे लिखा जा चुका है, विश्वनाथसिंह ने पहले हिन्दी में आनन्द-रघुनन्दन नाटक लिखा और पोछे इसी नाम से संस्कृत नाटक लिखा । दोनों नाटकों की कथावस्तु में वही अन्तर नहीं है । अङ्गों और दृश्यों में सम्पूर्ण समानता है । संवाद भी वही के वही है । इस प्रकार संस्कृत नाटक को एक प्रकार से हिन्दी नाटक का अनुवाद कहा जा सकता है । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(हिन्दी)—नुर—ये कुपला ! तुम अघार्थनामा हो । शीतिन को बुलाइ सरकारो, जाये सब सुसन से वै सम सनेह करे ।^१

(संस्कृत)—विश्वानराजः—अये कुपले ! त्वं यथार्थमिधानासि । उपशी-
राह्य सरकारमाचर, येन निखिलेषु विश्रुतमयेषु सविनयेषु तनयेषु
ताः समस्ताः समानं प्रेमान्माचरेयुः ।

(हिन्दी)—भूप—(ससम्भ्रमं) अरे मुनि ठी आय हो गए । अर्घ-अर्घ !
पाछ-पाछ !^२

(सं०)—राजा—(ससम्भ्रमं) अहो ! मुनिस्त्वागत एव । पाद्यमर्घ्य-
मधुपर्कादि त्वरितमानीयताम् ।

कहीं यह अनुवाद पद्य से पद्य में परिणत कर दिया गया है—

(हि०)—मुनि...जग रक्षण के हितकारी, डोलधरावर दोऊ कुमार दीर्ज ।^३

(सं०)—मुनि :—ऋतु-संरक्षणार्थम् त्रिलोकी-वीर-देवरी ।

वीरी कुमारी दीयेता हितकारि-धराधरी ॥

पद्यों के अनुवाद सर्वत्र पद्यों के रूप में ही प्राप्त हैं, किन्तु संस्कृत में अधिक सामग्री है—

(हि०)—रैणुकेय—(सक्रोधं)

कोटण्ड-गौर मांह वोरि देहुं मुनि-इन्द्र की ।

कुठार-बीचि मो बहाय सैन-वृक्ष-वृन्द की ॥

कुमार पारि जारि देहुं क्रोध नाड्यवग्नि ये ।

जो लेहुं संभु बेर यों तो सांच जामदग्नि मे ॥

१. आ० रघु० : अङ्क १ पृ० ९ । २. वही, पृ० ११ ।

३. वही, पृ० १२ ।

४. वही अङ्क १ पृ० ३६ ।

(सं०)—रैणुकेयः—(सक्रोधं)

कोदण्ड-अमिषु निमज्जये जितोन्द्रं
परशूर्पौ सुमट-तरुन् प्रवाहयामि ।
प्रस्फूर्जत्-प्रसुमर-बाप-बाडवान्नि-
ज्वालासु क्षितिप-सुतान् जुहोमि युष्मान् ॥
बाणोर्वैस्तिमिरुदारमाददामि
स्वच्छन्दान् रघु-नमि-वंश-मेप सङ्घान् ।
गृह्णेयां प्रसममिदं पुरारि-वैरं
तहि स्यां भुवि विदितः स जामदग्न्यः ॥

(हि०)—याके शील चुवउ सो नैनन ।

सकुचत चलति, मंजु मुल मोरति,
उर अति प्रेम, खुलति बछु बैनन ॥
कीन्हेउ पति अपकार गनत नहि,
पग परि परि जापुहि समुसावै ।
विश्वनाथ प्रभु समुग्न लयक,
बह सुकिया की अनुपम भावै ॥^१

(सं०)—शीलं वचोतदिवारभाति नयमात् सङ्कोच साचीमवद्-
वस्त्रं याति वचोभिराहत-गुणैः प्रेम स्फुटत्यान्तरम् ।
नो मन्तुं गणयत्यथ प्रणमति स्वीयं प्रियं प्रेयसी
सादारम्येन तदेक-तान-हृदया यातोदरी शोभते ॥

यत्र तत्र गद्यात्मक संवादों में भी संस्कृत में विशेष प्रकार से शब्द-
प्रयोग है—

(हि०)—शिष्य—पूजन की तैयारी करो । देयो नहीं थी गुरु बले
भाव है ।^२

(सं०)—शिष्यः—पूजन-सामग्री क्रियताम् । किन्निहि दृश्यते सद्यः समुद-
यन्ननवद्य-हृद्य-गद्य पद्य-प्रभृत्यखिल-विद्या-तपोभारैर्गुह्यसावत्मद्-
गुरुनिज-निवेदनमागच्छतीति । य एषः— ।

हिन्दी के संवादों में यत्र तत्र फारसी, मराठी, अरबी, बंगला, मोजपुरी,
मारवाड़ी, अंगरेजी भाषाओं के भी प्रयोग हैं, किन्तु संस्कृत में इन सबके स्थान

१. अ० रघु० अङ्क ७ : पृ० १४१ । सर्वश्री के स्वकीया-नृत्य पर
मन्वर्व-गीत ।

२. बही. : अङ्क १ : विष्कम्भक : पृष्ठ ३ ।

पर संस्कृत भाषा ही है। प्राकृत भाषा के संवाद, गीतों के ताल-धुन आदि तथा 'प्रविशति', 'निष्क्रान्तः' आदि रङ्गमञ्च के निर्देश दोनों नाटकों में समान हैं। तत्प्राचीन की धुनों में अंतर गमान है, माना-लेखन में कुछ अंतर है—

(६०)—ताल त्रिपुटा—ति-ऐ-ऐ-आ ति ऐ-ऐ-आ ध-ध-पा

ध-ध-पा प-ग-ग-रे ग-ग-प-प ।^१

(सं०)—तालस्त्रिपुटः.....ध-ध-पः प-ग-ग-रि....।

२. राम पर लिखे गये अन्य संस्कृत नाटकों के साथ सामान्य तुलना—

रामकथा को आधार बनाकर लिखे गए संस्कृत नाटकों में सम्बन्ध में कामिल बृत्के ने पर्याप्त प्रकाश डाला है।^१ इन नाटकों में कथानक की दृष्टि से कितने ही परिवर्तन हुए हैं और नये पात्रों की सृष्टि हुई है। उत्तर-राम-चरित और शुन्यमाला में रावण-वध और राज्याभिषेक के पीछे का राम का जीवन चित्रित है, जिसका प्रमुख अङ्ग है सीता के निर्वासन पर आधारित कथा। अन्य अनेक नाटकों में राम के राज्याभिषेक तक की कथा आधार बनी है।

कुछ नाटकों में शृङ्गार रस को अधिक महत्त्व देने के लिए मूल कथा में परिवर्तन किये गये हैं, जैसे बाल-रामायण में रावण का बिरह-वर्णन,^२ मंथिली-कल्याण में राम-सीता का पूर्वानुराग,^३ महानाटक में राम-सीता के सम्मोग शृङ्गार का प्रशील वर्णन^४ तथा महावीर चरित में विश्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण की सीता, उमिला से भेंट।^५

अनेक नाटकों में पात्रों द्वारा अन्य पात्रों के रूप धारण करने के प्रसङ्ग प्रस्तुत किये गये हैं, जैसे महावीर-चरित में शूर्पणखा मन्थरा बन कर मिथिला पहुँच जाती है। उसके पास कैकेयी का जाली पत्र रहता है, जिसमें कैकेयी ने वर के बल पर राम का वनवास माँगा है। अतः राम वहीं भरत की पादुका देकर सीता-लक्ष्मण के साथ वन की प्रस्थान करते हैं।^६ यही बात अनर्धरायण में है। बालरामायण में मायामय राक्षस, शूर्पणखा और परिचारिका क्रमशः दशरथ, कैकेयी और मन्थरा का रूप धारण कर राम-वनवास का कारण बनते हैं। महानाटक में रावण अपने हाथों में दसों सिर लिये हुए राम के रूप में सीता के निकट अपहरण के लिए जाता है। इसी प्रकार आश्चर्य-चूषामणि में

१. डा० रघु० : पृष्ठ ८।

२. रामकथा—उत्पत्ति और विकास : हिन्दी परिपद : विश्वविद्यालय प्रकाश : १९५० : पृष्ठ १८७-१८२।

३. अङ्क १। ४. अङ्क १४। ५. अङ्क २। ६. अङ्क १।

७. अङ्क ४।

रावण और उसका सारथी राम और लक्ष्मण का रूप धारण कर सीताहरण करते हैं। इसी नाटक में शूर्पणखा सीता के रूप में राम के समीप आती है।

प्रतिभा नाटक में भरत लक्ष्मण के अनुज हैं। राम-वनवास के समय शत्रुघ्न अयोध्या में रहते हैं। किकेयी ने महर्षि-शाप की रक्षा करने के लिए बसिष्ठ और वामदेव से परामर्श लेकर राम को वनवास दिलाया है। भरत ने लक्ष्मण के युद्ध का समाचार पाकर रावण के विरुद्ध सेना सञ्चालित की; जनस्थान में रावण-वध के पश्चात् लौटते हुए राम से उनकी भेंट होती है। वही राम का अभिषेक कर सभी पुनरुक्त विमान से लौटते हैं। अभिषेक नाटक में सेतु नहीं बाँधा जाता, किन्तु समुद्र ही विभक्त हो जाता है। अनर्घराघव और बालरामायण में भी किकेयी का दोष-निवारण होता है।

ऊपर निर्दिष्ट शृङ्गारात्मक प्रसङ्ग या पात्रों के रूप-परिवर्तन अथवा कथा-परिवर्तन आनन्द-रघुनन्दन में समाविष्ट नहीं किये गए हैं।

महावीरचरित में विवाह के पश्चात् मिथिला में हो परशुराम का आगमन होता है।^१ आनन्द-रघुनन्दन में परशुराम के चल देने की सूचना अवश्य ही मिथिला में मिलती है; जिसे पाकर जनक सीधे ही दशरथ को विदा कर देते हैं, जिससे परशुराम के आगमन के पहिले ही वे अयोध्या पहुँच जायें। दशरथ चारात-सहित मार्ग में रहते हैं, सभी परशुराम आ जाते हैं।^२

महावीर-चरित में मात्स्यधान की प्रेरणा से बाली राम को मारने चलता है। उसे इस बात का पश्चात्ताप भी है तथापि वह राम से द्वन्द्व-युद्ध करता है, परिणाम-स्वरूप आहत होता है। मरते समय वह सुग्रीव को राम के हार्यों सौनता है।^३ महानाटक में सप्त तालों का राम के द्वारा वेष किये जाने पर श्रोत्र-पूर्वक बाली राम के समीप आता है^४ और मारा जाता है। अनर्घराघव के अनुसार दशरथ को लक्ष्मण ने मारा और उसी समय धनुष की कोटि से

१. अङ्क २।

२. अङ्क १ पृष्ठ : १६-२५।

३. जीवनानन्द-व्याख्या : कलकत्ता : १८९० : अङ्क ५ : पृष्ठ १८४ :

‘बाली—यदनेन मात्स्यवता पौलस्त्य-भैत्री-दिवसमनुस्मार्य तत्रमवतो रघुध्वजस्य निघने निदुक्कोऽस्मि । अहो, ग्रहः ।’

४. जीवनानन्द-व्याख्या : कलकत्ता : १८९० : अङ्क ४। ६७ :

‘धृत्वा हतान् समर-भूर्जिं स सप्त तालान्
रामेण दोनहृदयेन विनापराधम् ।

जीवानल-ज्वलित हृत्कमलोऽयं बालो

रङ्गावतारमगमद् गिरि-गङ्गायत् सः ॥’

दुन्दुभि का कङ्काल बिखेर दिया । इसी निमित्त कुपित बाली राम-लक्ष्मण के समीप पहुँचा और दण्ड-युद्ध में राम द्वारा मारा गया ।^१ इन्हीं नाटकों की परम्परा को स्वीकार कर विश्वनाथसिंह ने आनन्द-रघुनन्दन में बालि-वध का प्रसङ्ग नये रूप में लिखा है । इस नाटक में रावण बाली को पन भेज कर निर्देश देता है कि बाली राम-लक्ष्मण को पकड़ कर लह्छा भेज दे । उसी समय सुग्रीव की मित्रता निमित्त हुए राम-लक्ष्मण स्वयं बाली के समीप आते हैं । बाली स्वयं युद्ध का प्रस्ताव कर दण्ड में राम के द्वारा मारा जाता है ।^२ इस प्रसङ्ग में उपर्युक्त तीनों नाटकों की अपेक्षा आनन्द-रघुनन्दन रामायण के अधिक निकट है ।

राम पर लिखित अनेक नाटकों में, विशेषतः महानाटक में विस्तृत वर्णन और संवाद हैं । इनके अनेक स्थलों पर कथा-प्रवाह में गति-रोध उत्पन्न हुआ है । आनन्द-रघुनन्दन में भी यह दोषों प्राप्त होती है ।

उपर्युक्त तीनों नाटकों में से किसी में सीता के छाया-रूप की चर्चा नहीं है किन्तु आनन्द-रघुनन्दन में है ।

अभिषेक नाटक में राम-लक्ष्मण के मायामय कटे सोता सीता को दिखाये जाते हैं । आनन्द-रघुनन्दन में रावण सीता को राम की मृत्यु सूचित करता है । सीता दुःखी होती हैं, उसी समय दूत रावण को वानरों के नये आक्रमण की सूचना देता है । रावण वहाँ से हट कर युद्ध की योजना बनाता है । सरमा राक्षसी यह सुन-समझ कर सीता से बतला देती है और उन्हें बारावस्त करती है ।^३ अभिषेक नाटक में अग्नि-परीक्षा के समय अग्निदेव प्रकट होकर सीता के लक्ष्मी होने की बात कहते हैं । आनन्द-रघुनन्दन में छाया-सीता अग्नि-प्रवेश कर जाती है और अग्निदेव न्यायरूप में पञ्चवटों में प्रविष्ट-मूल सीता को प्रकट कर राम को सौंप देते हैं ।^४

प्रसन्न-राघव, आश्चर्य-चूडामणि और अद्भुत-दर्पण नाटकों में अद्भुत रस की विशेष स्थान मिला है । यही बात आनन्द-रघुनन्दन में भी है ।

१. काव्यमाला ६ : निर्णयसागर : चम्पई । १९०८ : अङ्क ५ । २५ : पृष्ठ २०१ :

‘दुन्दुभि नाम दैत्येन्द्रं निर्णयेय कपिश्वरः ।

तस्य कङ्काल-कूटोऽयं कुमारेण विलोडितः ॥

तन्निर्दिष्टजन्मा सम्प्रति बालिनो महानमियोः सम्भाव्यते ।’

२. अङ्क ४ : पृष्ठ ५३-५६ ।

३. अङ्क ६ : पृष्ठ ८१ । ४. वही, पृष्ठ ८६ ।

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि आनन्द-रघुनन्दन नाटक में मूलतः कथात्मक आधार वाल्मीकि-रामायण से ही ग्रहण किया गया है और अंशतः रामचरित-मानस से। भक्ति और अवतारवाद रामचरित-मानस से ग्रहण किये गये हैं। केवल बालिवुड में आदर्शवादी प्रभाव और अद्भुत रस की विशेषता के लिए उपर्युक्त सम्बद्ध नाटक उत्तरदायी हैं। रामचरित-मानस का एक प्रमुख आधार अम्मात्म-रामायण है, जिसे इस नाटक का भी उसी अंश में आधार माना जा सकता है।

३. रामकथारमक संस्कृत रूपक

आनन्द-रघुनन्दन नाटक का समग्र भाव से मूल्यांकन करने के लिए हमें यहाँ दो पक्षों पर विचार करना होगा। पहला है, भारतीय काव्य-सृष्टि पर राम-कथा का प्रभाव और दूसरा, नाटकीय दृष्टि से आनन्द-रघुनन्दन की सफलता।

बृहद्घर्म-पुराण में रामायण को समस्त काव्यों का मूल कहा गया है—

‘रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।

सम्भूतं सर्वकाव्यानामितिहास-पुराणयोः॥’^१

भोज ने लिखा है कि वे रामायण की उपस्थिति में भी रामकथा को अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।^२ हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त ‘साकेत’ ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में लिखते हैं—

‘राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥’

कामिल बल्के ने ठीक ही लिखा है कि ‘मानव-हृदय को द्रवीभूत करने की जो शक्ति रामकथा में है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। भारत की समस्त आदर्श भावनाएँ रामकथा में, विशेषतः मर्यादा-पुरुषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित्र-विचित्रण में केन्द्रीभूत हो गई हैं।’^३

प्राचीन काल में भी रामायण पाठ्य की अपेक्षा गेय एवं प्रयोज्य काव्य था। उत्तररामचरित नाटक में अवभृति ने लिखा है कि आदि कवि ने उत्तर-कथा को भरत मुनि के समीप भेजा था; उद्देश्य यह था कि अम्परायें उसका प्रयोग (अभिनय) करें।^४ यह उल्लेख रामायण की कथा को अभिनेय बनाने की रीति की प्राचीनता प्रदर्शित करता है।

पीछे रामकथा पर आधारित कुछ नाटकों की चर्चा हुई है। रामायण की यह उपजीव्यता पिछली शतियों में कभी समाप्त नहीं हुई। इस अवधि में रचित अनेक नाटकों के मध्य १७ वीं शती में लिखित यजनारायण के

१. अध्याय २५।२८।

२. अम्पूरामायण : बालकाण्ड : श्लोक २ : ‘वाल्मीकि-गीत-रघु....’।

३. रामकथा : उत्पत्ति और विकास : प्रयाग : १९५०।

४. अङ्क ७।

रघुनाथ-विलास, राजशुहामणि के आनन्दराघव और अतिरात्रदम्बन् के कुश-कुमुद्वतीय की विशेष धर्चा की जा सकती है। इसके पदवात् १८ वीं और १९ वीं शतियों में वेङ्कट-वृष्ण का कुशलत्र-विजय तथा राम कवि के ललित राघवीय और पादुका-पट्टामिषेक नाटक विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। प्रधानी वेङ्कट-मूपति का खोर-राघव-विजय व्यायोग एवं सीता-कल्याण वीथी तथा रामचन्द्र का आमदग्न्य-विजय व्यायोग इन्हीं शतियों की देन हैं।^१ १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध में रचित विश्वनाथसिंह के आनन्द-रघुनन्दन नाटक को इसी परम्परा को बढ़ाने वाला माना जा सकता है।

राम के पर्यादा-पुरपोलम रूप में क्रमशः अवतारी रूप का योग हुआ। इसकी सम्पूर्ण रामचरितमानस में हुई। विश्वनाथसिंह ने इसी परम्परा को माना; अयोध्या में राम के नित्य बिहार को स्वीकार किया;^२ सीता के छाया-रूप और रावण की दिशोच-भक्ति को मान्यता दी। इसी विविष्ट सिद्धान्त को उन्होंने नाटक का बलेवर प्रदान किया। रामायण में प्राप्त कथा में यह महत्वपूर्ण मोड़ इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। साथ में माधुर्यभाव को भी झलक है।

संस्कृत नाटकों की परम्परा में आनन्द-रघुनन्दन निम्न कोटि का नाटक नहीं है। यह ठीक है कि इस नाटक में अभिज्ञान-शाकुन्तल की रसवत्ता, उत्तर रामचरित की हृदय-द्रावकता, बेनीसंहार का ओज और महानाटक की प्राञ्जल-पदयोजना नहीं है; किन्तु इनके अतिरिक्त संस्कृत के संस्कृति रसक उपलब्ध है, जिनके साथ आनन्दरघुनन्दन को गिना जा सकता है। इनके समान रसात्मकता, हृदय-द्रावकता, ओज एवं प्रीति-पदावली सब कुछ आनन्दरघुनन्दन में प्राप्त है। अन्य अनेक नाटकों की भाँति ही यह नाटक भी भारती की घो-बुद्धि करता है। इस नाटक को समग्र रूप में देखने से विदित होता है कि नाटककार मध्यम श्रेणी के कवियों में स्थान पा सकता है; क्योंकि नाटक की रचना में प्राप्त कथावस्तु सुयोजित है; उसमें अध्ययनशीलता की झलक है; रचयिता की लक्ष्यनिष्ठता एवं एकतामत्ता आदि से अन्त तक व्याप्त है और लोककवि का पर्याप्त समावेश है। इस नाटक का मूल्य इसलिए और भी बढ़ जाता है कि यह संस्कृत के ह्रासोन्मुख काल की, १९ वीं शती की रचना है। इस नाटक की रचना करने के कारण आधुनिक युग के संस्कृत कवियों के मध्य अवश्य ही विश्वनाथ सिंह को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ है।

१. हि० कला० सं० लिट्० : दृश्यकाव्य ।

२. आनन्दरघुनन्दनम् : अङ्क २ दृश्य १ : पृष्ठ २६ : सरयू के प्रति वशिष्ठ का वचन-‘सकल-दिग्ग-सामग्री-राजि-राजितायामपराजितायां हितकारिणः चकास्ति विहारः सनातन-प्रकारः । स त्वचिन्त्य-शक्तिः ।’

उपसंहार

बघेलखण्ड की संस्कृत काव्यधारा ने पिछली अन्तिम शताब्दियों में संस्कृत साहित्य के भाण्डार की श्रीवृद्धि की है। इस कृतित्व को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शासकीय परिवर्तनों ने संस्कृत के प्रति भारतीय रुचि को समाप्त नहीं किया। १६ वीं शती में बीरभानूदय जैसे महाकाव्य और १९ वीं शती में आनन्द-रघुनन्दन जैसे नाटक की रचना मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में अवस्थित बघेलखण्ड अञ्चल को अविस्मरणीय एवं अनुपेक्षणीय गौरव प्रदान करती है; साथ ही वह संस्कृत के प्रति निष्ठा और आत्मीयता रखने वाले विद्वत्समाज के स्वाभिमान का पोषण करती है। पारश्चात्य आलोचकों के स्वर में स्वर मिला कर भोज के पश्चात् संस्कृत को मृत बतलाने वाले मनभिन्न लेखकों और बबझाओं की मत-परिवर्तन के लिए विवश करने वाले ऐसे सैकड़ों काव्यों की सृष्टि भारत में होती आई है, होती रहेगी।

प्रस्तुत काव्यधारा को वेग प्रदान करने वाले अन्य ग्रन्थ बीरमद्रचम्पू, सङ्कीर्ण-रघुनन्दन, रामचन्द्राह्निक और जगदीशशतक हैं। ये सभी कृतियाँ रसमयी एवं हृद्य हैं।

बीरभानूदय, बीरमद्रचम्पू, बघेलवंशवर्णनम् तथा रामचन्द्र-वसः-प्रदग्ध, ये चार काव्य इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। रीवा के बघेल राजवंश तथा सोलहवीं-सत्रहवीं शती के आञ्चलिक इतिहास के विषय में, जिसका सम्बन्ध सरकारी भारतीय शासन से भी है, ये ग्रन्थ प्रामाणिक एवं मूल्यवान् सूचनाएँ देने हैं। अनेक सूचनाएँ ऐसी हैं, जो अभी तक अज्ञात थीं। विरापता यह है कि इन ग्रन्थों का मुख्य साहित्यिक भी है।

लघु-काव्यों के क्षेत्र में हमें प्रशस्तियाँ और स्तुतियाँ मिलती हैं और वे गीतिकाव्य मिलते हैं, जो संस्कृत-गीतिकाव्य की अभिनव रूप में सरङ्गित कर देते हैं। इस भावधारा के प्रमुख पोषक हैं विश्वनाथसिंह और उनके साथ उनके पुत्र रघुराजसिंह। बघेलखण्ड की काव्यधारा को समग्र रूप में देखने पर विश्वनाथसिंह ऐसे कवि के रूप में प्राप्त होते हैं, जिन्होंने अकेले इस क्षेत्र में नाटक, चम्पू और गीतिकाव्य को सर्जना की। अतः विविधता को दृष्टि से उन्हें प्रथम माना जा सकता है। काव्य सौन्दर्य को देखने पर सर्वप्रथम पद्मनाभ मिश्र, द्वितीय बीरभानूदय का कर्ता माधव, तृतीय-विश्वनाथसिंह

और चतुर्थं रघुराजसिंह को गिनना होगा : इसके पोछे भानुहर^१, वीरभद्रदेव और रूपणि आते हैं ।

पञ्च महाकाव्यों के साथ अश्वघोष, भाष, भवभूति, विशाखदत्त, शृङ्ग और भट्ट नारायण के नाटक आदि काव्यों में अब तक हमारी दृष्टि प्रायः सीमित रहो है । अब हमें अपना कार्य-क्षेत्र व्यापक करना होगा । आज यह जानना पहले से ज़रूरी आवश्यक है कि विख्यात कवियों के अतिरिक्त छोटे-छोटे मठों, केन्द्रों एवं गामकीय या जनप्रदोष अरुवलों में संस्कृत के कव कैसे रचनाकार हुए । प्रकाशित ग्रन्थों को छोड़कर हमें वेठनों में बँधी हुई, दीमकों द्वारा समाप्त की जाती हुई, आज उपलब्ध, किन्तु बख्क न मिल सकने वाली अपेक्षित पाण्डुलिपियों के खस्ते खोलने होंगे । पिछले अनेक सताब्दियों की संस्कृत-सर्जना की प्रवृत्ति का यथार्थ परिचय हमें उभो मिलेगा । इस खोज के बिना हमारा संस्कृत-साहित्य का इतिहास अधूरा है । इसी लक्ष्य की पूर्ति की ओर हमारा यह अल्प प्रयास कर्मठ चिन्तकों के समर्थन की अपेक्षा रखता है । इति शम् ।



१. यह निष्कर्ष भानुकर की केवल सम्प्रदाय रचनाओं पर आधारित है, अन्यथा रामभञ्जरी आदि ग्रन्थों में इसकी काव्यकला उत्कृष्ट है ।

परिशिष्ट—१

(क) एकत्रा बान्धोगढ़ (जमाबन्दो १)

[यह बयेलो माया में लिखा हुआ बयेल साखन का सेना-पत्र (हिमाव) है, जिसे जमाबन्दो कहा जाता है । एकत्रा बन्द जमाबन्दो का सूचक है । यह कामत्र बान्धोगढ़ (जिहा शहकोट) के किले में स्थित कार्यालयों में था । अतः इसे 'एकत्रा बान्धोगढ़' नाम से स्थानीय इतिहासकारों ने उल्लिखित किया है । सेना-पत्र के बीच में कुछ ऐतिहासिक उल्लेख हैं और बयेलों को बंगाली भी । अन्तिम उल्लिखित तिथि भाद्र सुदि० संवत् १७८१ है । अतः १७३२ ई० के निकट कुछ हो पाँछे यह सेना-पत्र लिखा गया होगा । बान्धोगढ़ के कार्यालय से यह कामत्र महाराजा के निजी कार्यालय (खासगी) में रीवा लाया गया । २० जुलाई, सन् १८९५ ई० को इस कामत्र को महाराजा ने दीवान के कार्यालय में भिजवाया । १४ नवम्बर, १८९६ ई० को यह दीवान के कार्यालय से लेखा-निर्माण (एकाउण्ट आफिस) में आया । यह सूचना निम्नलिखित उल्लेख के अन्त में है । रीवा-नरेश महाराजा गुलाबसिंह (१९१८-१९१० ई०) के आदेश से यह कामत्र टाइन कराया गया । इसको १०० पृष्ठों की एक टाइन प्रति रीवा-सचिवालय के पुस्तकालय में मुझे सन् १९५५ ई० में देखने को मिली । निम्नलिखित अंश इसी टाइन प्रति से उद्धृत किये गये हैं । प्राप्त जमाबन्दियों में यह प्राचीनतम है ।]

+ + + +

छत्रनाथ देव के राज किया अमल सिर है ।

रीमा का किला मलेनमाह पातमाह बनवावा संवत् ७७६ (?) के साल ।
बैमान वदि ५ बुने कहे किले में नेइ में । विकरमावीठ ते किले आए ।

+ + + +

तकमोम परिगने माद्रिक फरमान जहाँगीरसाह का राजा विक्रमावीठ
को जागीर का तबक सं० १६६१ के साल—कुछ परगने १६८१ सं० के । मुठे
के परिगने के तकमोम लिखा सावन वदि ८ सं० १७७० के मुकाम रोवा ।

+ + + +

वंशावली—

बघेलन के बीलादि लिखा जवते गुजरात ते आयें ।

पुरखा ठाकुर कहाँ लागि । पुरखा ३, जैसिहदेव १, बीरध्वजदेव २, व्याघ्रदेव ३ ।

गुजरात ते आए पुरिखा तीनि भे हैं, वणदेव ४ सोहागुदेव ५ सारंगदेव ६ ।

कालिजरहि आइ दुइ भाई भर राजा के चाकर भैं, बीरलदेव ७ जेठे, भीमल सहूरे गहोरहि आए । पुरिखा सात भरि गहोरा रहै । ठाकुर कहाँ लागि । भीमलदेव गहोरा के लोधिनि कहं मारि के गहोरा छंड़ा लीन्हेंनि, पुनि गहोरा केरि राज कालिजर के भीमलदेव का दोन्हेंनि ।

भीमलदेव । रानिकदेव भीमलदेव के । बलनदेव रानिकदेव के । दलदेवर देव बननदेव के । मलदेवर देव दलदेवर देव के । रासिह सधा बरियारसिह देव मलदेवरदेव के । बोलारदेव राजा भैं बरियारदेव के ।

बोलारदेव ते राजा भैं । पठान पाखाह राजा कीह । तरहारि सब लीन्हेंनि गहरवारन का देस मुडानडेरा । राजा भैं गहोरा भैं ।

राजा सिहदेव... । राजा सिहदेव (जि) बेनी मह गरसारा पापर के कोलू मह पैठि के बीज देह के बेनीमह बहराइ दोन्हेंनि । इह दशा कै के की हमारि सम्तानि अछैं राख्य करै, सं० १३६५ माघ वदी ३० सोमे कहैं (?) ।

बीरमदेव १ संग्रामदेव २ । राजा बीरमदेव के बेटा अठौरहि । जेठे राजा नरहरि देव भैं । १३ राभी बहरिया । १७ और बेटा कुंभर ।

राजा नरहरिदेव के बेटा २, मेददेव जेठे, फूंदीकुंभर सहूरे । राजा मेददेव पानहि आए । पान छंड़ाइ लीन्हेंनि । पान बंटाइन संवत् १४७२ के साल मह ।

सारिवाहनदेव जेठे । अमयचंद, ललिमोचंद, बाहरराइ, भारपीचंद, नसेनि । राजा सारिवाहनदेव के जन्म सं० १४९२ । जेठे राजा बिरसिहदेव । बाबू नागमल केवटी के । बाबू भीलमदेव लूक-भट्टा के ।...जेठसिह चंदेधन ते । परतापसिह ते ४ बेटा...हराइ (बाहरराइ) ते दुरजनसिह...सूरतसिह ।

राजा बिरसिहदेव का जन्म सं० १५२४ के साल भैं । देवरा राजा भैं की रानी चारि भुजा देखा । देखि कै जानि सासू सों कहिनि । जो देखें दोऊ जनी तौ चतुर्भुजी मूर्ति देखि कै गई । जेठे राजा बीरमानदेव, सहूरे जमुनो-मान देव मेहर के । तेंके सूरजमान, सुजानसिह, कीरतिसिह ।

राजा बीरमानदेव का जन्म संवत् १५४३ के साल ।

राजा रामचन्द्र देव का जन्म सं० १५९२ के साल । सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक । बेटा २, जेठे राजा बीरमद, गोपतिराय खवासिन के ।

राजा बीरभद्र का जन्म १६१० के साल का । संवत् — के साल राज्याभिषेक । जेठे राजा विक्रमादित्य, जिर्जोघन लहुरे गेरुवा और परदवा के ।

राजा विक्रमादित्य का जन्म संवत् १६३० के साल । संवत् १६४६ के साल राज्याभिषेक । बेटा ३, अमरसिंहदेव जेठे; इन्द्रदेवसिंह पथरहट के, सरूप-सिंहदेव चौरुहा के ।

राजा अमरसिंह देव का जन्म सं० १६६० के चैत्र सुदि सोमे मह । सं० १६७३ के साल राज्याभिषेक । जेठे अमरसिंह का जन्म सं० १६७८ भाद्र वदि ८ ।

राजा अनूपसिंह का जन्म सं० १६८२ के साल । राज्याभिषेक —। मान-सिंह, भावसिंह, जसवंतसिंह (मुठ), रघुनाथसिंह (गिरवा) — संप्रामसिंह, राजसिंह, जुझारसिंह (रामनगर) — ।

राजा भावसिंहदेव का जन्म सं० १७०७ के सावन वदि १४ मह । संवत् १७३२ के राज्याभिषेक । सं० १७५१ के चैत्र सुदि ११ देवलोक । १६ रातो— गजसिंह, मुकुन्दसिंह, अनिरुद्ध सिंह ।

राजा अनिरुद्धसिंह देव का जन्म भा सं० १७३३ के साल । सं० १७४९ के साल राज्याभिषेक । श्री महाराजा भावसिंह अपने आगे राज्य बैठाइन, राज्याभिषेक कीन । पुनः सं० १७५१ के चैत्र सुदि ११ कहं राजा भावसिंह देव कुरसी प्राप्त में और राजा अनिरुद्धसिंह सं० १७५१ के पीप सुदि १२ कहं जूमें ।

महाराजा अवधूतसिंह देव का जन्म सं० १७५१ के भाद्र सुदि १२ कहं । सं० १७५२ के कार्तिक महं राज्याभिषेक । अजीतसिंहदेव का जन्म भाद्र सुदि ८, १७८८ के साल । मानसिंह भाद्र सुदि ८, १७८९ ।

+ + + +

एकत्रा के बन्द कटे रहे हैं सब, तेहें ते बेवरा सब नहीं लिखा । जीन समुजि परा है सो लिखा है ।

यह कागज दफ्तर बान्धोगढ़ में रहा है । सो जब कागज दफ्तर कोठी में आया तब मिला । सो दफ्तर सासगो हजूर से जनाब दीवान साहब बहादुर के इजलास में आया ता० २० जुलाई सन् ९५ ई० को । ओ इजलास दीवान साहब बहादुर मे सरिफता अकोन्टग्टी में आया ता० १४ नवम्बर सन् ९६ ई० ।

(ख) वंशावली यांधीपति (जमाबन्दी २ ।

(यह भी एकत्रा माग्योपद की भाँति लेखापत्र है । यह रोवा सचिवालय के मुहाफिज खाने में था । इसका लेखन-काल संदिग्ध है । इसकी प्रतिलिपि श्री रामभद्र गोड़ मानपुर, जिला सहडोल के पास है । इसका प्रारंभिक अंश, जो श्री गोड़ के द्वारा पत्र के रूप में दिनांक ८-११-५९ को मेरे पास भेजा गया था, निम्नलिखित रूप में है—)

वंशावली माधोव (ति) ।

गुजराति भा भे पुरिया सोनि, १ जेंसिहदेव, १ खीरमदेव १ म्यात्रदेव भाई करनदेव ।

करनदेव के संसाधनों गुजराति मा सीनि, करनदेव १ सोहागदेव १ सारंगदेव १ ।

कालिंजर साइ दुइ भाई मर राजा बीसलदेव के खाकर में । गहोरा
जागोरि पाइनि । ठाकुर के लिखा पाइनि । लोधिनि का मारनि । गहोरा
बमल भा । बीसलदेव जेठ, भोउमल लहर ।

गहोरा रहे पुरिया ७, भीठमनदेव १ रनिकुदेव १...

(जमाबन्दो खास जमुना ते नरबदा भरि करिया आम से देका आम भरि अब कालिजर छेका रहा सेरसाह ते सं० १६०५ ।)

+

(ग) षंशावली (जमाबन्दी ३)

(इस जमाबन्दी में प्राप्त बंशावली भी उपर्युक्त श्री राममद गौड़ के पास सुरक्षित है । इसकी प्रतिलिपि भरतपुर, जिला सीधी (म० प्र०) के श्री भानुसिंह बायेल ने मेरे पास ३०-३-६३ को भेजी थी । श्री बायेल ने लिखा था कि गौड़ जी इसे १७५१ बि० की लिखी मानते हैं । साथ ही, आपने लिखा था कि यह बंशावली जयसिंह देव (राज्य० १८०९-३४ ई०) पर्यन्त है । अतः वास्तव में यह १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध में विश्वनाथसिंह के कार्यालय में लिखाई गई होगी, जो एकत्रा के अतिरिक्त किसी पूर्वलेख की प्रतिलिपि होगी । इसके कुछ वंश, जो एकत्रा बान्धोगढ़ से भिन्नता लाते हैं, नोचे दिये जाते हैं ।

वंशावली बांधीपत्तो के ।

गुजराति मा पुरिषा त्तेनि । १ जंसिहदेव २ वीरमदेव ३ व्याघ्रदेव भाई
कनदेव के बाँधी ।

व्याघ्रदेव के वंशावली : ४ पुत्र करनदेव ५ सोहानदेव ६ सारंगदेव ।

कालिंजर आइ भर राजा बीसलदेव के चाकर में । गहोरा जागोर पाइन ।
तिवारी मिलाइ कै आधा राज देइ काहीं होसा । लोबिन का मारिनि । गहोरा
बमल मा । गहोरा रहे पुरिया ७, विसालदेव, भोममलदेव, रनिकदेव, बलनदेव,
दलकेश्वरदेव, मलकेश्वरदेव, बरियारदेव ।

बोलारदेव पठानन भारा । बंत्रवेद बमल मा । पातसाह का कोनी
छपाइ तरिहार सहिबना ते रानो मड़ई भरि सब लोन्हेंनि । गहरवारन का
देस मुद्दाबहेरा पातसाह दीन राजा में गहोरा में । बोलारदेव ते राजा में ।
पठान पातसाह राजा कोन्ह ।

राजा बीरमदेव—पाठे पर बमल मा ।

राजा भैरदेव भाई फूँदीदेव । जिन विजंगिरि का हाथो दीजै लोन्ह ।
राजा घाने काएँ चौहानहि मारि कै घान छंडाय लीन आपन घान बंडाइ
दिहिनि । बांयोति शक सं० १६३४ के साल । पुत्र...सारिवाहनदेव जेठ,
लखमोचन्द, चन्देसनि होसा पाइन कसौटा, लहुरे भाई बमयचंद, विरयोबट,
बाहेर बीर गहरराइ, भारतोचंद । पारमाहि चढ़ि आवा ।

राजा सारिवाहनदेव पुत्र में चारि, जेठेबिरसिहदेव, बाबूमीमलदेव, बाबू
भागमलदेव, बाबू उदंकनदेव । चार बेटा मित्ररहाई ते, जेठसिह, परतारसिह,
दुर्जनसिह, मूरतसिह ।

राजा बीरसिहदेव ... ।

राजा बीरमानदेव... । भाई बाबू जमुनीमान, मैहर दीन । राजा राम-
देव ते बमल । जमुनीमान कै बंसाउली ७ पुरिखा । बाबू जमुनीमान १,
केन्द्र २, ३, सिह ४, मुजानसिह ५, कौरतिसिह ६, समरसिह ७ ते
जाया छूटि । सूर्यमान मेदिनोराय का सोहागपुर बखसोस गांव ८४ । प्राग मा
पुरिखा ११ रहें । सं० १८६१ मा गोपालसिह ते जाया छूटि । पातसाह भागि
आवा । पठानन ते रार में ।

राजा रामचन्द्रदेव... । सेमोतहन का अपमान मा, पातसाह के इहां मे ।
प्राग के किला कै घुनि में, सब कालिंजर छेकि मा । पातसाह चढ़ि आवा ।
जमुना पार डेरा में । राजा का काजं मा । जमुना ते नरमदा भरि करिया
आम ते टेढ़ा आम भरि । बी बमल छूटिया, नानकार पावा परिहारी
२८,००,००० बरमैं का बदला परदमा (१२,००;०००) । राज अवलेखा मा
सं० १६०८ मा । पुत्र में दुइ, राजा बीरमद बी ओपतराय खवासिन के पाइन
बोड़ा ८ गांव ।

परिशिष्ट—२

तारीखी मुहम्मदी का एक उल्लेख

[रीबा के मौलवी ऐयाज अली खाँ ने दिनांक २८-३-६० की अपनी यादगरी से निम्नलिखित उल्लेख लिखाया था। यह मोहम्मद बिहामिद खानी द्वारा ८४२ हिजरी (१४३८ ई०) में लिखित 'तारीखी-मुहम्मदी' नामक इतिहास ग्रन्थ के पृष्ठ ४७२ में प्राप्त ७९८ हिजरी (१३९५ ई०) का विवरण है।]

कालबी के सुलतान माहिरुद्दीन महमूदशाह ने ७९८ हिजरी में हमीरपुर को लूटा। तामराज से मुलह हुई। उनके बाद वह बहादुर बघेलों के गहोरा पर चढ़ा। रास्ते में सेमोनी और मयुरा का लूटा। गहोरा के मुकद्दम बीरम (बीरम) ने सामना किया। उसके पास काफी फौज थी और वह बड़ा ताकतवर था। लेकिन वह पहले ही हमले में हार गया। बहुत से लोग गिरफ्तार किये गये। इस लड़ाई में महमूदशाह का देश तालार खाँ भी था। बीरम को पकड़ कर मोहम्मदाबाद (कालबी) में पश्चिमी दरवाजे पर दरिया के किनारे खड़ा कर दिया। बीरम ग्वालियर की तरफ भाग गया। उसकी सिन्घा के बीलम से दोस्ती थी। बीलम ने महमूद से मुलह कर ली। थोड़े अरसे के बाद बीरम ने फिर तैयारी की और कड़ा में फौज जमाई। महमूद ने दूसरी बार गहोरा पर चढ़ाई की और उसे मेस्तानाबूद कर दिया। बहुत सी लूट मिली। बाद में मुलह हो गई।

परिशिष्ट—३

शिलालेख

[बोरमानुसङ्गकाव्य के साथ प्रारम्भ में प्रकाशित अपने समीक्षात्मक विदलेपण (क्रिटिकल एनलिमिस पृ० १७) में डा० होरानन्द शास्त्री ने करवी में पड़े हुए एक गहोरा-शिलालेख का उल्लेख किया है । यह १३६० ई० का सलीलेख इस समय प्रयाग सङ्ग्रहालय में है । १९-२-३६ को उतारे हुए इसके बंकरन (रिट) की प्रतिलिपि भूतपूर्व प्राचार्य अक्षतर हुसेन निजामी, रोवा ने मेरे समीप १४-७-६४ को भेजी थी । इसके कुछ पठनीय अंश निम्नलिखित रूप में सामान्य प्रस्तुत किये जाते हैं ।]

- (१) संवत् (त्) १४१७ समये । जेष्ट (ज्येष्ठ) वदी १३ बुद्धे (चे) महा ।
- (२) राजाधिराज श्री बल्लालदेवराज्ये । — अडी (मी)
- (३) नायक...तस्य वैसे (शे) सुपुत्र महाराजनामा
- (४) दमाग्यात्परमेश्वर-वैकल्यात् स
- (५) ती... सरयरलोक...तः तदर्थं क्ष (?) व
- (६) पक्षात्...अरीन्द्रजान् यावत्तावग्निम् (?)
- (७) मणेररी मकव (?).. वो ले सिंहदेव हगा । स्ता) व (त्) ।

परिशिष्ट—४

आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम् (छाया-चित्र के दो पृष्ठ)

प्रथम प्रति (यस्ता ३९८ : सं० की० भा०) का प्रथम पृष्ठ

श्रीगणेशायनमः ॥ विश्वेजानामधीशश्चिदचिदुदितया स्वीय-कृत्याखिलान्त-
र्यामी स्वामी जनानी सुरचित-मकलः सर्वकर्ताप्यकर्ता । उदरार्ता भृत्यमृत्योः
करयुग-विलसद्वाण-वाणासनप्राञ्चद्वन्वापस्तदित्वानिव स घरणिजा-जानिरव्याव-
भस्यात् ॥ १ ॥ अपि च । कल्याणं कलयन्तु दंकरधनुर्माँर्वी-समाकर्षणात् काठिन्य-
प्रतिभासि-पाणि-लक्षिताः समाजगुलि-धेनयः । शीलांशोदह-मध्य-संपुट-मिलरसं-
वत्तिका-संघमा यामूदमृगविभा विमाप्ति महिजा-जानेः कटाक्षच्छटाः ॥ २ ॥
देवेन्द्रवन्द्य-विलसच्चरणारविन्दमानन्द-साम्प्रमुदितेन्द्रिमानमामः । यस्य प्रसाद-
रजसा सहसा शिलापि बाला बभूव विमला कमलायताशी ॥ ३ ॥ व्यापन्ती
ध्येयरूपं हृदय-सरसिजे ध्येयनामोद्गुणन्ती वाचा वाचामधोशा तदमलचरितं
वीणया वादयन्ती । शुभा शुभाशु-शुभाशुक-कुसुम-लसम्प्रीवितकाभूषितांगी
संस्तुर्याद् वाक्यमंगी मम वदन-सरोजात संगोड-भूषोम् ॥ ४ ॥ (नान्द्यन्ते)
सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण । मारिष ! महाराजकुमारस्य नाट्यकरणान्ना
ममासीदेतादृशि समये यत् सहायकस्त्वं मिलितः तन्महत्कार्यमासीत् । मारिषः—
भोः—सूत्रधार ताव (दत्र)....

+ + + +

तृतीय प्रति (यस्ता ३९८ : सं० की० भा०) का अन्तिम पृष्ठ

सूत्रधारः—(चूहाचुबदंजलिपंकजं प्रणम्य) चित्तं निर्मलतो प्रयातु
निखिला नश्यन्तु कामाधयः पुण्यं पागितलावलंबमिह नः कुर्याः शिवेक-प्रथम् ।
स्वत्पादाब्ज- (मिलन्)-मिलिन्द-पदयो स्यादेवदेव प्रभो । प्रेमाप्नोतु तमी (वी)
समं नरपतिः श्रीविश्वनाथः कृती ॥ यावत्कीर्तिस्त्वदीया चलति कुबलये ताव-
दास्ता रसोप-प्राकट्यं नाटकं श्रीधर तव चरितं नन्दनानन्द-भूम्ने (भनः) । या (सः)
स्पात् सोमाग्यशाला (लो) विरति-वर-गतिर्यः पठेत् पाठयेद्वा त्वद्रूपं विश्वनाथः
कलयन्तु हृदये दोयतां सद्गोप्यम् ॥ श्रीरघुनन्दनः—तथास्तु । सूत्रधारः (प्रणम्य
सहर्षं निष्क्रान्तः ।) श्रीरघुनन्दनः—आवच्छत । गृहान् गच्छामः । (इति
निष्क्रान्ताः सर्वे) ॥ सम्पूर्णः समाप्तः (सप्तमः) काण्डः (अंकः) ॥ सिद्धि-
महाराजाधिराज-श्रीमहाराजा-श्रीराजावहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृपाशत्राधि-
कारि-श्रीविश्वनार्थसहजुदेव-कृतमानन्द-रघुनन्दन-नाम-नाटकं सम्पूर्णम् ॥
शुभं भूयात् ॥

सन्दर्भ-ग्रंथ

(क) संस्कृत (प्रकाशित)

१. अग्निपुराणम् ।
२. अल्पयदीक्षित : कुवलयानन्दम् ।
३. आनन्दवर्धन : व्यासश्लोक : अभिनवगुप्त-कृत लोचन-व्याख्या सहित ।
४. उदयन : क्रियावली : विन्देश्वरी प्रसाद द्विवेदी ।
५. उदयप्रभ सूरि : सुकृत-कीर्ति-कलोलिनी ।
६. ऋग्वेद : दशम-१० : पुरुष-सूक्त ।
७. कल्याणवर्मा : सारावली ।
८. केशव मिश्र : तर्कभाषा : आचार्य विश्वेश्वर : चौखम्बा ।
९. केशव मिश्र : तर्कभाषा : सुरेन्द्रलाल गोस्वामिन् ।
१०. गदाकर मट्ट : रसिकजीवनम् ।
११. गोविन्दजित् : सम्मालङ्करणम् ।
१२. गोविन्दमट्ट (अकबररी कालिदास) : रामचन्द्र-यशःप्रबन्ध ।
१३. जगन्नाथ शास्त्री पदे : सम्मानाङ्क : बड़ोदा ।
१४. जयदेव : गीतगोविन्दम् ।
१५. जयदेव : चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका : चौखम्बा, वाराणसी ।
१६. जयदेव : चन्द्रालोक : राकायन टीका : चौखम्बा : वाराणसी ।
१७. जयदेव : चन्द्रालोक : सरदायण टीका : पद्मनाभ मिश्र ।
१८. जयदेव : प्रमलराघव-नाटकम् ।
१९. त्रिनाद विमूति—महानारायणोपनिषद् ।
२०. दण्डिन् : काव्यादर्शः ।
२१. दण्डिन् : दशकुमारचरितम् : (पूर्वशीलिका) : चौखम्बा : वाराणसी ।
२२. घनञ्जय : दशरूपकम् (हिन्दो व्याख्या) ।
२३. निरञ्जङ्क शाङ्गदेव : सङ्गीत-रत्नाकर : हरिनारायण आप्टे ।
२४. नीलकण्ठ : अद्भुतदर्शन नाटक ।
२५. पद्मनाभ मिश्र : क्रियावली-भास्कर : गोपीनाथ कविराज ।
२६. पद्मनाभ मिश्र : प्रशस्तिपाद भाष्य की सेतु व्याख्या : चौखम्बा : वाराणसी ।

२७. पद्यनाम मिथः वीरभद्रचम्पू ।
२८. परव — काञ्चोनाथ पाण्डुरङ्गः सुभाषित-रत्न-भाण्डागारम् ।
२९. पाञ्चरात्र-परम-संहिता : गायकवाट ओरिएण्टल विरोज ।
३०. प्रगल्भ मिथः खण्डन-खण्ड-साय की खण्डन-दर्पण टीका ।
३१. प्रियादासः सुसिद्धान्तोत्तमम् : काशी ।
३२. बाणभट्टः कादम्बरी (पूर्वभाग) ।
३३. बालचन्द्र सूरि : यशस्तुविजय महाकाव्यम् : बड़ोदा ।
३४. बृहद्बर्मपुराणम् ।
३५. ब्रह्मगुप्तः ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः काशी ।
३६. भरतः नाट्यशास्त्रम् ।
३७. भवभूतिः उत्तर-रामचरित-नाटकम् ।
३८. भवभूतिः महावीरचरितम् ।
३९. भासः अभिषेकनाटकम् ।
४०. भासः प्रतिमा-नाटकम् ।
४१. भानुजिदीक्षितः अमरकोष की व्याख्यासुधा टीका ।
४२. भानुदत्तः रस-तरङ्गिणी ।
४३. भानुदत्तः रस-मञ्जरी : खोलम्बा ।
४४. भामहः काव्यालङ्कारः काशी संस्कृत विरीज ।
४५. भोजराजः जम्पुरामायणम् : खोलम्बा ।
४६. भम्मटः काव्यप्रकाश ।
४७. माधव ऊरुण्यः वीरभानुदयकाव्यम् : होरानन्द शास्त्री ।
४८. मुरारिः जनार्दनचम्पू ।
४९. मेरुतुङ्गाचार्यः प्रबन्ध-चिन्तामणि ।
५०. रघुराजविहः जगदीशशतकम् : मूलभाजम् ।
५१. रघुराजविहः जगदीशशतकम् : रङ्गाचार्य-टीका ।
५२. रघुराजविहः नर्मदाष्टकम् ।
५३. रघुराजविहः शम्भुशतकम् ।
५४. रघुराजविहः सुषमाविलास ।
५५. राजशेखरः काव्यमोमांसा ।
५६. राजशेखरः बालरामायणम् ।
५७. राजशेखर सूरिः प्रबन्धकोशः जिनविजयमुनि ।
५८. रामचन्द्र भट्टः रसिकरञ्जनम् ।

५३. रामायण : सिद्धान्तचन्द्रिका : चौखम्बा ।
५४. द्रष्ट : काव्यालङ्कार : ननिसाधु की व्याख्या ।
५५. रूपिण शर्मा : अष्टलवशवर्णनम् : सम्पादक-राजीवलोचन अग्निहोत्री ।
५६. लक्षणमष्टकम् : पद्यरचना ।
५७. वामन : काव्यालङ्कार-सूत्रम् ।
५८. बालनीकि-रामायणम् ।
५९. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : जोशानन्द विशाखापर ।
६०. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी ।
६१. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : पी. बी. काणे ।
६२. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : रामचरण तर्कवागीश ।
६३. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : शालग्राम शास्त्री ।
७०. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : शिवदत्त कविरत्न ।
७१. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : हरिदत्त सिद्धान्तवागीश :
७२. वीरभद्रदेव : कन्दर्पचूडामणि : जातनसिंह : सतना : १६०८
७३. वीरभद्रदेव : कन्दर्पचूडामणि : रामचन्द्र शास्त्री ।
७४. वेणोदत्त : पद्यवेगी : प्राच्यवाणः कलकत्ता ।
७५. वैशेषिकदर्शनम् : चौखम्बा ।
७६. शक्तिमयः आश्चर्यचूडामणिनाटकम् : कुप्पुस्वामी ।
७७. शिवताण्डवस्तोत्रम् ।
७८. शील-हनुमन् : महानाटकम् : कलकत्ता ।
७९. घोमईमामयम् : योरखपुर ।
८०. मुद्राकर त्रिवेदी : गगक-तरङ्गिणी ।
८१. मुन्दरदेव : मूर्तितुमुन्दर ।
८२. सुभाषित-शार-समुच्चय ।
८३. सुभाषित-हारावली ।
८४. सोमेश्वर : कीर्तिकौमुदी ।
८५. हरिनास्कर : पञ्चामृत-तरङ्गिणी ।
८६. हेमचन्द्र : काव्यानुशासनम् ।

(ख) संस्कृत (अप्रकाशित)

(अ) कलकत्ता : रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

१. वीरभद्रदेव : दशकुमार-पूर्व-कथासार : (१५८० ई० के निकट)
क्र० जो० १९३६८ : प्रतिलिपि ।
२. शम्भूदास पण्डित : सार-सङ्ग्रह : क्र० ३११९ ।

(आ) रामचन सतना :— तुन्दसी सङ्ग्रहालय :

३. रघुराज सिंह : यादवेन्द्राष्टकम् ।
४. रघुराज सिंह : लोकनायाष्टकम् ।
५. विश्वनाथ सिंह : अघ्यारम-रामायण : ध्वनि-प्रकाशिका टीका
(१८१४-५४) ।
६. " रामगीता की प्रशोधिका टीका (१८२०-३४) ।
७. " रामचन्द्राष्टकम् (१८३४-५४) ।

(इ) रीवा : सरस्वती-कोप-भाण्डार : किला :

८. पद्मनाभ मिश्र : वीरभद्रदेव-चम्पू (१५७७ ई०) : उदयपुर की प्रतिलिपि ।
९. प्रियादास : चतुःश्लोकी भागवत (१८००-१८१८) ।
१०. " दीक्षासार-निर्णय " ।
११. " भक्तिप्रभा (१८०७) ।
१२. " वैष्णवसिद्धान्त (१८००-१८१८) ।
१३. " श्रुति-सूत्र-तात्पर्यामृत (१८१३) ।
१४. " सुमत-निर्णय (१८१५) ।
१५. " सुसिद्धान्तोत्तम (१८००-१८१८) ।
१६. बलभद्र सिंह : कृष्ण विवरण (१६ वीं शती-पूर्वार्द्ध)
१७. " ब्रह्मसूत्र-भाष्य (१८१८) ।
१८. " लोचन-ग्रन्थ (१९ वीं शती-पूर्वार्द्ध) ।
१९. " वृत्तिबोध " ।
२०. रघुराज सिंह : रघुराज-मञ्जुल-चन्द्रावली (१८३०-८०) ।
२१. विश्वनाथ सिंह : आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम् (१८३५ ई० के निकट) :
३ प्रति—क्र० ३६१८ : ३६१८।१ : ३६१८।२ ।
२२. " ज्योत्स्ना—सुमार्ग की टीका (१८१७) ।
२३. " तत्त्वमस्यर्थ-सिद्धान्त-भाष्य (१८३४-५०) ।

२४. विश्वनाथ सिंह : धनुविद्या (१८४०) ।
 २५. " धर्मशास्त्र (विश्वसुखलोको) (१८३४-५४) ।
 २६. " निकुञ्जगङ्गी-वेदन्तुनि-टीका (१८२०-५४) ।
 २७. " राधावल्लभोप मठ-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्य :
 (१८४०-४१) ।
 २८. " रामचन्द्राह्निकम् (१८३४-५४) ।
 २९. " राम-मन्त्रार्थ-निर्णय (१८३४-५०) ।
 ३०. " बासुदेव-सहस्रनाम (१८३४-४२) ।
 ३१. " सर्वसिद्धान्तम् (१८०९-३४) ।
 ३२. " सङ्गीत-रघुनन्दनम् (१८२०-३४) : ६ प्रति : क्र०
 १५४।१३।१-२-३-४ तथा १५४।१४ और ६।७३ ।

(ई) रीवा-शिक्षासागर पुस्तकालय :

३३. विश्वनाथ सिंह : राधावल्लभोप-मठ-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्यम् ।
 ३४. " रामपरत्वम् (१८४०) ।
 ३५. " रामरहस्य-त्रयार्थ (१८३४-३७) ।
 ३६. " सर्वसिद्धान्तम् (अपूर्ण) ।

(उ) अन्यत्र :

३७. अग्निहोत्री-रंचुकराम : अग्निहोत्रि : कुल-वंशावली (१८२८ ई०) ।
 ३८. विश्वनाथ सिंह : चाल्मोकोप रामायण को साररूप-तरणि टीका :
 (१८३४-४५) : गन्दकिशोर पोष्टाचार्य : रीवा ।

(ग) हिन्दी (प्रकाशित)

१. अन्नदेश कवि : बंशावली : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, १८१६ ई० ।
 २. आसीर्वादीलाल श्रोतास्त्रव (डा०) : मृगकालीन भारत ।
 ३. कविलेश पाण्डे (डा०) : मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, चौखम्बा ।
 ४. कामिनी कुंठे (फादर) : रामकथा-उत्पत्ति और विस्तार ।
 ५. कृष्णाराम गणपतराम मट्ट : बाघेना-वृत्तान्त ।
 ६. गोरेलाल तिवारी : मुन्देलखण्ड का इतिहास ।
 ७. गोस्वामी तुलसीदास : रामचरितमानस ।
 ८. जयसिंह देव : हरिश्चरित चन्द्रिका (पूर्वाह्न) ।
 ९. दुर्गादास कवि : अज्ञातफनेह या नायक-रामसा ।
 १०. नागेन्द्रनाथ बसु : हिन्दी विश्वकोष भाग १५ ।

११. बलदेव उपाध्याय (डा०) : संस्कृत आलोचना ।
१२. बजरत्नदास : भासिर-उल-उमरा, हिन्दी अनुवाद ।
१३. भगवानदास गुप्त (डा०) : महाराजा छत्रसाहब बुन्देला ।
१४. मैथिलीधरण गुप्त : साकेत ।
१५. यादवेन्द्रसिंह : रोवा राज्य का इतिहास ।
१६. युगलदास (कवि) : विश्वनाथसिंह-चरित्र ।
१७. रघुराजसिंह : आनन्दाम्बुनिधि (भाषा-भाषक) ।
१८. रघुराजसिंह : जगन्नाथ शतक ।
१९. " मविप्रविलास ।
२०. " युगयाचतक (शिकारशतक) ।
२१. " रघुराजविलास (पदावली) ।
२२. " रामरसिकावली (भक्तमाला) ।
२३. " रामस्वयंवर ।
२४. " रुक्मिणी-परिणय ।
२५. " विष्णुसहस्रनाम (पद्य) ।
२६. राजीवलोचन अग्निहोत्री : संस्कृत साहित्य की वाग्धव नरेशों की देन ।
२७. रामचन्द्र धुव (आचार्य) : हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
२८. रामधारी अग्निहोत्री : कसोटा के बापेलों का इतिहास ।
२९. " विन्ध्यप्रदेश का इतिहास ।
३०. विजयेश स्नातक (डा०) : राधाकृष्णन सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य ।
३१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय-विमर्श ।
३२. विश्वनाथ सिंह : आनन्द-रघुनन्दन नाटक (हिन्दी) ।
३३. शकुन्तला दूबे (डा०) : काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास ।
३४. दयामनोहरदास (आचार्य) : प्राचीन खेल-अभिज्ञान ।
३५. सिलारपुरिया : दक्षिण पुस्तकालय ।
३६. हिन्दी साहित्य-कोश : भाग १-२ ।

(घ) हिन्दी (अप्रकाशित)

(अ) सरस्वती कोष-भाण्डार, रोवा में उपलब्ध :-

१. गंगाराम तुलाराम चौबे : संशोधित-रत्नाकर की सेतु (व्रजभाषा)
टीका (१८२०-५०) ।
२. रघुराजसिंह : परम-प्रबोध-नाटक (छन्दित), ५१६८ ।
३. " : विनय-पत्रिका (१८५०) : दो प्रति ५-६७-१ : ८५/६१६ ।

४. रघुराजसिंह : विनय-प्रकाश (खण्डित) ।

५. " ध्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका (भागवत की टीका) :

एकादश-द्वादश स्कन्ध (१८५० ई०) ।

६. लक्ष्मणसिंह (रविन्द्र) : कृष्णायन : पौषख खण्ड :

(१९ वीं शती-पूर्वार्द्ध) ।

(आ) अन्यत्र :

७. रघुराजसिंह : सुन्दरचरित (हनुमत्चरित) : १८४७ ई० : तुलसी-

सङ्ग्रहालय : रामवन ।

८. " शास्त्र्यन्दोविका (वाल्मीकि-रामायण की हिन्दी टीका) ।

९. बिहारीदास खानी : तारीखी मुहम्मदी (हिन्दी अनुवाद) : मौलाना ऐमाज अली : घोषर : रोवा ।

१०. बंशावली १. एकत्रा बांधोगड़ : (जमाबन्दी) : परि० १ (क)

११. बंशावली २. जमाबन्दी : परि० १ (ख)

१२. बंशावली ३. जमाबन्दी : परि० १ (ग)

१३. बंशावली ४. शिवदीन कवि : १९१४ वि० (१८५७ ई०) : स्व० अम्बिकेश मट्ट : रोवा ।

(ख) हिन्दी-निबन्ध

राजीवलोचन अग्निहोत्री ।

१. जयमहिदेव की रचनाएँ : विष्णुमूर्ति ।

२. रघुराजसिंह की संस्कृत रचनाएँ : विष्णुमूर्ति ।

३. विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ : मध्यप्रदेश-सन्देश ।

(च) अंग्रेजी (प्रकाशित)

1. A Collection of Prakrit and Sanskrit Inscriptions in the Bhavanagar Archaeological Department.

2. Aitchison—C. U. : Rewa Under the Crown—Treaties and Sanads with British Government (1800–1930) Delhi : 1933.

3. Aufrecht : Catalogus Catalogorum : Leipzig.

4. Beveridge—H : Akbarnamah of Abul Fazl : 1907.

5. Beveridge—H : Humayun-namah of Gulbadan Begam.

6. Beveridge—H : Jahangir-namah : 1909.

7. Bhandarkar—R. G. : Report of the Second Tour : 1904–6 Bombay.

8. Blochmann : *Ain-i-Akbari of Abul-Fazl*. Calcutta : 1873..
9. Bombay Gazetteer.
10. Briggs : *Tarikhe-Ferishta*.
11. Buhlar : *Epigraphica-Indica* : Vol. XXVI. —
12. Catalogue of Manuscripts existing in Oudh.
13. Catalogue of Manuscripts in Kashmir.
14. Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Oriental Library
Mysore & Supplement.
15. Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Ulwar State.
16. Chaudhuri-J. B. *Muslim Patronage to Sanskrit Learning* :
Vol. I : Second Edition : Pracyavani. Calcutta : 1954.
17. Cunningham—A. *Archaeological Survey Reports of India* :
Vol. XXI.
18. Egging : *Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the India
Office, London* : Vol. VII.
19. Elliot & Dowson : *History of India* : Vols. I-VI.
20. Erskin : *Babar & Humayun* : Part II.
21. Faizi-Sirhindi : *Akbarnamah*.
22. Gladwin : *Ain-e-Akbari of Abul-Fazl*.
23. *Glory of Bandho* : Rewa : 1948.
24. Habibullah : *The Foundation of Muslim Rule in India
(1200-1290)* : 1945.
25. Hunter : *Imperial Gazetteer of India*.
26. Johar : *Humayun-namah (Memoirs of Humayun)*.
27. Kane—P. B. : *History of Dharmasastra* : Vol. I : Poo...
1930.
28. Keith—A. B. (Dr.) : *A History of Sanskrit Literature* :
Oxford : 1928.
29. Krishnamachariar-M. : *History of Classical Sanskrit Lite-
rature* : Madras : 1937.
30. Lowe-W. H. : *Al-Badaoni* : Vols. I & II : 1884.
31. Luward-Captain : *Rewa State Gazetteer* : 1910.
32. Majumdar-A. K. : *Chaulukyās of Gujrat* : Bharatiya
Vidya Studies IV-Bombay : 1956.
33. Majumdar-B. C. : *Orissa in the Making*.
34. Menaria-M. L. : *Catalogue of Manuscripts in the Library
of H. H. the Maharana of Udaipur*.

35. Mitra-R. L. : A Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the (Anup Sanskrit) Library of the Maharaja of Bikaner.
36. Mitra-R. L. : Notices of Sanskrit Manuscripts : Calcutta : 1871.
37. Munshi-K. M. : Glory that was Gurjar Desa : Bharatiya Vidya Bhavan : Bombay : 1954.
38. Nambier-Raghavan : An Alphabetical List of Manuscripts in the Oriental Institute of Baroda : Part II-1950.
39. Parekh-Bhai Manilal C. : Sri Vallabhacharya : Rajkot : 1943.
40. Peterson : Reports of the Operations in Search of Sanskrit Manuscripts in the Bombay Circle.
41. Polemann-H. E. : Census of Indic Manuscripts in U.S.A. and Canada, 1938.
42. Rai : Successors of Shershah : 1934.
43. Raverty : Tabkat-Nasiri of Minhaz-Uddin of 1260 A. D.
44. Ray-H. C. : Dynastic History of Northern India Vol. II. Calcutta : 1936.
45. Satyasray-Ranjit Sing : Origin of the Chalukyas : Calcutta : 1938.
46. Shastri-H. P. (M. M.) : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Asiatic Society of Bengal Calcutta : Vol. IV-1923.
47. Shastri-H. P. (M. M.) : A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta : Vol. VII : 1934.
48. Shastri-P. P. S. : Catalogue of Manuscripts in the Palace Library of Tanjore.
49. Shelat-J. M. : Akbar : Parts I & II : Bharatiya Vidya Bhavan Bombay.
50. The Struggle for Empire : Bharatiya Vidya Bhavan Bombay : 1957.
51. Utgikar : Collected Works by R. G. Bhandarkar.

(छ) अंग्रेजी-निबन्ध

1. Barua-B. K. : 'Purusottam Gajapati of Orissa in Early Assamese Literature' : All India Oriental Confe-

rence : B. H. U. XII-Session : 1943-44 : Ed. A. S. Altekar.

2. Chakravarti C : 'Sanskrit Works of Maharaja Viśvanātha Simha' : Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal-Calcutta : Vol. V : 29th Oct. 1939.
3. Chaturvedi-G. D. : 'Note on Gaṇeśrāma son of Tulārāma : Annals : Poona : Vol. XXXIV.
4. Gode-P. K. : 'A Contemporary Manuscript of Bhānujī Dīkṣita Vyākhyāsudhā' : Journal of the University of Bombay : Vol. XI Part II : Sept. 1942.
5. Gode-P. K. : 'Bhānudatta—Author of the Pārijāta and Bhānudatta—Author of the Rasa-Mañjarī' : Indian Culture : Vol. III : 1937 : pp. 151-56.
6. Gode-P. K. 'Date of Sāhitya-Sudhā, a commentary on the Rasa-Taraṅgiṇī of Bhānudatta' : Calcutta Oriental Journal : Vol. I : 1934 : pp. 217-220.
7. Gode-P. K. : 'Identification of Virabhānu, The Patron of Poet Bhānukara' : Calcutta Oriental Journal : Vol. II : 1935 : pp. 254-258.
8. Gode-P. K. : 'Rāmchandra Bhatta, a Protege of King Pahārasimhadeva son of King Virasimhadeva of Bundelkhand' : Adyar Library Bulletin Vol. XVIII- : Part I & II : p. 2.
9. Gode-P. K. : 'Sābāji Pratāparāja.....' : Annals of the B. O. R. I. Poona : Vol. XXIV-Part III-IV : 1944 : pp. 156-164.
10. Gode-P. K. : 'Sanskrit and Hindi works of Mahārāja Viśvanātha Simha of Rewa-Between 1813 and 1853' : New Indian Antiquary : B. O. R. I. Poona Vol. IX-Nos. 4-6 : April-June : 1947.
11. Gode-P. K. : 'Some Data for the Identification of Virabhānu, the Patron of Poet Bhānukara' : Calcutta Oriental Journal : Vol. II : 1935 : pp. 197-199.
12. Gode-P. K. : 'Terminus ad quem for the date of Bhānudatta, the Author of the Rasa-Mañjarī' : Annals : Poona : Vol. XVI-1935-pp. 147-148.
13. Gode-P. K. : 'Virabhānūdaya-Kāvyaṃ' Annals : Poona : Vol. XXVII-Part 182 : 1947 : pp. 163-165.

14. Katre-S. : 'Kalyāṇa Varman's Sārāvalī—Fresh Light on Its Date' : All India Oriental Conference : B. H. U. XII-Session : 1943-44 : Ed. A. S. Altekar.
15. Nizami-A. H. : 'Baghelas in Gujarat' : The Rewa Information : Vol. I-Part 3 : July, 1947.
16. Nizami-A. H. : 'Genealogical Sources of the Baghela Dynasty of Rewa' : Ninth History Congress : Annamalainagar : Dec. 1945 : pp. 150-153.
17. Nizami-A. H. : 'Nine Gems of the Court of Mahārāja Bhāvasimha of Rewa' : Journal of the Gangānātha Jhā Research Institute, Allahabad, Vol. VIII-Part IV : Aug. 1951.
18. Nizami-A. H. : 'Note on Maihar' : Bharatiya Vidya, Bombay : Vol. VI-No. 2 : Feb. 1945.
19. Nizami-A. H. : 'The Baghela Dynasty of Rewa' : Journal of the Vikram University : Part II-May, 1958.
20. Nizami-A. H. : 'The Malikzada Dynasty of Kalpi' M. P. History Congress : Bhopal : April 11, 1957.
21. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'Some Baghela Rulers and the Sanskrit Poets Patronised by them' : Krishnaswamy Aiyangar Commemoration Volume : Ahmedabad : pp. 48-54.
22. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Poet Bhānukara', Annals Poona : Vol. XXVII-1936.
23. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Sūkti-Sundara of Sundaradeva' : Calcutta Oriental Journal : Feb. 1936 : pp. 133-144.
24. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Vaiṣṇava Philosopher Priyādāsa and His Works' : Indian Historical Quarterly, Calcutta : Volume XVI : 1940.
25. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'Critical Analysis of the Vīrabhānūdaya Kādyam' : Published with the Kāvya : Baroda : 1938.
26. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'Further Notes on the Baghela Dynasty of Rewa' : Journal of the Bihar and Orissa Research Society : 1930.
27. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'The Baghela Dynasty of Rewa—A Memoir' : Baroda; 1925.

अवशिष्ट

१ से ७ अध्यायों में वर्णित ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और पाण्डुलिपियों की सूचना प्राप्त है, जिनका सम्बन्ध बघेलखण्ड की संस्कृत-वाग्धारा के साथ होना अनुमित है। इनकी स्थिति सन्देहास्पद है और जानकारी विलम्ब से मिली, अतः यहाँ पृथक् रूप से इनका नामोल्लेख-मात्र किया जा रहा है।

निम्नलिखित चार पाण्डुलिपियाँ रीवा से १९५५-५६ ई० में नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी को भेजी गई—

१. शुद्धिभास्कर (खण्डित)—कर्मकाण्ड का यह ग्रन्थ पद्मनाभ मिश्र द्वारा रचित बतलाया जाता है। इसका लिपिकाल १७०६ वि० (१६५० ई०) है।

२. बीरसिंहावलोक—यह ज्योतिष-ग्रन्थ बघेल-नरेश बीरसिंहदेव की कृति कही जाती है।

३. सिद्धान्तचन्द्रिका (पूर्वाह्न)—रामाश्रमाचार्य की इस कृति का लिपिकाल १९२६ वि० है।

४. शन्देन्दुशेखर—कहा जाता है कि यह ग्रन्थ १८४२ वि० में नागोजी भट्ट द्वारा चँदिया (जिला शहडोल) में लिखा गया।

कुछ अन्य संबद्ध पाण्डुलिपियाँ निम्नलिखित हैं—

१. राधाविनोद-काव्यम्—सरस्वती-कोषभाण्डार रीवा में प्राप्त यह १९ श्लोकों का लघु कृष्णकाव्य है। पुरुषोत्तम ब्राह्मण के पुत्र जनार्दन का ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र इसका रचयिता है।

२. सभ्याभरण—यह नीतिपरक कृति ९ उल्लासों में भाण्डार में सुरक्षित है। इसमें व्याकरण-सूत्रों पर विद्वत्ता प्रदर्शित की गई है। विश्वनाथ का पुत्र एवं शिष्य इसका प्रणेता है। पाण्डुलिपि पर 'महाराज-भावसिंहस्येदं' लिखा है।

३. अवधूतग्रन्थ—भाण्डार में ६ पत्रा में लिखित ७९ श्लोकों का यह वेशान्त-ग्रन्थ प्राप्त है। एक पुष्पिका इस प्रकार है—

‘दत्तात्रय-नोरसंवादे स्वात्मसंवृत्युपदेशे अवधूतग्रन्थे प्रथमे प्रकरणम्।’

अम से इसे महाराज अवधूतसिंह की रचना लिखा गया है।

४. पञ्चकोश-विवेक (व्याख्या-सहित)—विद्यारण्य मुनि की यह कृति रामकृष्ण की व्याख्या के साथ भाण्डार में रखी हुई है।

५. अमरकण्टक-माहात्म्य—आफे की सूची के प्रथम भाग में पृ० २६ पर शूमपुराण के अंश के रूप में अमरकण्टक-माहात्म्य का उल्लेख है।

६. रामचन्द्रोदय—उक्त सूची में पृ० ४०५ पर पुरुषोत्तम मिश्र की कृति रामचन्द्रोदय का नाम है। परिचय में लिखा है कि यह कवि राधाचरित के कवि का पितामह हो सकता है। हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार धीरसिंहदेव धधेल के सभासद रामचन्द्र भट्ट ने राधाचरित लिखा।

रामवन, जिला सतना (म० प्र०) के तुलसी-संग्रहालय में संरक्षित पाण्डु-लिपियाँ अनुसन्धेय हैं। इनमें से दो ग्रन्थ यहाँ उल्लेखनीय हैं—

१. काव्य-कल्पद्रुम (अपूर्ण)—यह सन्त कवि के पुत्र दिनेश द्वारा रीवा में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में लिखा गया। इसमें सन्त द्वारा रचित साहित्य-रत्नाकर का उल्लेख है। ग्रन्थ में ६६ पृष्ठ हैं; एक पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्री कविराज-राजि-मुकुटालङ्कार-हीर-श्रीसन्त-कवीश्वरारमज-रीवा-निवासि-बन्दीजन-दिनेश-कविराजकृत-काव्यकल्पद्रुम-नाम-ग्रन्थे काव्यकारणकार्य-वर्णनं नाम प्रथमं प्रकरणम्।’

२ मधुर-रामायण—यह हिन्दी काव्यग्रन्थ दोहे चौपाइयों में ४ काण्डों में २९५ पृष्ठों में है। काण्डों के नाम पूर्व खण्ड, दक्षिण खण्ड, पश्चिम खण्ड, और उत्तर खण्ड हैं। प्रथम द्वितीय खण्ड में प्रारम्भ में संस्कृत ग्रन्थ आदि-रामायण का मूल लेकर एक अध्याय का अर्थ सवभाषा पद्य में है, फिर दोहे चौपाइयों में रामकथा है।

ग्रन्थ का लिपिकाल कार्तिक शुक्ल ९ संवत् १९०३ है। लिपिकार रीवा निवासी घंभूनाथ प्रधान है। ग्रन्थकार माधवदास प्रसाद महाराज विद्वनाथ सिंह का शिष्य था—

गंगा प्रसाद जू को नामी कासीराम पुत्र
माधो मेरो नाम रीवाँ नगर नेवास है।
महाराज विश्वनाथसिंह को सिपायो पाल्यो
मधुररामायन सो रच्यो सहलास है ॥
आदि रामायन को अर्थ चारो खंडन में
पंचरात्र पदुम पुराण मत खास है।
मानो कै विस्वास अंत नासै भवनास
भयो रास कै विलास सीताराम जू को वास है ॥

पुष्पाञ्जलिः

पवित्रे सारवावारे मिश्रग्रामे द्विजातयः ।
 न्यवसन् मिश्रजातीया यज्वानो शास्त्रसेविनः ॥ १ ॥
 तद्बंश्यो येनदासस्तु विश्वनाथं समाश्रितः ।
 अर्चितः काशराजेन वेदीली-ग्राममावसत् ॥ २ ॥
 तदन्वये समुद्भूतो बलमद्र उपागविः ।
 कार्याः प्रस्थाय विप्रोऽसौ रेवा-नगरमाश्रितः ॥ ३ ॥
 रम्ये देशे वघेलानां प्रजास्तस्य महात्मनः ।
 प्रतिष्ठां प्रापिता धीरा निवसन्त्यग्निहोत्रिणः ॥ ४ ॥
 तस्मिन् कुले समुत्पन्नो रामनारायणः सुधीः ।
 ग्रामे रजरवारे च गुरुत्वं येन प्रार्जितम् ॥ ५ ॥
 पुण्यात्तदङ्गजन्माऽहं नान्ना राजीवलोचनः ।
 जातः काव्यानुसन्धित्सुर्हेतुस्तत्र परम्परा ॥ ६ ॥
 बान्धवाग्नी गहोरायां रेवापुर्यां प्रशासताम् ।
 वघेलखण्ड-भूपानामपि तेषां सभासदाम् ॥ ७ ॥
 प्रास्फुरन् संस्कृता वाचो विदुषां शरदः शतम् ।
 सन्ति तन्निर्मिता ग्रन्था ग्रन्थागारेषु सञ्चिताः ॥ ८ ॥
 हस्तलेख-स्वरूपेण निबद्धा वेष्टनेषु ते ।
 कालक्रमेण तेषाञ्च शङ्क्यते कीटमक्षणम् ॥ ९ ॥
 एषु लभ्येत भारत्या यात्रावृत्तं यथाक्रमम् ।
 अङ्किताः पूर्वजातानानिह प्रज्ञाश्च भावनाः ॥ १० ॥
 सम्प्रधार्य मनस्येवं कार्यमद्यैव सुस्थितैः ।
 ग्रन्थानां सारपूर्णानां प्रकाशन-समीक्षणम् ॥ ११ ॥
 तस्मान्महाप्रबन्धानां विहाय परिशोधनम् ।
 वघेलखण्ड-काव्यानां मया सारोऽनुसंहितः ॥ १२ ॥
 विशुद्धिरत्र लक्ष्येद गुरुणां सुहृदाञ्च सा ।
 श्यामिका या प्रतीयेत सा मेऽल्पज्ञस्य सर्वथा ॥ १३ ॥
 अथ पुष्पाञ्जलिर्न्यस्तश्चरणेषु मनीषिणाम् ।
 भूयान् प्रीत्यै चिरं तेषां रसज्ञानां शिवात्मनाम् ॥ १४ ॥